प्रकाशक :—
रावजीभाई छगनभाई देसाई
ऑनरेरी व्यवस्थापक—श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डल
(श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)
श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगास
पो० बोरिआ, वाया आणंद (गुजरात)

प्रथमावृत्ति	प्रति	१०००	वि० सं०	१९६१
द्वितीयावृत्ति	प्रति	१०००	,,	१९७२
तृतीयावृत्ति	प्रति	१०००	,,	२०२५

मुद्रक:—
पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ
जैनेन्द्र प्रेस
ललितपुर (झांसी) उ० प्र०

प्रकाशकीय निवेदन

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यरचित इस 'पंचास्तिकाय' नामक—ग्रन्थका प्रकाशन अनेक जैन संस्थाओंकी ओरसे समय समय पर होता रहा है, परन्तु परमश्रुतप्रभावक-मण्डलकी ओर से प्रस्तुत ग्रन्थकी यह तीसरी आवृत्ति है। मूलग्रन्थ आचार्यश्रीने प्राकृत भाषाकी १७३ गाथाओं में रचा है, जिस पर श्रीमदमृतचन्द्राचार्यने 'समयव्याख्या' (तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति) और श्रीमज्जयसेनाचार्यने 'तात्पर्यवृत्ति' नामक अर्थगंभीर समृद्ध टीकाओंकी रचना संस्कृत भाषामें की। प्राचीन हिन्दी भाषामें कई विद्वानोंने टीकाएं लिखी हैं जिनमें श्री पांडे हेमराजजी ने जो बालावबोध भाषा-टीका लिखी, उसीके आधार पर वीर नि० सं० २४३१ (ई० सन् १९०४) में सुजानगढ़ निवासी श्रीमान् पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद हुआ था। उस समय हमारी प्रथम आवृत्ति छपी थी। दूसरी आवृत्तिके समय वीर निर्वाण सं० २४४१ में श्री पं० मनोहरलालजी शास्त्रीने हमें अनुवादके संशोधनकार्यमें सहयोग दिया था, और अब वही संशोधित सामग्री पुनः विशेष सावधानीके साथ श्री पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थकृत नवीन हिन्दी भाषामें प्रकाशित की जा रही है।

परमश्रुतप्रभावक-मण्डल (श्रीमद्राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) की ओरसे अनेक सद्ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है, और अभी भी जो ग्रन्थ अप्राप्य हो गये हैं उन्हें क्रमशः पुनः छपाने का हमारा प्रयास चालू है। आशा है, पाठकजन इन ग्रन्थोंका पूरा लाभ उठाकर हमें निर्ग्रन्थ-प्रवचनकी सेवाका अवसर देते रहेंगे।

अन्तमें, जिन जिन महानुभावोंका हमें प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे सहयोग मिला है, हम उन सभीका हृदयसे आभार मानते हैं।

श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगास
वीर निर्वाण सं० २४९५. वि. सं. २०२५
ईस्वी सन् १९६९

निवेदक—
रावजीभाई देसाई.

❀ ॐ नमः ❀

प्रस्तावना ।

जासके मुखारविंदतें प्रकास भास वृन्द,
स्यादवाद जैनवैन इंदु कुन्दकुन्दसे ।
तासके अभ्यासतें विकास भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे ॥
देत हैं असीस सीस नाय इंद चंद जाहि,
मोह-मार-खंड-मारतंड कुन्दकुन्दसे ।
सुद्ध-बुद्धि-वृद्धिदा प्रसिद्ध-रिद्धि-सिद्धिदा,
हुए न हैं न होंहिगे मुनिंद कुन्दकुन्दसे ॥

(कविवर वृन्दावन)

आजसे २४३१ वर्ष पहिले अर्थात् सन् ईसवीसे ५२७ वर्ष पहिले इस भारतवर्षकी पुण्यभूमि में विपुलाचल पर्वत पर जगत्पूज्य परमभट्टारक भगवान् श्री १००८ महावीर (वर्द्धमान) स्वामी मोक्ष मार्गका प्रकाश करनेके लिये समस्त पदार्थोंका स्वरूप अपनी सातिशय दिव्यध्वनि द्वारा प्रगट करते थे। उस समय निकटवर्ती अगणित ऋषि मुनियों द्वारा वंदनीय सप्तऋद्धि और चार ज्ञानके धारक श्रीगौतम (इन्द्रभूति) नामा गणधरदेव भगवद्भाषित समस्त अर्थको धारण करके द्वादशांग श्रुतरूप रचना करते थे। श्रीवर्द्धमानस्वामीके मोक्ष पधारनेके पश्चात् उक्त गौतम स्वामी १ सुधर्माचार्य २ और जम्बूस्वामी ३ ये तीन केवलज्ञानी हुये, सो ६२ वर्ष पर्यन्त श्रीवर्धमान तीर्थंकर भगवान्के समान ही मोक्षमार्गकी यथार्थ प्ररूपणा (उपदेश) करते रहे। इनके पश्चात् क्रमसे विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्धन ४ और भद्रबाहु ५ ये पांच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी हुये। इन्होंने एकसौ वर्ष पर्यन्त केवली भगवान् के समान ही यथार्थ मोक्षमार्गका उपदेश किया। इनके पश्चात् विशाखाचार्य १ पौष्टिलाचार्य २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिमान् ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११ ये ग्यारह मुनि ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारक क्रमसे हुये, सो ये भी एकसौ तियासी वर्ष तक मोक्षमार्गका यथार्थ उपदेश देते रहे। इनके पश्चात् नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंशाचार्य ५ ये पांच महामुनि ग्यारह अंगमात्रके पाठी अनुक्रमसे दोयसौ बीस वर्षमें हुये। इनके पश्चात् सुभद्र १ यशोधर २ महायश ३ लोहाचार्य ४ ये चार मुनि एक अंगके पाठी अनुक्रमसे ११८ वर्षमें हुये।

इस प्रकार वर्धमान स्वामीके पश्चात् ६८३ वर्षपर्यंत अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। इनके पश्चात् अंगपाठी कोई भी नहीं हुये, किन्तु वर्धमानस्वामीके मोक्ष पधारनेके ६८३ वर्षके पश्चात् दूसरे भद्रबाहू स्वामी अष्टांग निमित्तज्ञान (ज्योतिष) के धारक हुये। इनके समयमें १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़नेसे इनके संघमेंसे अनेक मुनि शिथिलाचारी हो गये और स्वच्छंद प्रवृत्ति होनेसे जैनमार्ग भ्रष्ट होने लगा, तब भद्रबाहूके शिष्योंमेंसे एक धरसेन[1] नामके मुनि हुये जिनको अग्रायणीपूर्वमें पंचमवस्तुके महाप्रकृति नाम चौथे प्राभृतका ज्ञान था, सो इन्होंने अपने शिष्य भूतवली और पुष्पदन्त इन दोनों मुनियोंको पढ़ाया। इन्होंने षट्खंड नामकी सूत्ररचना कर पुस्तकमें लिखा। फिर उन षट्खंडसूत्रोंको अन्यान्य आचार्योंने पढ़कर उनके अनुसार विस्तारसे धवल महाधवल जयधवलादि टीकाग्रन्थ (सिद्धान्तग्रन्थ) रचे। उन सिद्धान्तग्रन्थोंको नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकदेवने पढ़कर लब्धिसार, क्षपणासार, गोमट्टसारादि ग्रन्थोंकी रचना की। सो षट्खंड सूत्रसे लगाय गोमट्टसार पर्यन्तके ग्रन्थसमूहको प्रथमश्रुतस्कंध वा सिद्धान्तग्रन्थ कहते हैं। इन सबमें जीव और कर्मके संयोगसे जो संसार पर्यायें होती हैं उनका विस्तारसे स्वरूप दिखाया गया है। अर्थात् भव्य जीवोंके हितार्थ गुणस्थान मार्गणाओंका वर्णन पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे समस्त कथन किया है। पर्यायार्थिक नयको अनेकान्त शैलीसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे अशुद्ध निश्चयनय तथा व्यवहारनय भी कहते हैं।

उक्त धरसेनाचार्यके समयमें ही एक गुणधर नामा मुनि हुये। उनको ज्ञानप्रवादपूर्वके दशम वस्तुमें तृतीय प्राभृतका ज्ञान था। उनसे नागहस्त नामा मुनिने उस प्राभृतको पढ़ा और इन दोनों मुनियोंसे फिर यतिनायक नामा मुनिने उक्त प्राभृतको पढ़कर उसकी ६००० चूर्णिकारूप सूत्र रचे, उन सूत्रोंपर समुद्धरण मुनिने १२००० श्लोकोंमें एक विस्तृत टीका रची। सो इस ग्रन्थको श्रीकुन्दकुन्दस्वामी अपने गुरु जिनचन्द्राचार्यसे पढ़कर पूर्ण रहस्यके ज्ञाता हुए और उसही ग्रन्थके अनुसार कुन्दकुन्दस्वामीने नाटक समयसार पंचास्तिकायसमयसार प्रवचनसारादि ग्रन्थ[2] रचे। ये सब ग्रन्थ द्वितीयश्रुतस्कंधके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सबमें ज्ञानको प्रधान करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका कथन किया गया है अर्थात् अध्यात्मरीतिसे इन ग्रन्थोंमें आत्माका ही अधिकार है इसकारण इस शुद्धद्रव्यार्थिक नयका शुद्ध निश्चयनय वा परमार्थ भी नाम है। इन ग्रन्थोंमें पर्यायार्थिक नयोंकी गौणता की गई है। क्योंकि इस जीवकी जबतक पर्यायबुद्धि रहती है तबतक संसार ही है। और जब शुद्धनयका उपदेश श्रवण करनेसे द्रव्यबुद्धि होकर निज आत्माको अनादि अनन्त एक और परद्रव्य तथा परभावोंके निमित्तसे हुये जो निजभाव तिनसे भिन्न आपको जानकर अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभवकर शुद्धोपयोगमें लीन हो तबही कर्मोंका अभावकर यह जीव मोक्षपदको प्राप्त होता है।

पट्टावलियोंके अनुसार ये कुन्दकुन्दस्वामी नन्दिसंघके आचार्योंमें विक्रम संवत् ४९ में हुए हैं तथा पद्मनंदी एलाचार्य गृध्रपिच्छ और वक्रग्रीव ये ४ नाम भी इनहींके प्रसिद्ध किये गये हैं। यद्यपि ये नाम इनहीं के हों तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु पद्मनंदी आचार्यके बनाये हुये जगत्प्रसिद्ध पद्मनंदिपंचविंशतिका, व जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ भी इनके बनाये हुये हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि पद्मनंदी नामके आचार्य कई हो गये हैं। जैसे एक तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्त्ता पद्मनंदि हैं जो कि वीरनंदिके शिष्य बलनंदी

१ इनका बनाया हुआ एक अनेकार्थ कोष ईडरके भण्डारमें प्राप्त हुआ है।

२ इन्होंने ८४ पाहुड (प्राभृत) भी रचे हैं जिनमेंसे षट्पाहुड तो इस समय प्राप्त हैं।

और बलनंदिके शिष्य पद्मनंदी हैं सो विजयगुरुके निकट वारानगरके शक्तिभूपालके समयमें हुये[1] हैं। दूसरे—पद्मनंदिने पंचविंशतिका, चरणसारप्राकृत, धर्मरसायन प्राकृत, ये तीन ग्रन्थ बनाये हैं इनका समयादि कुछ प्राप्त नहीं हुआ। तीसरे पद्मनंदी कर्णखेट ग्राममें हुये हैं जिन्होंने सुगन्धदशम्युद्यापनादि ग्रन्थ बनाये हैं। चौथे—पद्मनंदी कुण्डलपुर निवासी हुये हैं जिन्होंने चूलिका सिद्धान्तकी व्याख्या वृत्ति नामक १२००० श्लोकोंमें बनाई है पांचवें—पद्मनंदी विक्रम सं० १३९५ में हुये हैं। छट्ठे पद्मनंदी भट्टारक नामसे प्रसिद्ध हुये हैं जिनकी बनाई रत्नत्रयपूजा देवपूजा पूनाकी दक्षिणकालेज लाइब्रेरीमें प्राप्त हुई है। सातवें-पद्मनंदी विक्रम संवत १३६२ में भट्टारक नामसे हुये हैं इनकी लघुपद्मनंदी संज्ञा भी है। इनके बनाये हुये यत्याचार, आराधनासंग्रह, परमात्मा प्रकाशकी टीका, निघंट वैद्यक, श्रावकाचार, कलिकुण्डपार्श्वनाथविधान, अनन्तकथा, रत्नत्रयकथा आदि ग्रन्थ हैं। इस प्रकार एक नामके धारी अनेक आचार्य हो गये हैं। यह सब नाम हमने पूना लाइब्रेरीकी रिपोर्टों परसे संग्रहीत किये हैं। इनमें तथ्य कितना है सो हम नहीं कह सकते और न इनका पृथक् पृथक् समय निर्णय करनेका ही कोई साधन है। किन्तु इस पंचास्तिकाय-समयप्राभृतके कर्ता कुन्दकुन्दस्वामी जगतमें प्रसिद्ध हैं। इनके बनाये समस्त ग्रन्थोंको दिगम्बरीय श्वेताम्बरीय दोनोंही पक्षके विद्वद्गण प्रमाणभूत मानकर परम आदरकी दृष्टिसे इनका स्वाध्याय अवलोकनादि करते रहते हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जैनी नहीं होगा जो इनके वचनोंमें अश्रद्धा करता हो।

इन आचार्य महाराजके बनाये हुये ग्रन्थोंके पूर्ण ज्ञाता पुरुषार्थसिद्ध्युपाय तत्त्वसारादि ग्रन्थोंके कर्ता अमृतचन्द्रसूरि विक्रम संवत ९६२ में नंदिसंघके पट्टपर हो गये हैं। इन्होंने ही समयप्राभृत (समयसार-नाटक) पंचास्तिकायसमयसार प्रवचनसारादि ग्रन्थोंपर परमोत्तम टीकायें रची हैं। इनके सिवाय इस पंचास्तिकाय समयसार पर एक टीका देवजितनामा आचार्यने बनाई है तीसरी टीका विक्रम संवत् १३१६ में प्रसिद्ध ग्रन्थकार वा टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्यने वनाई है चौथी टीका सं० १७७५ में भट्टारक ज्ञानचन्द्रजीने बनाई है और पांचवीं टीका बालचन्द्रमुनिने कर्णाटक भाषामें बनाई है। अन्वेषण करने से इस ग्रन्थ पर और भी अनेक टीकायें प्राप्त होना सम्भव है। इनके पश्चात् भाषाकारोंका नम्बर है सो इसका एक भाषानुवाद तो वि० सं० १७१६ में पंडित राजमल्लजीने किया है। दूसरा भाषानुवाद वि० सं० १७०० के लगभग पंडित हेमराजने ३५०० श्लोकोंमें किया है। तीसरा भाषापद्यानुवाद वि० सं० १७१८ में जहानाबाद निवासी कवि हीराचन्दजीने २२०० श्लोकोंमें बनाया है। चौथा भाषापद्यानुवाद वि० सं० १८९१ में विधिचन्द जी ने १४०० श्लोकोंमें किया है।

हमको उक्त ग्रन्थोंमेंसे १ प्रति अमृतचन्द्रजी सूरिकृत संस्कृत टीकाकी पदच्छेद छाया व टिप्पणी सहित प्राप्त हुई और तीन प्रति पंडित हेमराजजीकृत व्रजभाषानुवादकी प्राप्त हुई। जिनमेंसे १ प्रति वि० सं० १७४१ की लिखी हुई देवरीनिवासी भाई नाथूराम प्रेमीसे प्राप्त हुई। दूसरी प्रति विना सं० मिती की लिखी खुरई निवासी पंडित खेमचन्द्रजी अध्यापक जैनपाठशाला ईडरसे प्राप्त हुई। तीसरी प्रति सं०

१ यह बात बड़ोदा प्रान्तके करमसद ग्रामके पुस्तकालयस्थ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिकी अंतकी प्रशस्तिमें लिखी है।

२ पिटर्सन साहबकी रिपोर्ट चौथी नं० १४४२ का ग्रंथ।

३ लाहोर निवासी बाबू ज्ञानचन्द्रजी ने बुधजन सतसई और बुधजनविलास आदि के कर्ता पं० बुधजनजी यही थे। ऐसा प्रगट किया गया है।

१९४१ की लिखी हुई वीरमगांव निवासी दोसी बेलसी वीरचंदसे प्राप्त हुई। यद्यपि लेखक महाशयोंके प्रमादसे तीनों ही प्रतियां अशुद्ध हैं, परन्तु पहली प्रति दूसरी तीसरी से बहुत ही शुद्ध है ।

यद्यपि पंडित हेमराजजीकृत यह वचनिका प्राचीन व्रजभाषापद्धतिके अनुसार बहुतही उत्तम और बालबोध है परन्तु आजकलके नवीन हिन्दी भाषाके संस्कारक महाशयोंकी दृष्टिमें यह व्रजभाषा समीचीन नहीं समझी जाती है, तथा सर्वदेशीय भी नहीं समझी जाती, इसकारण मैंने पंडित हेमराजकृत भाषानुवादके अनुसारही नई सरल हिन्दी भाषामें अविकल अनुवाद किया है। अर्थात् संस्कृतके प्रत्येक पदके पीछे 'कहिये, कहिये' शब्दको उठाने और संस्कृत पदोंको कोष्ठकमें रखनेके अतिरिक्त अपनी ओरसे अर्थमें कुछ भी न्यूनाधिक नहीं किया है। किन्तु जहाँ जहाँ मूलपाठ और अर्थमें लेखकोंकी भूलसे कुछ छूट गया है तथा अन्यका अन्य हो गया है, उसको मैंने संस्कृत टीकाके अनुसार शुद्ध करके लिखा है । पंचास्तिकायका विषय आध्यात्मिक होनेके कारण कठिन है, इसलिये, तथा प्रतियोंकी अशुद्धताके कारण प्रमादवशतः मुझ सरीखे अल्पज्ञ द्वारा अशुद्धियां रह जाना सम्भव है, इस कारण विद्वज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे उन्हें शुद्ध करके पढ़ें ।

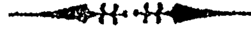
स्वर्गीय तत्त्वज्ञानी श्रीमान् रायचन्द्रजी द्वारा स्थापित श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलकी ओरसे इस ग्रन्थका जीर्णोद्धार हुआ है, अतएव उक्त मंडलके उत्साही सभासद और प्रबन्धकर्ताओंको इस प्रस्तावनाके अन्तमें कोटिशः धन्यवाद दिये जाते हैं, और श्रीजीसे प्रार्थना की जाती है कि वीतरागदेवप्रणीत उच्च श्रेणीके तत्त्वज्ञानका इच्छित प्रसार करनेमें उक्त मण्डल कृतकार्य होनेको शक्तिवान् होवे।

श्रीमान् शेठ माणिकचन्द पानाचन्दजी जौहरीने अपने भतीजे स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्दजी के स्मरणार्थ इस ग्रन्थके प्रकाशनमें ३५०) रु० की सहायता देकर विशेष उत्तेजना दी है, अतएव मंडल की ओरसे उक्त विद्योत्साही शेठजी भी विशेष धन्यवादके पात्र हैं ।

मुम्बई, ता० १०-१२-१९०४ ई०

जैनसमाजका दास,
पन्नालाल बाकलीवाल.

द्वितीयावृत्तिकी सूचना



प्रिय विज्ञपाठकोंको विदित हो कि इसकी पहली आवृत्तिमें केवल दो टीकायें थीं। उनमेंसे भी श्रीअमृतचन्द्रस्वामीकी टीकाके सूक्ष्म अक्षर थे। अबकी वार श्रीप्रवचनसार की तरह इसमें भी पूर्वटीकाके स्थूल अक्षर तथा श्रीजयसेनाचार्यकी तात्पर्यवृत्ति नामकी संस्कृत टीका बीचमें लगा दी गई है जिससे कि पाठकोंको शब्दार्थ समझनेमें सरलता मालूम होवे। दूसरी बात यह है कि इसमें विषयानुक्रमणिका तथा गाथानुक्रमणिका इसप्रकार समयके अनुकूल दो सूची भी लगा दी गई हैं और जो पहले संस्करणमें त्रुटियां रह गईं थीं वे भी यथाशक्ति सुधार दी गईं हैं। अब भी बुद्धिके क्षयोपशमकी न्यूनतासे त्रुटियां रह गईं हों तो उनको पाठकगण मेरे ऊपर क्षमा करके शुद्ध करते हुए पढें। क्योंकि ऐसे महान शास्त्रमें अशुद्धियोंका रह जाना सम्भव है। इस तरह क्षमाप्रार्थना करता हुआ इस सूचनाको समाप्त करता हूँ। अलं विज्ञेषु।

स० हु० दि० जैनमहाविद्यालय
नशियां इन्दौर
श्रावण कृष्णा १३ वी०नि० सं० २४४१

जैनसमाजका सेवक—
मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी।



श्रीमद् राजचंद्र

जन्म : ववाणिया
वि. सं. १९२४, कार्तिक पूर्णिमा
रविवार.

देहविलय : राजकोट
वि. सं. १९५७ चैत्र वद ५
मंगळवार.

अलौकिक अध्यात्मज्ञानी परमतत्त्ववेत्ता

श्रीमद् राजचन्द्र

'खद्योतवत्सुदेष्टारो हा द्योतन्ते क्वचित्क्वचित्'

हा ! सम्यक्तत्त्वोपदेष्टा जुगनूकी भाँति कहीं-कहीं चमकते हैं, दृष्टिगोचर होते हैं।

—आशाधर ।

महान तत्त्वज्ञानियोंकी परम्परारूप इस भारतभूमिके गुजरात प्रदेशान्तर्गत ववाणिया ग्राम (सौराष्ट्र) में श्रीमद्राजचन्द्रका जन्म विक्रम सं० १९२४ (सन् १८६७) की कार्तिकी पूर्णिमाके शुभदिन रविवारको रात्रिके २ बजे हुआ था। यह ववाणिया ग्राम सौराष्ट्रमें मोरबीके निकट है।

इनके पिताका नाम श्रीरवजीभाई पंचाणभाई महेता और माताका नाम श्री देवबाई था। आप लोग बहुत भक्तिशील और सेवा-भावी थे। साधु-सन्तोंके प्रति अनुराग; गरीबोंको अनाज कपड़ा देना; वृद्ध और रोगियोंकी सेवा करना इनका सहज-स्वभाव था।

श्रीमद्जीका प्रेम-नाम 'लक्ष्मीनंदन' था। बादमें यह नाम बदलकर 'रायचन्द' रखा गया और भविष्यमें आप 'श्रीमद्राजचन्द्र' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीमद्राजचन्द्रका उज्वल जीवन सचमुच किसी भी समझदार व्यक्तिके लिए यथार्थ मुक्ति-मार्गकी दिशामें प्रबल प्रेरणाका स्रोत हो सकता है। वे तीव्र क्षयोपशमवान और आत्मज्ञानी सन्त-पुरुष थे, ऐसा निस्संदेहरूपसे मानना ही पड़ता है। उनकी अत्यन्त उदासीन सहज वैराग्यमय परिणति तीव्र एवं निर्मल आत्मज्ञान-दशाकी सूचक है।

श्रीमद्जीके पितामह श्रीकृष्णके भक्त थे, जब कि उनकी माताके जैन-संस्कार थे। श्रीमद् जीको जैन लोगोंके 'प्रतिक्रमणसूत्र' आदि पुस्तकें पढ़नेको मिलीं। इन धर्म-पुस्तकोंमें अत्यन्त विनय-पूर्वक जगतके सर्व जीवोंसे मित्रताकी भावना व्यक्त की गई है। इस परसे श्रीमद्जीकी प्रीति जैनधर्मके प्रति बढ़ने लगी। यह वृत्तान्त उनकी तेरह वर्षकी वयका है। तत्पश्चात् वे अपने पिताकी दुकानपर बैठने लगे। अपने अक्षरोंकी छटाके कारण जब-जब उन्हें कच्छ दरबारके महलमें लिखनेके लिए बुलाया जाता था तब-तब वे वहां जाते थे। दुकान पर रहते हुए उन्होंने अनेक पुस्तकें पढ़ीं, राम आदिके चरित्रोंपर कविताएं रची, सांसारिक तृष्णा की, फिर भी उन्होंने किसीको कम-अधिक भाव नहीं कहा अथवा किसीको कम-ज्यादा तौलकर नहीं दिया।

जातिस्मरण और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति।

श्रीमद्जी जिस समय सात वर्षके थे उस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग उनके जीवनमें बना। उन दिनों ववाणियामें अमीचन्द नामके एक गृहस्थ रहते थे जिनका श्रीमद्जीके प्रति बहुत ही प्रेम

था। एक दिन अमीचंदको साँपने काट लिया और तत्काल उनकी मृत्यु हो गई। उनके मरण-समाचार सुनते ही राजचन्द्रजी अपने घर दादाजीके पास दौड़े आये और उनसे पूछा: 'दादाजी, क्या अमीचन्द मर गये?' वालक राजचन्द्रका ऐसा सीधा प्रश्न सुनकर दादाजीने विचार किया कि इस वातका बालकको पता चलेगा तो डर जायगा अतः उनका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करनेके लिए दादाजीने उन्हें भोजन कर लेनेको कहा और इधर-उधरकी दूसरी बातें करने लगे। परन्तु, बालक राजचन्द्रने मर जानेके बारेमें प्रथमवार ही सुना था इसलिए विशेष जिज्ञासापूर्वक वे पूछ बैठे: 'मर जानेका क्या अर्थ है?' दादाजीने कहा—उसमेंसे जीव निकल गया है। अब वह चलना-फिरना, खाना-पीना कुछ नहीं कर सकता, इसलिए उसे तालाबके पास श्मशान भूमिमें जला देवेंगे।' इतना सुनकर राजचन्द्रजी थोड़ी देर तो घरमें इधर-उधर घूमते रहे, बादमें चुपचाप तालाबके पास गये और वहां बबूलके एक वृक्षपर चढ़कर देखा तो सचमुच कुटुम्बके लोग उसके शरीरको जला रहे हैं। इसप्रकार एक परिचित और सज्जन व्यक्तिको जलाता देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे विचारने लगे कि यह सब क्या है! उनके अन्तरमें विचारोंकी तीव्र खलबली-सी मच गई और वे गहन विचारमें डूब गये। इसी समय अचानक चित्तपरसे भारी आवरण हट गया और उन्हें पूर्व भवोंकी स्मृति हो आई। बादमें एक बार वे जूनागढ़का किला देखने गये तब पूर्व स्मृतिज्ञानकी विशेष वृद्धि हुई[1]। इस पूर्वस्मृतिरूप-ज्ञानने उनके जीवनमें प्रेरणाका अपूर्व नवीन-अध्याय जोड़ा। श्रीमद्जीकी पढ़ाई विशेष नहीं हो पाई थी फिरभी, वे संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंके ज्ञाता थे एवं जैन आगमोंके असाधारण वेत्ता और मर्मज्ञ थे। उनकी क्षयोपशम-शक्ति इतनी विशाल थी कि जिस काव्य या सूत्रका मर्म बड़े-बड़े विद्वान लोग नहीं बता सकते थे उसका यथार्थ विश्लेषण उन्होंने सहजरूपमें किया है[2]। किसी भी विषयका सांगोपांग विवेचन करना उनके अधिकारकी बात थी[3]। उन्हें अल्प-वयमें ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो गई थी, जैसा कि उन्होंने स्वयं एक काव्यमें लिखा है—

लघुवयथी अद्भुत थयो, तत्त्वज्ञाननो बोध।
एज सूचवे एम के, गति आगति कां शोध?
जे संस्कार थवा घटे, अति अभ्यासे कांय,
विना परिश्रम ते थयो, भवशंका शी त्यांय?

—अर्थात् छोटी अवस्थामें मुझे अद्भुत तत्त्वज्ञानका बोध हुआ है, यही सूचित करता है कि अब पुनर्जन्मके शोधकी क्या आवश्यकता है? और जो संस्कार अत्यन्त अभ्यासके द्वारा उत्पन्न होते हैं वे मुझे बिना किसी परिश्रमके ही प्राप्त हो गये हैं, फिर वहां भव-शंकाका क्या काम? (पूर्वभवके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा निश्चल हो गई है।)

---

१. इस प्रसंगकी चर्चा कच्छके एक वणिक बंधु पदमशीभाई ठाकरशीके पूछनेपर बम्बईमें भूलेश्वरके दि० जैन मन्दिरमें सं० १९४२ में श्रीमद्जीने की।

२. देखिए पं० बनारसीदासजीके 'समता रमता उरधता०' पद्यका विवेचन 'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुजराती) पत्रांक ४३८।

३. आनंदघन चौवीसीके कुछ पद्योंका विवेचन, उपरोक्त ग्रन्थ में पत्रांक ७५३।

अवधान-प्रयोग, स्पर्शनशक्ति।

श्रीमद्जीकी स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र थी। वे जो कुछ भी एक बार पढ़ लेते, उन्हें ज्यों का त्यों याद रह जाता था। इस स्मरणशक्तिके कारण वे छोटी अवस्थामें ही अवधान-प्रयोग करने लगे थे। धीरे धीरे वे सौ अवधान तक पहुंच गये थे। वि० सं० १९४३ में १९ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने बम्बईकी एक सार्वजनिक सभामें डॉ० पिटर्सनके सभापतित्वमें सौ अवधानोंका प्रयोग बताकर बड़े-बड़े लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया था। उस समय उपस्थित जनताने उन्हें 'सुवर्णचन्द्रक' प्रदान किया, साथही 'साक्षात् सरस्वती' के पदसे भी विभूषित किया था। ई० सन् १८८६-८७ में 'मुंबई समाचार' 'जामे जमशेद' 'गुजराती' 'पायोनियर' 'इण्डियन स्पॅक्टेटर' 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' आदि गुजराती एवं अंग्रेजी पत्रोंमें श्रीमद्जीकी अद्भुत शक्तियोंके बारेमें भारी प्रशंसात्मक लेख छपे थे। शतावधानमें शतरंज खेलते जाना, मालाके दाने गिनते जाना, जोड़ बाकी गुणा करते जाना, आठ भिन्न-भिन्न समस्याओंकी पूर्ति करते जाना, सोलह भाषाओंके भिन्न-भिन्न क्रमसे उलटे-सीधे नम्बरोंके साथ शब्दोंको याद रखकर वाक्य बनाते जाना, दो कोठोंमें लिखे हुए उल्टे-सीधे अक्षरोंसे कविता करते जाना, कितनेही अलंकारोंका विचार करते जाना, इत्यादि सौ कामोंको एक ही साथ कर सकते थे।

श्रीमद्जीकी स्पर्शनशक्ति भी अत्यन्त विलक्षण थी। उपरोक्त सभामें ही उन्हें भिन्न भिन्न प्रकारके बारह ग्रन्थ दिये गये और उनके नाम भी उन्हें पढ़कर सुना दिये गये। बादमें उनकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर जो जो ग्रन्थ उनके हाथ पर रखे गये उन सब ग्रन्थोंके नाम हाथोंसे टटोलकर उन्होंने बता दिये।

श्रीमद्जीकी इस अद्भुतशक्तिसे प्रभावित होकर उस समयके बम्बई हाइकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजंटने उन्हें विलायत चलकर अवधान-प्रयोग दिखानेकी इच्छा प्रगट की थी, परन्तु श्रीमद्जीने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें कीर्तिकी इच्छा नहीं थी, बल्कि ऐसी प्रवृत्तियों को आत्मकल्याणके मार्गमें बाधक जानकर फिर उन्होंने अवधान-प्रयोग नहीं किये।

महात्मा गांधी ने कहा था—

महात्मा गांधीने उनकी स्मरणशक्ति और आत्मज्ञानसे जो अपूर्व प्रेरणा प्राप्त की वह संक्षेपमें उन्हींके शब्दोंमें—

"रायचन्दभाईके साथ मेरी भेंट जुलाई सन् १८९१ में उस दिन हुई जब मैं विलायतसे बम्बई वापिस लौटा। इन दिनों समुद्रमें तूफान आया करता है इसकारण जहाज रातको देरीसे पहुंचा। मैं डाक्टर बैरिस्टर और अब रंगूनके प्रख्यात जौहरी प्राणजीवनदास महेताके घर उतरा था। रायचन्दभाई उनके बड़े भाईके जमाई होते थे। डॉक्टर सा० (प्राणजीवनदास) ने ही परिचय कराया। उनके दूसरे बड़े भाई झवेरी रेवाशंकर जगजीवनदासकी पहचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर सा० ने रायचन्दभाईका 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा, 'कवि' होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापारमें हैं, आप ज्ञानी और शतावधानी हैं। किसीने सूचना की कि मैं उन्हें कुछ शब्द सुनाऊं, और वे शब्द चाहे किसी भी भाषाके हों, जिस क्रमसे मैं बोलूंगा उसी क्रमसे वे दुहरा जावेंगे, मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं तो उस समय जवान और विलायतसे

लौटा था; मुझे भाषाज्ञानका भी अभिमान था। मुझे विलायतकी हवा भी कम नहीं लगी थी। उन दिनों विलायत से आया मानों आकाशसे उतरा था! मैंने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया और अलग अलग भाषाओंके शब्द पहले तो मैंने लिख लिये, क्योंकि मुझे वह क्रम कहाँ याद रहने वाला था? और वादमें उन शब्दोंको मैं वांच गया। उसी क्रमसे रायचंदभाईने धीरेसे एकके बाद एक सब शब्द कह सुनाये। मैं राजी हुआ, चकित हुआ और कविका स्मरणशक्तिके विषयमें मेरा उच्च विचार हुआ। विलायतकी हवाका असर कम पड़ने के लिए यह सुन्दर अनुभव हुआ कहा जा सकता है। ······कविके साथ यह परिचय वहुत आगे वढ़ा······ कवि संस्कारी ज्ञानी थे।

मुझ पर तीन पुरुषोंने गहरा प्रभाव डाला है—टालसटॉय, रस्किन और रायचंदभाई। टालसटॉयने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहारसे, रस्किनने अपनी एकही पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' से—जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है, और रायचंदभाईने अपने गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिन्दूधर्ममें शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करने वाले रायचंदभाई थे। सन् १८९३ में दक्षिण अफ्रिकामें मैं कुछ क्रिश्चियन सज्जनोंके विशेष सम्पर्कमें आया। उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मातमा थे। अन्य-धर्मियोंको क्रिश्चियन होनेके लिए समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सम्बन्ध व्यावहारिक कार्यको लेकर ही हुआ था, तो भी उन्होंने मेरे आत्माके कल्याणके लिये चिन्ता करना शुरू कर दिया। उस समय मैं अपना एकही कर्तव्य समझ सका कि जब तक मैं हिन्दूधर्मके रहस्यको पूरी तौरसे न जान लूं और उससे मेरे आत्माको असंतोष न हो जाय, तबतक मुझे अपना कुलधर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिये। इसलिये मैंने हिन्दूधर्म और अन्य धर्मोंकी पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दीं। क्रिश्चियन और इस्लामधर्मकी पुस्तकें पढ़ीं। विलायतसे अंग्रेज मित्रोंके साथ पत्रव्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शंकायें रक्खीं तथा हिन्दुस्तानमें जिनके ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी उनसे पत्रव्यवहार किया। उनमें रायचंदभाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सम्बन्ध हो चुका था, उनके प्रति मान भी था, इसलिए उनसे जो भी मिल सके उसे लेनेका मैंने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शांति मिली। हिन्दूधर्ममें मुझे जो चाहिये वह मिल सकता है, ऐसा मनको विश्वास हुआ। मेरी इस स्थितिके जिम्मेदार रायचंदभाई हुये, इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिये इसका पाठक लोग अनुमान कर सकते हैं।"

इसप्रकार उनके प्रवल आत्मज्ञानके प्रभावके कारण ही महात्मा गांधीको सन्तोष हुआ और उन्होंने धर्मपरिवर्तन नहीं किया[1]।

और भी वर्णन करते हुये गांधीजीने उनके बारेमें लिखा है:

"श्रीमद्‌राजचन्द्र असाधारण व्यक्ति थे। उनके लेख उनके अनुभवके विन्दु समान हैं। उन्हें पढ़नेवाले, विचारनेवाले और उसके अनुसार आचरण करनेवालेको मोक्ष सुलभ होवे। उसकी कषायें मन्द पड़ें, उसे संसारमें उदासीनता आवे, वह देहका मोह छोड़कर आत्मार्थी वने।

१. [illegible] द्वारा म० गांधीजीके प्रश्नोंके उत्तरमें लिखे गये कुछ पत्र, क्र० ५३०, ५७०, ७१७ 'श्रीमद् राजचन्द्र'-ग्रन्थ (गुजराती)

इस परसे वांचक देखेंगे कि श्रीमद्के लेख अधिकारीके लिए उपयोगी हैं। सभी वांचक उसमें रस नहीं ले सकते। टीकाकारको उसकी टीकाका कारण मिलेगा परन्तु श्रद्धावान तो उसमें से रसही लूटेगा। उनके लेखोंमें सत् निथर रहा है, ऐसा मुझे हमेशा भास हुआ है। उन्होंने अपना ज्ञान दिखानेके लिये एक भी अक्षर नहीं लिखा। लिखनेका अभिप्राय वांचकको अपने आत्मानन्दमें भागीदार बननेका था। जिसे आत्मक्लेश टालना है, जो अपना कर्तव्य जाननेको उत्सुक है उसे श्रीमद्के लेखोंमेंसे बहुत मिल जायगा ऐसा मुझे विश्वास है, फिर भले वह हिन्दू हो या अन्य धर्मी।

…जो वैराग्य (अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?) इस काव्यकी कड़ियोंमें झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमें प्रतिक्षण उनमें देखा था। उनके लेखोंकी एक असाधारणता यह है कि स्वयं जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरे पर प्रभाव डालनेके लिये एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा…।

खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो होता ही। किसी समय इस जगतके किसी भी वैभवमें उन्हें मोह हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा।

उनकी चाल धीमी थी और देखनेवाला भी समझ सकता कि चलते हुये भी ये अपने विचारमें ग्रस्त हैं। आँखोंमें चमत्कार था अत्यन्त तेजस्वी, विह्वलता जरा भी नहीं थी। दृष्टिमें एकाग्रता थी। चेहरा गोलाकार, होंठ पतले, नाक नोंकदार भी नहीं चपटी भी नहीं, शरीर इकहरा, कद मध्यम, वर्ण श्याम, देखाव शांत मूर्तिका-सा था। उनके कण्ठमें इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हें सुनते हुए मनुष्य थके नहीं। चेहरा हंसमुख और प्रफुल्लित था, जिस पर अन्तरानन्दकी छाया थी। भाषा इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हें अपने विचार प्रगट करनेके लिये कभी शब्द ढूंढ़ना पड़ा है, ऐसा मुझे याद नहीं। पत्र लिखने बैठें उस समय कदाचित् ही मैंने उन्हें शब्द बदलते देखा होगा, फिरभी पढ़ने वालेको ऐसा नहीं लगेगा कि कहीं भी विचार अपूर्ण हैं या वाक्य-रचना खंडित है; अथवा शब्दोंके चुनावमें कमी है।

यह वर्णन संयमीमें संभवित है। बाह्याडम्बरसे मनुष्य वीतरागी नहीं हो सकता। वीतरागता आत्माकी प्रसादी है। अनेक जन्मके प्रयत्नसे वह प्राप्त होती है और प्रत्येक मनुष्य उसका अनुभव कर सकता है। रागभावको दूर करनेका पुरुषार्थ करनेवाला जानता है कि रागरहित होना कितना कठिन है। यह रागरहित दशा कवि (श्रीमद्) को स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पड़ी थी।

मोक्षकी प्रथम पैड़ी वीतरागता है। जबतक मन जगतकी किसीभी वस्तुमें फंसा हुआ है तबतक उसे मोक्षकी बात कैसे रुचे ? और यदि रुचे तो वह केवल कानको ही—अर्थात् जैसे हम लोगोंको अर्थ जाने या समझे बिना किसी संगीतका स्वर रुच जाय वैसे। मात्र ऐसी कर्णप्रिय क्रीड़ामेंसे मोक्षका अनुसरण करनेवाले आचरण तक आनेमें तो बहुत समय निकल जाय। अंतरंग वैराग्यके बिना मोक्षकी लगन नहीं होती। वैराग्यका तीव्र भाव कविमें था।

…व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैंने कविमें देखा उतना किसी अन्यमें नहीं देखा।"

गृहस्थाश्रम—

सं० १९४४ माघ सुदी १२ को १९ वर्षकी आयुमें उनका पाणिग्रहणसंस्कार, गांधीजीके परममित्र स्व० रेवाशंकर जगजीवनदास महेताके बड़े भाई पोपटलालकी पुत्री झबकबाईके साथ हुआ था। इसमें दूसरोंकी 'इच्छा' और 'अत्यन्त आग्रह' ही कारणरूप प्रतीत होते हैं[1]। पूर्वोपार्जित कर्मोका भोग समझकर ही उन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया; परन्तु इससे भी दिन-पर-दिन उनकी उदासीनता और वैराग्यका बल बढ़ता ही गया। आत्मकल्याणके इच्छुक तत्त्वज्ञानी पुरुषके लिए विषम परिस्थितियां भी अनुकूल बन जाती हैं, अर्थात् विषमतामें उनका पुरुषार्थ और भी अधिक निखर उठता है। ऐसे ही महात्मा पुरुष दूसरोंके लिये भी मार्गप्रकाशक-दीपकका कार्य करते हैं।

श्रीमद्जी गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी अत्यन्त उदासीन थे। उनकी दशा, छहढालाकार पं० दौलतरामजी के शब्दोंमें 'गेही पै, गृहमें न रचै ज्यौं जलतैं भिन्न कमल हैं'—जैसी निर्लेप थी। उनकी इस अवस्थामें भी यही मान्यता रही कि "कुटुम्बरूपी काजलकी कोठड़ीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो तो भी एकान्तवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है उसका शतांश भी उस काजलकी कोठड़ीमें रहनेसे नहीं हो सकता, क्योंकि वह कषायका निमित्त है और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है[2]।" फिर भी इस प्रतिकूलतामें वे अपने परिणामोंकी पूरी संभाल रखकर चले। यहां उनके अंतरके भाव एक मुमुक्षुको लिखे गये पत्रमें इसप्रकार व्यक्त हुए है—'संसार स्पष्ट प्रीतिसे करनेकी इच्छा होती हो तो उस पुरुषने ज्ञानीके वचन सुने नहीं अथवा ज्ञानीके दर्शन भी उसने किये नहीं ऐसा तीर्थंकर कहते हैं।' 'ज्ञानी पुरुषके वचन सुननेके बाद स्त्रीका सजीवन शरीर अजीवनरूप भास्यमान हुए बिना रहे नहीं[3]।' इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि वे अत्यन्त वैरागी महापुरुष थे।

सफल व्यापारी।

व्यापारिक झंझट और धर्मसाधनाका मेल प्रायः कम बैठता है, परन्तु आपका धर्म-आत्म-चिन्तन तो साथमें ही चलता था। वे कहते थे कि धर्मका पालन कुछ एकादशीके दिन ही, पर्यूषणमें ही अथवा मंदिरोंमें ही हो और दुकान या दरबारमें न हो ऐसा कोई नियम नहीं, बल्कि ऐसा कहना धर्मतत्त्वको न पहचाननेके तुल्य है। श्रीमद्जीके पास दुकान पर कोई न कोई धार्मिक पुस्तक और दैनंदिनी (डायरी) अवश्य होती थी। व्यापारकी बात पूरी होतेही फौरन धार्मिक पुस्तक खुलती या फिर उनकी वह डायरी कि जिसमें कुछ न कुछ मनके विचार वे लिखते ही रहते थे। उनके लेखोंका जो संग्रह प्रकाशित हुआ है उसका अधिकांश भाग उनकी नोंधपोथीमेंसे लिया गया है।

श्रीमद्जी सर्वाधिक विश्वासपात्र व्यापारीके रूपमें प्रसिद्ध थे। वे अपने प्रत्येक व्यवहारमें सम्पूर्ण प्रामाणिक थे। इतना बड़ा व्यापारिक काम करते हुये भी उसमें उनकी आसक्ति नहीं थी।

---

१. देखिये—'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुजराती) पत्र क्र० ३०

२. 'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुजराती) पत्र क्र० १०३,

३. 'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुजराती) पत्र क्र० ४५४

वे वहुत ही संतोषी थे। रहन-सहन पहरवेश सादा रखते थे। धनको तो वे 'उच्च प्रकारके कंकर'[1] मात्र समझते थे।

एक आरव व्यापारी अपने छोटे भाईके साथ बम्बईमें मोतियोंकी आढ़तका काम करता था। एक दिन छोटे भाईने सोचा कि मैं भी अपने बड़े भाईकी तरह मोतीका व्यापार करूं। वह परदेशसे आया हुआ माल लेकर बाजारमें गया। वहां जाने पर एक दलाल उसे श्रीमद्‌जीकी दुकानपर लेकर पहुँचा। श्रीमद्‌जीने माल अच्छी तरह परखकर देखा और उसके कहे अनुसार रकम चुकाकर ज्यौंका त्यौं माल एक ओर उठाकर रख दिया। उधर घर पहुँचकर बड़े भाईके आनेपर छोटे भाईने व्यापारकी वात कह सुनाई। अब जिस व्यापारीका वह माल था उसका पत्र इस आरव व्यापारीके पास उसी दिन आया था कि अमुक भावसे नीचे माल मत बेचना। जो भाव उसने लिखा था वह चालू वाजार-भावसे वहुत ही ऊंचा था। अब यह व्यापारी तो घबरा गया क्योंकि इसे इस सौदेमें बहुत अधिक नुकसान था। वह क्रोधमें आकर बोल उठा—'अरे! तूने यह क्या किया? मुझे तो दिवाला ही निकालना पड़ेगा!'

आरव-व्यापारी हाँफता हुआ श्रीमद्‌जीके पास दौड़ा हुआ आया और उस व्यापारीका पत्र पढ़वाकर कहा—'साहब, मुझ पर दया करो, वरना मैं गरीब आदमी बरबाद हो जाऊंगा।' श्रीमद्‌जीने एक ओर ज्यौं का त्यौं बंधा हुआ माल दिखाकर कहा—'भाई, तुम्हारा माल यह रक्खा है। तुम खुशीसे ले जाओ।' यौं कहकर उस व्यापारीका माल उसे दे दिया और अपने पैसे ले लिये। मानो कोई सौदा किया ही नहीं था, ऐसा सोचकर हजारोंके लाभकी भी कोई परवाह नहीं की। आरब-व्यापारी उनका उपकार मानता हुआ अपने घर चला गया। यह आरब व्यापारी श्रीमद्‌को खुदाके पैगम्बरके समान मानने लगा।

व्यापारिक नियमानुसार सौदा निश्चित हो चुकने पर वह व्यापारी माल वापिस लेनेका अधिकारी नहीं था, परन्तु श्रीमद्‌जीका हृदय यह नहीं चाहता था कि किसीको उनके द्वारा हानि हो। सचमुच महात्माओंका जीवन उनकी कृतिमें व्यक्त होता ही है।

इसीप्रकारका एक दूसरा प्रसंग उनके करुणामय और निस्पृही जीवनका ज्वलंत उदाहरण है:

एक वार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्‌जीने हीरोंका सौदा किया। इसमें ऐसा तय हुआ कि अमुक समयमें निश्चित किये हुये भावसे वह व्यापारी श्रीमद्‌को अमुक हीरे दे। इस विषयकी चिट्ठी भी व्यापारीने लिख दी थी। परन्तु हुआ ऐसा कि मुद्दतके समय उन हीरोंकी कीमत बहुत अधिक वढ़ गई। यदि व्यापारी चिट्ठीके अनुसार श्रीमद्‌को हीरे दे, तो उस वेचारेको बड़ा भारी नुकसान सहन करना पड़े; अपनी सभी सम्पत्ति बेच देनी पड़े! अब क्या हो?

इधर जिस समय श्रीमद्‌जीको हीरोंका वाजार-भाव मालूम हुआ, उस समय वे शीघ्रही उस व्यापारीकी दुकानपर जा पहुँचे। श्रीमद्‌जीको अपनी दुकानपर आये देखकर व्यापारी घबराहटमें पड़ गया। वह गिड़गिड़ाते हुए बोला—'रायचंदभाई, हम लोगोंके बीच हुए सौदेके सम्बन्धमें मैं खूब

---

१. 'ऊंचो जातना कांकरा'

ही चिन्तामें पड़ गया हूँ। मेरा जो कुछ होना हो, वह भले हो, परन्तु आप विश्वास रखना कि मैं आपको आजके बाजार-भावसे सौदा चुका दूंगा। आप जरा भी चिन्ता न करें।'

यह सुनकर राजचन्द्रजी करुणाभरी आवाजमें बोले: "वाह! भाई, वाह! मैं चिन्ता क्यों न करूं? तुमको सौदेकी चिन्ता होती हो तो मुझे चिन्ता क्यों न होनी चाहिये? परन्तु हम दोनोंकी चिन्ताका मूल कारण यह चिट्ठी ही है न? यदि इसको ही फाड़कर फेंक दें तो हम दोनोंकी चिन्ता मिट जायगी।"

यों कहकर श्रीमद् राजचन्द्रने सहजभावसे वह दस्तावेज फाड़ डाला। तत्पश्चात् श्रीमद्जी बोले: "भाई, इस चिट्ठीके कारण तुम्हारे हाथपाँव बंधे हुए थे। बाजारभाव बढ़ जानेसे तुमसे मेरे साठ सत्तर हजार रुपये लेना निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे लूं तो तुम्हारी क्या दशा हो? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं!"

वह व्यापारी कृतज्ञ-भावसे श्रीमद्की ओर स्तब्ध होकर देखता ही रहा।

भविष्यवक्ता, निमित्तज्ञानी।

श्रीमद्जीका ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान भी प्रखर था। वे जन्मकुंडली, वर्षफल एवं अन्य चिह्न देखकर भविष्यकी सूचना कर देते थे। श्रीजूठाभाई (एक मुमुक्षु) के मरणके बारेमें उन्होंने २। मास पूर्व स्पष्ट बता दिया था[1]। एक बार सं० १९५५ की चैत्र वदी ८ को मोरबीमें दोपहरके ४ बजे पूर्वदिशाके आकाशमें काले बादल देखे और उन्हें दुष्काल पड़नेका निमित्त जानकर उन्होंने कहा कि 'ऋतुको सन्निपात हुआ है।' इस वर्ष १९५५ का चौमासा कोरा रहा—वर्षा नहीं हुई और १९५६ में भयंकर दुष्काल पड़ा। वे दूसरेके मनकी बातको भी सरलतासे जान लेते थे। यह सब उनकी निर्मल आत्मशक्तिका प्रभाव था।

कवि-लेखक।

श्रीमद्जीमें, अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति पद्यरूपमें करनेकी सहज क्षमता थी। उन्होंने सामाजिक रचनाओंमें–'स्त्रीनीतिबोधक', 'सद्बोधशतक' 'आर्य प्रजानी पडती' 'हुन्नरकळा वधारवा विषे' 'सद्गुण, सुनीति, सत्य विषे' आदि अनेक रचनाएं केवल ८ वर्षकी वयमें लिखी थीं, जिनका एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। ९ वर्षकी आयुमें उन्होंने रामायण और महाभारतकी भी पद्य-रचना की थी जो प्राप्त नहीं हो सकी। इसके अतिरिक्त जो उनका मूल विषय आत्मज्ञान था उसमें उनकी अनेक रचनाएं हैं। प्रमुखरूपसे 'आत्मसिद्धि' (१४२ दोहे) 'अमूल्य तत्त्वविचार' 'भक्तिना वीस दोहरा' 'ज्ञानमीमांसा' 'परमपदप्राप्तिनी भावना' (अपूर्व अवसर) 'मूळमार्ग रहस्य' 'जिनवाणीनी स्तुति' 'बारह भावना' और 'तृष्णानी विचित्रता' हैं। अन्य भी बहुतसी रचनाएं हैं, जो भिन्न-भिन्न वर्षोंमें लिखी हैं।

'आत्मसिद्धि'–शास्त्रकी रचना तो आपने मात्र डेढ़ घंटेमें, श्री सौभागभाई, डूंगरभाई आदि मुमुक्षुओंके हितार्थ नडियादमें आश्विन वदी १ (गुजराती) गुरुवार सं० १९५२ को २९ वें

---

१ देखिये-दैनिक नोंधसे लिया गया कथन, पत्र क्र० ११६, ११७ ('श्रीमद्राजचन्द्र' गुजराती)

वर्षमें लिखी थी। यह एक, निस्संदेह धर्ममार्गकी प्राप्तिमें प्रकाशरूप अद्भुत रचना है। अंग्रेजीमें भी इसके गद्य-पद्यात्मक अनुवाद प्रगट हो चुके हैं[1]।

गद्य-लेखनमें श्रीमद्जीने 'पुष्पमाला' 'भावनाबोध' और 'मोक्षमाला'की रचना की। यह सभी सामग्री पठनीय-विचारणीय है। 'मोक्षमाला' उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है, जिसे उन्होंने केवल १६ वर्ष ५ मासकी आयुमें मात्र ३ दिनमें लिखी थी। इसमें १०८ पाठ हैं। कथनका प्रकार विशाल और तत्त्वपूर्ण है।

उनकी अर्थ करनेकी शक्ति भी बड़ी गहन थी। भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यके 'पंचास्तिकाय'-ग्रन्थकी मूल गाथाओंका उन्होंने अविकल गुजराती अनुवाद किया है[2]।

सहिष्णुता।

विरोधमें भी सहनशील होना महापुरुषोंका स्वाभाविक गुण है। यह बात यहाँ घटित होती है। जैन समाजके कुछ लोगोंने उनका प्रबल विरोध किया, निन्दा की, फिर भी वे अटल शांत और मौन रहे। उन्होंने एक बार कहा था: 'दुनिया तो सदा ऐसी ही है। ज्ञानियोंको, जीवित हों तब कोई पहचानता नहीं, वह यहाँ तक कि ज्ञानीके सिर पर लाठियोंकी मार पड़े वह भी कम; और ज्ञानीके मरनेके बाद उसके नामके पत्थरको भी पूजे!'

एकान्तचर्या।

मोहमयी (बम्बई) नगरीमें व्यापारिक काम करते हुये भी श्रीमद्जी ज्ञानाराधना तो करते ही रहते थे। यह उनका प्रमुख और अनिवार्य कार्य था। उद्योग--रत जीवनमें शांत और स्वस्थ चित्तसे चुपचाप आत्मसाधना करना उनके लिये सहज हो चला था; फिर भी बीच-बीचमें विशेष अवकाश लेकर वे एकान्त स्थान, जंगल या पर्वतोंमें पहुँच जाते थे। वे किसी भी स्थानपर बहुत गुप्तरूपसे जाते थे। वे नहीं चाहते थे कि किसीके परिचयमें आया जाय, फिर भी उनकी सुगन्धी छिप नहीं पाती थी। अनेक जिज्ञासु-भ्रमर उनका उपदेश, धर्मवचन सुननेकी इच्छासे पीछे-पीछे कहीं भी पहुँच ही जाते थे और सत्समागमका लाभ प्राप्त कर लेते थे। गुजरातके चरोतर, ईडर आदि प्रदेशमें तथा सौराष्ट्र क्षेत्रके अनेक शान्तस्थानोंमें उनका गमन हुआ। आपके समागमका विशेष लाभ जिन्हें मिला उनमें मुनिश्री लल्लुजी (श्रीमद्लघुराजस्वामी), मुनिश्री देवकरणजी तथा सायलाके श्री सौभागभाई, अम्बालालभाई (खंभात), जूठाभाई (अमदावाद) एवं डूंगरभाई मुख्य थे।

एक बार श्रीमद्जी सं० १९५५ में जब कुछ दिन ईडरमें रहे तब उन्होंने डॉ० प्राणजीवनदास महेता (जो उस समय ईडर स्टेटके चीफ मेडिकल ऑफीसर थे और सम्बन्धकी दृष्टिसे उनके श्वसुर-

---

१. 'आत्मसिद्धि' के अंग्रेजी अनुवादमें Atmasiddhi, Self Realization, और Self Fulfilment प्रगट हुए हैं। संस्कृत-छाया भी छपी है।

२. देखिये-'श्रीमद्राजचन्द्र' गुज० पत्रांक ७६६। उनकी सभी प्रमुख-सामग्रीका संकलन 'श्रीमद्राजचन्द्र'-ग्रन्थ में किया गया है।

के भाई होते थे) से कह दिया था कि उनके आनेकी किसीको खबर न हो। उस समय वे नगरमें केवल भोजन लेने जितने समयके लिए ही रुकते, शेष समय ईडरके पहाड़ और जंगलोंमें बिताते।

मुनिश्री लल्लुजी, श्रीमोहनलालजी तथा श्री नरसीरखको उनके वहाँ पहुँचनेके समाचार मिल गये। वे शीघ्रतासे ईडर पहुँचे। श्रीमद्जीको उनके आगमनका समाचार मिला। उन्होंने कहलवा दिया कि मुनिश्री बाहरसे बाहर जंगलमें पहुंचे—यहाँ न आवें। साधुगण जंगलमें चले गये। बादमें श्रीमद्जी भी वहाँ पहुंचे। उन्होंने मुनिश्री लल्लुजीसे एकांतमें अचानक ईडर आनेका कारण पूछा। मुनिश्रीने उत्तर में कहा कि 'हम लोग अमदावाद या खंभात जाने वाले थे, यहां निवृत्ति क्षेत्रमें आपके समागममें विशेष लाभकी इच्छासे इस ओर चले आये। मुनि देवकरणजी भी पीछे आते हैं।' इस पर श्रीमद्जीने कहा—'आप लोग कल यहांसे विहार कर जावें, देवकरणजीको भी हम समाचार भिजवा देते है वे भी अन्यत्र विहार कर जावेंगे। हम यहाँ गुप्तरूपसे रहते हैं—किसीके परिचयमें आनेकी इच्छा नहीं है।'

श्री लल्लुजी मुनिने नम्र-निवेदन किया—'आपकी आज्ञानुसार हम चले जावेंगे परन्तु मोहनलालजी और नरसीरख मुनियोंको आपके दर्शन नहीं हुये हैं, आप आज्ञा करें तो एक दिन रुककर चले जावें।' श्रीमद्जीने इसकी स्वीकृति दी। दूसरे दिन मुनियोंने देखा कि जंगलमें आम्रवृक्षके नीचे श्रीमद्जी प्राकृतभाषाकी *गाथाओंका तन्मय होकर उच्चारण कर रहे हैं। उनके पहुँचनेपर भी आधा घण्टे तक वे गाथायें बोलते ही रहे और ध्यानस्थ हो गए। यह वातावरण देखकर मुनिगण आत्मविभोर हो उठे। थोड़ी देर बाद श्रीमद्जी ध्यानसे उठे और 'विचारना' इतना कहकर चलते बने। मुनियोंने विचारा कि लघुशंकादि-निवृत्तिके लिए जाते होंगे परन्तु वे तो निस्पृहरूपसे चले ही गये। थोड़ी देर इधर-उधर ढूंढ़कर मुनिगण उपाश्रयमें आ गये।

उसी दिन शामको मुनि देवकरणजी भी वहाँ पहुँच गये। सभीको श्रीमद्जीने पहाड़के ऊपर स्थित दिगम्बर, श्वेताम्बर मन्दिरोंके दर्शन करनेकी आज्ञा दी। वीतराग-जिनप्रतिमाके दर्शनोंसे मुनियोंको परम उल्लास जाग्रत हुआ। इसके पश्चात् तीन दिन और भी श्रीमद्जीके सत्समागमका लाभ उन्होंने उठाया। जिसमें श्रीमद्जीने उन्हें 'द्रव्यसंग्रह' और 'आत्मानुशासन'-ग्रन्थ पूरे पढ़कर स्वाध्यायके रूपमें सुनाये एवं अन्य भी कल्याणकारी बोध दिया।

---

* १. मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥
१. जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं णिच्चयं ज्झाणं ॥ ५५ ॥
२. मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥५६॥
(द्रव्यसंग्रह)

—श्रीमद्जीने यह 'बृहद्द्रव्यसंग्रह'-ग्रन्थ ईडरके दि० जैन शास्त्र भण्डारमेंसे स्वयं निकलवाया था।

अत्यन्त जाग्रत आत्मा ही परमात्मा बनता है, परम वीतराग–दशाको प्राप्त होता है। इन्हीं अन्तरभावोंके साथ आत्मस्वरूपकी ओर लक्ष कराते हुए एक बार श्रीमद्जीने अमदावादमें मुनिश्री लल्लुजी (पू० लघुराजस्वामी) तथा श्रीदेवकरणजीको कहा था कि 'हममें और वीतरागमें भेद गिनना नहीं' 'हममें और श्री महावीर भगवानमें कुछ भी अन्तर नहीं, केवल इस कुर्तेका फेर है।'

मत--मतान्तरके आग्रहसे दूर।

उनका कहना था कि मत–मतान्तरके आग्रहसे दूर रहने पर ही जीवनमें रागद्वेषसे रहित हुआ जा सकता है। मतोंके आग्रहसे निजस्वभावरूप आत्मधर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। किसी भी जाति या वेषके साथ भी धर्मका सम्बन्ध नहीं :

"जाति वेषनो भेद नहि, कह्यो मार्ग जो होय।
साधे ते मुक्ति लहे, एमां भेद न कोय ॥"
(आत्मसिद्धि १०७)

—जो मोक्षका मार्ग कहा गया है वह हो तो किसी भी जाति या वेषसे मोक्ष होवे, इसमें कुछ भेद नहीं है। जो साधना करे वह मुक्तिपद पावे।

आपने लिखा है—"मूलतत्त्वमें कहीं भी भेद नहीं है। मात्र दृष्टिका भेद है ऐसा मानकर आशय समझकर पवित्र धर्ममें प्रवृत्ति करना।" (पुष्पमाला १४ पृ० ४)

"तू चाहे जिस धर्मको मानता हो इसका मुझे पक्षपात नहीं, मात्र कहनेका तात्पर्य यही कि जिस मार्गसे संसारमलका नाश हो उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर[1]।" (पु० मा० १५ पृ० ४)

"दुनिया मतभेदके बंधनसे तत्त्व नहीं पा सकी।" (पत्र क्र० २७)

उन्होंने प्रीतम, अखा, छोटम, कबीर, सुन्दरदास, सहजानन्द, मुक्तानन्द, नरसिंह महेता आदि सन्तोंकी वाणीको जहां–तहां आदर दिया है और उन्हें मार्गानुसारी जीव (तत्त्वप्राप्तिके योग्य आत्मा) कहा है। इसलिए एक जगह उन्होंने अत्यन्त मध्यस्थतापूर्वक आध्यात्मिक–दृष्टि प्रगट की है कि 'मैं किसी गच्छमें नहीं, परन्तु आत्मामें हूँ।'

एक पत्रमें आपने दर्शाया है—"जब हम जैनशास्त्रोंको पढ़नेके लिए कहें तब जैनी होनेके लिए नहीं कहते; जब वेदान्तशास्त्र पढ़ने के लिये कहें तो वेदान्ती होनेके लिए नहीं कहते। इसीप्रकार अन्य शास्त्रोंको बांचनेके लिए कहें तब अन्य होनेके लिए नहीं कहते। जो कहते हैं वह केवल तुम

---

१. देखिए इसीप्रकारके विचार—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ (हरिभद्रसूरि)

सब लोगोंको उपदेश-ग्रहणके लिए ही कहते हैं। जैन और वेदान्ती आदिके भेदका त्याग करो। आत्मा वैसा नहीं है[1]।"

फिर भी अनुभवपूर्वक उन्होंने निर्ग्रन्थशासनकी उत्कृष्टताको स्वीकार किया है[2]। अहो! सर्वोत्कृष्ट शांतरसमय सन्मार्ग, अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शांतरसप्रधान मार्गके मूल सर्वज्ञदेव, अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शांतरसकी सुप्रतीति करानेवाले परमकृपालु सद्गुरुदेव—इस विश्वमें सर्वकाल तुम जयवंत वर्तो, जयवंत वर्तो[3]।'

दिनोंदिन और क्षण-क्षण उनकी वैराग्यवृत्ति वर्धमान हो चली। चैतन्यपुंज निखर उठा। वीतरागमार्गकी अविरल उपासना उनका ध्येय बन गई। वे बढ़ते गये और सहजभावसे कहते गये—"जहाँ-तहाँ से रागद्वेषसे रहित होना ही मेरा धर्म है[4]।"

निर्मल सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें उनके उद्गार इसप्रकार निकले हैं—

ओगणीससें ने सुडतालीसे,
समकित शुद्ध प्रकाश्युं रे,
श्रुत अनुभव वधती दशा,
निज स्वरूप अवभास्युं रे।
धन्य रे दिवस आ अहो!

(हा. नों. १६३ क्र० ३२)

सोल्लास उपकार-प्रगटना।

"हे सर्वोत्कृष्ट सुखके हेतुभूत सम्यग्दर्शन! तुझे अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार हो। इस अनादि अनन्त संसारमें अनन्त अनन्त जीव तेरे आश्रय विना अनन्त अनन्त दुःख अनुभवते हैं। तेरे परमानुग्रहसे स्वस्वरूपमें रुचि हुई। परमवीतराग स्वभावके प्रति परम निश्चय आया। कृतकृत्य होनेका मार्ग ग्रहण हुआ।

हे जिन वीतराग! तुम्हें अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। तुमने इस पामर पर अनंत अनंत उपकार किया है।

हे कुन्दकुन्दादि आचार्यो! तुम्हारे वचन भी स्वरूपानुसंधानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। इसके लिये मैं तुम्हें अतिशय भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

हे श्री सोभाग! तेरे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ। अतः तुझे नमस्कार करता हूँ।" (हा. नों. २१४५ क्र० २०)

---

१. 'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुज०) पत्र क्र० ३५८

२. 'श्रीमद्राजचन्द्र' शिक्षापाठ ६५ (तत्त्वावबोध-१४) तथा पत्र क्र० ५६६

३. हायनोंध ३।५२ क्रम २३ 'श्रीमद्राजचन्द्र' (गुज०)

४. पत्र क्र० ३७ 'श्रीमद्राजचन्द्र'

परमनिवृत्तिरूप कामना । चिंतना ।

उनका अन्तरंग, गृहस्थावास-व्यापारादि कार्यसे छूटकर सर्वसंगपरित्याग कर निर्ग्रन्थदशाके लिए छटपटाने लगा । उनका यह अंतर-आशय उनकी 'हाथनोंध' परसे स्पष्ट प्रगट होता है:—

"हे जीव ! असारभूत लगनेवाले ऐसें इस व्यवसायसे अब निवृत्त हो, निवृत्त ! उस व्यवसायके करनेमें चाहे जितना बलवान प्रारब्धोदय दीखता हो तो भी उससे निवृत्त हो, निवृत्त ! जो कि श्रीसर्वज्ञने कहा है कि चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव भी प्रारब्ध भोगे विना मुक्त नहीं हो सकता, फिर भी तू उस उदयके आश्रयरूप होनेसे अपना दोष जानकर उसका अत्यन्त तीव्ररूपमें विचारकर उससे निवृत्त हो, निवृत्त ! (हा. नो. १।१०१ क्र० ४४)

"हे जीव ! अब तू संग-निवृत्तिरूप कालकी प्रतिज्ञा कर, प्रतिज्ञा कर ! केवलसंगनिवृत्तिरूप प्रतिज्ञाका विशेष अवकाश दिखाई न दे तो अंशसंगनिवृत्तिरूप इस व्यवसायका त्याग कर ! जिस ज्ञानदशामें त्यागात्याग कुछ संभवित नहीं उस ज्ञानदशाकी सिद्धि है जिसमें ऐसा तू, सर्वसंगत्याग दशा अल्पकाल भी भोगेगा तो सम्पूर्ण जगत प्रसंगमें वर्तते हुये भी तुझे बाधा नहीं होगी, ऐसा होते हुए भी सर्वज्ञने निवृत्तिको ही प्रशस्त कहा है; कारण कि ऋषभादि सर्व परमपुरुषोंने अंतमें ऐसा ही किया है।" (हा नों. १ । १०२ क्र० ४५)

"राग, द्वेष और अज्ञानका आत्यंतिक अभाव करके जो सहज शुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित हुए वहीं स्वरूप हमारे स्मरण, ध्यान और प्राप्त करने योग्य स्थान है ।" (हा. नों. २ । ३ क्र० १)

"सर्व परभाव और विभावसे व्यावृत्त, निज स्वभावके भान सहित, अवधूतवत् विदेहीवत् जिनकल्पीवत् विचरते पुरुष भगवानके स्वरूपका ध्यान करते हैं ।" (हा. नों. ३।३७ क्र० १४)

" मैं एक हूँ, असंग हूँ, सर्व परभावसे मुक्त हूँ, असंख्यप्रदेशात्मक निजअवगाहनाप्रमाण हूँ । अजन्म, अजर, अमर, शाश्वत हूँ । स्वपर्यायपरिणामी समयात्मक हूँ । शुद्ध चैतन्यमात्र निर्विकल्प दृष्टा हूँ । (हा. नों. ३ । २९ क्र० ११)

"मैं परमशुद्ध; अखंड चिद्धातु हूँ, अचिद्धातुके संयोगरसका यह आभास तो देखो ! आश्चर्यवत्, आश्चर्यरूप, घटना है । कुछ भी अन्य विकल्पका अवकाश नहीं, स्थिति भी ऐसी ही है ।" (हा. नों. २ । ३७ क्र० १७)

इसप्रकार अपनी आत्मदशाको संभालकर वे बढ़ते रहे । आपने सं० १९५६ में व्यवहार सम्बन्धी सर्व उपाधिसे निवृत्ति लेकर सर्वसंगपरित्यागरूप दीक्षा धारण करनेकी अपनी माताजीसे आज्ञा भी ले ली थी । परन्तु उनका शारीरिक स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता गया । उदय बलवान है । शरीरको रोगने आ घेरा । अनेक उपचार करनेपर भी स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ । इसी विवशतामें उनके हृदयकी गंभीरता बोल उठी : "अत्यन्त त्वरासे प्रवास पूरा करना था, वहां बीच में सेहराका मरुस्थल आ गया । सिर पर बहुत बोझ था उसे आत्मवीर्यसे जिसप्रकार अल्पकालमें

सहन कर लिया जाय उसप्रकार प्रयत्न करते हुये, पैरोंने निकाचित उदयरूप थकान ग्रहण की। जो स्वरूप हैं वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य हैं। अव्याबाध स्थिरता है [1]।"

अंत समय।

स्थिति और भी गिरती गई। शरीरका वजन १३२ पौंडसे घटकर मात्र ४३ पौंड रह गया। शायद उनका अधिक जीवन कालको पसन्द नहीं था। देहत्यागके पहले दिन शामको आपने अपने छोटेभाई मनसुखराम आदिसे कहा—"तुम निश्चित रहना, यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होगा, तुम शांति और समाधिरूपसे प्रवर्तना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देहके द्वारा कही जा सकती थी, वह कहनेका समय नहीं। तुम पुरुषार्थ करना।" रात्रिको २॥ बजे वे फिर बोले—'निश्चिन्त रहना, भाईका समाधिमरण है'। और अवसानके दिन प्रातः पौने नौ बजे कहा : 'मनसुख, दुखी न होना, मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूँ।' और अन्तमें उसदिन सं० १९५७ चैत्र वदी ५ (गुज०) मंगलवार को दोपहरके दो बजे राजकोटमें उनका आत्मा इस नश्वर देहको छोड़कर चला गया। भारतभूमि एक अनुपम तत्त्वज्ञानी-सन्तको खो बैठी।

उनके देहावसानके समाचार सुनकर मुमुक्षुओंके चित्त उदास हो गये। वसंत मुरझा गया। निस्संदेह श्रीमद्जी विश्वकी एक महान विभूति थे। उनका वीतरागमार्ग-प्रकाशक अनुपम वचनामृत आज भी जीवनको अमरत्व प्रदान करनेके लिए विद्यमान है। धर्मजिज्ञासु बन्धु उनके वचनोंका लाभ उठावें।

श्री लघुराजस्वामी (प्रभुश्री) ने उनके प्रति अपना हृदयोद्गार इन शब्दोंमें प्रगट किया है : 'अपरमार्थमें परमार्थके दृढ़ आग्रहरूप अनेक सूक्ष्म भूलभुलैयांके प्रसंग दिखाकर इस दासके दोष दूर करनेमें इन आप्त पुरुषका परम सत्संग तथा उत्तम बोध प्रबल उपकारक बने हैं।" "संजीवनी औषध समान मृतको जीवित करे ऐसे उनके प्रबल पुरुषार्थ जागृत करनेवाले वचनोंका माहात्म्य विशेष विशेष भास्यमान होनेके साथ ठेठ मोक्षमें ले जाय ऐसी सम्यक् समझ (दर्शन) उस पुरुष और उसके बोधकी प्रतीतिसे प्राप्त होती है; वे इस दुषम कलिकालमें आश्चर्यकारी अवलंबन हैं।" "परम माहात्म्यवंत सद्गुरु श्रीमद् राजचन्द्रदेवके वचनोंमें तल्लीनता, श्रद्धा जिसे प्राप्त हुई है, या होगी उसका महद् भाग्य है। वह भव्य जीव अल्पकालमें मोक्ष पाने योग्य है।"[2]

उनकी स्मृतिमें शास्त्रमालाकी स्थापना।

सं० १९५६ में [3]सत्श्रुतके प्रचार हेतु बम्बईमें श्रीमद्जीने **परमश्रुतप्रभावकमण्डल** की स्थापना की थी। उसीके तत्त्वावधानमें उनकी स्मृतिस्वरूप **श्रीरायचन्द्र जैन शास्त्रमाला** की स्थापना हुई। जिसकी ओरसे अब तक समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, परमात्मप्रकाश

---

१. 'श्रीमद् राजचन्द्र' (गुज०) पत्र क्र० ९५१।

२. 'श्रीमद्गुरुप्रसाद' पृ० २, ३

३. श्रीमद्जीद्वारा निर्देशित सत्श्रुतरूप ग्रन्थोंकी सूचीके लिये देखिए 'श्रीमद्राजचंद्र'-ग्रन्थ (गुज०) उपदेशनोंध क्र० १५।

और योगसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, इष्टोपदेश, प्रशमरतिप्रकरण, न्यायावतार, स्याद्वाजमंजरी, सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, ज्ञानार्णव, बृहद्द्रव्यसंग्रह, पंचास्तिकाय, लब्धिसार-क्षपणासार, द्रव्यानुयोगतर्कणा, सप्तभंगीतरंगिणी, उपदेशछाया और आत्मसिद्धि, भावना-बोध, श्रीमद्राजचन्द्र आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमानमें संस्थाके प्रकाशनका सब काम अगाससे ही होता है। विक्रयकेन्द्र बम्बईमें भी पूर्वस्थानपर ही है। श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगाससे गुजराती भाषामें अन्यभी उपयोगी ग्रन्थ छपे हैं।

वर्तमानमें निम्नलिखित स्थानोंपर श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम व मन्दिर आदि संस्थाएं स्थापित हैं, जहाँ पर मुमुक्षु-बन्धु मिलकर आत्मकल्याणार्थ वीतराग-तत्त्वज्ञानका लाभ उठाते हैं। वे स्थान हैं—अगास, ववाणिया, राजकोट, वड़वा, खंभात, काविठा, सीमरडा; भादरण, नार, सुणाव; नरोड़ा, सडोदरा, धामण, अमदावाद, ईडर, सुरेन्द्रनगर, वसो, वटामण, उत्तरसंडा, बोरसद, आहोर (राज०), हम्पी (दक्षिण भारत), इन्दौर (म० प्र०); बम्बई-घोटकोपर, देवलाली, मोम्बासा (आफ्रिका)।

अन्तमें, वीतराग-विज्ञानके निधान तीर्थंकरादि महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट सर्वोपरि-आत्मधर्मका अविरल प्रवाह जन-जनके अन्तरमें प्रवाहित हो, यही भावना है।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
कार्तिकी पूर्णिमा, सं० २०२५

—बाबूलाल सिद्धसेन जैन

पंचास्तिकायस्य वर्णानुक्रमेण गाथासूची ।

	गाथा	पृष्ठ
अ		
अगुरुगलघुगेहिं सया	८४	१४१
अगुरुलहुगा अणंता	३१	६८
अण्णाणादो णाणी	१६५	२३७
अण्णोण्णं पविसंता	७	१८
अत्ता कुणदि सहावं	६५	११६
अभिवंदिऊण सिरसा	१०५	१६६
अरसमरूवमगंधं	१२७	१८९
अरहंतसिद्धचेदिय	१६६	२३९
अरहंतसिद्धचेदिय	१७१	२४४
अरहंतसिद्धसाहुसु	१३६	२००
अविभत्तमणण्णत्तं	४५	८९
अंडेसु पवड्ढंता	११३	१७६
आ		
आगासकालजीवा	९७	१५५
आगासकालपुग्गल	१२४	१८७
आगासं अवगासं	९२	१५१
आदेसमत्तमुत्तो	७८	१३३
आभिणिसुदोधिमण	४१	८१
आसवदि जेण पुण्णं	१५७	२२७
इ		
इंदसदवंदियाणं	१	२
इन्दियकसायसण्णा	१४१	२०५
उ		
उदयं जह मच्छाणं	८५	१४२
उदयेण उवसमेण य	५६	१०५
उद्दंसमसयमक्खि	११६	१७९
उप्पत्ती व विणासो	११	२७
उवओगो खलु दुविहो	४०	८०
उवभोज्जमिदिएहिं	८२	१३९
उवसंतखीणमोहो	७०	१२२
ए		
एको चेव महप्पा	७१	१२३
एदे कालागास	१०२	१६२
एदे जीवणिकाया	११२	१७६
एदे जीवणिकाया	१२०	१८३
एयरसवण्णगंधं	८१	१३८
एवमभिगम्म जीवं	१२३	१८६
एवं कत्ता भोत्ता	६९	१२१
एवं पवयणसारं	१०३	१६३
एवं भावमभावं	२१	४५
एवं सदो विणासो	१९	३९
एवं सदो विणासो	५४	१०३
ओ		
ओगाढगाढणिचिदो	६४	११५
क		
कम्ममलविप्पमुक्को	२८	६२
कम्मस्साभावेण य	१५१	२१६
कम्मं कम्मं कुव्वदि	६३	११५
कम्मं पि सगं कुव्वदि	६२	११३
कम्मं वेदयमाणो जीवो	५७	१०७
कम्माणं फलमेक्को	३८	७८
कम्मेण विणा उदयं	५८	१००
कालो त्ति य ववदेसो	१०१	१६०
कालो परिणामभवो	१००	१५९
कुव्वं सगं सहावं	६१	११२
केचित्तु अणावण्णा	३२	६९
कोधो व जदा माणो	१३८	२०२
ख		
खंधं सयलसमत्थं	७५	१२७

	गाथा	पृष्ठ
खंधा य खंधदेसा	७४	१२६
खीणे पुव्वणिबद्धे	११९	१८१
ग		
गदिमधिगदस्स देहो	१२९	१९१
च		
चरियं चरदि सगं	१५९	२२९
चरिया पमादवहुला	१३९	२०३
छ		
छक्कापक्कमजुत्तो	७२	१२३
ज		
जदि हवदि गमणहेदू	९४	१५२
जदि हवदि दव्वमण्णं	४४	८८
जम्हा उवरिट्ठाणं	९३	१५२
जम्हा कम्मस्स फलं	१३३	१९६
जस्स जदा खलु पुण्णं	१४३	२०७
जस्स ण विज्जदि रागो	१४२	२०६
जस्स ण विज्जदि रागो	१४६	२१०
जस्स हिदयेणुमेत्तं	१६७	२३९
जह पउमरायरयणं	३३	७०
जह पुग्गलदव्वाणं	६६	११८
जह हवदि धम्मदव्वं	८६	१४३
जं सुहमसुहमुदिण्णं	१४७	२१३
जाणदि पस्सदि सव्वं	१२२	१८५
जादो अलोगलोगो	८७	१४४
जादो सयं स चेदा	२९	६४
जायदि जीवस्सेवं	१३०	१९१
जीवसहावं णाणं	१५४	२२२
जीवा अणाइणिहणा	५३	१०१
जीवाजीवा भावा	१०८	१७१
जीवा पुग्गलकाया	४	११
जीवा पुग्गलकाया	२२	४७
जीवा पुग्गलकाया	६७	११८
जीवा पुग्गलकाया	९१	१५०
जीवा पुग्गलकाया	९८	१५६
जीवा संसारत्था	१०९	१७३
जीवोत्ति हवदि चेदा	२७	५६
जीवो सहावणियदो	१५५	२२५
जूगागुंभीमक्कण	११५	१७८
जे खलु इन्दियगेज्झा	९९	१५७
जेण विजाणदि सव्वं	१६३	२३५
जेसिं अत्थि सहाओ	५	१३
जेसिं जीवसहावो	३५	७३
जो खलु संसारत्थो	१२८	१९१
जोगणिमित्तं गहणं	१४८	२१३
जो चरदि णादि पेच्छदि	१६२	२३४
जो परदव्वम्मि सुहं	१५६	२२६
जो सव्वसंगमुक्को	१५८	२२८
जो संवरेण जुत्तो	१४५	२०९
जो संवरेण जुत्तो	१५३	२२०
ण		
ण कुदोचि वि उप्पण्णो	३६	७५
णत्थि चिरं वा खिप्पं	२६	५४
ण य गच्छदि धम्मत्थी	८८	१४६
ण वियप्पदि णाणादो	४३	८४
ण हि इंदियाणि जीवा	१२१	१८४
ण हि सो समवायादो	४९	९७
णाणं धणं च कुव्वदि	४७	९३
णाणावरणादीया भावा	२०	४२
णाणी णाणं च सदा	४८	९५
णिच्चो णाणवकासो	८०	१३६
णिच्छयणयेण भणियो	१६१	२३२
णेरइयतिरियमणुआ	५५	१०४
त		
तम्हा कम्मं कत्ता	६८	१२०
तम्हा धम्माधम्मा	९५	१५३
तम्हा णिव्वुदिकामो	१६९	२४१
तम्हा णिव्वुदिकामो	१७२	२४५

	गाथा	पृष्ठ
ति त्थावरतणुजोगा	१११	१७५
तिसिदं वुभुक्खिदं	१३७	२०१
ते चेव अत्थिकाया	६	१६
द		
दवियदि गच्छति	९	२३
दव्वं सल्लक्खणयं	१०	२४
दव्वेण विणा ण गुणा	१३	२९
दंसणणाणचरित्ताणि	१६४	२३६
दंसणणाणसमग्गं	१५२	२१८
दंसणणाणाणि तहा	५२	१००
दंसणमवि चक्खुजुदं	४२	८२
देवा चउण्णिकाया	११८	१८०
ध		
धम्मत्थिकायमरसं	८३	१४०
धम्मादीसद्दणं	१६०	२३०
धम्माधम्मागासा	९६	१५४
धरिदुं जस्स ण सक्कं	१६८	२४०
प		
पज्जयविजुदं दव्वं	१२	२८
पयडिट्ठिदिअणुभाग	७३	१२५
पाणेहिं चदुहिं जीवदि	३०	६७
पुढवी व उदगमगणी	११०	१७४
व		
वादरसुहुमगदाणं	७६	१२९
भ		
भावस्स णत्थि णासो	१५	३३
भावा जीवादीया	१६	३४
भावो कम्मणिमित्तो	६०	१११
भावो जदि कम्मकदो	५९	११०
म		
मग्गप्पभावणट्ठं	१७३	२५२
मणुसत्तणेण णट्ठो	१७	३७
मुणिऊण एतदट्ठं	१०४	१६५
मुत्तो फासदि मुत्तं	१३४	१९७
मोहो रागो दोसो	१३१	१९४

र	गाथा	पृष्ठ
रागो जस्स पसत्थो	१३५	१९९
व		
वण्णरसगंधफासा	५१	१००
ववगदपणवण्णरसो	२४	५०
ववदेसा संठाणा	४६	९१
विज्जदि जेसिं गमणं	८९	१४८
स		
सण्णाओ य तिलेस्सा	१४०	२०४
सत्ता सव्वपयत्था	८	१९
सद्दो खंधप्पभवो	७९	१३४
सपयत्थं तित्थयरं	१७०	२४२
सब्भावसभावाणं	२३	४८
समओ णिमिसो कट्ठा	२५	५१
समणमुहुग्गदमट्ठं	२	७
समवत्ती समवाओ	५०	९८
समवाओ पंचण्हं	३	९
सम्मत्तणाणजुत्तं	१०६	१६८
सम्मत्तं सद्दहणं	१०७	१६९
सव्वत्थ अत्थि जीवो	३४	७२
सव्वे खलु कम्मफलं	३९	७९
सव्वेसिं खंधाणं	७७	१३१
सव्वेसिं जीवाणं	९०	१४९
सस्सदमध उच्छेदं	३७	७६
संठाणा संघादा	१२६	१८९
संबुक्कमादुवाहा	११४	१७७
संवरजोगेहिं जुदो	१४४	२०८
सिय अत्थि णत्थि उहयं	१४	३०
सुरणरणारयतिरिया	११७	१७९
सुहदुक्खजाणणा वा	१२५	१८८
सुहपरिणामो पुण्णं	१३२	१९५
सो चेव जादिमरणं	१८	३८
ह		
हेदुमभावे णियमा	१५०	२१६
हेदू चदुव्वियप्पो	१४९	२१५

अथ पंचास्तिकायस्य विषयानुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ	गाथा
मंगलाचरण	२	१
पंचास्तिकायादिद्रव्याधिकारः ॥ १ ॥		
१ द्रव्यआगमरूप शब्दसमयको नमस्कार करके अर्थसमयके व्याख्यान करने की प्रतिज्ञा ...	७	२
२ समयशब्दका अर्थ और उसी अर्थसमयके		
३ लोक तथा अलोकरूप दो भेद हैं	९	३
४ पांच द्रव्योंको अस्तिकायपनेका कथन	११	४
५ पांच द्रव्योंमें अस्तित्व और कायत्व होना संभव है ऐसा कथन	१३	५
६ पांच अस्तिकाय तथा काल इन छहोंको द्रव्य होनेका कथन	१६	६
७ द्रव्य मिले हुए भी स्वरूपसे जुदे रहैं	१८	७
८ अस्तित्वका स्वरूप ...	१९	८
९ द्रव्यसे सत्ता जुदी नहीं है ..	२३	९
१० द्रव्यका लक्षण तीन प्रकार से ...	२४	१०
११ दो नयोंसे द्रव्यके लक्षणमें भेद	२७	११
१२ द्रव्यपर्यायका अभेदकथन ...	२८	१२
१३ द्रव्यगुणका अभेदकथन ...	२९	१३
१४ द्रव्यका स्वरूप सात भंगसे कहा गया है	३०	१४
१५ सत्का नाश नहीं और असत्की उत्पत्ति नहीं होती ऐसा कथन	३३	१५
१६ द्रव्यगुणपर्यायका कथन ...	३४	१६
१७ भावके नाश न होनेका तथा अभाव की उत्पत्ति न होनेका उदाहरण	३७	१७
१८ द्रव्यके नाश होनेकी फिर भी दोनों नयोंसे सिद्धिका कथन ...	३८	१८
१९ द्रव्यार्थिक नयसे सत्का नाश नहीं होता और असत्का उत्पाद नहीं होता	३९	१९
२० सिद्धोंके पर्यायार्थिक नयसे असत्का उत्पाद भी होता है ऐसा कथन	४२	२०
२१ जीवके उत्पादव्यय पर्यायार्थिकनयसे होते हैं इसलिये सत्का नाश असत्का उत्पाद ...	४५	२१
२२ पांच द्रव्योंको अस्तिकायपना	४७	२२
२३ कालद्रव्यका कथन	४८	२३
२४ पंचास्तिकायोंका विशेष व्याख्यान	५६	२७
२५ सर्वज्ञसिद्धि भट्टचार्वाकको	६२	२८
२६ जीवसिद्धि चार्वाकको ...	६७	३०
२७ जीवको स्वदेहप्रमाण ...	७०	३३
२८ जीवको अमूर्तपना	७३	३५
२९ चैतन्यसमर्थन चार्वाकको ...	७८	३८
३० उपयोगका कथन	८०	४०
३१ ज्ञानोपयोगके भेदवर्णन	८१	४१
३२ मतिज्ञानादि पांचको सम्यग्ज्ञानपना होनेका कथन ...	८५	१टू
३३ तीन अज्ञानोंका कथन ...	८७	६टू
३४ दर्शनोपयोगका कथन ...	८२	४२
३५ जीव और ज्ञानका अभेद ...	८४	४३
३६ द्रव्यगुणमें व्यपदेशका कथन ...	९१	४६
३७ द्रव्यगुणमें भेदनिषेध ...	९५	४८
३८ कथंचित् अभेदमें दृष्टांत ...	१००	५१
३९ जीवका विशेष कथन ...	१०१	५३
४० जीवके औदयिकादि भावोंका कथन	१०५	५६
४१ जीवको कर्तापना	१०७	५७
४२ जीवको कर्तापनेमें पूर्वपक्ष ...	११५	६३

विषय	पृष्ठ	गाथा
४३ कर्तापने आदिकी शंकाका समाधान ··· ···	११५	६४
४४ जीवास्तिकायका भेद कथन ··	१२३	७१
४५ पुद्गलस्कंधका कथन ··· ···	१२६	७४
४६ परमाणुका व्याख्यान ···	१३१	७७
४७ परमाणुमें पृथिवी आदि जाति-भेदका निषेध ··· ···	१३२	७८
४८ शब्द पुद्गलकी पर्याय है ···	१३४	७९
४९ एक परमाणुद्रव्यमें रसादिककी संख्या ··· ··· ···	१३८	८१
५० पुद्गलास्तिकायके कथनका उपसंहार ··· ···	१३९	८२
५१ धर्मास्तिकायका स्वरूप ···	१४०	८३
५२ अधर्मास्तिकायका स्वरूप	१४३	८६
५३ धर्माधर्म द्रव्यके न माननेसे दोष ··· ··· ···	१४४	८७
५४ आकाशसे धर्मादिककी कार्य सिद्धि माननेमें दोष ···	१५१	९२
५६ धर्मादि तीन द्रव्योंमें एकपना तथा पृथक्पनेका कथन ···	१५४	९६
५७ पंचास्तिकाय षट् द्रव्यका थोडा कथन ··· ··· ···	१५५	९६
नवपदार्थाधिकार ॥ २ ॥		
५८ व्यवहारमोक्षमार्गका व्याख्यान	१६८	१०६
५९ पदार्थोंका नामकथन ···	१७१	१०८
६० जीव स्वरूपका उपदेश ···	१७३	१०९
६१ जीवोंके भेदका कथन ···	१७५	११०
६२ आकाशादिकको अजीवपना···	१८७	१२४
६३ जीवका कर्मके निमित्तसे परिभ्रमण ··· ···	१९१	१२८
६४ पुण्यपापका स्वरूप ···	१९४	१३१
६५ पुण्यास्रवका कथन ···	१९९	१३५
६६ पापास्रवका कथन ···	२०३	१३९
६७ संवरपदार्थका व्याख्यान ···	२०५	१४१
६८ निर्जरा पदार्थका कथन ···	२०८	१४४
६९ निर्जराका कारण ध्यानका स्वरूप	२१०	१४६
७० बंध पदार्थका कथन ···	२१३	१४७
७१ मोक्षमार्गका व्याख्यान ···	२१६	१५०
मोक्षमार्गविस्तारसूचिका चूलिका ॥ ३ ॥		
७२ मोक्षमार्गका स्वरूप ···	२२२	१५४
७३ स्वसमय परसमयका कथन···	२२५	१५५
७४ परसमयका स्वरूप ···	२२६	१५६
७५ स्वसमयका विशेषकथन ···	२२८	१५८
७६ व्यवहार मोक्षमार्गका कथन	२३०	१६०
७७ निश्चयमोक्षमार्गका कथन ···	२३२	१६१
७८ भावसम्यग्दृष्टिका कथन ···	२३५	१६३
७९ मोक्ष व पुण्यबंधके कारण ···	२३६	१६४
८० सूक्ष्म परसमय होनेका कारण	२३७	१६५
८१ पुण्यास्रवसे कालांतरमें मोक्ष ···	२४२	१७०
८२ वीतरागपना होना ही इस शास्त्रका अभिप्राय है ऐसा कथन···	२४५	१७२
८३ शास्त्रसमाप्तिका संकोचरूप कथन व प्रयोजनका वर्णन ··· ···	२५२	१७३



❀ शुद्धि-पत्र ❀

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	५	लोकालोकविकल्पनात्	लोकालोकविकल्पात्
१२	२९	अप्रथग्भूताः	अपृथग्भूताः
१२	३३	सर्वज्ञानानुपदेशः	सर्वज्ञानामुपदेशः
१६	५	सावयवत्वसिद्धिरस्त्वेति	सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति
१६	२७	ह्राता	होता
२८	३	परूविति	परूविंति
५०	२	वट्टणलक्खा	वट्टणलक्खो
५१	३२	समआ	समओ
५१	३	काला	कालो
५२	३	काठ	काष्ठा
५९	१	विषयाण वतृत्वाद्भोक्ता	विषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता
६८	८	ति	इति
६९	२७	ससारिणः	संसारिणः
७५	९	भावकर्म्मरूपामात्म···	भावकर्म्मरूपात्म···
७७	२१	पदार्थोंकाके	पदार्थोंके
८१	३२	ध्रियत	ध्रियते
८५	२५	यर्यय	पर्यय
८६	३	···वायधाराणाभेदेन	···वायधारणाभेदेन
८६	८	णाणेय	णाणेण
८६	१४	”	”
९०	५	···संभवमभिन्नप्रश	···संभवमभिन्नप्रदेश
९०	९	द्रव्यणानां	द्रव्यगुणानां
९०	२२	सख्या	संख्या
९०	२३	गुणणीमें	गुणगुणीमें
९१	१८	द्रयगुणानामे···	द्रव्यगुणानामे···
९२	२१	कथंचिप्रकार	कथंचित्प्रकार
९५	११	ज्ञनज्ञानि···	ज्ञानज्ञानि···
९५	१४	जढत्वं	जडत्वं
९५	१७	ज्ञनगुणादयंतभिन्नः	ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९५	२७	प्रथक्ता	पृथक्ता
९६	८	पुरुस्य	पुरुषस्य
९६	२६	यथाऽग्नेगुणिनः	यथाऽग्नेर्गुणिनः
९८	४	⋯निरासाऽयम्	⋯निरासोऽयम्
१००	२८	भो	भी
१०६	७	कर्मोपमेन	कर्मोपशमेन
१०६	२९	हृते	होते
१०७	२९	भवस्थतिके	भवस्थितिके
१०८	१४	वेदमयानः	वेदयमानः
१०८	२३	जिनेद्र	जिनेंद्र
११०	८	कर्मणः	कर्मणा
१२१	११	बुद्धकस्वभाव⋯	बुद्धैकस्वभाव⋯
१२९	४	व्यवहार :	व्यवहारः
१३१	३	अविभागि	अविभागी
१५४	१३	गतिस्थियोः	गतिस्थित्योः
१५७	९	निविकार	निर्विकार
१५९	१४	श्रतज्ञान⋯	श्रुतज्ञान⋯
१५९	३२	मूर्त्तामूत्तं	मूर्त्तामूर्त्तं
१६७	१८	कारणुभूतं	कारणभूतं
१७९	६	श्रोतेन्द्रि⋯	श्रोत्रेन्द्रि⋯
१८०	३३	खडीकरोतीति	खंडीकरोतीति
१९०	१०	तद्रपत्वात्	तद्रूपत्वात्
१९२	३	देहादिन्द्रिययाणि	देहादिन्द्रियाणि
२०६	१३	पूर्वसूत्रकथितपापस्रवस्य	पूर्वसूत्रकथितपापास्रवस्य
२०७	१६	असुह	असुहं
२०९	१२	तयोभिर्यश्चेष्टते	तपोभिर्यश्चेष्टते
२१९	११	⋯सुखतृपत्वा⋯	⋯सुखतृप्तत्वा⋯
२२३	१०	णियच्छयणयेण	णिच्छयणयेण
२३४	२८	स्वसकय	स्वसमय
२२८	९	जानति	जानाति
२३२	१७	सव्य	सव्व
२४४	१	सलु	खलु
२५२	२०	अनेकाम्तवादी	अनेकान्तवादी
२५३	२६	गुप्तेद्रियमना	गुप्तेन्द्रियमना

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित
परमश्रुतप्रभावक-मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) के

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची।

(१) **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**—श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक। पं० टोडरमल्लजी तथा पं० दौलतरामजीकी टीकाके आधारपर स्व० पं० नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दीटीका सहित। श्रावक-मुनिधर्मका चित्तस्पर्शी अद्भुत वर्णन। पंचमावृत्ति।

मूल्य-तीन रुपये, पच्चीस पैसे।

(२) **परमात्मप्रकाश और योगसार**—श्रीयोगीन्दुदेवकृत मूल अपभ्रंश-दोहे, श्रीब्रह्मदेवकृत संस्कृत-टीका व पं० दौलतरामजीकृत हिन्दी-टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिन्दीसार सहित। महान अध्यात्म-ग्रन्थ। डा० आ० ने० उपाध्येका अमूल्य सम्पादन। नवीन संस्करण।

मूल्य-नौ रुपये।

(३) **गोम्मटसार--जीवकाण्ड**—श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत मूल गाथायें, श्रीब्रह्मचारी पं० खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत नयी हिन्दीटीका-युक्त। अबकी बार पंडितजीने धवल, जयधवल, महाधवल और वड़ी संस्कृतटीकाके आधारसे विस्तृतटीका लिखी है। तृतीयावृत्ति।

मूल्य-छह रुपये।

(४) **गोम्मटसार--कर्मकाण्ड**—श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत मूल गाथायें, स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृतछाया और हिन्दीटीका। जैनसिद्धान्त-ग्रन्थ है। (पुनः छप रहा है)

(५) **स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा**—स्वामिकार्तिकेयकृत मूल गाथायें, श्रीशुभचन्द्रकृत बड़ी संस्कृतटीका, स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक, पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीकृत हिन्दीटीका। अंग्रेजी प्रस्तावनायुक्त। सम्पादक-डा० आ० ने० उपाध्ये, कोल्हापुर।

मूल्य-चौदह रुपये।

(६) **समयसार**—आचार्य श्रीकुन्दकुन्दस्वामी-विरचित महान अध्यात्मग्रन्थ, तीन टीकाओं सहित। (अप्राप्य)

(७) **प्रवचनसार**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित ग्रन्थरत्नपर श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत तत्त्व-प्रदीपिका एवं श्रीमज्जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकायें तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीका। डा० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद और विशद प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। तृतीयावृत्ति। मूल्य-पन्द्रह रुपये।

(८) **लब्धिसार (क्षपणासारगर्भित)**—श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती-रचित करणानुयोग ग्रन्थ। पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृतछाया और हिन्दीभाषानुवाद सहित। अप्राप्य।

(९) **ज्ञानार्णव**—श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत महान योगशास्त्र। सुजानगढ़निवासी पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। तृतीय सुंदर आवृत्ति। मूल्य-आठ रुपये।

(१०) **पंचास्तिकाय**—श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित अनुपम ग्रन्थराज। आ० अमृतचन्द्रसूरिकृत 'समयव्याख्या' एवं आचार्य जयसेनकृत 'तात्पर्यवृत्ति'—नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी-रचित बालावबोधिनी भाषा-टीकाके आधारपर पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत प्रचलित हिन्दी-अनुवादसहित। तृतीयावृत्ति। मूल्य-पाँच रुपये।

(११) **बृहद्द्रव्यसंग्रह**—आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धांतिदेवविरचित मूल गाथा, श्रीब्रह्मदेव-विनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं० जवाहरलालशास्त्रिप्रणीत हिन्दी-भाषानुवाद सहित। षड्द्रव्य-सप्ततत्त्वस्वरूपवर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ। तृतीयावृत्ति। मूल्य-पांच रुपये, पचास पैसे।

(१२) **द्रव्यानुयोगतर्कणा**—श्रीभोजसागरकृत, अप्राप्य है।

(१३) **न्यायावतार**—महान् तार्किक श्री सिद्धसेनदिवाकरकृत मूल श्लोक, व श्रीसिद्धर्षिगणिकी संस्कृतटीकाका हिन्दी-भाषानुवाद जैनदर्शनाचार्य पं० विजयमूर्ति एम० ए० ने किया है। न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। मूल्य-पांच रुपये।

(१४) **प्रशमरतिप्रकरण**—आचार्य श्रीमदुमास्वातिविरचित मूल श्लोक, श्रीहरिभद्रसूरिकृत संस्कृतटीका और पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित। वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। मूल्य-छह रुपये।

(१५) **सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र)**—श्रीमत् उमास्वातिकृत मूल सूत्र और स्वोपज्ञभाष्य तथा पं० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका। तत्त्वोंका हृदयग्राह्य गंभीर विश्लेषण। मूल्य-छह रुपये।

(१६) **स्याद्वाद मंजरी**—श्रीमल्लिषेणसूरिकृत मूल और श्रीजगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम० ए०, पी-एच० डी० कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बड़ी खोजसे लिखे गये ८ परिशिष्ट हैं। (पुनः छप रहा है)

(१७) **सप्तभंगीतरंगिणी**—श्रीविमलदासकृत मूल और स्व० पंडित ठाकुरप्रसादजी शर्मा व्याकरणाचार्यकृत भाषाटीका। नव्यन्यायका महत्वपूर्ण ग्रन्थ। अप्राप्य।

(१८) **इष्टोपदेश**—श्रीपूज्यपाद-देवनन्दिआचार्यकृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर आशाधरकृत संस्कृतटीका, पं० धन्यकुमारजी जैनदर्शनाचार्य एम० ए० कृत हिन्दीटीका, स्व० बैरिस्टर चम्पतरायजी

कृत अंग्रेजीटीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवादों सहित भाववाही आध्यात्मिक रचना। मूल्य-एक रुपया, पचास पैसे।

(१९) **इष्टोपदेश**---मात्र अंग्रेजी टीका व पद्यानुवाद। मू०-पचहत्तर पैसे।

(२०) **परमात्मप्रकाश**---मात्र अंग्रेजी प्रस्तावना व मूल गाथायें। मू०-दो रुपये।

(२१) **योगसार**--मूल गाथायें और हिन्दीसार। मू०-पचहत्तर पैसे।

(२२) **कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा**---मात्रमूल, पाठान्तर और अंग्रेजी प्रस्तावना। मू०-दो रुपये, पचास पैसे।

(२३) **पुष्पमाला, मोक्षमाला और भावनाबोध**---श्रीमद्राजचन्द्रकृत। जैनधर्मका यथाथस्वरूप दिखानेवाले १०८ सुन्दर पाठ हैं। मू०--एक रुपया, पचास पैसे।

(२४) **उपदेशछाया आत्मसिद्धि**---श्रीमद् राजचन्द्रप्रणीत। अप्राप्य।

(२५) **श्रीमद्राजचन्द्र**---श्रीमद्के पत्रों व रचनाओंका अपूर्व संग्रह। तत्त्वज्ञानपूर्ण महान् ग्रन्थ है। म० गांधीजीकी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना। (नवीन परिवर्द्धित संस्करण पुनः छपेगा)

अधिक मूल्यके ग्रन्थ मंगाने वालोंको कमीशन दिया जायगा। इसके लिये वे हमसे पत्रव्यवहार करें।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी ओरसे

प्रकाशित गुजराती-ग्रन्थ।

(१) श्रीमद् राजचन्द्र (२) अध्यात्म राजचन्द्र (३) श्रीसमयसार (संक्षिप्त) (४) समाधि सोपान (रत्नकरण्ड श्रावकाचारके विशिष्ट स्थलोंका अनुवाद) (५) भावनाबोध, मोक्षमाला (६) परमात्मप्रकाश (७) तत्त्वज्ञान तरंगिणी (८) धर्मामृत (९) स्वाध्याय सुधा (१०) सहजसुख-साधन (११) तत्वज्ञान (१२) श्रीसद्गुरुप्रसाद (१३) श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला (१४) सुबोध संग्रह (१५) नित्यनियमादि पाठ (१६) पूजा संचय (१७) आठदृष्टिनी सज्झाय (१८) आलोचनादिपद संग्रह (१९) पत्रशतक (२०) चैत्यवंदन चौवीशी (२१) नित्यक्रम (२२) श्रीमद् राजचन्द्र-जन्मशताब्दी-महोत्सव-स्मरणांजली (२३) श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्री) उपदेशामृत (२४) आत्मसिद्धि (२५) श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत-सारसंग्रह आदि।

आश्रमके गुजराती-प्रकाशनोंका पृथक सूचीपत्र मंगाइये। सभी ग्रन्थोंपर डाकखर्च अलग रहेगा।

प्राप्तिस्थान :

(१) **श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, स्टेशन-अगास**
पो० बोरिया : वाया-आणंद (गुजरात)

(२) **परमश्रुतप्रभावक-मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)**
चौकसी चेम्बर, खाराकुवा, जौहरी बाजार, **बम्बई-२**



श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

पंचास्तिकायः।



(टीकात्रयोपेतः)

श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृता तत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः।

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे[1]।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने[2] परमात्मने ॥ १ ॥
दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनीसिद्धान्तपद्धतिः ॥ २ ॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः।

स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने।
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानंदचिदे नमः ॥ १ ॥

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञश्रीमंदरस्वामितीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं, अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यार्थव्याख्यानं कथ्यते। अथ प्रथमत

श्रीपांडे हेमराजजीकृत बालावबोधभाषाटीका।

[जिनेभ्यो नमः] सर्वज्ञ वीतरागको नमस्कार होहु। अनादि चतुर्गति संसारके कारण, रागद्वेषमोहजनित अनेक दुःखोंको उपजानेवाले जो कर्मरूपी शत्रु तिनको

१ पूज्याय गरिष्ठाय वा. २ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-भेदेन वा व्यवहारनिश्चयेन।

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया ।
अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणा[1]ऽभिधीयते[2] ॥ ३ ॥
पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणं ।
पूर्वं[3] मूलपदार्थानामिह[4] सूत्रकृता[5] कृतम् ॥ ४ ॥
जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम् ।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता[6] ॥ ५ ॥
ततस्तत्त्व[7]परिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना ।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा[8] ॥ ६ ॥

अथात्र 'नमो जिनेभ्यः'[9] इत्यनेन[10] जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं[11] शास्त्रस्याऽऽदौ मङ्गलमुपात्तं[12]:—

इंदसदवंदियाणं तिहुअणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥ १ ॥

इन्द्रशतवन्दितेभ्यस्त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः ।
अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः ॥ १ ॥

अनादिना संतानेन प्रवर्त्तमाना अनादिनैव संतानेन प्रवर्त्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता ये इत्यनेन[13] सर्वदैव देवाधिदेवत्वात्तेषामेवा[14]ऽसाधारणनमस्कारार्हत्वमुक्तम्[15] ।

इन्द्रशतवन्दितेभ्य इत्यादि जिनभावनमस्काररूपमसाधारणं शास्त्रस्यादौ मंगलं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—"णमो जिणाण"मित्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते, णमो जिणाणं नमः नमस्कारोऽस्तु । केभ्यः । जिनेभ्यः । कथंभूतेभ्यः । इंदसयवंदियाणं

जीतनहारे होयँ सो ही जिन हैं. तिस ही जिनपदको नमस्कार करना योग्य है. अन्य कोई भी देव वंदनीक नहीं हैं. क्योंकि अन्य देवोंका स्वरूप रागद्वेषरूप होता है. और जिनपद वीतराग है, इस कारण कुंदकुंदाचार्यने इनको ही नमस्कार किया. ये ही परम मंगलस्वरूप हैं । कैसे हैं सर्वज्ञ वीतरागदेव ? [इन्द्रशतवन्दितेभ्यः] सौ इन्द्रोंकर वंदनीक हैं; अर्थात् भवनवासी देवोंके ४० इन्द्र, व्यंतर देवोंके ३२, कल्पवासी देवोंके

---

१ समुच्चयेन. २ कथ्यते. ३ तावत् प्रथमतः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमोऽधिकारः. ४ इह ग्रन्थे प्रथमाधिकारे वा. ५ आचार्येण,(मूलकर्त्ता श्रीवर्धमानः, उत्तरकर्ता श्रीगौतमगणधरः, उत्तरोत्तरकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सूत्रकारः) ६ सप्ततत्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयोऽधिकारः. ७ पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां ज्ञानपूर्वेण. ८ उत्तमा. ९ अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्म्मारातीन् जयन्तीति जिनाः तेभ्यः. १० नमस्कारेण. ११ असदृशम्, १२ मलं पापं गालयतीति मङ्गलम्, वा मङ्गं सुखं तल्लाति गृह्णातीति मङ्गलं. १३ विशेषणेन वाक्येन वा. १४ जिनानाम्. १५ अनन्यसदृशम् ।

त्रिभुवनमूर्ध्वाधोमध्यलोकवर्ती समस्त एव जीवलोकस्तस्मै[1] निर्व्याबाधविशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भोपायाभिधायित्वाद्धितं । परमार्थरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरम्[2] । निरस्तसमस्तशंकादि-

---

इन्द्रशतवन्दितेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । तिहुवणहिदमहुरविसदवक्काणं त्रिभुवनहित-मधुरविशदवाक्येभ्यः । पुनरपि किंविशिष्टेभ्यः । अंतातीदगुणाणं अन्तातीतगुणेभ्यः । पुनरपि । जिदभवाणं जितभवेभ्यः, इति क्रियाकारकसंबन्धः । इन्द्रशतवन्दितेभ्यः त्रिभुवन-हितमधुरविशदवाक्येभ्यः अन्तातीतगुणेभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभवेभ्यः । "पदयोर्विवक्षितः सुबिनसमासान्तरयो" रिति परिभाषासूत्रबलेन विवक्षितस्य संधिर्भवतीति वचनात्प्राथमिकशिष्य-प्रतिसुखबोधार्थमत्र ग्रन्थे संधेर्नियमो नास्तीति सर्वत्र ज्ञातव्यं । एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो जिनेभ्यो नमः इत्यनेन मंगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्त्विति संग्रहवाक्यं । अथैव कथ्यते इन्द्रशतैर्वन्दिता इन्द्रशतवन्दितास्तेभ्य इत्यनेन पूजातिशयप्रतिपादनार्थं । किमुक्तं भवति—त एवेन्द्रशतनमस्कारार्हा नान्ये । कस्मात् । तेषां देवासुरादियुद्धदर्शनात् । त्रिभुव-नाय शुद्धात्मस्वरूपप्राप्त्युपायप्रतिपादकत्वाद्धितं, वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्द-

---

२४, ज्योतिषी देवोंके २, मनुष्योंका १, और तिर्यंचोंका १, इस प्रकार सौ इन्द्र[3] अनादिकालसे वर्तते हैं, सर्वज्ञ वीतराग देव भी अनादि कालसे हैं, इस कारण १०० इन्द्रोंकर नित्य ही वंदनीय हैं, अर्थात् देवाधिदेव त्रैलोक्यनाथ हैं । फिर कैसे हैं ? [त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्येभ्यः] तीन लोकके जीवोंके हित करनेवाले मधुर (मिष्ट-प्रिय) और विशद कहिये निर्मल हैं वाक्य जिनके ऐसे हैं । अर्थात् स्वर्गलोक, मध्यलोक, अधोलोकवर्ती जो समस्त जीव हैं, तिनको अखंडित निर्मल आत्मतत्त्वकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकारके उपाय बताते हैं, इस कारण हितरूप हैं । तथा वे ही वचन मिष्ट हैं, क्योंकि जो परमार्थी रसिक जन हैं, तिनके मनको हरते हैं, इस कारण अतिशय मिष्ट (प्रिय) हैं । और वे ही वचन निर्मल हैं, क्योंकि जिन वचनोंमें संशय, विमोह, विभ्रम, ये तीन दोष वा पूर्वापर विरोधरूपी दोष नहीं लगते हैं; इसकारण निर्मल हैं । ये ही (जिनेन्द्र भगवान्के अनेकान्तरूप) वचन समस्त वस्तुओंके स्वरूपको यथार्थ दिखाते हैं; इसकारण प्रमाणभूत हैं; और जो अनुभवी पुरुष हैं, वे ही इन वचनोंको अंगीकार करनेके पात्र हैं । फिर कैसे हैं जिन ? [अन्तातीतगुणेभ्यः] अन्तरहित हैं गुण जिनके, अर्थात् क्षेत्रकर तथा कालकर जिनकी मर्यादा (अन्त) नहीं, ऐसे परम चैतन्य शक्तिरूप समस्त वस्तुओंको प्रकाश करनेवाले अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शनादि गुणोंका अन्त (पार) नहीं है । फिर कैसे हैं जिन ? [जितभ-

---

१—जीवलोकाय त्रिभुवनाय, २—वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंजातसहजापूर्वपरमानन्दरूपपारमार्थिक-सुखरसास्वादसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वात् मधुरम्, ३-"भवणालयचालीसा वितरदेवाण होंति बत्तीसा । कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ॥ १ ॥"

दोषास्पदत्वाद्विशदवाक्यम् । दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात्प्रेक्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम् । अन्तमतीतः क्षेत्रानवच्छिन्नः कालानवच्छिन्नश्च परमचैतन्य-

---

रूपपारमार्थिकसुखरसास्वादपरमसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वान्मधुरं चलितप्रतिपत्तिगच्छत्तृण-स्पर्शशुक्तिकारजतविज्ञानरूपसंशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन शुद्धजीवास्तिकायादिसप्ततत्त्वनवपदार्थ-षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकत्वात् अथवा पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वात् अथवा कर्णाटमागधमा-लवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकं त्रयमित्यष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषातदन्तर्भेदगतबहुभाषारूपेण युगपत्सर्वजीवानां स्वकीयस्वकीयभाषायाः स्पष्टार्थप्रतिपादकत्वात्प्रतिपत्तिकारकत्वात् सर्वजीवानां ज्ञापकत्वात् विशदं स्पष्टं व्यक्तं वाक्यं दिव्यध्वनिर्येषां त्रिभुवनहितमधुरविपदवाक्यास्तेभ्यः । तथाचोक्तं ।

"यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं,नो वांछाकलितं न दोषमलिनं नोच्छ्वासरुद्धक्रमं ।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिस्तन्नः सर्वविदो विनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥१॥"

इत्यनेन वचनातिशयप्रतिपादनेन तद्वचनमेव प्रमाणं न चैकान्तेनापौरुषेयवचनं न चित्रकथा-कल्पितपुराणवचनं चेतीत्युक्तं भवति । अन्तातीतद्रव्यक्षेत्रकालभावपरिच्छेदकत्वादन्तातीतं केवल-ज्ञानगुणः स विद्यते येषां तेन्तातीतगुणास्तेभ्य इत्यनेन ज्ञानातिशयप्रतिपादनेन बुद्ध्यादिसप्तर्द्धि-मतिज्ञानादिचतुर्विधज्ञानसंपन्नानामपि गणधरदेवादियोगीन्द्राणां वंद्यास्ते भवन्तीत्युक्तं । जितो भवः पञ्चप्रकारसंसार आजवं जवो यैस्ते जितभवास्तेभ्य इत्यनेन घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन कृतकृत्यत्वप्रकटनादन्येषामकृतकृत्यानां त एव शरणं नान्य इति प्रतिपादितं भवति । एवं विशेषणचतुष्टययुक्तेभ्यो नमः । इत्यनेन मंगलार्थमनंतज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारः कृतः । इदं विशेषणचतुष्टयं अनेकभवगहनविषयव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः इति व्युत्पत्तिपक्षे श्वेतशंखवत्स्वरूपकथनार्थं, अव्युत्पत्तिपक्षे नामजिनव्यवच्छेदनार्थं । एवं विशेष्य-विशेषणसंबंधरूपेण शब्दार्थः कथितः । अनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपभावनमस्कारोऽशुद्धनिश्च-यनयेन, नमो जिनेभ्य इति वचनात्मकद्रव्यनमस्कारोप्यसद्भूतव्यवहारनयेन, शुद्धनिश्चयनयेन स्व-स्मिन्नेवाराध्याराधकभाव इति नयार्थोप्युक्तः । त एव नमस्कारार्हा नान्ये चेत्यादिरूपेण मतार्थोप्युक्तः । इन्द्रशतवन्दिता इत्यागमार्थः प्रसिद्ध एव । अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकायमेवोपादेय इति भावार्थः । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थः । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थं व्याख्यानकाले सर्वत्र योजनीयमिति संक्षेपेण मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारः कृतः । मंगलमुपलक्षणं निमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृरूपा पञ्चाधिकाराः यथासंभवं वक्तव्याः । इदानीं पुनर्विस्तररुचिशिष्याणां व्यवहारनयमाश्रित्य यथाक्रमेण मंगलादिषडधिकाराणामियत्तापरिमितविशेषणव्याख्यानं क्रियते—

"मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं । वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ

वेभ्यः] जीता है पंचपरावर्त्तनरूप अनादि संसार जिन्होंने, अर्थात्—जो कुछ करना

---

१ यः सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान्, पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वतः ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते, सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥

शक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञानातिशयप्रकाशनादवाप्तज्ञाना-

सत्थमाइरिओ ॥ १ ॥" वक्खाणउ व्याख्यातु । स कः कर्त्ता । आइरिओ आचार्यः । किं । सत्थं शास्त्रं पच्छा पश्चात् । किं कृत्वा पूर्वं । वागरिय व्याकृत्य व्याख्याय । कान् । छप्पि षडपि मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तारं मंगलनिमित्तहेतुपरिमाण-नामकर्तृत्वाधिकाराणीति । तद्यथा—मलं पापं गालयति विध्वंसयतीति मंगलं, अथवा मंगं पुण्यं सुखं तल्लाति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलं । चतुष्टयफलं समीक्ष्यमाणा ग्रन्थकाराः शास्त्रस्यादौ त्रिधा देवतायास्त्रेधा नमस्कारं कुर्वन्ति मंगलार्थं ॥ "नास्तिक्यपरिहारस्तु शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नं शास्त्रादौ तेन संस्तुतिः ॥ १ ॥" त्रिधा देवता कथ्यते । केन । इष्टाधिकृत-ताभिमतभेदेन । आशीर्वस्तुनमस्क्रियाभेदेन नमस्कारस्त्रिधा । तच्च मंगलं द्विविधं मुख्यामुख्य-भेदेन । तत्र मुख्यमंगलं कथ्यते "आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः । तज्जिनेन्द्रगुण-स्तोत्रं तदविघ्नप्रसिद्धये ॥ १ ॥" तथाचोक्तं । "विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु, न क्षुद्रदेवाः परिलंघयन्ति । अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥" "आई मंगलकरणे सिस्सा लहु पारगा हवंतित्ती । मज्झे अव्वुच्छित्ती विज्जा विज्जाफलं चरिमे ॥" अमुख्यमंगलं कथ्यते—"सिद्धत्थ पुण्णकुंभो वंदणमाला य पंडुरं छत्तं । सेदो वण्णो आदस्स णाय कण्णा य जत्तस्सो ॥ १ ॥ वयणियमसंजमगुणेहिं साहिदो जिणवरेहिं परमट्ठो । सिद्धासण्णा जेसिं सिद्धत्था मंगलं तेण ॥२॥ पुण्णा मणोरहेहि य केवलणाणेण चावि संपुण्णा । अरहंता इदि लोए सुमंगलं पुण्णकुंभो दु ॥ ३ ॥ णिग्गमणपवेसम्हि य इह चउवीसंपि वंदणीज्जा ते । वंदणमालेत्ति कया भरहेण य मंगलं तेण ॥ ४ ॥ सव्वजणणिव्वुदियरा छत्तायारा जगस्स अरहंता । छत्तायारं सिद्धित्ति मंगलं तेण छत्तं तं ॥ ५ ॥ सेदो वण्णो झाणं लेस्सा य अघाइसेसकम्मं च । अरु-हाणं इदि लोए सुमंगलं सेदवण्णो दु ॥ ६ ॥ दीसइ लोयालोओ केवलणाणे जहा जिणिंदस्स । तह दीसइ मुकुरे विंबुमंगलं तेण तं मुणह ॥ ७ ॥ जह वीयराय सव्वण्हु जिणवरो मंगलं हवइ लोए । हयरायबालकण्णा तह मंगलमिदि विजाणाहि ॥ ८ ॥ कम्मारिजिणेविणु जिणवरेहिं मोक्खु जिणाहिवि जेण । जं चउरउअरिबलजिणइ मंगलु वुचइ तेण ॥ ९ ॥" अथवा निबद्धानिबद्धभे-देन द्विविधं मंगलं तेनैव ग्रन्थकारेण कृतं । निबद्धमंगलं यथा मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यादि । शास्त्रान्तरादानीतो नमस्कारोऽनिबद्धमंगलं यथा जगत्त्रयनाथायेत्यादि । अस्मिन्प्रस्तावे शिष्यः पूर्वपक्षं करोति—किमर्थं शास्त्रादौ शास्त्रकाराः मंगलार्थं परमेष्ठिगुणस्तोत्रं कुर्वन्ति यदेव शास्त्रं प्रारब्धं तदेव कथ्यतां मंगलमप्रस्तुतं । नच वक्तव्यं मंगलनमस्कारेण पुण्यं भवति, पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति । कस्मान्न वक्तव्यमितिचेत् । व्यभिचारात् । तथाहि-क्वापि नमस्कारदानपूजादि-करणेपि विघ्नं दृश्यते क्वापि दानपूजानमस्काराभावेपि निर्विघ्नं दृश्यत इति । आचार्याः परिहारमाहुः ।

था खो कर लिया, संसारसे मुक्त (पृथक्) हुये । और जो पुरुष कृतकृत्य दशाको (मो-

१ प्रकृष्टाश्चर्यज्ञानप्रतापप्रकाशनात् ।

तिशयानामपि योगीन्द्राणां वन्द्यत्वमुदितम् । जितो भव आजवं जवो यैरित्यनेन तु कृतक-

---

तद्युक्तं, पूर्वाचार्या इष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरमेव कार्यं कुर्वन्ति, यदुक्तं भवता नमस्कारे कृते पुण्यं भवति पुण्येन निर्विघ्नं भवति इति नच वक्तव्यं तदप्ययुक्तं । कस्मात् । देवतानमस्कारकरणे पुण्यं भवति तेन निर्विघ्नं भवतीति तर्कादिशास्त्रे व्यवस्थापितत्वात् । पुनश्च यदुक्तं त्वया व्यभिचारो दृश्यते तदप्ययुक्तं । कस्मादितिचेत् । यत्र देवतानमस्कारदानपूजादिधर्मे कृतेपि विघ्नं भवति तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतपापस्यैव फलं तत् नच धर्मदूषणं, यत्र पुनर्देवतानमस्कारदानपूजादिधर्माभावेपि निर्विघ्नं दृश्यते तत्रेदं ज्ञातव्यं पूर्वकृतधर्मस्यैव फलं तत् नच पापस्य । पुनरपि शिष्यो ब्रूते— शास्त्रं मंगलममंगलं वा ? मंगलं चेत्तदा मंगलस्य मंगलं किं प्रयोजनं, यद्यमंगलं तर्हि तेन शास्त्रेण किं प्रयोजनं । आचार्याः परिहारमाहुः—भक्त्यर्थं मंगलस्यापि मंगलं क्रियते । तथा-चोक्तं "प्रदीपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम् । वागीश्वरीं तथा वाग्भिर्मंगलेनैव मंगलम् ॥ १ ॥" किंच । इष्टदेवतानमस्कारकरणे प्रत्युपकारं कृतं भवति । तथाचोक्तं—"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥" "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् । इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥" इति संक्षेपेण मंगलं व्याख्यातं । निमित्तं कथ्यते-निमित्तं कारणं । वीतरागसर्वज्ञदिव्यध्वनिशास्त्रे प्रवृत्ते किं कारणं ? भव्यपुण्यप्रेरणात् । तथाचोक्तं "छद्दव्वणवपयत्थे सुयणाणाइच्चदिव्वतेएण । पस्संतु भव्वजीवा इय सुअरविणो हवे उदओ ॥" अथ प्राभृतग्रंथे शि-वकुमारमहाराजो निमित्तं अन्यत्र द्रव्यसंग्रहादौ सोमाश्रेष्ठ्यादि ज्ञातव्यं। इति संक्षेपेण निमित्तं कथितं । इदानीं हेतुव्याख्यानं । हेतुः फलं । हेतुशब्देन फलं कथं भण्यत इति चेत् । फलकारणात्फलमुपचा-रात् । तच्च फलं द्विविधं प्रत्यक्षपरोक्षभेदात् । प्रत्यक्षफलं द्विविधं साक्षात्परंपराभेदेन । साक्षात्प्रत्यक्षं किं ? अज्ञानविच्छित्तिः संज्ञानोत्पत्त्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा इत्यादि । परंपराप्रत्यक्षं किं ? शिष्यप्रतिशिष्यपूजाप्रशंसाशिष्यनिष्पत्त्यादि । इति संक्षेपेण प्रत्यक्षफलं । इदानीं परोक्षफलं भण्यते । तच्च द्विविधं अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात् । अभ्युदयसुखं कथ्यते । अष्टादशश्रेणीनां पतिः स एव मुकुटधरः कथ्यते, तस्माद्द्विगुणद्विगुणक्रमेण सकलचक्रिपर्यंत इति अभ्युदयसुखं । अथ निश्रेयससुखं कथ्यते "खविदघणघाइकम्मा चउतीसातिसया पंचकल्लाणा । अट्ठ महापाडिहेरा अरहंता मंगलं मज्झं ॥" सिद्धपदं कथ्यते "मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का । मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा ॥" इति संक्षेपेण अभ्युदयनिश्रेयससुखं कथितं । इदमत्र तात्पर्यं— यत्कोपि वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपंचास्तिकायसंग्रहादिकं शास्त्रं पठति श्रद्धत्ते तथैव च भावयति स च इत्थंभूतं सुखं प्राप्नोतीत्यर्थः । इदानीं परिमाणं प्रतिपाद्यते । तच्च द्विविधं ग्रंथार्थभेदात् । ग्रन्थप-रिमाणं ग्रन्थसंख्या यथासंभवं,अर्थपरिमाणमनन्तमिति संक्षेपेण परिमाणं भणितं । नाम कथ्यते । नाम

क्षावस्थाको) प्राप्त नहिं हुये, उन पुरुषोंको शरणरूप हैं. ऐसे जो जिन हैं तिनको

---

१ घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन. २ कृतकार्यत्वप्रकाशनात् ।

त्यत्वप्रकटनात्त एवान्येषामकृतकृत्यानां[1] शरणमित्युपदिष्टम्[2] । इति सर्वपदानां तात्पर्यम् ॥१॥

समयो ह्यागमः । तस्य प्रणामपूर्वकमात्मनाभिधानम्[3]अत्र[4] प्रतिज्ञातम्[5] :—

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा समयमियं सुणह वोच्छामि ॥२॥

श्रमणमुखोद्गतार्थं चतुर्गतिनिवारणं सनिर्वाणं ।
एष प्रणम्य शिरसा समयमिमं शृणुत वक्ष्यामि ॥२॥

पूज्यते हि स प्रणन्तुमभिधातुं चाप्तोपदिष्टत्वे सति सफलत्वात् । तत्राप्तोपदिष्टत्वमस्य श्रमणमुखोद्गतार्थत्वात् । श्रमणा हि महाश्रमणाः सर्वज्ञवीतरागाः । अर्थः पुनरनेकशब्द-

द्विधा अन्वर्थयदृच्छभेदेन । अन्वर्थनाम किं ? यादृशं नाम तादृशोऽर्थः यथा तपतीति तपन आदित्य इत्यर्थः । अथवा पंचास्तिकाया यस्मिन् शास्त्रे ग्रन्थे स भवति पंचास्तिकायः, द्रव्याणां संग्रहो द्रव्यसंग्रह इत्यादि । यदृच्छं काष्ठाभारेणेश्वर इत्यादि । कर्ता कथ्यते—स च त्रिधा । मूलतन्त्रकर्ता उत्तरतन्त्रकर्ता-उत्तरोत्तरतन्त्रकर्ताभेदेनेति । मूलतन्त्रकर्ता कालापेक्षया श्रीवर्धमानस्वामी अष्टादशदोषरहितोऽनन्तचतुष्टयसंपन्न इति, उत्तरतन्त्रकर्ता श्रीगौतमस्वामी गणधरदेवश्चतुर्ज्ञानधरः सप्तर्द्धिसंपन्नश्च, उत्तरोत्तरा बहवो यथासंभवं । कर्ता किमर्थं कथ्यते ? कर्तृप्रामाण्याद्वचनप्रमाणमिति ज्ञापनार्थं । इति संक्षेपेण मंगलाद्यधिकारषट्कं प्रतिपादितं व्याख्यातं ॥१॥ एवं मंगलार्थमिष्टदेवता-नमस्कारगाथा गता । अथ द्रव्यागमरूपं शब्दसमयं नत्वा पंचास्तिकायरूपसमर्थसमयं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापूर्वकाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारकरणेन संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति;—पणमिय प्रणम्य । कः कर्ता । एसो एषोऽहं । केन सिरसा उत्तमाङ्गेन । कं । समयं शब्दसमयं इणं इमं प्रत्यक्षीभूतं । किंविशिष्टं । समणमुहुग्गदं सर्वज्ञवीतरागमहाश्रमणमुखोद्गतं । पुनरपि किंविशिष्टं । अट्ठं जीवादिपदार्थं । पुनरपि किंरूपं चदुगदिविणिवारणं नरकादिचतुर्गतिविनिवारणं । पुनश्च कथंभूतं । सणिव्वाणं

नमस्कार होहु ॥१॥ आगे आचार्यवर जिनागमको नमस्कार करके पंचास्तिकायरूप समयसार ग्रंथके कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं;—[एष 'अहं' इमं समयं वक्ष्यामि] यह मैं कुन्दकुन्दाचार्य जो हूं सो इस पंचास्तिकायरूप समयसार नामक ग्रन्थको कहूंगा. [शृणुत] इसको तुम सुनो । क्या करके कहूंगा ? [श्रमणमुखोद्गतार्थं शिरसा प्रणम्य] श्रमण कहिये सर्वज्ञ वीतरागदेव मुनिके मुखसे उत्पन्न हुये पदार्थसमूहसहित वचन तिनको मस्तकसे प्रणाम करके कहूंगा, क्योंकि सर्वज्ञके वचन ही प्रमाणभूत हैं, इस कारण इनके ही आगमको नमस्कार करना योग्य है, और इनका ही कथन योग्य है । कैसा है भगवत्प्रणीत आगम ? [चतुर्गतिनिवारणं] नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, इन चार गति-

१ अकृतकार्याणाम्, २ शरणं नान्य इति प्रतिपादितमस्ति. ३ द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानवाचकः
४ आगमस्य मध्ये, ५ प्रतिज्ञयावधारितम् ।

संबन्धेनाभिधीयमानो वस्तुतयैकोऽभिधेयः। सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यग्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात्, साक्षात् पारतंत्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात्, स्वातंत्र्यप्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति ॥ २ ॥

सकलकर्मविमोचनलक्षणनिर्वाणं। इत्थंभूतं शब्दसमयं कथंभूतं। "गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं, कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतं। स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं, दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु नः" ॥ तथाचोक्तं। "एनाज्ञानतमस्तति-र्विघटते ज्ञेये हिते चाहिते, हानादानमुपेक्षणं च समभूत्तस्मिन् पुनः प्राणिनः। येनेयं दृगपैति तां परमतां वृत्तं च येनानिशं, तज्ज्ञानं मम मानसाम्बुजमुदे स्तात्सूर्यवर्योदयः ॥" इत्यादि गुणविशिष्टवचनात्मकं नत्वा किं करोमि। वोच्छामि वक्ष्यामि। कं। अर्थसमयं सुणुह शृणुत यूयं हे भव्या इति क्रियाकारकसंबंधः। अथवा द्वितीयव्याख्यानं। श्रमणमुखोद्गतं पञ्चास्तिकायलक्षणार्थसमयप्रतिपादकत्वादर्थं परंपरया चतुर्गतिनिवारणं चतुर्गतिनिवारणत्वादेव सनिर्वाणं एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः कुण्डकुन्दाचार्यः प्रणम्य नमस्कृत्य नत्वा। केन। शिरसा मस्तकेनोत्तमाङ्गेन। कं प्रणम्य। पूर्वोक्तश्रवणमुखोद्गतादिविशेषणचतुष्टयसंयुक्तं समयं शब्दरूपं द्रव्यागममिमं प्रत्यक्षीभूतं तं शब्दसमयं प्रणम्य। पश्चात् किं करोमि। वक्ष्यामि कथयामि प्रतिपादयामि शृणुत हे भव्या यूयं। कं वक्ष्यामि। तमेव शब्दसमयवाच्यमर्थसमयं शब्दसमयं नत्वा पश्चादर्थसमयं वक्ष्ये ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमिति। वीतरागसर्वज्ञमहाश्रमणमुखोद्गतं शब्दसमयं कश्चिदासन्नभव्यः पुरुषः शृणोति शब्दसमयवाच्यं पश्चात्पञ्चास्तिकायलक्षणमर्थसमयं जानाति तदन्तर्गते शुद्धजीवास्तिकायलक्षणेर्थे वीतरागनिर्विकल्पसमाधिना स्थित्वा चतुर्गतिनिवारणं करोति चतुर्गतिनिवारणादेव निर्वाणं लभते स्वात्मोत्थमनाकुलत्वलक्षणं निर्वाणफलभूतमनन्तसुखं च लभते जीवस्तेन कारणेनायं द्रव्यागमरूपशब्दसमयो नमस्कर्तुं व्याख्यातुं च युक्तो भवति। इत्यनेन व्याख्यानक्रमेण संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि भवन्ति। कथमिति चेत्। विवरणरूपमाचार्यवचनं व्याख्यानं, गाथासूत्रं व्याख्येयमिति व्याख्यानव्याख्येयसंबन्धः। द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानं वाचकः तेन शब्दसमयेन वाच्यः पंचास्तिकायलक्षणोर्थसमयोऽभिधेय इति अभिधानाभिधेयलक्षणसंबंधः। फलं प्रयोजनं चाज्ञानविच्छित्त्यादि निर्वाणसुखपर्यन्तमिति संबन्धाभिधेयप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति भावार्थः ॥ २ ॥ एवमिष्टाभिमतदेवतानमस्कारमुख्यतया गाथाद्वयेन प्रथमस्थलं गतं।

योंका निवारण करनेवाला है, अर्थात् संसारके दुःखोंका विनाश करनेवाला है। फिर कैसा है आगम?—[सनिर्वाणं] मोक्षफलकर सहित है; अर्थात् शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप मोक्षपदका परंपरायकारणरूप है, इस प्रकार भगवत्प्रणीत आगमको नमस्कार करके पंचास्तिकायनामक समयसारको कहूंगा। आगम दो प्रकारका है:—एक अर्थसमयरूप है, दूसरा शब्दसमयरूप है। शब्दसमयरूप जो आगम है सो अनेक शब्दसमय

अत्र[1] शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिविधाऽभिधेयता समयशब्दस्य लोकालोकविभागश्चाभिहितः;—

समवाओ पंचण्हं समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं ।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥३॥

समवायः पंचानां समय इति जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तं ।
स च एव भवति लोकस्ततोऽमितोऽलोकः खं ॥ ३ ॥

तत्र[2] च पञ्चानामस्तिकायानां समो मध्यस्थो रागद्वेषाभ्यामनुपहतो वर्णपदवा-

(उपोद्घातः) तद्यथा–प्रथमतस्तावत् "इंदसयवंदियाण" मित्यादिपाठक्रमेणैकादशोत्तरशत-गाथाभिः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनरूपेण प्रथमो महाधिकारः, अथवा स एवामृतचन्द्रटीका-भिप्रायेण त्र्यधिकशतपर्यन्तश्च । तदनन्तरं "अभिवंदिऊण सिरसा" इत्यादि पञ्चाशद्गाथाभिः सप्ततत्वनवपदार्थव्याख्यानरूपेण द्वितीयो महाधिकारः । अथ स एवामृतचन्द्रटीकाभिप्रायेणाष्टा-चत्त्वारिंशद्गाथापर्यन्तश्च । अथानन्तरं जीवस्वभावो इत्यादि विंशतिगाथाभिर्मोक्षमार्गमोक्षस्वरूप-कथनमुख्यत्वेन तृतीयो महाधिकार इति समुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिर्महाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं । तत्र महाधिकारे पाठक्रमेणान्तराधिकाराः कथ्यन्ते । तद्यथा–एकादशोत्तरशतगाथामध्ये "इंद-सय" इत्यादि गाथासप्तकं समयशब्दार्थपीठिकाव्याख्यानमुख्यत्वेन । तदनन्तरं चतुर्दशगाथा-द्रव्यपीठिकाव्याख्यानेन । अथ गाथापञ्चकं कालद्रव्यमुख्यत्वेन, तदनन्तरं त्रिपञ्चाशद्गाथा जीवा-स्तिकायकथनरूपेण । अथ गाथादशकं पुद्गलास्तिकायमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथासप्तकं धर्माध-र्मास्तिकायव्याख्यानेन । अथ गाथासप्तकमाकाशास्तिकायकथनमुख्यत्वेन, तदनन्तरं गाथाष्टकं चूलिकोपसंहारव्याख्यानमुख्यत्वेन कथयतीत्यष्टभिरन्तराधिकारैः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रथ-ममहाधिकारे समुदायपातनिका । तत्राष्टान्तराधिकारेषु मध्ये प्रथमतः सप्तगाथाभिः समयशब्दा-र्थपीठिका कथ्यते–तासु सप्तगाथासु मध्ये गाथाद्वयेनेष्टाधिकृताभिमतदेवतानमस्कारो मङ्गलार्थः । अथ गाथात्रयेण पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं, तदनन्तरं एकगाथया कालसहितपञ्चास्तिका-यानां द्रव्यसंज्ञा, पुनरेकगाथया संकरव्यतिकरदोषपरिहारमिति समयशब्दार्थपीठिकायां स्थलत्रयेण समुदायपातनिका ॥

अथ गाथापूर्वार्द्धेन शब्दज्ञानार्थरूपेण त्रिधाभिधेयतां समयशब्दस्य, उत्तरार्धेन तु लोकालोक-

कर कहा जाता है । अर्थसमय वह है जो भगवत्प्रणीत है ॥ २ ॥ आगे शब्द, ज्ञान, अर्थ

१ अत्र समयव्याख्यायां समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिविधव्याख्यानं विक्रियते, पञ्चानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत् । तेषां पञ्चानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशय–विमोह–विभ्रम–रहितत्वेन सम्यग् यो बोधनिर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थ-परिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् । तेन द्रव्यागमरूपसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेद्यः पञ्चानामस्तिकायानां समूहः समय इति हि मन्यते । तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्धयर्थं समयोऽत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः. २ त्रिषु समयेषु ।

क्यसन्निवेशविशिष्टः पाठो वादः, शब्दसमयः[1] शब्दागम इति यावत् । तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति सम्यगवायः[2] परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत् । तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छिन्नानां[3] वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः सर्वपदार्थसार्थ इति यावत् । तदत्र[4] ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसंबंधेनार्थसमयोऽभिधातुमभिप्रेतः[5] । अथ तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पनात् । स एव पञ्चास्तिकायसमयो यावांस्ता-

विभागं च प्रतिपादयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति, एवमग्रेपि वक्ष्यमाणं विवक्षिताविवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्य, अथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवतीत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणमनेन क्रमेण यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्;—समवाओ पंचण्हं पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायः समूहः समयमिणं समयोयमिति जिणवरेहिं पण्णत्तं जिनवरैः प्रज्ञप्तः कथितः सो चेव हवदि लोगो स चैव पंचानां मेलापकः समूहो भवति। स कः । लोकः । तत्तो ततस्तस्मात्पंचानां जीवाद्यर्थानां समवायाद्बहिर्भूतः अमओ अमितोऽप्रमाणः अथवा 'अमओ' अकृत्रिमो न केनापि कृतः, न केवलं लोकः अलोयक्खं अलोक इत्याख्या संज्ञा यस्य स भवत्यलोकाख्यः । अलोय खं इति भिन्नपदपाठान्तरे च अलोक इति कोऽर्थः ? खं शुद्धाकाशमिति संग्रहवाक्यं । तद्यथा-समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिधा व्याख्यानं विक्रीयते,—पंचानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्,तेषामेव पंचानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सम्यगवायो बोधो निर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत् तेन द्रव्यागमरूपशब्दसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेदः पंचानामस्तिकायानां समूहोऽर्थसमय इति

इन तीनों भेदोंमेंसे समयशब्दका अर्थ और लोकालोकका भेद कहते हैं;-[पंचानां] पंचास्तिकायका जो [समवायः] समूह सो [समयः] समय है [इति] इस प्रकार [जिनोत्तमैः] सर्वज्ञवीतरागदेव करके [प्रज्ञप्तं] कहा गया है, अर्थात् समय शब्द तीन प्रकार है:-शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय । इन तीनों भेदोंमेंसे जो इन पंचास्तिकायकी रागद्वेषरहित यथार्थ अक्षर, पद वाक्यकी रचना सो द्रव्यश्रुतरूप 'शब्दसमय' है; और उस ही शब्दश्रुतका मिथ्यात्वभावके नष्ट होनेसे जो यथार्थ ज्ञान होना सो भावश्रुतरूप 'ज्ञानसमय' है; और जो सम्यग्ज्ञानके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं, उनका नाम 'अर्थसमय' कहा जाता है. [स एव च] वह ही अर्थसमय पंचास्तिकायरूप सबका सब [लोकः भवति] लोक नामसे कहा जाता है. [ततः] तिस लोकसे भिन्न [अमितः] मर्यादारहित अनन्त [खं] आकाश है सो [अलोकः] अलोक है । भावार्थ—अर्थसमय लोक अलोकके भेदसे दो प्रकार हैं। जहां पंचास्तिकायका समूह

१ द्रव्यरूपशब्दसमयः. २ भावागमसम्यग्ज्ञानम्. ३ ज्ञातानाम्. ४ अत्र ग्रंथे त्रिषु मध्ये वा. ५ वांछितः प्रारब्धः ।

वाँल्लोकस्ततः परममितोऽनन्तो ह्यलोकः, स तु नाभावमात्रं किं तु तत्समवायातिरिक्तप-
रिमाणमनन्तक्षेत्रं खमाकाशमिति ॥ ३ ॥

अत्र पञ्चास्तिकायानां विशेषसंज्ञा सामान्यविशेषास्तित्वं कायत्वं[3] चोक्तं;—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आयासं ।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥४॥

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ तथैव आकाशम् ।
अस्तित्वे च नियता अनन्यमया अणुमहान्तः ॥४॥

तत्र जीवाः[4] पुद्गलाः[5] धर्माधर्मौ[6][7] आकाशमिति[8] । तेषां[9] विशेषसंज्ञा अन्वर्थाः[10] प्रत्येयाः ।

भण्यते । तत्र शब्दसमयाधारेण ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमर्थसमयोत्र व्याख्यातुं प्रारब्धः । स चैवार्थ-
समयो लोको भण्यते । कथमितिचेत् । यद्दृश्यमानं किमपि पंचेन्द्रियविषययोग्यं स पुद्गलास्ति-
कायो भण्यते । यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते । तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो
धर्मः, स्थितिहेतुलक्षणोऽधर्मः, अवगाहनलक्षणमाकाशं, वर्तनालक्षणः कालश्च, यावति क्षेत्रे स
लोकः । तथाचोक्तं-लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः तस्माद्बहिर्भूतमनन्तशुद्धा-
काशमलोक इति सूत्रार्थः ॥३॥ अथ पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञाः सामान्यविशेषास्तित्वकायत्वं
च प्रतिपादयति;-जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मं तहेव आयासं जीवपुद्गलधर्माधर्मा-
काशानीति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अन्वर्था ज्ञातव्याः । अत्थित्तम्हि य णियदा अस्तित्वे

है वह तो लोक है, और जहाँ अकेला आकाश ही है उसका नाम अलोक है । यहाँ
कोई प्रश्न करे कि, षड्द्रव्यात्मक लोक कहा गया है सो यहाँ पंचास्तिकायकी
लोक संज्ञा क्यों कही ? तिसका समाधानः—यहां (इस ग्रन्थमें) मुख्यतासे पंचा-
स्तिकायका कथन है, कालद्रव्यका कथन गौण है, इस कारण लोकसंज्ञा पंचास्तिकायकी
ही कही है । कालका कथन नहीं किया है उसमें मुख्य गौणका भेद है । षड्द्रव्यात्मक
लोक यह भी कथन प्रमाण है, परन्तु यहांपर विवक्षा नहीं है ॥ ३ ॥ आगे पंचा-
स्तिकायके विशेष नाम और सामान्य विशेष अस्तित्व और कायको कहते हैं;—
[जीवाः] अनन्त जीवद्रव्य, [पुद्गलकायाः] अनन्त पुद्गलद्रव्य, [धर्मा-
धर्मौ] एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, [तथैव] तैसे ही [आकाशं] एक
आकाशद्रव्य, इन द्रव्योंके विशेष नाम सार्थक पंचास्तिकाय जानना. [अस्तित्वे च]
और ये पंचास्तिकाय अपने सामान्य विशेष अस्तित्वमें [नियताः] निश्चित हैं, और

---

१ लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः. २ लोकात्तस्मात् बहिर्भूतमनन्तं शुद्धाकाशमलोकः. ३ कायाः काया इव काया बहुप्रदेशोपचयत्वात् शरीरवत्वं प्रतिपादितं. ४ यत्किमपि चिद्रूपं स जीवास्तिकायो भण्यते. ५ यद्दृश्यमानं किमपि पञ्चेन्द्रिययोग्यं स पुद्गलास्तिकायो भण्यते. ६ तयोर्जीवपुद्गलयोर्गतिहेतुलक्षणो धर्मः. ७ स्थितिहेतुलक्षणश्चाधर्मः. ८ अवगाहनलक्षणं. ९ अस्तिकायानां पञ्चानां. १० यथार्थाः ।

सामान्यविशेषास्तित्वञ्च तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां[1] नियतत्वाद्व्यव[2]स्थितत्वादवसेयम्[3] । अस्तित्वे नियतानामपि न तेषामन्यमयत्वम्[4][5] । यतस्ते सर्वदैवानन्यमया[6] आत्मनिर्वृत्ताः[7][8] । अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियतत्वं नयप्रयोगात्[9] । द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः[10] पर्यायार्थिकश्च[11] । तत्र[12] न खल्वेकनयायत्ताऽऽदेशना[13] किन्तु तदुभयायत्ता । ततः पर्यायार्थादेशादस्तित्वे स्वतः कथंचिद्भिन्नेऽपि व्यवस्थिताः[14] द्रव्यार्थादेशात्स्वयमेव सन्तः[15] सतोऽ[16]नन्यमया[17] भवन्तीति । कायत्वमपि तेषामणुमहत्वात् । अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्त्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशास्तैः[18] महान्तोऽणुमहान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वं[19] । अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथावि-

---

सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः । तर्हि सत्तायाः सकाशात्कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति । नैवं । अणण्णमइया अनन्यमया अपृथग्भूताः यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः स्तम्भे सार इत्यनेन व्याख्यानेनाधाराधेयभावेप्यविनास्तित्वं भणितं भवति । इदानीं कायत्वं चोच्यते अणुमहंता अणुमहान्तः अणुना परिच्छिन्नत्वादणुशब्देनात्र प्रदेशा गृह्यन्ते, अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः द्व्यणुकस्कन्दापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्तोऽणुमहान्तः इति कायत्वमुक्तं । एकप्रदेशाणोः

[अनन्यमयाः] अपनी सत्ता से भिन्न नहीं हैं । अर्थात्-जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है सो सत्ता है, और जो सत्ता है सो ही अस्तित्व कहा जाता है । वह अस्तित्व सामान्य-विशेषात्मक है । ये पंचास्तिकाय अपने अपने अस्तित्वमें हैं । अस्तित्व है सो अभेदरूप है । ऐसा नहीं है जैसे कि किसी बर्तन में कोई वस्तु हो, किन्तु जैसे घट घटरूप होता है वा अग्नि उष्णता एक है । जिनेन्द्र भगवान्ने दो नय बतलाये हैं:—एक द्रव्यार्थिकनय, और दूसरा पर्यायार्थिकनय है । इन दो नयों के आश्रय ही कथन है । यदि इनमेंसे एक नय न हो तो तत्त्व कहे नहीं जायँ, इस कारण अस्तित्व गुण होनेके कारण द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यमें अभेद है, पर्यायार्थिकनयसे भेद है. जैसे कि गुण गुणी में होता है । इस कारण अस्तित्वविषै तो ये पंचास्तिकाय वस्तु से अभिन्न ही हैं । फिर पंचास्तिकाय कैसे हैं कि, [अणुमहान्तः] निर्विभाग मूर्तीक अमूर्तीक प्रदेशोंकर बड़े हैं, अनेक

---

१ अस्तित्वे सामान्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः तर्हि सत्तायाः सकाशात् कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति. २ निश्चितत्वात्. ३ विशेषरहितं ज्ञातव्यं. ४ अविनश्वराणाम्. ५ तेषां पञ्चास्तिकायानां ६ पृथग्वत्त्वम्. ७ अप्रथग्भूताः । यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः । अनेन व्याख्यानेन आधाराधेयभावेऽप्यभिन्नास्तित्वम्. ३२. स्वतः निष्पन्नाः ८ नियतत्वं निश्चलत्वम्. ९ द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्ये पर्याये वा वस्तुताध्यवसायो नय इति यावत् । यद्वा स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः. १० तत्र पर्यायाभावात् द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः. ११ द्रव्याभावात् पर्याय एवार्थप्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः. १२ द्वयोर्नययोर्मध्ये. १३ सर्वज्ञानानुपदेशः. १४ तिष्ठमानाः पञ्चास्तिकायाः. १५ विद्यमानाः भवन्तः. १६ अस्तित्वतः. १७ अपृथग्भूताः १८ निर्विभागैरणुभिः. १९ अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः अणुमहान्तः द्व्यणुकस्कन्धापेक्षया द्वाभ्यामणुभ्यां महान्त इति कायत्वमुक्तं । एकप्रदेशाणोः कथं कायत्वमिति चेत् स्कन्धानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति ।

र्थत्वम् । अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि त[1]त्सिद्धिः । व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्त्वस्याभावात्काला[2]-णूनामस्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम् । अतएव ते[3]षामस्तिकायप्रकरणे सतामप्यनुपादानमिति ॥४॥

[5]अत्र पञ्चास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः—

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं ॥५॥

येषामस्तिस्वभावः गुणैः सह पर्यायैर्विविधैः ।
ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम् ॥५॥

अस्ति ह्यस्तिकायानां [6]गुणैः [7]पर्यायैश्च विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽ[8]नन्यत्वम् ।

कथं कायत्वमिति चेत् । स्कन्दानां कारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेरभावादुपचारेणापि कायत्वं नास्ति । शक्त्यभावोपि कस्मात् ? अमूर्तत्वादिति पंचास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अस्तित्वं कायत्वं चोक्तं । अत्र गाथासूत्रेऽनन्तज्ञानादिरूपः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ४ ॥ अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं कायत्वं च केन प्रकारेण संभवतीति प्रज्ञापयति;—जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहिं विविहेहिं ते होंति अत्थि येषां पंचास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते ।

प्रदेशी हैं । भावार्थ—ये जो पहिले पांच द्रव्य अस्तित्वरूप कहे वे कायवन्त भी हैं, क्योंकि ये सबही अनेक प्रदेशी हैं । एक जीवद्रव्य, धर्म, और अधर्मद्रव्य ये तीनों ही असंख्यात प्रदेशी हैं । आकाश अनन्त प्रदेशी है । बहुप्रदेशी को काय कहा गया है । इस कारण ये ४ द्रव्य तो अखण्ड कायवंत हैं । पुद्गलद्रव्य यद्यपि परमाणुरूप एकप्रदेशी है, तथापि मिलन शक्ति है, इस कारण काय कहा जाता है । द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अनंत परमाणुस्कंध पर्यंत व्यक्तिरूप पुद्गल कायवंत कहा जाता है, इस कारण पुद्गलसहित ये पांचों ही अस्तिकाय जानना । कालद्रव्य (कालाणु) एकप्रदेशी है, शक्ति-व्यक्तिकी अपेक्षासे कालाणुओंमें मिलन शक्ति नहीं है, इस कारण कालद्रव्य कायवंत नहीं है ॥ ४ ॥ आगे पंचास्तिकायके अस्तित्वका स्वरूप दिखाते हैं, और काय किस-प्रकारसे है सो भी दिखाया जाता है;— [येषां] जिन पंचास्तिकायोंका [विविधैः] नाना प्रकारके [गुणैः] सहभूतगुण और [पर्यायैः] व्यतिरेकरूप अनेक पर्यायों-कर [सह] सहित [अस्तिस्वभावः] अस्तित्वस्वभाव है [ते] वे ही पंचा-

---

१ कायत्वसिद्धिः. २ कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूतायाः स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सदभावादुपचारेण कायत्वं नास्ति. ३ कालाणूनां. ४ विद्यमानानाम्. ५ अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं केन प्रकारेण संभवतीति प्रतिज्ञापयति. ६ सहभुवो गुणाः. ७ व्यतिरेकिणः पर्यायैः. ८ अभिन्नत्व.

वस्तुनो[1] विशेषा[2] हि व्यतिरेकिणः पर्य्याया गुणास्तु त एवान्वयिनः[3] । तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्यं बिभ्राणस्यैकस्याऽपि वस्तुनः समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यत एव । गुणपर्यायैः सह सर्वथान्यत्वे[4] त्वन्यो विनश्यत्यन्यः प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्ब्यत इति सर्वं विप्लवते[5] । ततः साध्वस्तित्वसंभवप्रकारकथनं । कायत्वसंभवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते । अवयविनो[6] हि जीवपुद्गलधर्म्माऽधर्माऽऽकाश-पदार्थास्तेषामवयवा[7] अपि प्रदेशाख्याः परस्परव्यतिरेकित्वात्पर्याया उच्यन्ते । तेषां[9] तैः[10]

स कः । स्वभावः सत्ता अस्तित्वं तन्मयत्वं स्वरूपमिति यावत् । कैः सह । गुणपर्यायैः । कथंभूतैः । विचित्रैर्नानाप्रकारैस्ते अस्ति भवन्ति इत्यनेन पंचानामस्तित्वमुक्तमिति । वार्तिकं तथा कथ्यते—अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः, अथवा सहभुवो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायास्ते च द्रव्यात्सकाशात् संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन भिन्नाः प्रदेशरूपेण सत्तारूपेण वा चाभिन्नाः । पुनरपि कथंभूताः । विचित्रा नानाप्रकाराः । केन कृत्वा । स्वेन स्वभावविभावरूपेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण वा । जीवस्य तावत्कथ्यन्ते । केवलज्ञानादयः स्वभावगुणा मतिज्ञानादयो विभावगुणाः सिद्धरूपः स्वभावपर्यायः नरनारकादिरूपा विभावपर्यायाः । पुद्गलस्य कथ्यन्ते । शुद्धपरमाणौ वर्णादयः स्वभावगुणाः द्व्यणुकादिस्कन्दे वर्णादयो विभावगुणाः शुद्धपरमाणुरूपेणाव-

---

स्तिकाय [अस्तिकायाः] अस्तिकायवाले [भवन्ति] हैं । कैसे हैं वे पंचास्तिकाय ? [यैः] जिनके द्वारा [त्रैलोक्यं] तीन लोक [निष्पन्नं] उत्पन्न हुये हैं । [भावार्थ]—इन पंचास्तिकायों को नाना प्रकारके गुणपर्यायके स्वरूपसे भेद नहीं है, एकता है । पदार्थोंमें अनेक अवस्थारूप जो परिणमन है, वे पर्यायें कहलातीं हैं । और जो पदार्थमें सदा अविनाशी साथ रहते हैं, वे गुण कहे जाते हैं । इस कारण एक वस्तु एक पर्यायकर उपजती है, और एक पर्यायकर नष्ट होती है और गुणोंकर ध्रौव्य है । यह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वस्तु का अस्तित्वस्वरूप जानना । और जो गुणपर्यायोंसे सर्वथा प्रकार वस्तुकी पृथकूता ही दिखाई जाय तो अन्य ही विनशै, और अन्य ही उपजै और अन्य ही ध्रुव रहै । इस प्रकार होनेसे वस्तुका अभाव हो जाता है । इस कारण कथंचित् साधनिका मात्र भेद है. स्वरूपसे तो अभेद ही है । इस प्रकार पंचास्तिकायका अस्तित्व है । इन पाँचों द्रव्योंको कायत्व कैसे है सो कहते हैं—कि, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश, ये पांच पदार्थ अंशरूप अनेक प्रदेशोंको लिए हुये

---

१ वस्तुनः द्रव्यस्य. २ केवलज्ञानादयो गुणाः. ३ एकस्यापि वस्तुनो भूतभाविभवत्पर्यायभेदेषु वर्तमानस्य यदनुगतप्रत्ययोत्पादकं सोऽन्वयः, स एषामिति ते अन्वयिनः. ४ भिन्नत्वे. ५ विनश्यति. ६ प्रदेशाख्या अवयवाः विद्यन्ते येषां ते अवयविनः. ७ तेषां जीवादिपदार्थानां त्रिभुवनाकारपरिणतानां । सावयवत्वात् सः प्रदेशाख्यः. ८ अन्योन्यभिन्नत्वात् भिन्नत्वात् पृथग्भावाद्वा. ९ अस्तिकायानां. १० तैः पर्यायैः ।

सहानन्यत्वे[1] कायत्वसिद्धिरुपपत्तिमती[2] । निरवयवस्यापि परमाणोः सावयवत्वशक्तिसद्भावात् कायत्वसिद्धिरत एवानपवादा[3] । न चैवं तदा शङ्क्यम् पुद्गलादन्येषाममूर्तत्वादविभाज्यानां[4] सावयवत्वकल्पनमन्याय्यम्[5] । दृश्यत एवाविभाज्येऽपि[6] विहायसीदं घटाकाशमिदमघटाकाशमिति विभागकल्पनम् । यदि तत्र[7] विभागो न कल्पेत तदा यदेव घटाकाशं तदेवाघटाकाशं स्यात् । न च तदिष्टं[8] । ततः कालाणुभ्योऽन्यत्र[9] सर्वेषां कायत्वाख्यं सावयवत्वमवसेयं । त्रैलोक्यरूपेण निष्पन्नत्वमपि तेषामस्तिकायत्वसाधनपरमुपन्यस्तम् । तथाच—त्रयाणामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकानामुत्पादव्ययध्रौव्यवन्तस्तदं[10] विशेषात्मका भावा भव-

---

स्थानं स्वभावद्रव्यपर्यायः वर्णादिभ्यो वर्णान्तरादिपरिणमनं स्वभावगुणपर्यायः द्व्यणुकादिस्कन्दरूपेण परिणमनं विभावद्रव्यपर्यायाः तेष्वेव द्व्यणुकादिस्कन्देषु वर्णान्तरादिपरिणमनं विभावगुणपर्यायाः । एते जीवपुद्गलयोर्विशेषगुणाः कथिताः । सामान्यगुणाः पुनरस्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयः सर्वद्रव्यसाधारणाः । धर्मादीनां विशेषगुणपर्यायाः अग्रे यथास्थानेषु कथ्यन्ते । इत्थंभूतगुणपर्यायैः सह येषां पञ्चास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते तेस्ति भवन्तीति । इदानीं कायत्वं चोच्यते । काया कायाः इव काया वहुप्रदेशप्रचयत्वाच्छरीरवत् । किंकृतं तैः पंचास्तिकायैः । णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं निष्पन्नं जातमुत्पन्नं यैः पंचास्तिकायैः । किं निष्पन्नं । त्रैलोक्यं । अनेनापि गाथाचतुर्थपादेनास्तित्वं कायत्वं चोक्तं । कथमितिचेत् । त्रैलोक्ये ये केचनोत्पादव्ययध्रौव्यवन्तः पदार्थास्ते

हैं । वे प्रदेश परस्पर अंश कल्पनाकी अपेक्षा जुदे जुदे हैं, इस कारण इनका भी नाम पर्याय है । अर्थात् उन पाँचों द्रव्योंकी उन प्रदेशोंसे स्वरूपमें एकता है, भेद नहीं है अखंड हैं, इस कारण इन पांचों द्रव्योंको कायवंत कहा गया है । यहाँ कोई प्रश्न करै कि, पुद्गल परमाणु तो अप्रदेश हैं, निरंश हैं, इनको कायत्व कैसे होवे ? उसका उत्तर यह है कि—पुद्गल परमाणुओंमें मिलनशक्ति है । स्कंधरूप होते हैं इस कारण सकाय हैं । इस जगह कोई यह आशंका मत करो 'कि पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, इसमें तो अंशकल्पना वनती है; और जो जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये ४ द्रव्य हैं सो अमूर्तीक हैं, और अखंड हैं, इनमें अंशकथन नहीं वनता, पुद्गल में ही वनता है । मूर्तीक पदार्थको कायकी सिद्धि होती है, इस कारण इन चारोंमें अंशकल्पना मत कहो । क्योंकि अमूर्त्त अखंड वस्तुमें भी प्रत्यक्ष अंशकथन देखनेमें आता है; यह घटाकाश है, यह घटाकाश नहीं है, इस प्रकार आकाशमें भी अंशकथन होता है । इस कारण कालद्रव्यके विना अन्य पांच द्रव्योंको अंशकथन और कायत्व कथन किया गया है । इन पंचास्तिकायोंसे ही तीन लोककी रचना हुई है । इन ही पाँचों द्रव्योंके उत्पादव्ययध्रौव्यरूप

---

१ अभिन्नत्वे. २ युक्तिमती. ३ अपवादरहिता निश्चयसिद्धिरित्यर्थः. ४ विभागरहितानां अखण्डानां. ५ अयोग्यमिति शङ्का न कर्तव्या. ६ विभागरहिते. ७ आकाशे. ८ इष्ट मान्यं. ९ कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते इति अङ्गीकर्तव्यम्. १० तेषामूर्ध्वाधोमध्यलोकानां ।

न्तस्तेषां मूलपदार्थानां गुणपर्ययोगपूर्वकमस्तित्वं साधयन्ति । अनुमीयते च धर्म्माधर्म्माकाशानामूर्ध्वाऽधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणमनात्कायत्वाख्यं सावयवत्वं । जीवानामपि[1] प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपे परिणमनत्वाल्लोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेस्सदा सन्निहितशक्तेस्तदनुमीयत एव । पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपपरिणतमहास्कन्धत्वप्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्वेति ॥५॥

अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम् —

ते चेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदा णिच्चा ।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥६॥

ते चैवास्तिकायाः त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः ।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्त्तनलिङ्गसंयुक्ताः ॥६॥

द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां[2][3] गुणपर्यायाणामनन्यतयाऽऽधारभूतानि भवन्ति । ततो वृत्तवर्त-

---

उत्पादव्ययध्रौव्यरूपमस्तित्वं कथयन्ति । तदपि कथमिति चेत् । उत्पादव्ययध्रौव्यरूपं सदिति वचनात् ऊर्ध्वाधोमध्यभागरूपेण जीवपुद्गलादीनां त्रिभुवनाकारपरिणतानां सावयवत्वात्सांशकत्वात् सप्रदेशत्वात् कालद्रव्यं विहाय कायत्वं च विद्यते न केवलं पूर्वोक्तप्रकारेण, अनेन च प्रकारेणास्तित्वं कायत्वं च ज्ञातव्यं । तत्र शुद्धजीवास्तिकायस्य यानन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धपर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥५॥ एवं गाथात्रयपर्यन्तं पंचास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं द्वितीयस्थलं गतं । अथ पंचास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यसंज्ञां कथयति;—ते चेव अत्थिकाया तिक्कालियभावपरिणदा णिच्चा ते चैव पूर्वोक्ताः पंचास्तिकायाः यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन त्रैकालिकभावपरिणतास्त्रिकालविषयपर्यायपरिणताः संतः क्षणिका अनित्या विनश्वरा भवन्ति तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्या एव । एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां नित्यानित्यात्मकाः संतः गच्छंति दवियभावं द्रव्यभावं गच्छन्ति द्रव्यसंज्ञां लभन्ते । पुनरपि कथंभूताः

भाव त्रैलोक्यकी रचनारूप हैं । धर्म, अधर्म, आकाशका परिणमन; ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक, इस प्रकार तीन भेद लिये हुए है । इस कारण इन तीनों द्रव्योंमें कायकथन, अंशकथन है; और जीवद्रव्य भी दण्ड कपाट प्रतर लोकपूर्ण अवस्थाओंमें लोकप्रमाण होता है. इस कारण जीवमें भी सकाय व अंशकथन है । पुद्गलद्रव्यमें मिलनशक्ति है, इस कारण व्यक्तरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक इन तीनोंलोकरूप परिणमता है. इस कारण अंशकथन पुद्गलमें भी सिद्ध होता है । इन पंचास्तिकायोंके द्वारा लोकको सिद्धि इसीप्रकार है ॥ ५ ॥ आगे पंचास्तिकाय और

---

१ शुद्धजीवास्तिकायस्य या अनन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धिपर्यायसत्ता च शुद्धा संख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति. २ द्रव्यस्य सहभुवो गुणाः. ३ द्रव्यस्य क्रमभुवः पर्यायाः ।

मानवर्तिष्यमाणानां भावानां पर्यायाणां स्वरूपेण परिणतत्वादस्तिकायानां परिवर्तनलिङ्गस्य कालस्य चास्ति द्रव्यत्वं । नच तेषां भूतभवद्भविष्यद्भावात्मना परिणममानानामनित्यत्वम् । यतस्ते[1] भूतभवद्भविष्यद्भावावस्थास्वपि प्रतिनियतस्वरूपापरित्यागान्नित्या एव । अत्र[2] कालः पुद्गलादिपरिवर्तनहेतुत्वात्पुद्गलादिपरिवर्तनगम्यमानपर्यायत्वाच्चास्तिकायेष्वन्तर्भावार्थं स[3] परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्त इति ॥६॥

संत: परियट्टणलिंगसंजुत्ता परिवर्तनमेव जीवपुद्गलादिपरिणमनमेवाग्नेधूमवत् कार्यभूतं लिंगं चिह्नं गमकं ज्ञापकं सूचनं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुद्रव्यकालस्तेन संयुक्ताः । ननु कालद्रव्यसंयुक्ता इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ता इति अव्यक्तवचनं किमर्थमिति । नैवं । पंचास्तिकायप्रकरणे कालस्य मुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यलिङ्गेन ज्ञायते यतः कारणात् तेनैव कारणेन परिवर्तनलिङ्ग इत्युक्तं । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहादिसंज्ञादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पशून्यशुद्धजीवास्तिकायश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजापूर्वपरमानन्दरूपेण स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं भरितावस्थं शुद्धनिश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति

कालको द्रव्यसंज्ञा कहते हैं;—[परिवर्त्तनलिङ्गसंयुक्ताः] पुद्गलादि द्रव्योंका परिणमन सो ही है लिङ्ग (चिह्न) जिसका ऐसा जो काल, तिसकर संयुक्त [ते एव च] वे ही [अस्तिकायाः] पंचास्तिकाय [द्रव्यभावं] द्रव्यके स्वरूपको [गच्छन्ति] प्राप्त होते हैं. अर्थात् पुद्गलादि द्रव्योंके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व प्रकट होता है । पुद्गल परमाणु एक प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें जब जाता है, तब उसका नाम सूक्ष्मकालकी पर्याय अविभागी होता है । समय कालपर्याय है । उसी समयपर्याय के द्वारा कालद्रव्य जाना गया है । इस कारण पुद्गलादिकके परिणमनसे कालद्रव्यका अस्तित्व देखनेमें आता है । कालकी पर्यायको जाननेके लिये बहिरंग निमित्त पुद्गलका परिणाम है । इसी प्रकार कालद्रव्यसहित उक्त पंचास्तिकाय ही षड्द्रव्य कहलाते हैं । जो अपने गुण पर्यायोंकर परिणमा है, परिणमता है और परिणमैगा उसका नाम द्रव्य है । ये षड्द्रव्य कैसे हैं कि,—[त्रैकालिकभावपरिणताः] अतीत, अनागत, वर्तमान काल संबंधी जो भाव कहिये गुणपर्याय हैं उनसे परिणये हैं. फिर कैसे हैं ये षड्द्रव्य ? [नित्याः] नित्य अविनाशीरूप हैं । भावार्थ—यद्यपि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे त्रिकालपरिणामकर विनाशीक हैं, परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा टंकोत्कीर्णरूप

---

१ पञ्चास्तिकायाः. २ अत्र पञ्चास्तिकायप्रकरणे. ३ परिवर्तनमेव पुद्गलादिपरिणमनमेव अग्नेर्धूमवत्कार्यभूतं, लिङ्गं चिन्हं गमकं सूचकं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुद्रव्यरूपो द्रव्यकालस्तेन संयुक्तः । ननु कालद्रव्यसंयुक्त इति वक्तव्यं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्त इत्यवक्तव्यवचनं किमर्थमिति । नैवं । पञ्चास्तिकायप्रकरणे कालमुख्यता नास्तीति पदार्थानां नवजीर्णपरिणतिरूपेण कार्यलिङ्गेन ज्ञायते ।

३ पञ्चा०

अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियत[1]स्वरूपादप्रच्यवनमुक्तम्;—

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य ।
मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति ॥७॥

अत एव ते[2]षां परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम् । अत एव च न तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीवकर्म्मणोर्व्यवहारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति ॥७॥

भावार्थः ॥६॥ इति कालसहितपंचास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता । अथ षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरे स्वकीयस्वकीयस्वरूपादच्यवनमुपदिशति;—**अण्णोण्णं पविसंता** अन्यक्षेत्रात्क्षेत्रान्तरं प्रति परस्परसंबंधार्थमागच्छन्तः **दिंता ओगासमण्णमण्णस्स** आगतानां परस्परमवकाशदानं ददतः **मेलंतावि य णिच्चं** अवकाशदानानन्तरं परस्परमेलापकेन स्वकीयावस्थानकालपर्यन्तं युगपत्प्राप्तिरूपः संकरः परस्परविषयगमकरूपव्यतिकरः ताभ्यां विना नित्यं सर्वकालं तिष्ठन्तोपि **सगसब्भावं ण विजहंति** स्वस्वरूपं न त्यजन्तीति । अथवा अन्योन्यं प्रविशन्तः सक्रियवन्तः जीवपुद्गलापेक्षया, आगतानामवकाशं ददतः इति सक्रियनिःक्रियद्रव्यमेलापकापेक्षया, नित्यं सर्वकालं मेलापकेन तिष्ठन्त इति धर्माधर्माकाशकालनिःक्रियद्रव्यापेक्षया, इति षड्द्रव्यमध्ये ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतकृष्णनीलकापोताशुभलेश्यादिसमस्तपरद्रव्यालम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पकल्लोलमालारहितं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानन्दरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावस्वभावेन स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं सालम्बं आधारं भरितावस्थं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति पाठः । निश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गतं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः । यत्पुनरन्येषामेकान्तवादिनां रागद्वेषमोहसहितानामपि वायुधारणादिसर्वशून्यध्यानव्याख्यानमाकाशध्यानं वा तत्सर्वं निरर्थकमेव ।

(टांकीसे उकेरे हुएके समान जैसेका तैसा) सदा अविनाशी हैं ॥६॥ आगे यद्यपि षड्द्रव्य परस्पर अत्यन्त मिले हुये हैं, तथापि अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं ऐसा कथन करते हैं;—[अन्योऽन्यं प्रविशन्ति] छहों द्रव्य परस्पर सम्बन्ध करते हैं, अर्थात् एक दूसरेसे मिलते हैं, और [अन्योऽन्यस्य] परस्पर एक दूसरेको [अवकाशं] स्थानदान [ददन्ति] देते हैं. कोई भी द्रव्य किसी द्रव्यको बाधा नहीं देता [अपि च] और [नित्यं] सदाकाल [मिलन्ति] मिलते रहते हैं. अर्थात् परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप मिलते हैं, तथापि [स्वकं] आत्मीक शक्तिरूप [स्वभावं] परिणामोंको [न विजहन्ति] नहीं छोड़ते हैं । भावार्थ—यद्यपि छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं, तथापि अपनी अपनी सत्ताको कोई भी द्रव्य छोड़ता नहीं है ।

---

१ स्वकीयस्वकीयस्वरूपात्. २ तेषां द्रव्याणां ।

अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम् ;—

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ॥८॥

सत्ता सर्वपदस्था सविश्वरूपा अनन्तपर्याया ।
भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका सप्रतिपक्षा भवत्येका ॥८॥

अस्तित्वं हि सत्ता नाम सतो भावः सत्त्वं न सर्वथा नित्यतया सर्वथा

संकल्पविकल्पयोर्भेदः कथ्यते—बहिर्द्रव्ये चेतनाचेतनमिश्रे ममेदमित्यादिपरिणामः "संकल्पः" अभ्यन्तरे सुख्यहं दुःख्यहं इत्यादिहर्षविषादपरिणामो "विकल्प" इति संकल्पविकल्पलक्षणं ज्ञातव्यं । वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ वीतरागविशेषणमनर्थकमित्युक्ते सति परिहारमाह । आर्तरौद्ररूपस्य विषयकषायनिमित्तस्याशुभध्यानस्य वर्जनार्थत्वात् हेतुहेतुमद्भावव्याख्यानत्वाद्वा कर्मधारयसमासत्वाद्वा भावनाग्रन्थे पुनरुक्तदोषाभावत्वाद्वा स्वरूपस्यविशेषणत्वाद्वा दृढीकरणार्थत्वाद्वा । एवं वीतरागनिर्विकल्पसमाधिव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं । वीतरागसर्वज्ञनिर्दोषिपरमात्मशब्दादिष्वप्यनेनैव प्रकारेण पूर्वपक्षे कृते यथासंभवं परिहारो दातव्यः इति । यत एव कारणाद्वीतरागस्तत एव कारणान्निर्विकल्पसमाधिः इति हेतुहेतुमद्भावशब्दस्यार्थः ॥७॥ संकरव्यतिकरदोषपरिहारेण गाथा गता एवं स्वतन्त्रगाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतं । इति प्रथममहाधिकारे सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण समयशब्दार्थपीठिकाभिधानः प्रथमोन्तराधिकारः समाप्तः ॥ "अथ सत्ता सव्वपयत्था" इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथाभिर्जीवपुद्गलादिद्रव्यविवक्षारहितत्वेन सामान्यद्रव्यपीठिका कथ्यते । तत्र चतुर्दशगाथासु मध्ये सामान्यविशेषसत्तालक्षणकथनरूपेण "सत्ता सव्वपयत्था" इत्यादि प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोरभेदो द्रव्यशब्दव्युत्पत्तिकथनमुख्यत्वेन च "दवियदि" इत्यादि द्वितीयस्थले सूत्रमेकं, अथ द्रव्यस्य लक्षणत्रयसूचनरूपेण "दव्वं सल्लक्खणियं"इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रमेकं, तदनन्तरं लक्षणद्वयप्रतिपादनरूपेण "उप्पत्ती य विणासो" इत्यादि सूत्रमेकं । अथ तृतीयलक्षणकथनेन "पज्जयरहियं" इत्यादि गाथाद्वयं । एवं समुदायेन गाथात्रयेण द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकपरस्परसापेक्षनयद्वयसमर्थनमुख्यतया चतुर्थस्थलं । अथ पंचमस्थले सर्वैकान्तमतनिराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गव्याख्यानमुख्यत्वेन "सियअत्थि" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकसमुदायेन प्रथमसप्तकं गतं । अथ द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धमतैकान्तनिराकरणार्थं द्रव्यस्थापनमुख्यत्वेन "भावस्स णत्थि णासो" इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं तस्या विवरणार्थं गाथाचतुष्टयं । तत्र गाथाचतुष्ट-

---

इस कारण ये द्रव्य मिलकर एक नहीं हो जाते. सब अपने अपने स्वभावको लिये पृथक् पृथक् अविनाशी रहते हैं । यद्यपि व्यवहारनयसे बंधकी अपेक्षासे जीव पुद्गल एक हैं, तथापि निश्चयनयकर अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं हैं ॥७॥ आगे सत्ता का स्वरूप कहते हैं;—[सत्ता] अस्तित्वस्वरूप [एका] एक [भवति] है. फिर कैसी है ?

क्षणिकतया वा विद्यमानमात्रं वस्तु। सर्वथा नित्यस्य वस्तुनस्तत्त्वतः[1] क्रमभुवां भावानामभावात्कुतो विकारवत्त्वम्। सर्वथा क्षणिकस्य च तत्त्वतः प्रत्यभिज्ञानाभावात् कुत एकसंतानत्वम्। ततः प्रत्यभिज्ञानहेतुभूतेन केनचित्स्वरूपेण ध्रौव्यमालम्ब्यमानं काभ्यांचित्क्रमप्रवृत्ताभ्यां स्वरूपाभ्यां प्रलीयमानमुपजायमानं चैककालमेव परमार्थतस्त्रितयीमवस्थां बिभ्राणं वस्तु सदवबोध्यम्। अत एव सत्ताप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मिकाऽवबोद्धव्या। भावभाववतोः कथंचिदेकस्वरूपत्वात्। सा च त्रिलक्षणस्य समस्तस्यापि वस्तुविस्तारस्य सादृश्यसूचकत्वादेका। सर्वपदार्थस्थिता च। त्रिलक्षणस्य सदित्यभिधानस्य सदिति प्रत्ययस्य च सर्वपदार्थेषु तन्मूलस्यैवोपलम्भात्। सविश्वरूपा च विश्वस्य समस्तवस्तुविस्तारस्यापि रूपैस्त्रिलक्षणैः स्वभावैः सह वर्तमानत्वात्। अनन्तपर्याया चानन्ताभिर्द्रव्यपर्यायव्यक्तिभिस्त्रिलक्षणाभिः परिगम्यमानत्वात्। एवंभूतापि सा न खलु निरङ्कुशा किं तु सप्रतिपक्षा। प्रतिपक्षो ह्यसत्ता सत्तायाः, अत्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः, अनेकत्वमेकस्याः, एकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः, एकरूपत्वम् सर्वविश्वरूपायाः, एकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाया इति। द्विविधा हि सत्ता महासत्तावान्तरसत्ता च। तत्र सर्व-

यमध्ये तस्यैवाधिकारसूत्रस्य द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानमुख्यत्वेन "भावा जीवादीया" इत्यादि सूत्रमेकं अथ मनुष्यादिपर्यायस्य विनाशोत्पादकत्वेपि ध्रुवत्वेन विनाशो नास्तीति कथनरूपेण "मणुअत्तणेण" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ तस्यैव दृढीकरणार्थं "सो चेव" इत्यादि सूत्रमेकं। अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सदसतोर्विनाशोत्पादौ न स्तः पर्यायार्थिकनयेन पुनर्भवत इति नयद्वयव्याख्यानोपसंहाररूपेण "एवं सदो विणासो" इत्यादि उपसंहारगाथासूत्रमेकं इति द्वितीयस्थले समुदायेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं तृतीयस्थले सिद्धस्य पर्यायार्थिकनयेनासदुत्पादमुख्यतया "णाणावरणादीया" इत्यादि सूत्रमेकं, अथैवं चतुर्थस्थले द्रव्यरूपेण नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवत्वाद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन द्रव्यपीठिकासमाप्त्यर्थं वा "एवं भावं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, इति समुदायेन चतुर्भिःस्थलैर्द्वितीयसप्तकं गतं। एवं चतुर्दशगाथाभिर्नवभिरन्तरस्थलैर्द्रव्यपीठिकायां समुदायपातनिका। तद्यथा। अथास्तित्वस्वरूपं निरूपयति, अथवा सत्तामूलानि द्रव्याणीति कृत्वा पूर्वं सत्तास्वरूपं भणित्वा पश्चात् द्रव्यव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति भगवान्;—हवदि भवति। का कर्त्री। सत्ता सत्ता। कथंभूता। सव्वपदत्था सर्वपदार्था। पुनरपि कथंभूता। सविस्सरूवा सविश्वरूपा। पुनरपि किंविशिष्टा। अणंतपज्जाया अनंतपर्याया। पुनरपि किंविशिष्टा। भंगुप्पादधुवत्ता

[सर्वपदस्था] समस्त पदार्थोंमें स्थित है [सविश्वरूपा] नाना प्रकारके स्वरूपोंसे संयुक्त है [अनन्तपर्याया] अनन्त हैं परिणाम जिसमें ऐसी है [भङ्गोत्पादध्रौ-

१ निश्चयात् स्वभावात्. २ पर्यायाणाम्. ३ पूर्वानुभूतदर्शनेन जायमानं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्. ४ पर्यायाभ्याम्. ५ पर्यायद्रव्ययोः परिणामपरिणामिनोर्वा. ६ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य ७ अर्थस्य तयोराधारभूतस्य तद्गुणस्य. ८ व्यापकत्वात्।

पदार्थसार्थव्यापिनी सादृश्यास्तित्वसूचिका महासत्ता प्रोक्तैव । अन्या तु प्रतिनियमवस्तुवर्तिनी स्वरूपास्तित्वसूचिकाऽवान्तरसत्ता । तत्र महासत्ताऽवान्तरसत्तारूपेणाऽसत्ताऽवान्तरसत्ता च महासत्तारूपेणाऽसत्तेत्यसत्ता सत्तायाः । येन स्वरूपेणोत्पादस्तत्तथोत्पादैकलक्षणमेव येन स्वरूपेणोच्छेदस्तत्तथोच्छेदैकलक्षणमेव येन स्वरूपेण ध्रौव्यं तत्तथा ध्रौव्यैकलक्षणमेव तत उत्पद्यमानोच्छिद्यमानाऽवतिष्ठमानानां वस्तुनः स्वरूपाणां प्रत्येकं त्रैलक्षण्याभावाद्-त्रिलक्षणत्वं त्रिलक्षणायाः । एकस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता नान्यस्य वस्तुनः स्वरूपसत्ता भवतीत्यनेकत्वमेकस्याः । प्रतिनियतपदार्थस्थिताभिरेव सत्ताभिः पदार्थानां प्रतिनियमो भवतीत्येकपदार्थस्थितत्वं सर्वपदार्थस्थितायाः । प्रतिनियतैकरूपाभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतै-

---

भङ्गोत्पादध्रौव्यात्मिका । पुनश्च किं विशिष्टा । एका महासत्तारूपेणैका । एवं पंचविशेषणविशिष्टा सत्ता किं निरंकुशा निःप्रतिपक्षा भविष्यति । नैवं । सप्पडिवक्खा सप्रतिपक्षैवेति वार्तिकं । तथाहि—स्वद्रव्यादिचतुष्टयरूपेण सत्तायाः परद्रव्यादिचतुष्टयरूपेणासत्ता प्रतिपक्षः, सर्वपदार्थस्थितायाः सत्तायाः एकपदार्थस्थिता प्रतिपक्षः, मूर्तो घटः सौवर्णो घटः ताम्रो घट इत्यादिरूपेण सविश्वरूपाया नानारूपाया एकघटरूपा सत्ता प्रतिपक्षः, अथवा विवक्षितैकघटे वर्णाकारादिरूपेण विश्वरूपायाः सत्ताया विवक्षितैकगन्धादिरूपा प्रतिपक्षः, कालत्रयापेक्षयानन्तपर्यायायाः सत्ताया विवक्षितैकपर्यायसत्ता प्रतिपक्षः, उत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण त्रिलक्षणायाः सत्ताया विवक्षितैकस्योत्पादस्य वा व्ययस्य वा ध्रौव्यस्य वा सत्ता प्रतिपक्षः, एकस्या महासत्ताया

व्यात्मिका] उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है [सप्रतिपक्षा] प्रतिपक्षसंयुक्त है । भावार्थ—जो अस्तित्व है सो ही सत्ता है । जो सत्ता लिये है वही वस्तु है । वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है । यदि वस्तु को सर्वथा नित्य ही माना जाय तो सत्ताका नाश हो जाय, क्योंकि नित्य वस्तुमें क्षणवर्ती पर्यायके अभावसे परिणामका अभाव होता है. परिणाम के अभावसे वस्तुका अभाव होता है । जैसे मृत्पिंडादिक पर्यायों के नाश होनेसे मृत्तिकाका नाश होता है । कदाचित् वस्तुको क्षणिक ही माना जाय तो यह वस्तु वही है जो मैंने पहिले देखी थी; इस प्रकारके ज्ञानका नाश होनेसे वस्तुका अभाव हो जायगा. इस कारण यह वस्तु वही है जो मैंने पहिले देखी थी, ऐसे ज्ञान के निमित्त वस्तुको ध्रौव्य (नित्य) मानना योग्य है । जैसे बालक युवा वृद्धावस्थामें पुरुष वही नित्य रहता है, उसी प्रकार अनेक पर्यायोंमें द्रव्य नित्य है । इस कारण वस्तु नित्य अनित्य स्वरूप है, और इसीसे यह बात सिद्ध हुई कि, वस्तु जो है सो उत्पादव्ययध्रौव्य-स्वरूप है पर्यायोंकी अनित्यताकी अपेक्षासे उत्पादव्ययरूप है, और गुणोंकी नित्यता होनेकी अपेक्षा ध्रौव्य है, इस प्रकार तीन अवस्थाको लिये वस्तु सत्तामात्र होती है । सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है । यद्यपि नित्य अनित्यका भेद है, तथापि

---

१ अवान्तरसत्ता. २ एकमेकस्वरूपं प्रति त्रिलक्षणत्वाभावात् ३ निश्चयः ।

करूपत्वं वस्तूनां भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपायाः प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्यायाः । इति सर्वमनवद्यम्

अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष इति शुद्धसंग्रहनयविवक्षायामेका महासत्ता अशुद्धसंग्रहनयविवक्षायां व्यवहारनयविवक्षायां वा सर्वपदार्थसविश्वरूपाद्यवान्तरसत्ता सप्रतिपक्षव्याख्यानं सर्वं नैगमनयापेक्षया ज्ञातव्यं । एवं नैगमसंग्रहव्यवहारनयत्रयेण सत्ताव्याख्यानं योजनीयं, अथवैका महासत्ता शुद्धसंग्रहनयेन, सर्वपदार्थाद्यवान्तरसत्ता व्यवहारनयेनेति नयद्वयव्याख्यानं कर्तव्यं । अत्र शुद्ध-

---

कथंचित्प्रकार सत्ताकी अपेक्षासे एकता है। सत्ता वही है जो नित्यानित्यात्मक है। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक जो है वह सकल विस्तार लिये पदार्थोंमें सामान्य कथनके करनेसे सत्ता एक है समस्त पदार्थोंमें रहती है, क्योंकि 'पदार्थ है' ऐसा जो कथन है और 'पदार्थ है' ऐसी जो जाननेकी प्रतीति है सो उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है। उसीसे सत्ता है। यदि सत्ता नहीं होय तो पदार्थोंका अभाव होजाय, क्योंकि सत्ता मूल है, और जितना कुछ समस्त वस्तुका विस्तार स्वरूप है, सो भी सत्तासे गर्भित है। और अनन्त पर्यायोंके जितने भेद हैं, उतने सब इन उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप भेदोंसे जाने जाते हैं। यह ही सामान्यस्वरूप सत्ता विशेषताकी अपेक्षामे प्रतिपक्ष लिये है। इस कारण सत्ता दो प्रकारकी है, अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता। जो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यरूप त्रिलक्षणसंयुक्त है, और एक है, तथा समस्त पदार्थोंमें रहती है, समस्तरूप है, और अनन्तपर्यायात्मक है सो तो महासत्ता है, और जो इसकी ही प्रतिपक्षिणी है, सो अवान्तरसत्ता है। सो यह महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षण गर्भित नहीं है, अनेक है. एक पदार्थमें रहती है, एक स्वरूप है, एक पर्यायात्मक है। इस प्रकार प्रतिपक्षिणी अवान्तरसत्ता जाननी। इन दोनोंमेंसे जो समस्त पदार्थोंमें सामान्यरूपसे व्याप रही है, वह तो महासत्ता है। और जो दूसरी है सो अपने एक एक पदार्थके स्वरूपमें निश्चिन्त विशेषरूप वर्तै है, इस कारण उसे अवान्तरसत्ता कहते हैं। महासत्ता अवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। अवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है. इसी प्रकार सत्ताकी असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षणसंयुक्त जो सत्ता है, वह ही तीन लक्षणसंयुक्त नहीं है। क्योंकि जिस स्वरूपसे उत्पाद है, उसकर उत्पाद ही है; जिस स्वरूपकर व्यय है, उसकर व्ययही है; जिस स्वरूपकर ध्रौव्यता है, उसकर ध्रौव्य ही है। इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य जो वस्तुके स्वरूप हैं, उनमें एक एक स्वरूपको उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते. इसी कारण तीन लक्षणरूप सत्ताके तीन लक्षण नहीं हैं; और उस ही महासत्ताको अनेकता है, क्योंकि निज निज पदार्थोंमें जो सत्ता है उससे पदार्थोंका निश्चय होता है। इस कारण सर्वपदार्थव्यापिनी महासत्ता निज निज एक पदार्थकी अपेक्षासे एक एक पदार्थमें तिष्ठे है,

सामान्यविशेषप्ररूपणप्रवणनयद्वयायत्तत्वात् तद्देशनायाः ॥८॥

अत्र सत्ताद्रव्ययोरर्थान्तरत्वं प्रत्याख्यातम् ;—

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं ।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो ॥९॥

द्रवति गच्छति तांस्तान् सद्भावपर्यायान् यत् ।
द्रव्यं तत् भणन्ति अनन्यभूतं तु सत्तातः ॥९॥

द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्नोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यानुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम् । द्रव्यं

जीवास्तिकायसंज्ञस्य शुद्धजीवद्रव्यस्य या सत्ता सैवोपादेया भवतीति भावार्थः ॥८॥ इति प्रथमस्थले सत्तालक्षणमुख्यत्वेन व्याख्यानेन गाथा गता । अथ सत्ताद्रव्ययोरभिन्नत्वं प्रत्याख्याति;— दवियदि द्रवति । द्रवति कोर्थः । गच्छदि गच्छति । क । वर्तमानकाले । द्रोष्यति गमिष्यति भाविकाले । अदुद्रुवत् गतं भूतकाले । कान् । ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं तांस्तान् सद्भावपर्यायान् स्वकीयपर्यायान् जं यत् कर्तृ दवियत्तं भण्णंति हि तद्द्रव्यं भणन्ति सर्वज्ञा हि स्फुटं । अथवा द्रवति स्वभावपर्यायान् गच्छति विभावपर्यायान् । इत्थंभूतं द्रव्यं किं सत्ताया भिन्नं भविष्यति ? नैवं । अणण्णभूदं तु सत्तादो अनन्यभूतमभिन्नं । कस्याः । सत्तायाः निश्च-

---

ऐसी है, और जो वह महासत्ता सकलस्वरूप है, सो ही एकरूप है, क्योंकि अपने अपने पदार्थोंमें निश्चित एक ही स्वरूप है । इस कारण सकल स्वरूप सत्ताको एकरूप कहा जाता है। और जो वह महासत्ता अनंतपर्य्यायात्मक है, उसीको एक पर्यायस्वरूप कहते हैं; क्योंकि अपने अपने पर्यायोंकी अपेक्षासे द्रव्योंकी अनन्त सत्ता हैं । एक द्रव्यके निश्चित पर्यायकी अपेक्षासे एक पर्यायरूप कहा जाता है, इस कारण अनन्तपर्यायस्वरूप सत्ताको एक पर्यायस्वरूप कहते हैं । यह जो सत्ता का स्वरूप कहा, तिसमें कुछ विरोध नहीं है. क्योंकि भगवान्‌का उपदेश सामान्यविशेषरूप दो नयोंके आधीन है, इस कारण महासत्ता और अवान्तर सत्ताओंमें कोई विरोध नहीं है ॥८॥ आगे सत्ता और द्रव्यमें अभेद दिखाते हैं,—[यत्] जो सत्तामात्र वस्तु [तान् तान्] उन उन अपने [सद्भावपर्यायान्] गुणपर्य्याय स्वभावोंको [द्रवति गच्छति] प्राप्त होती है अर्थात् एकताकर व्याप्त होती है [तत्] सो [द्रव्यं] द्रव्यनाम [भणन्ति] आचार्यगण कहते हैं । अर्थात्—द्रव्य उसको कहते हैं कि जो अपने सामान्यस्वरूपकरके गुणपर्यायोंसे तन्मय होकर परिणमें । [तु] फिर वह द्रव्य निश्चयसे [सत्तातः] गुणपर्यायात्मक सत्तासे [अनन्यभूतं] जुदा नहीं है । भावार्थ—यद्यपि कथंचित्प्रकार लक्ष्यलक्षण भेदसे सत्तासे द्रव्यका भेद है तथापि सत्ता और द्रव्यका

---

१ अत्र सत्तादेशनाया द्विनयाधीनत्वात् । २ प्रत्याख्यातं निराकृतं । "प्रत्याख्यातो निराकृतः" इति वचनात् । ३ स्वरूपभेदात् ।

च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्यः कथञ्चिद्भेदेऽपि वस्तुतः सत्तायाः अपृथग्भूतमेवेति मन्तव्यम् । ततो यत्पूर्वं सत्त्वमसत्त्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्वं सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं च प्रतिपादितं सत्तायास्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यं । ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत यः सत्तां वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति ॥९॥

अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम् ;—

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥१०॥

द्रव्यं सल्लक्षणकं उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं ।
गुणपर्यायाश्रयं वा यत्तद्भणन्ति सर्वज्ञाः ॥१०॥

सद्द्रव्यलक्षणमुक्तलक्षणायाः सत्ताया अविशेषाद्द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्, नचानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वरूपं । यतो लक्ष्यलक्षणविभागा-

---

यनयेन । यत एव संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन सत्ताया द्रव्यमभिन्नं तत एव पूर्वगाथायां यत्सत्तालक्षणं कथितं सर्वपदार्थस्थितत्वं एकपदार्थस्थितत्वं विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्वं त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकरूपत्वमनेकरूपत्वं चेति तत्सर्वं लक्षणं सत्ताया अभिन्नत्वात् द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यमिति सूत्रार्थः ॥९॥ एवं द्वितीयस्थले सत्ताद्रव्ययोरभेदस्य द्रव्यशब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेति कथनरूपेण गाथा गता । अथ त्रेधा द्रव्यलक्षणमुपदिशति;—दव्वं-सल्लक्खणियं द्रव्यं सत्तालक्षणं द्रव्यार्थिकनयेन बौद्धं प्रति उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं उत्पा-

---

परस्पर अभेद है। लक्ष्य वह होता है कि जो वस्तु जानी जाय। लक्षण वह होता है कि जिसकेद्वारा वस्तु जानी जाय। द्रव्य लक्ष्य है. सत्ता लक्षण है। लक्षणसे लक्ष्य जाना जाता है। जैसे उष्णतालक्षणसे लक्ष्यस्वरूप अग्नि जानी जाती है। तैसे ही सत्ता लक्षणके द्वारा द्रव्य लक्ष्य लखिये है अर्थात् जाना जाता है। इस कारण पहिले जो सत्ताके लक्षण अस्तित्वस्वरूप, नास्तित्वस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूपसे रहित, एकस्वरूप और अनेकस्वरूप, सकलपदार्थव्यापी और एक पदार्थव्यापी, सकलरूप और एकरूप, अनन्तपर्यायरूप और एकपर्यायरूप इस प्रकार कहे थे, वे सबही पृथक् नहीं हैं, एक स्वरूप ही हैं। यद्यपि वस्तुस्वरूपको दिखानेके लिये सत्ता और द्रव्यमें भेद कहते हैं तथापि वस्तुस्वरूपसे विचार किया जाय तो कोई भेद नहीं है। जैसे उष्णता और अग्नि अभेदरूप हैं ॥९॥ आगे द्रव्यके तीन प्रकार लक्षण दिखाते हैं;—[यत्] जो [सल्लक्षणकं] सत्ता है लक्षण जिसका ऐसा है [तत्] उस वस्तुको [सर्वज्ञाः] सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं वे [द्रव्यं] द्रव्य [भणन्ति] कहते हैं [वा] अथवा [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तं] उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्त द्रव्यका

---

१ संज्ञालक्षणप्रयोजनेन. २ परमार्थतः. ३ ज्ञातव्यं अवबोद्धव्यं वा. ४ द्रव्यम् ।

भाव इति उत्पादव्ययध्रौव्याणि वा द्रव्यलक्षणं । एकजात्यविरोधिनि क्रमभुवां भावानां संताने पूर्वभावविनाशः समुच्छेद उत्तरभावप्रादुर्भावश्च समुत्पादः । पूर्वोत्तरभावोच्छेदोत्पादयोरपि स्वजातेरपरित्यागो ध्रौव्यं । तानि सामान्यादेशादभिन्नानि विशेषादेशाद्भिन्नानि युगपद्भावीनि स्वभावभूतानि द्रव्यस्य लक्षणं भवन्तीति । गुणपर्याया वा द्रव्यलक्षणं । अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनोऽन्वयिनो विशेषा गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायास्ते[1] द्रव्ये यौगपद्येन क्रमेण च प्रवर्तमानाः कथञ्चिद्भिन्नाः स्वभावभूताः[2] द्रव्यलक्षणतामापद्यन्ते[3] । त्रयाणामप्यमीषां[4] द्रव्यलक्षणानामेकस्मिन्नभिहितेऽन्यदुभयमर्थादेवापद्यते । सच्चेदुत्पादव्ययध्रौव्यवच्च गुणपर्यायवच्च । उत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेत्सच्च गुणपर्यायवच्च । गुणपर्यायवच्चेत्स-

---

द्व्यधौव्यसंयुक्तं पर्यायार्थिकनयेन गुणपज्जयासयं वा गुणपर्यायाधारभूतं वा सांख्यनैयायिकं प्रति जं तं भण्णंति सव्वण्हू यदेवं लक्षणत्रयसंयुक्तं तद्द्रव्यं भणंति सर्वज्ञा इति वार्तिकं तथाहि—सत्तालक्षणमित्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायत्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमित्युक्ते सत्तालक्षणं गुणपर्यायत्वलक्षणं च नियमेन लभ्यते गुणपर्यायवदि-

---

लक्षण कहते हैं । [वा] अथवा [गुणपर्यायाश्रयं] गुणपर्यायका जो आधार है, उसको द्रव्यका लक्षण कहते हैं । भावार्थ—द्रव्यके तीन प्रकारके लक्षण हैं । एक तो द्रव्यका सत्तालक्षण है, दूसरा उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तलक्षण है, तीसरा गुणपर्यायाश्रित लक्षण है । इन तीनों ही लक्षणोंमें पहिले पहिले लक्षण सामान्य हैं अगले अगले विशेष हैं. सो दिखाया जाता है । जो प्रथम ही सत्लक्षण कहा, वह तो सामान्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यका लक्षण जानना । द्रव्य अनेकान्त स्वरूप है । द्रव्यका सर्वथा प्रकार सत्ता ही लक्षण है । इस प्रकार कहनेसे लक्ष्य लक्षणमें भेद नहीं होता । इस कारण द्रव्यका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य भी जानना । एक वस्तुमें अविरोधी जो क्रमवर्त्ती पर्याय हैं, उनमें पूर्व भावोंका विनाश होता है, अगले भावोंका उत्पाद होता है, इस प्रकार उत्पादव्ययके होते हुए भी द्रव्य अपने निजस्वरूपको नहीं छोड़ता है, वही ध्रौव्य है । ये उत्पादव्ययध्रौव्य ही द्रव्यके लक्षण हैं । ये तीनों भाव सामान्य कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भिन्न नहीं है । विशेष कथनकी अपेक्षा द्रव्यसे भेद दिखाया जाता है । एक ही समयमें ये तीनों भाव होते हैं, द्रव्यके स्वाभाविक लक्षण हैं । उत्पादव्ययध्रौव्य द्रव्यका विशेष लक्षण है । इस प्रकार सर्वथा कहा नहीं जाता, इस कारण गुणपर्याय भी द्रव्य का लक्षण है । कारण कि—द्रव्य अनेकान्तस्वरूप है । अनेकान्त तब ही होता है—जब कि द्रव्यमें अनन्तगुणपर्याय हों । इस कारण गुण और पर्याय द्रव्यके विशेष स्वरूपको दिखाते हैं । जो द्रव्यसे सहभूततासे अविनाशी हैं वे तो गुण हैं, जो क्रमवर्त्ती

---

१ गुणपर्यायाः. २ द्रव्यस्य लक्षणभूताः. ३ प्राप्नुवन्ति. ४ सत्ता, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वं, गुणपर्यायत्वं चेति त्रयाणाम्. ५ लक्षणे. ६ कथ्यते. ७ अर्थानुसारात् ।

चोत्पादव्ययध्रौव्यवच्चेति । सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद्ध्रुवत्वमुत्पादव्ययात्मकताञ्च प्रथ-[1]यति । ध्रुवत्वात्मकैर्गुणैरुत्पादव्ययाद् व्ययात्मकैः पर्यायैश्च सहैकत्वञ्चाख्याति । उत्पादव्ययध्रौव्याणि[2] तु निन्यानित्यस्वरूपं परमार्थं सदा वेदयन्ति । गुणपर्यायांश्चात्मलाभनिबन्धनभूतान् प्रथयन्ति[3] । गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद्ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभावं परमार्थं सच्चोपलक्षयन्ति[4] ॥१०॥

त्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणत्वं सत्तालक्षणं च नियमेन लभ्यते । एकस्मिंल्लक्षणेऽभिहिते सत्यन्यलक्षणद्वयं कथं लभ्यत इति चेत्, त्रयाणां लक्षणानां परस्पराविनाभावित्वादिति । अथ मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धसत्तालक्षणं अगुरुलघुत्वषड्ढानिवृद्धिरूपेण शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं अकृतज्ञाद्यनन्तगुणलक्षणं सहजशुद्धसिद्धपर्यायलक्षणं च शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः । क्षणिकैकान्तरूपं बौद्धमतं नित्यैकान्तरूपं सांख्यमतं उभयैकान्तरूपं नैयायिकमतं मीमांसकमतं च सर्वत्र मतान्तरव्याख्यानकाले ज्ञातव्यं । क्षणिकैकान्ते किं दूषणं ? येन घटादिक्रिया प्रारब्धा स तस्मिन्नेव क्षणे गतः क्रियानिष्पत्तिर्नास्तीत्यादि । नित्यैकान्ते च योऽसौ तिष्ठति स तिष्ठत्येव, सुखी सुख्येव, दुःखी दुख्येवेत्यादिटंकोत्कीर्णनित्यत्वेन पर्यायान्तरं न घटते, परस्परनिरपेक्षद्रव्यपर्यायोभयैकान्ते पुनः पूर्वोक्तदूषणद्वयमपि प्राप्नोति । जैनमते पुनः परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायत्वान्नास्ति दूषणं ॥ १० ॥ इति तृतीयस्थले द्रव्यस्य सत्तालक्षणत्रयसूचन—

करके विनाशीक हैं वे पर्य्याय हैं । ये द्रव्योंमें गुण और पर्याय कथंचित् प्रकारसे अभेद रूप हैं और कथंचित्प्रकार भेद लिये हैं। संज्ञादि भेदकर तो भेद है, वस्तुतः अभेद है । यह जो पहिले ही तीन प्रकार द्रव्यके लक्षण कहे, उसमेंसे जो एक ही कोई लक्षण कहा जाय तो शेषके दो लक्षण भी उसमें गर्भित हो जाते हैं । यदि द्रव्यका लक्षण सत् कहा जाय तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुणपर्यायवान् दोनों ही लक्षण गर्भित होते हैं, क्योंकि जो 'सत्' है सो नित्य अनित्यस्वरूप है नित्य स्वभावमें ध्रौव्यता आती है। अनित्य स्वभावमें उत्पाद और व्यय आता है । इस प्रकार उत्पादव्यय-ध्रौव्य सत्लक्षणके कहनेसे आते हैं और गुणपर्याय लक्षण भी आता है । और ध्रौव्यता आती है और पर्यायके कहते उत्पाद व्यय आते हैं । और इसी प्रकार उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण कहनेसे सत्लक्षण आता है । गुणपर्याय लक्षण भी आता है । और गुणपर्याय द्रव्यका लक्षण कहते सत्लक्षण आता है और उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण भी आता है, क्योंकि—द्रव्य नित्य अनित्यस्वरूप है। लक्षण नित्य अनित्य स्वरूपको सूचन करता है। इस कारण इन तीनों ही लक्षणों में सामान्य विशेषता करके तो भेद है, वास्तवमें कुछ भी भेद नहीं है ॥ १० ॥ आगे द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदकर

---

१. कथयति. २ कर्तृणि. ३ विस्तारयन्ति. ४ दर्शयन्ति अवबोधयन्ति वा ।

अत्रोभयनयाभ्यां द्रव्यलक्षणं प्रविभक्तम्;—

उप्पत्तीव विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो ।
विगमुप्पादधुवत्तं करेंति तस्सेव पज्जायाः ॥११॥

उत्पत्तिर्वा विनाशो द्रव्यस्य च नास्त्यस्ति सद्भावः ।
विगमोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति तस्यैव पर्यायाः ॥११॥

द्रव्यस्य हि सहक्रमप्रवृत्तगुणपर्यायसद्भावरूपस्य त्रिकालावस्थायिनोऽनादिनिधनस्य न समुच्छेदसमुदयौ युक्तौ । अथ तस्यैव पर्यायाणां सहप्रवृत्तिभाजां केषांचित् ध्रौव्यसंभवे ऽप्यपरेषां क्रमप्रवृत्तिभाजां विनाशसंभवसंभावनमुपपन्नम् । ततो द्रव्यार्थार्पणायामनुत्पादमनुच्छेदं सत्स्वभावमेव द्रव्यं । तदेव पर्यायार्थार्पणायां सोत्पादं सोच्छेदं चाववोद्धव्यम् । सर्वमिदमनवद्यश्च द्रव्यपर्यायाणामभेदात् ॥११॥

मुख्यत्वेन गाथा गता । अथ गाथापूर्वार्द्धेन द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यलक्षणं उत्तरार्द्धेन पर्यायार्थिकनयेन पर्यायलक्षणं प्रतिपादयति;—उप्पत्ती य विणासो दव्वस्स य णत्थि अनादिनिधनस्य द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेनोत्पत्तिश्च विनाशो वा नास्ति । तर्हि किमस्ति । अत्थि सब्भावो अस्ति विद्यते । स कः । सद्भावः सत्तास्तित्वं, इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव क्षणिकैकान्तमतनिराकरणं समर्पितं । वयमुप्पादधुवत्तं करेंदि तस्सेव पज्जायाः तस्यैव द्रव्यस्य व्ययोत्पादध्रुवत्वं कुर्वन्ति । के कर्तारः । पर्यायाः । अनेन किमुक्तं भवति—द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यस्यैवोत्पादव्ययध्रौव्याणि न भवन्ति किं तु पर्यायार्थिकनयेन । केन दृष्टान्तेन । सुवर्णगोरसमृत्तिकाबालवृद्धकुमारादिपरिणतपुरुषेषु भंगत्रयरूपेण । इत्यनेन पूर्वगाथाभणितमेव नित्यैकान्तमतनिराकरणं दृढीकृतं । अत्र सूत्रे शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नरनारकादिविभावपरिणामोत्पत्तिविनाशरहितमपि पर्यायार्थिकनयेन वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसंभवेन सहजपरमानन्दरूपसुखरसास्वादेन स्वसंवेदनज्ञानरूप-

---

द्रव्यके लक्षणका भेद दिखाते हैं;—[द्रव्यस्य] अनादिनिधन त्रिकाल अविनाशी गुणपर्यायस्वरूप द्रव्यका [उत्पत्ति] उपजना [वा] अथवा [विनाशः] विनसना [नास्ति] नहीं है [च] और [सद्भावः] सत्तामात्रस्वरूप [अस्ति] है [तस्य एव] तिस ही द्रव्य के [पर्यायाः] नित्य अनित्य परिणाम [विगमोत्पादध्रुवत्वं] उत्पादव्ययध्रौव्यको [कुर्वन्ति] करते हैं । भावार्थ—अनादि अनन्त अविनाशी टंकोत्कीर्ण गुणपर्यायस्वरूप जो द्रव्य है, सो उपजता विनशता नहीं है परन्तु उसी द्रव्यमें कईएक परिणाम अविनाशी हैं, कईएक परिणाम विनाशीक हैं । जो गुणरूप सहभावी हैं वे तो अविनाशी हैं और जो पर्यायरूप क्रमवर्त्ती हैं वे विनाशीक हैं । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यार्थिकनयसे तो द्रव्य ध्रौव्य स्वरूप

---

१ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्याम् । २ [illegible] कनयेन नर [illegible] रहितम् ।

अत्र द्रव्यपर्यायाणामभेदो निर्दिष्टः;—

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥१२॥

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति ।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणाः प्ररूपयन्ति ॥ १२ ॥

दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं द्रव्यं नास्ति । गोरसवियुक्तदुग्धदधिनवनीतघृतादिवद्द्रव्यवियुक्ताः पर्याया न सन्ति । ततो द्रव्यस्य पर्य्यायाणाञ्चादेशवशात्-

पर्यायेण परिणतं सहितं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यमेवोपादेयमिति सूत्रतात्पर्यं ॥११॥ एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणनयद्वयव्याख्यानेन सूत्रं गतं । अथ द्रव्यपर्यायाणां निश्चयन-[1]येनाभेदं दर्शयति;—पज्जयरहिय[2] दव्वं दधिदुग्धादिपर्यायरहितगोरसवत्पर्यायरहितं द्रव्यं नास्ति । दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि गोरसरहितदधिदुग्धादिपर्यायवत् द्रव्यविमुक्ता द्रव्यविरहिताः पर्याया न संति । दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति यत एवमभेदनयेन द्रव्यपर्याययोर्भेदो नास्ति तत एव कारणात् द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं सत्तामस्तित्वस्वरूपं प्ररूपयन्ति । के कथयन्ति । श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञा इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं—द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं पदार्थं वस्तु श्रमणाः प्ररूपयन्ति । भावशब्देन कथं पदार्थो भण्यत इति चेत् । द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्विति वचनात् । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायादभिन्नं

है और पर्यायार्थिकनयसे उपजै और विनशै भी है । इस प्रकार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयोंके भेदसे द्रव्यस्वरूप निराबाध सधै है । ऐसा ही अनेकान्तरूप द्रव्यका स्वरूप मानना योग्य है ॥ ११ ॥ आगे—यद्यपि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदसे द्रव्यमें भेद है तथापि अभेद दिखाते हैं;—[पर्ययवियुतं] पर्यायरहित [द्रव्यं न] द्रव्य (पदार्थ) नहीं है [च] और [द्रव्यवियुक्ताः] द्रव्यरहित [पर्यायाः] पर्याय [न सन्ति] नहीं हैं [श्रमणाः] महामुनि जे हैं ते [द्वयोः] द्रव्य और पर्यायका [अनन्यभूतं भावं] अभेद स्वरूप [प्ररूपयन्ति] कहते हैं । भावार्थ—जैसे गोरस अपने दूध दही घी आदिक पर्यायोंसे जुदा नहीं है, उसी प्रकार द्रव्य अपनी पर्यायोंसे जुदा (पृथक) नहीं है और पर्याय भी द्रव्यसे जुदे नहीं हैं । इसी प्रकार द्रव्य और पर्याय की एकता है । यद्यपि कथंचित् प्रकार कथनकी अपेक्षा समझाने के लिये भेद है तथापि वस्तुस्वरूपके विचारते भेद नहीं है । क्योंकि द्रव्य और पर्यायका परस्पर एक अस्तित्व है । जो द्रव्य न होय तो पर्यायका अभाव हो जाय और पर्याय नहीं होय तो द्रव्यका अभाव हो जाय । जिस प्रकार दुग्धादि पर्यायके अभावसे गौरसका अभाव है और गौरसके अभावसे दुग्धादि पर्यायोंका अभाव होता है । इसी प्रकार इन दोनों

१ निश्चयनयेन. २ रहितम्. ३ द्रव्यरहिताः ।

कथंचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनाम् वस्तुत्वेनाभेद इति ॥१२॥

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्टः—

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥१३॥

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात् ॥१३॥

पुद्गलभूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः संभवन्ति। स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भू-
तपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति। ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशात् यथंचिद्भेदेऽप्ये-

शुद्धपर्यायादभिन्नं शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धनिश्चयनयेनोपादेयमिति भावार्थः ॥१२॥
यस्मिन् वाक्ये नयशब्दोच्चारणं नास्ति तत्र नययोः शब्दव्यवहारः कर्तव्यः क्रियाकारकयोरन्य-
तराध्याहारवत् स्याच्छब्दाध्याहारवद्वा। अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति;—
दव्वेण विणा ण गुणा पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण विना गुणा न संति। गुणेहिं दव्वं विणा
ण संभवदि वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति। अव्वदिरित्तो भावो
दव्वगुणाणं हवदि तम्हा द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेश-
निष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात् एककालोत्पादव्ययाविनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्न-
भावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति। कोऽसौ।
भावस्सत्तास्तित्वं। केषां। द्रव्यगुणानां। अथवा द्वितीयव्याख्यानं—अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो
भवति। स कः। भावः पदार्थो वस्तु। केषां संभवित्वेन। द्रव्यगुणानां, इत्यनेन द्रव्यगुणा-
त्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति। निर्विकल्पसमाधिवलेन जातमुत्पन्नं वीतरागसहजपरमानन्दसुखसं-

द्रव्यपर्यायोंमेंसे एकका अभाव होनेसे दोनोंका अभाव होता है। इसकारण इन दोनोंमें
एकता (अभेद) माननी योग्य है ॥ १२ ॥ आगे द्रव्य और गुणमें अभेद दिखाते
हैं;—[द्रव्येण विना] सत्तामात्र वस्तुके विना [गुणाः] वस्तुओंके जनानेवाले
सहभूतलक्षणरूप गुण [न सम्भवति] नहीं होते [गुणैः विना] गुणोंके विना
[द्रव्यं] द्रव्य [न सम्भवति] नहीं होता। [तस्मात्] तिस कारणसे [द्रव्य-
गुणानां] द्रव्य और गुणोंका [अव्यतिरिक्तः] जुदा नहीं है ऐसा [भावः]
स्वरूप [भवति] होता है। भावार्थ—द्रव्य और गुणोंकी एकता (अभिन्नता)
है अर्थात् पुद्गलद्रव्यसे जुदे स्पर्श रस गन्ध वर्ण नहीं पाये जाते। सो दृष्टान्त विशेषता
कर दिखाया जाता है। जैसे एक आम (आम्रफल) द्रव्य है और उसमें स्पर्श रस
गन्ध वर्ण गुण हैं। जो आम्रफल न होय तो जो स्पर्शादि गुण हैं, उनका अभाव हो
जाय। क्योंकि आश्रयविना गुण कहाँसे होय? और जो स्पर्शादि गुण नहीं होय तो

१ द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात्. २ निश्चयनयेन।

कास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥१३॥

अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभङ्गी;—

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं ।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥१४॥

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्त्रितयं ।
द्रव्यं खलु सप्तभङ्गमादेशवशेन सम्भवति ॥१५॥

स्यादस्ति द्रव्यं स्यान्नास्ति द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं स्यादवक्तव्यं द्रव्यं स्यादस्ति चावक्तव्यं स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यमिति । अत्र[१] सर्वथात्वनिषेधकोऽनैकान्तिको द्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो

वित्त्युपलब्धिप्रतीत्यनुभूतिरूपं यत्स्वसंवेदनज्ञानं तेनैव परिच्छेद्यं प्राप्यं रागादिविभावविकल्पजालशून्यमपि केवलज्ञानादिगुणसमूहेन भरितावस्थं यत् शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्यातव्यं तदेव वचसा वक्तव्यं कायेन तदनुकूलानुष्ठानं कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यार्थः ॥ १३ ॥ एवं गुणपर्यायरूपत्रिलक्षणप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयं । इति पूर्वसूत्रेण सह गाथात्रयसमुदायेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ सर्वविप्रतिपत्तीनां निराकरणार्थं प्रमाणसप्तभङ्गी कथ्यते । "एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः । सदादिकल्पना या च सप्तभङ्गीति सा मता ॥" सिय अत्थि स्यादस्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तीत्यर्थः १. सिय णत्थि स्यान्नास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तीत्यर्थः २. सिय अत्थिणत्थि स्यादस्तिनास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तिनास्तीत्यर्थः ३. सिय अव्वत्तव्वं स्यादवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण

आमका (आम्रफलका) अभाव होय क्योंकि गुणके विना आमका अस्तित्व कहाँ ? अपने गुणोंकर ही आमका अस्तित्व है । इसी प्रकार द्रव्य और गुणकी एकता (अभेदता) जाननी । यद्यपि किसी ही एक प्रकारसे कथनकी अपेक्षा द्रव्य और गुणमें भेद भी है, तथापि वस्तुस्वरूपकर तो अभेद ही है ॥ १३ ॥ आगे जिसके द्वारा द्रव्यका स्वरूप निराबाध सधता है, ऐसी स्यात्पदगर्भित जो सप्तभङ्गिवाणी है, उसका स्वरूप दिखाया जाता है;—[खलु] निश्चयसे [द्रव्यं] अनेकान्तस्वरूप पदार्थ [आदेशवशेन] विवक्षाके वशमें [सप्तभङ्गं] सातप्रकारसे [सम्भवति] होता है । वे सात प्रकार कौन कौनसे हैं सो कहते हैं,—[स्यात् अस्ति] किस ही एक प्रकार अस्तिरूप है [स्यात् नास्ति] किस ही एक प्रकार नास्तिरूप है । [उभयं] किस ही एक प्रकार अस्तिनास्तिरूप है । [अवक्तव्यं] किस ही एक प्रकार वचनगोचर नहीं है । [पुनश्च] फिर भी [तत् त्रितयं] वे ही आदिके तीनों भंग

---

१ सप्तभङ्ग्यां ।

निपातः। तत्र स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्यं। परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यं। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्यं। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्यं द्रव्यं। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यञ्च द्रव्यं। परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टं नास्ति चावक्तव्यं द्रव्यं।

युगपद्वक्तुमशक्यत्वात् 'क्रमप्रवृत्तिर्भारती'तिवचनात् युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया वक्तव्यमित्यर्थः ४. पुणोवि तत्तिदयं पुनरपि तत्त्रितयं 'सिय अत्थि अव्वतव्वं' स्यादस्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ५ 'सियणत्थि अवत्तव्वं' स्यान्नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ६. सिय अत्थिणत्थि अवत्तव्वं' स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्ति नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थः ७. संभवदि संभवति। किं कर्तृ। दव्वं द्रव्यं खु स्फुटं। कथंभूतं। सत्तभंगं सप्तभंगं। केन। आदेसवसेण

अवक्तव्यसे कहिये हैं प्रथम ही—[स्यात् अस्ति अवक्तव्यं] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्तिरूप अवक्तव्य है। दूसरा भंग—[स्यात् नास्ति अवक्तव्यं] किसी एक प्रकार द्रव्य नास्तिरूप अवक्तव्य है और तीसरा भंग—[स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्ति नास्तिरूप अवक्तव्य है। ये सप्तभङ्ग द्रव्यका स्वरूप दिखानेके लिये वीतरागदेवने कहे हैं। यही कथन विशेषताकर दिखाया जाता है। १-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव इस अपने चतुष्टयकी अपेक्षा तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है। २-परद्रव्य परक्षेत्र परकाल और परभाव इस परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नास्ति स्वरूप है अर्थात् परसदृश नहीं है। ३-उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य क्रमसे तीन कालमें अपने भावोंकर अस्तिनास्तिस्वरूप है, अर्थात् आपसा है परसदृश नहीं है। ४-और स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं है, इस कारण अवक्तव्य है। अर्थात् कहनेमें नहीं आता। ५-और वही स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा से द्रव्य अस्तिस्वरूप कहिये तथापि अवक्तव्य है। ६-और वही द्रव्य परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति स्वरूप है, तथापि कहा नहीं जाता। ७. और वही द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और परचतुष्टयकी अपेक्षा और एकही वार

---

१ स्यात्‌द्वादस्वरूपेऽस्तिनास्तिकथने २ तच्च स्वद्रव्यचतुष्टयं शुद्धजीवविषये कथ्यते शुद्धपर्यायाधारभूतं द्रव्य भण्यते, लोकाकाशप्रमितशुद्धासख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयकालो भण्यते शुद्धचैतन्यभावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयः।

स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यमिति । नचैतदनुपपन्नम्[1] । सर्वस्य वस्तुनः स्वरूपादिना अशून्यत्वात्[2]पररूपादिना शून्यत्वात्[3] उभाभ्यामशून्यशून्यत्वात्[4] सहवाच्यत्वात्[5] भङ्गसंयोगार्पणायाम्[6]अशून्यवाच्यत्वात् शून्यावाच्यत्वात् अशून्यशून्यावाच्यत्वाच्चेति ॥१४॥

प्रश्नोत्तरवशेन । तथाहि—अस्तीत्यादिसप्तप्रश्नेषु कृतेषु सत्सु स्यादस्तीत्यादिसप्तप्रकारपरिहारवशेनेत्यर्थः । इति प्रमाणसप्तभंगी । एकमपि द्रव्यं कथं सप्तभङ्गयात्मकं भवतीति प्रश्ने परिहारमाहुः । यथैकोपि देवदत्तो गौणमुख्यविवक्षावशेन बहुप्रकारो भवति । कथमिति चेत् । पुत्रापेक्षया पिता भण्यते सोपि स्वकीयपित्रापेक्षया पुत्रो भण्यते मातुलापेक्षया भागिनेयो भण्यते स एव भागिनेयापेक्षया मातुलो भण्यते भार्यापेक्षया भर्ता भण्यते भगिन्यपेक्षया भ्राता भण्यते विपक्षापेक्षया शत्रुर्भण्यते इष्टापेक्षया मित्रं भण्यत इत्यादि । तथैकमपि द्रव्य गौणमुख्यविवक्षावशेन सप्तभंग्यात्मकं भवतीति नास्तिदोष इति सामान्यव्याख्यानं । सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां पुनः सदेकनित्यादिधर्मेषु मध्ये एकैकधर्मे निरुद्धे सप्तभंगा वक्तव्याः । कथमिति चेत् । स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यमित्यादि । स्यादेकं स्यादनेकं स्यादेकानेकं स्यादवक्तव्यमित्यादि स्यान्नित्यं स्यान्नित्यानित्यं स्यादवक्तव्यमित्यादि । तत्केन दृष्टान्तेनेति कथ्यते—यथैकोपि देवदत्तः स्यात्पुत्रः स्यादपुत्रः स्यात्पुत्रापुत्र स्यात्पुत्रोऽवक्तव्यः स्यादपुत्रापुत्रोऽवक्तव्यश्चेति सूक्ष्मव्याख्यानविवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यानविवक्षायां सप्तभङ्गीव्याख्यानं ज्ञातव्यं । स्यादस्ति द्रव्यमिति पठनेन वचनेन प्रमाणसप्तभंगी ज्ञायते । कथमितिचेत् । स्यादस्तीति सकलवस्तुग्राहकत्वात्प्रमाणवाक्यं स्यादस्त्येव द्रव्यमिति वस्त्वेकदेशग्राहकत्वान्न वाक्यं । तथाचोक्तं । सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन इति । अस्ति द्रव्यमिति दुःप्रमाणवाक्यं असत्येव द्रव्यमिति दुर्नयवाक्यं । एवं प्रमाणादिवाक्यचतुष्टयव्याख्यानं बोद्धव्यं । अत्र सप्तभंग्यात्मकं षड्द्रव्येषु मध्ये शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मकद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ॥ १४ ॥

स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिस्वरूप है तथापि अवक्तव्य है । इन सप्तभङ्गोंका विशेष स्वरूप जिनागमसे (अन्यान्य जैनशास्त्रोंसे) जान लेना । हमसे अल्पज्ञों की बुद्धिमें विशेष कुछ नहीं आता है । कुछ संक्षेप मात्र कहते हैं । जैसे कि—एक ही पुरुष पुत्र की अपेक्षा पिता कहलाता है और वही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र कहलाता है और वही पुरुष मामाकी अपेक्षा भाणजा कहलाता है और भाणजे की अपेक्षा मामा कहलाता है । स्त्रीकी अपेक्षा भरतार (पति) कहलाता है । बहनकी अपेक्षा भाई भी कहलाता है । तथा वही पुरुष अपने वैरीकी अपेक्षा शत्रु कहलाता है और इष्टकी अपेक्षा मित्र भी कहलाता है । इत्यादि अनेक नातोंसे एक ही पुरुष कथंचित् अनेक प्रकार कहा जाता है उसही प्रकार एक द्रव्य सप्तभङ्गके द्वारा साधा जाता है ॥ १४ ॥

१ अयुक्तम् । २ अस्तित्वात् । ३ नास्तित्वात् । ४ अस्तिनास्तिरूपेण सह एकस्मिन्समावेशशून्यत्वात् । ५ द्वाभ्यां अस्तिनास्तिभ्यां अस्तिनास्तित्वात् । ६ अस्तिनास्त्यादिभङ्गयां योज्यमानायाम् ।

अत्रासत्प्रादुर्भावमुत्पादस्य सदुच्छेदत्वं विगमस्य[1] निषिद्धं;—

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥१५॥

भावस्य नास्ति नाशो नास्ति अभावस्य चैव उत्पादः।
गुणपर्यायेषु भावा उत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति ॥ १५ ॥

भावस्य[2] सतो हि द्रव्यस्य न द्रव्यत्वेन विनाशः। अभावस्यासतोऽन्यद्रव्यस्य न द्रव्यत्वेनोत्पादः। किं तु भावाः सन्ति द्रव्याणि सदुच्छेदमसदुत्पादं चान्तरेणैव गुणपर्यायेषु विनाशमुत्पादं चारभन्ते। यथा हि घृतोत्पत्तौ गोरसस्य सतो न विनाशः

इत्येकसूत्रेण सप्तभंगीव्याख्यानं। एवं चतुर्दशगाथासु मध्ये स्थलपंचकेन प्रथमसप्तकं गतं। अथ सति धर्मिणि धर्माश्चिंत्यन्ते द्रव्यं नास्ति सप्तभंगाः कस्य भविष्यंतीति बौद्धमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहाररूपेण गाथापातनिकां करोति द्रव्यार्थिकनयेन सतः पदार्थस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीतिवचनेन क्षणिकैकान्तबौद्धमतं निषेधयति;—भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो यथा गोरसस्य गोरसद्रव्यरूपेणोत्पादो नास्ति विनाशोपि नास्ति गुणपज्जएसु व भावा उप्पादवये पकुव्वंति तथापि वर्णरसगंधस्पर्शगुणेपु वर्णरसगंधांतरादिरूपेण परिणामिषु नश्यति नवनीतपर्याय उत्पद्यते च घृतपर्यायः तथा सतो विद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेन नास्ति विनाशः, नास्त्यसतोऽविद्यमानभावस्य पदार्थस्य जीवादिद्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वेनोत्पादः तथापि गुणपर्यायेष्वधिकरणभूतेषु भावाः पदार्था जीवादिषड्द्रव्याणि कर्तृणि पर्यायार्थिकनयेन विवक्षितनरनारकादिद्व्यणुकादिगतिस्थित्यवगाहनवर्तनादिरूपेण यथासंभवमुत्पादव्ययान् प्रकुर्वन्ति। अत्र षड्द्रव्येपु मध्ये शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति वा पाठः। निश्चयनयेन क्रोध-

[भावस्य] सतरूप पदार्थका [नाशः] नाश [नास्ति] नहीं है [च एव] और निश्चयसे [अभावस्य] अवस्तुका [उत्पादः] उपजना [नास्ति] नहीं है। यदि ऐसा है तो वस्तुके उत्पादव्यय किसप्रकार होते हैं? सो दिखाया जाता है। [भावाः] जो पदार्थ हैं वे [गुणपर्यायेषु] गुणपर्यायोंमें ही [उत्पादव्ययान्] उत्पाद और व्यय [प्रकुर्वन्ति] करते हैं। भावार्थ—जो वस्तु है उसका तो नाश नहीं है और जो वस्तु नहीं है, उसका उत्पाद (उपजना) नहीं है। इसकारण द्रव्यार्थिकनयसे न तो द्रव्य उपजता है और न विनशता है। और जो त्रिकाल अविनाशी द्रव्यके उत्पादव्यय होते हैं, वे पर्यायार्थिक नयकी विवक्षाकर गुणपर्यायोंमें जानने। जैसे

१ व्ययस्य विनाशस्य वा. २ भावस्येति पदस्य कोऽर्थः? तद्यथा-सतो हि द्रव्यस्येत्यनेन विद्यमानस्य द्रव्यत्वेन न विनाश इत्यर्थः।

न चापि गोरसव्यतिरिक्तस्यार्थान्तरस्यासतः उत्पादः किंतु गोरसस्यैव सदुच्छेदमसदुत्पादश्चानुपलभ्यमानस्य स्पर्शरसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्य्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते तथा सर्वभावानामपीति ॥ १५ ॥

अत्र भावगुणपर्यायाः प्रज्ञापिताः;—

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो ।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥१६॥

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोगः ।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्यायाः बहवः ॥ १६ ॥

भावा हि जीवादयः षट् पदार्थाः । तेषाम् गुणाः पर्यायाश्च प्रसिद्धाः । तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते । गुणा स्य ज्ञानानुभूति-

---

माननमायालोभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरभावशून्यमपि उत्पादव्ययरहितेन वा पाठः । आद्यंतरहितेन चिदानंदैकस्वभावेन भरिताव जीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं ध्यातव्यमित्यभिप्रायः ॥ १५ ॥ इति द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्धं प्रति द्रव्यस्थापनार्थं सूत्रगाथा गता । अथ पूर्वगाथोक्तान् गुणपर्यायभावान् प्रज्ञापयति;—भावा जीवादीया भावाः पदार्था भवंति । कानि । जीवादिषड्द्रव्याणि, धर्मादिचतुर्द्रव्याणां गुणपर्यायानग्रे यथास्थानं विशेषेण कथयति । अत्र तावत् जीवगुणा अभिधीयंते जीवगुणा चेदणा य उवओगो जीवगुणा भवन्ति । के ते । शुद्धाशुद्धरूपेण द्विविधा चेतना ज्ञानदर्शनोपयोगौ चेति

गोरस अपने द्रव्यत्वकर उपजता विनशता नहीं है—अन्यद्रव्यरूप होकर नहीं परिणमता है, आपसरीखा ही है, परंतु उसी गोरसमें दधि, माखन, घृतादि पर्याय उपजती विनशती हैं, वे अपने स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंके परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाते हैं। इसी प्रकार द्रव्य अपने स्वरूपसे अन्यद्रव्यरूप होकरके नहीं परिणमता है। सदा आपसरीखा है। अपने अपने गुण परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाता है, इस कारण उपजते विनशते कहे जाते हैं ॥ १५ ॥ आगे षड्द्रव्योंके गुणपर्याय कहते हैं;—[भावाः] पदार्थ [जीवाद्याः] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह जानने। इन षट् द्रव्योंके जो गुणपर्याय हैं, वे सिद्धांतोंमें प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें जीवनामा पदार्थ प्रधान है। उसका स्वरूप जाननेकेलिये असाधारण लक्षण कहा जाता है। [जीवगुणाः चेतना च उपयोगः] जीव द्रव्यका निज लक्षण एक तो शुद्धाशुद्ध अनुभूतिरूप चेतना है और दूसरा—शुद्धाशुद्ध-

---

१ अप्राप्यमाणस्य, २ द्रव्यगुणपर्याया ।

लक्षणा शुद्धचेतना, कार्यानुभूतिलक्षणा कर्मफलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चैतन्यानुविधायिपरिणामलक्षणः सविकल्पनिर्विकल्परूपः शुद्धाशुद्धतया सकलविकलतां

संग्रहवाक्यं वार्तिकं समुदायकथनं तात्पर्यार्थकथनं संपिंडितार्थकथनमिति यावत् । तद्यथा । ज्ञानचेतना शुद्धचेतना भण्यते, कर्मचेतना कर्मफलचेतना अशुद्धा भण्यते सा त्रिप्रकारापि चेतना अग्रे चेतनाधिकारे विस्तरेण व्याख्यायते । इदानीमुपयोगः कथ्यते । सविकल्पो ज्ञानोपयोगो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगः । ज्ञानोपयोगोऽष्टधा, मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानीति संज्ञानपंचकं कुमतिकुश्रुतविभंगरूपेणाज्ञानत्रयमित्यष्टधा ज्ञानोपयोगः । तत्र केवलज्ञानं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, शेषाणि सप्त मतिज्ञानादीनि क्षायोपशमिकानि सावरणत्वादशुद्धानि । दर्शनोपयोगश्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनरूपेण चतुर्द्धा । तत्र केवलदर्शनं क्षायिकं निरावरणत्वात् शुद्धं, चक्षुरादित्रयं क्षायोपशमिकं सावरणत्वादशुद्धं । इदानीं जीवपर्यायाः कथ्यन्ते सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा सुरनरनारकतिर्यंचो जीवस्य विभावद्रव्यपर्याया बहवो भवन्ति । किंच । द्विधा पर्याया द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च । द्रव्यपर्यायलक्षणं कथ्यते—अनेकद्रव्यात्मिकाया ऐक्यप्रतिपत्तेर्निबन्धनकारणभूतो द्रव्यपर्यायः अनेकद्रव्यात्मिकैकयानवत् । स च द्रव्यपर्यायो द्विविधः समानजातीयोऽसमानजातीयश्चेति । समानजातीयः कथ्यते—द्वे त्रीणि वा चत्वारीत्यादिपरमाणुपुद्गलद्रव्याणि मिलित्वा स्कंधा भवन्तीत्यचेतनस्यापरेणाचेतनेन संबंधात्समानजातीयो भण्यते । असमानजातीयः कथ्यते—जीवस्य भवांतरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादिपर्यायोत्पत्तिः चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमानजातीयः द्रव्यपर्यायो भण्यते । एते समानजातीया असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति । कस्मादिति चेत् । अनेकद्रव्याणां परस्परसंश्लेषरूपेण संबंधात् । धर्मा-

---

चैतन्यपरिणामरूप उपयोग है । ये जीवद्रव्यके गुण हैं । [च] फिर [जीवस्य] जीवके [बहवः] नानाप्रकारके, [सुरनरनारकतिर्यञ्चः पर्यायाः] देवता मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च ये अशुद्धपर्याय जानने । भावार्थ—जीव द्रव्यके दो लक्षण हैं । एक तो चेतना है दूसरा उपयोग है । अनुभूतिका नाम चेतना है । वह अनुभूति ज्ञान, कर्म, कर्मफलके भेदसे तीन प्रकारकी है । जो ज्ञानभावसे स्वरूपका वेदना सो तो ज्ञानचेतना है, और जो कर्मका वेदना सो कर्मचेतना है, और कर्मफलका वेदना सो कर्मफलचेतना है । शुद्धाशुद्धजीवका सामान्य लक्षण है । जो चैतन्यभावकी परणतिरूप होकर प्रवर्तै सो उपयोग है । वह उपयोग दो प्रकारका है । एक सविकल्प और दूसरा

---

१ कर्मणां फलानि सुखादीनि कर्मफलानि तेषामनुभूतिः अनुभवनं भुक्तिः सैव लक्षणं यस्याः सेति.
२ ज्ञानदर्शनोपयोगः ।

दधानो द्वैधोपयोगश्च । पर्य्यायास्त्वगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्ताः शुद्धाः । सूत्रोपात्तास्तु सुरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणाः परद्रव्यसंबन्धनिर्वृत्तत्वादशुद्धाश्चेति ॥ १६ ॥

न्यद्रव्याणां परस्परसंश्लेषसंबंधेन पर्यायो न घटते परद्रव्यसंबंधेनाशुद्धपर्यायोपि न घटते । इदानीं गुणपर्यायाः कथ्यन्ते । तेपि द्विधा स्वभावविभावभेदेन । गुणद्वारेणान्वयरूपायाः एकत्वप्रतिपत्तेर्निबंधनं कारणभूतो गुणपर्यायः, स चैकद्रव्यगत एव सहकारफले हरितपांडुरादिवर्णवत् । कस्य । पुद्गलस्य । मतिज्ञानादिरूपेण ज्ञानान्तरपरिणमनवज्जीवस्य । एवं जीवपुद्गलयोर्विभावगुणरूपाः पर्याया ज्ञातव्याः । स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्यसाधारणाः । एवं स्वभावविभावगुणपर्याया ज्ञातव्याः । अथवा द्वितीयप्रकारेणार्थव्यंजनपर्यायरूपेण द्विधा पर्याया भवन्ति । तत्रार्थपर्यायाः सूक्ष्माः क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचरा विषया भवन्ति । व्यंजनपर्यायाः पुनः स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति । एते विभावरूपा व्यंजनपर्याया जीवस्य नरनारकादयो भवन्ति, स्वभावव्यंजनपर्यायो जीवस्य सिद्धरूपः । अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षटस्थानगतकषायहानिवृद्धिविशुद्धिसंक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः । पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कंधेषु वर्णान्तरादिपरणमनरूपाः । विभावव्यंजनपर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादिस्कंधेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्याः । शुद्धार्थपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिरूपेण पूर्वमेव स्वभावगुणपर्यायव्याख्यानकाले सर्वद्रव्याणां कथिताः । एते चार्थव्यंजनपर्यायाः पूर्वं "जेसिं अत्थिसहाओ" इत्यादिगाथायां ये भणिता जीवपुद्गलयोः स्वभावविभावद्रव्यपर्यायाः स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च ये भणितास्तेषु मध्ये तिष्ठन्ति । । अत्र गाथायां च ये द्रव्यपर्यायाः गुणपर्यायाश्च भणितास्तेषु च मध्ये तिष्ठन्ति । तर्हि किमर्थं पृथक्कथिता इति चेदेकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यंते चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्याया भण्यंते इति कालकृतभेदज्ञापनार्थं । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायपरिणतं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थः ॥ १६ ॥

निर्विकल्प । सविकल्प उपयोग तो ज्ञानका लक्षण है और निर्विकल्प दर्शनका लक्षण है । ज्ञान आठ प्रकारका है । कुमति १ कुश्रुति २ कुअवधि ३ मति ४ श्रुति ५ अवधि ६ मनःपर्यय ७ और केवल ८ । दर्शन भी चक्षु अचक्षु अवधि और केवल इन भेदोंसे चार प्रकारका है । केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों अखंड उपयोग शुद्ध जीवके लक्षण हैं । बाकीके दश उपयोग अशुद्ध जीवके होते हैं । ये तो जीवके गुण जानने । और जीवकी पर्याय भी शुद्धाशुद्धके भेदसे दो प्रकारकी हैं । जो अगुरुलघु षड्गुणी हानिवृद्धिरूप आगम प्रमाणतासे जानी जाती हैं, वह तो शुद्ध पर्याय कहलाती है और जो परद्रव्यके संबंधसे चारगतिरूप नरनारकादि हैं, वे अशुद्ध आत्माकी पर्याय हैं ॥ १६ ॥

इदं भावनाशाभावोत्पादनिषेधोदाहरणम्;—

मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा ।
उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥१७॥

मनुष्यत्वेन नष्टो देही देवो भवतीतरो वा ।
उभयत्र जीवभावो न नश्यति न जायतेऽन्यः ॥ १७ ॥

प्रतिसमयसंभवदगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्तस्वभावपर्यायसंतत्यविच्छेदकेनैकेन सोपाधिना मनुष्यत्वलक्षणेन पर्यायेण विनश्यति जीवः । तथाविधेन देवत्वलक्षणेन नारकतिर्यक्त्वलक्षणेन वान्येन पर्यायेणोत्पद्यते । न च मनुष्यत्वेन नाशे जीवत्वेनाऽपि नश्यति । देवत्वादिनोत्पादे जीवत्वेनाप्युपपद्यते । किं तु सदुच्छेदमसदुत्पादमन्तरेणैव तथा विवर्तत इति ॥ १७ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयेनोत्पादविनाशयोरपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादविनाशौ न भवत इति समर्थयति;—मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो हवेदि इदरो वा मनुष्यत्वेन मनुष्यपर्यायेण नष्टो विनष्टो मृतो देही संसारी जीवः पुण्यवशाद्देवो भवति स्वकीयकर्मवशादितरो वा नारकतिर्यग्मनुष्यो भवति उभयत्त जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो उभयत्र कोऽर्थः मनुष्यभवे देवभवे वा पर्यायार्थिकनयेन मनुष्यभवे नष्टे द्रव्यार्थिकनयेन न विनश्यति तथैव पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याये जाते सति द्रव्यार्थिकनयेनान्योपूर्वो न जायते नोत्पद्यते किंतु स एव । कोऽसौ । जीवभावो जीवपदार्थः । एवं पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वेपि द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययत्वं नास्तीति सिद्धं । अनेन व्याख्यानेन क्षणिकैकान्तमतं नित्यैकान्तमतं च निषिद्धमिति

आगे पदार्थके नाश और उत्पादको निषेधते हैं;—[मनुष्यत्वेन] मनुष्य पर्यायसे [नष्टः] विनशा [देही] जीव [देवः भवति] देवपर्यायरूप परिणमता है । [इतरो वा] अथवा नारकी तिर्यंच और मनुष्य हो जाता है । भावार्थ—अनादिकालसे लेकर यह संसारी जीव मोहके वशीभूत हो अज्ञानभावरूप परिणमता है । इसकारण स्वाभाविक षट्गुणी हानिवृद्धिरूप जो अगुरुलघुपर्याय धारावाही अखंडित त्रिकाल समयवर्त्ती है, उन भाव रूप परिणमता नहीं है, विभाव भावसे परिणमन होता हुआ मनुष्य देवता होता है । अथवा नरकादि पर्यायोंको धारण करता है । पर्यायसे पर्यायांतररूप होकर उपजता विनशता है । यद्यपि ऐसा है तथापि [उभयत्र जीवभावः] संसारी पर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययके होतेसंते भी जीवभाव कहा जाता है । [अन्यः] उस आत्माके सिवाय दूसरा [न नश्यति] नाश नहीं होता । [न जायते] और न उत्पन्न होता है । द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सदा टंकोत्कीर्ण अविनाशी है ।

---

१ निष्पन्न. २ सविकारेण ।

अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदाऽविनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितं;—

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो ।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥ १८ ॥

स च एव याति मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः ।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्य्यायः ॥ १८ ॥

यदेव पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादितामुभयीमवस्थामात्मसात् कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्यमानं च द्रव्यमालक्ष्यते । तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते । पर्यायास्तु तस्य पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्दोत्तरो-

सूत्रार्थः ॥ १७ ॥ अथ तमेवार्थं नयद्वयेन पुनरपि द्रढयति;—**सो चेव जादि मरणं** स च एव जीवपदार्थः पर्यायार्थिकनयेन देवपर्यायरूपां जातिमुत्पत्तिं **जादि** याति गच्छति स चैव मरणं याति **ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो** द्रव्यार्थिकनयेन पुनर्न नष्टो न चोत्पन्नः । तर्हि कोऽसौ नष्टः कोऽसौ उत्पन्न ? **उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ** पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याय उत्पन्नो मनुष्यपर्यायो विनष्टः । ननु यद्युत्पादविनाशौ तर्हि तस्यैव पदार्थस्य नित्यत्वं कथं ? नित्यत्वं तर्हि तस्यैवोत्पादव्ययद्वयं च कथं ? परस्परविरुद्धमिदं शीतोष्णवदिति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः । येषां मते सर्वथैकान्तेन नित्यं वस्तु क्षणिकं वा तेषां दूषणमिदं । कथमिति चेत् । येनैव रूपेण नित्यत्वं तेनैवानित्यत्वं न घटते, येन च रूपेणानित्यत्वं तेनैव नित्यत्वं न घटते कस्मात् । एकस्वभावत्वाद्वस्तुनस्तन्मते । जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्यार्थि-

सदा निःकलंक शुद्धस्वरूप है ॥ १७ ॥ आगे यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे कथंचित्प्रकारसे द्रव्य उपजता विनशता है, तथापि न उपजता है न विनशता है, ऐसा कहते हैं;— [स च एव] वह ही जीव [याति] उपजता है, जो कि [मरणं] मरणभावको [याति] प्राप्त होता है । [न नष्टः] स्वभावसे वही जीव न विनशा है [च] और [एव] निश्चयसे [न उत्पन्नः] न उपजा है । सदा एकरूप है । तब कौन उपजा विनशा है ? [पर्यायः] पर्याय ही [उत्पन्नः] उपजा [च] और [विनष्टः] विनशा है । कैसे ! जैसे कि–[देवः] देवपर्याय उत्पन्न हुआ [मनुष्यः] मनुष्यपर्याय विनशा है [इति] यह पर्यायका उत्पाद व्यय है, जीवका ध्रौव्य जानना । भावार्थ—जो पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पहिले पिछले पर्यायोंसे उपजता विनशता देखा जाता है, वही द्रव्य उत्पादव्यय अवस्थाके होतेसंते भी अपने अविनाशी स्वाभाविक एक स्वभावकर सदा न तो उपजता है और न विनशता है । और जो वे

१पूर्वोत्तरपर्य्यायौ विवेकसंपर्कौ पूर्वपर्यायस्य मनुष्यत्वलक्षणस्य विवेकः विवेचन विनाश इति यावत्, उत्तरपर्य्यायस्य देवत्वलक्षणस्य संपर्कः संबंधः संयोगः उत्पाद इत्यर्थः । इति पूर्वोत्तरपर्य्यायविवेकसंपर्कौ ताभ्यां निष्पादिता या सा ताम्. २ उत्पादव्ययसमर्थाम्. ३ उपमर्दो विनाशः ।

त्तरपरिणामोत्पादरूपाः प्रणाशसंभवधर्म्माणोऽभिधीयन्ते। ते च वस्तुत्वेन[2] द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः। ततः पर्य्यायैः सहैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीवद्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम्। देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमया उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति॥ १८॥

अत्र सदसतोरविनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वेनोपन्यस्तौ;—

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ[3] जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो॥१९॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनामः॥ १९॥

यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते य एव जायते स एव म्रियते तदेवं सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते। यत्तु देवो जायते मनुष्यो म्रियते इति

कनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च घटते। तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेक्षौ, तच्च सापेक्षत्वं "पज्जयरहियं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि" इत्यादि पूर्वं[1] व्याख्यातं तेन कारणेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परगौणमुख्यभावव्याख्यानादेकदेवदत्तस्य जन्यजनकादिभाववत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यत्वं घटते नास्ति विरोध इतिसूत्रार्थः॥ १८॥ अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सतो विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति स्थितमिति निश्चिनोति;—एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो एवं पूर्वोक्तगाथात्रय-

---

पूर्व उत्तर पर्याय हैं, वे ही विनाशीक स्वभावको धरे हैं। पहिले पर्यायोंका विनाश होता है अगले पर्योयोंका उत्पाद होता है। जो द्रव्य पहिले पर्यायोंमें तिष्ठता (रहता) है, वह ही द्रव्य अगले पर्यायोंमें विद्यमान है। पर्यायोंके भेदसे द्रव्योंमें भेद कहा जाता है। परन्तु वह द्रव्य जिस समय जिन पर्यायोंसे परिणमता है, उस समय उन ही पर्यायोंसे तन्मय है। द्रव्यका यह ही स्वभाव है जो कि परिणामोंसे एकभाव (एकता) धरता है। क्योंकि कथंचित्प्रकारसे परिणाम परिणामी (गुणगुणी) की एकता है। इसकारण परिणमनसे द्रव्य यद्यपि उपजता विनशता भी है, तथापि ध्रौव्य जानना॥ १८॥ आगे द्रव्यके स्वाभाविक ध्रौव्यभावकर 'सत्'का नाश नहीं, 'असत्'का उत्पाद नहीं, ऐसा कहते हैं;—[एवं] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [सतः] स्वा-

---

१ पर्य्यायाः. २ परमार्थेन. ३ तावदिवो, ऐसा भी पाठ है।

व्यपदिश्यते[1] तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य[2] देवमनुष्यगतिनाम्नस्तन्मात्रत्वादवि-[3]रुद्धं । यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणाव-च्छिन्नत्वात्[4] पर्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति । वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्वान्तरसंबन्धाभावात् अभावभाग्भवति । तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः[5] परस्थानेष्वभावभाजो[6] भवन्ति । जीवद्रव्यं तु सर्वपर्यायस्थानेषु[7] भावभागपि पर्यायान्तरसंबंधेन पर्यायान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति[8] ॥ १९ ॥

व्याख्यानेन यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्वं घटते तथापि द्रव्यार्थि-कनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पादः । कस्य । भावस्य जीव-पदार्थस्य । ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते, यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते । तावदियो जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो तावत्पल्यत्रयादिरूपं परिमाणं यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योऽसौ गतिनामकर्मोदयजनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोधः । तथाहि—यथा महतो वेणुदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपर्वस्थानेष्वभावभाञ्ज्यविद्यमानानि भवन्ति वंशदण्ड-स्तु सर्वपर्वस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते, तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपाः पर्वस्थानीया अनेकपर्यायाः स्वकीयायुःकर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपर्वस्थानीयसर्व-

भाविक अविनाशी स्वभावका [विनाशः] नाश [न अस्ति] नहीं है । [अस-तः जीवस्य] जो स्वाभाविक जीवभाव नहीं है उसका [उत्पादः] उपजना ["नास्ति"] नहीं है [तावत्] प्रथम ही यह जीवका स्वरूप जानना । और [जीवानां] जीवोंका [देवः मनुष्य इति] देव है, मनुष्य है, इत्यादि कथन है सो [गतिनामः] गतिनामवाले नामकर्मकी विपाकअवस्थासे उत्पन्न हुआ कर्मज-नित भाव है । भावार्थ—जीव द्रव्यका कथन दो प्रकार है । एक तो उत्पादव्ययकी मुख्यता लिये हुये, दूसरा ध्रौव्यभावकी मुख्यता लिये हुये । इन दोनों कथनोंमें जब ध्रौव्यभावकी मुख्यताकर कथन किया जाय, तब इस ही प्रकार कहा जाता है कि जो जीवद्रव्य मरता है, सो ही उपजता है, और जो उपजता है, वही मरता है । पर्या-योंकी परंपरामें यद्यपि अविनाशी वस्तुके कथनका प्रयोजन नहीं है, तथापि व्यवहार-

१ कथ्यते. २ आयुःप्रमाणम्. ३ उत्पादव्ययमात्रत्वात्. ४ स्वकीयप्रमाणपरिच्छेद्यात्. ५ उत्पत्तिभोक्तारः. ६ विनाशभाजः भवन्ति. ७ देवलक्षणोत्तरपर्यायसंबन्धेन. ८ मनुष्यलक्षणपूर्वपर्यायसंबन्धाभावात्. ।

पर्यायेषु विद्यमानोपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते। स एव नित्यः स एवानित्यः कथं घटत इति चेत्। यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा, पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं, पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणं। कस्मात्? विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनावि-

---

मात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेकेलिये ऐसे ही कथन किया जाता है। और जो उत्पादव्ययकी अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजता है, और ही विनशता है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदय से जानना। कैसे कि, जैसे—मनुष्यपर्याय विनशती है, देवपर्याय उपजती है, सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथन अविरुद्ध है; यह वात सिद्ध है। इस कारण यह वात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी अपेक्षासे तो वही जीव उपजता और वही जीव विनशता है और उत्पाद व्ययकी अपेक्षा अन्य जीव उपजता है और अन्य ही विनशता है। यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जाता है। जैसे—एक वड़ा वांस है, उसमें क्रमसे अनेक पौरी (गांठ) हैं। उस वांसका जो विचार किया जाता है तो दो प्रकारके विचारसे उस बांसकी सिद्धि होती है। एक सामान्यरूप वांसका कथन है, एक उसमें विशेष रूप पौरियोंका कथन है। जव पौरियोंका कथन किया जाता है तो जो पौरी अपने परिणामको लिये हुये जितनी हैं, उतनी ही हैं। अन्य पौरीसे मिलती नहीं हैं। अपने अपने परिमाणको लिये हुये सव पौरी न्यारी न्यारी हैं। वांस सव पौरियोंमें एक ही है। जव वांसका विचार पौरियोंकी पृथक्तासे किया जाय, तव वाँसका एक कथन नहीं आ सकता। जिस पौरीकी अपेक्षासे बाँस कहा जाता है सो उस ही पौरीका वाँस होता है। उसको और पौरीका वाँस नहीं कहा जाता। अन्य पौरीकी अपेक्षा वही वाँस अन्य पौरीका कहा जाता है। इस प्रकार पौरियोंकी अपेक्षासे वांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सव पौरियोंमें वांसका कथन न किया जाय तो एक वाँसका कथन कहा जाता है। इस कारण वांसकी अपेक्षा एक वाँस है। पौरियोंकी अपेक्षा एक वाँस नहीं है। इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है। उसमें क्रमवर्ती देवमनुष्यादि अनेक पर्याय हैं, सो वे पर्याय अपने अपने परिमाण लियेहुये हैं। किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलती नहीं है, सव न्यारी न्यारी हैं। जव पर्यायोंकी अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो अविनाशी एक जीवका कथन आता नहीं। और जो पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं ली जाय तो जीवद्रव्य त्रिकाल में अभेदस्वरूप एक ही कहा जाता है। इस कारण यह वात सिद्ध हुई कि—जीवद्रव्य निजभाव से तो सदा टंकोत्कीर्ण एकस्वरूप नित्य है और पर्यायकी अपेक्षा नित्य नहीं है। पर्यायोंकी अनेकतासे अनेक होता है अन्य पर्यायकी अपेक्षा अन्य भी कहा जाता है। इस कारण द्रव्यके कथनकी

अत्रात्यन्तासदुत्पादत्वं सिद्धस्य निषिद्धम्;—

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा ।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥२०॥

ज्ञानावरणाद्या भावा जीवेन सुष्ठु अनुबद्धाः ।
तेषामभावं कृत्वाऽभूतपूर्वो भवति सिद्धः ॥२०॥

यथा स्तोककालान्वयिषु नामकर्मविशेषोदयनिर्वृत्तेषु[1] जीवस्य देवादिपर्यायेष्वेकस्मिन्[2]

नश्वरमनन्तज्ञानादिरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं रागादिपरिहारेणोपादेयरूपेण भावनीयमिति भावार्थः ॥१९॥ एवं बौद्धमतनिराकरणार्थमेकसूत्रगाथा प्रथमस्थले पूर्वं भणिता, तस्या विवरणार्थं द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथ यद्यपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सर्वदैव शुद्धरूपस्तिष्ठति तथापि पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्यासदुत्पादो भवतीत्यावेदयति, अथवा यदा मनुष्यपर्याये विनष्टे देवपर्याये जाते स एव जीवस्तथा मिथ्यात्वरागादिपरिणामाभावात् संसारपर्यायविनाशे सिद्धपर्याये जाते सति जीवत्वेन विनाशो नास्त्युभयत्र स एव जीव इति दर्शयति, अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयद्वयेन पूर्वोक्तप्रकारेणानेकान्तात्मकं तत्त्वं प्रतिपाद्य पश्चात्संसारावस्थायां ज्ञानावरणादिरूपबन्धकारणभूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणामं त्यक्त्वा शुद्धभावपरिणमनान्मोक्षं च कथयतीति पातनिकात्रयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—**णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा** ज्ञानावरणादिभावा द्रव्यकर्मपर्यायाः संसारजीवेन सुष्ठु संश्लेषरूपेणानादिसंतानेन बद्धास्तिष्ठन्ति तावत् **तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो** यदा कालादिलब्धिवशाद्भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गं लभते तदा

अपेक्षा सत्का नाश नहीं और असत्का उत्पाद नहीं है । पर्यायकथनकी अपेक्षा नाश उत्पाद कहा जाता है ॥ १९ ॥ आगे सर्वथा प्रकारसे संसारपर्यायके अभावरूप सिद्धपदको दिखाते हैं;–[ज्ञानावरणाद्याः] ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार [भावाः] कर्मपर्याय जो हैं सो [जीवेन] संसारी जीवको [सुष्ठु] अनादि कालसे लेकर राग द्वेष मोहके वशसे भलीभांति अतिशय गाढे [अनुबद्धाः] बांधे हुये हैं [तेषां] उन कर्मोंका [अभावं] मूलसत्तासे नाश [कृत्वा] करके [अभूतपूर्वः] जो अनादि कालसे लेकर किसीकालमें भी नहीं हुआ था ऐसा [सिद्धः] सिद्ध परमेष्ठीपद [भवति] होता है । भावार्थ—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक भेदसे नय दो प्रकारका है । जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षा की जाती है, तब तो त्रिकाल में जीवद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण, संसार पर्याय अवस्थाके होते हुये भी उत्पाद नाशसे रहित सिद्ध समान है ।

---

१ निष्पन्नेषु. २ पर्य्याये ।

स्वकारणनिर्वृत्तौ निर्वृत्तेऽभूतपूर्व एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने न[1]ासदुत्पत्तिः। तथा दीर्घकाला[2]न्वयिनि ज्ञानावरणादिकर्मसामान्योदयनिर्वृत्तिसंसारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारणनिर्वृत्तौ[3] निर्वृत्ते[4] समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे[5] सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति। किं च यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिता[6]व्यवहितविचित्रकिर्मीरताखचिताधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्द्धभागेऽवतारिता[7] दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति[8] तस्य[9] सर्वत्रा[10]विशुद्धत्वम्[11]। तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणादिकर्म्म-

---

तेषां ज्ञानावरणादिभावानां द्रव्यभावकर्मरूपपर्यायाणामभावं विनाशं कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनाभूतपूर्वसिद्धो भवति द्रव्यार्थिकनयेन पूर्वमेव सिद्धरूप इति वार्तिकं। तथाहि—यथैको महान् वेणुदण्डः पूर्वार्धभागे विचित्रचित्रेण खचितः शबलितो मिश्रितः तिष्ठति तस्मादूर्ध्वार्द्धभागे विचित्रचित्राभावाच्छुद्ध एव तिष्ठति तत्र यदा कोपि देवदत्तो दृष्ट्यावलोकनं करोति तदा भ्रान्तिज्ञानवशेन विचित्रचित्रवशादशुद्धत्वं ज्ञात्वा तस्मादुत्तरार्धभागेप्यशुद्धत्वं मन्यते तथायं जीवः संसारावस्थायां मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामवशेन व्यवहारेणाशुद्धस्तिष्ठति शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाभ्यन्तरे केवल-

---

पर्यायार्थिकनयकी विवक्षा से जीवद्रव्य जब जैसी देवादिकपर्यायको धारण करता है तब वैसा ही होकर परिणमता हुआ उत्पाद नाश अवस्थाको धरता है। इन ही दोनों नयोंका विलास दिखाया जाता है। अनादि कालसे लेकर संसारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंके संबंधोंसे संसारी पर्याय है। वहाँ भव्य जीवको काललब्धिसे सम्यग्दर्शनादि मोक्षकी सामग्री पानेसे सिद्ध पर्याय यद्यपि होती है तथापि द्रव्यार्थिकयनकी अपेक्षा सिद्धपर्याय नूतन (नया) हुआ नहीं कहा जा सकता। अनादिनिधन ज्योंका त्यों ही है। कैसे? जैसे कि,—अपनी थोड़ी स्थिति लिये नामकर्मके उदयसे निर्मापित देवादिक पर्याय होते हैं, उनमें कोई एक पर्याय अशुद्ध कारणसे जीव के उत्पन्न होनेसे नवीन पर्याय हुआ नहीं कहा जाता। क्योंकि—संसारीके अशुद्धपर्यायोंकी संतान होती ही है। जो पहिले न होती तो नवीन पर्याय उत्पन्न कहा जाता। इस कारण जब तक जीव संसारमें है, तबतक पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नया संसार-पर्याय उत्पन्न हुआ नहीं कहा जाता, पहिला ही है। उसी प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा नवीन सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ नहीं कहा जाता, किन्तु शाश्वत रूपसे सदा जीवद्रव्यमें आत्मीक भावरूप सिद्धपर्याय विद्यमान ही है। संसारपर्यायको नष्ट करके सिद्धपर्याय नवीन उत्पन्न हुआ, ऐसा जो कथन है सो पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे है। जैसे एक बड़ा बांस है,

---

१ अविद्यमानोत्पत्तिर्न. २ बहुकालानुवर्तिनि. ३ अतिक्रान्ते. ४ विनाशं गते सति. ५ पूर्वमनुत्पन्ने. ६ आच्छादितानाच्छादित. ७ आरोपिता. ८ अनुमानं करोति संकल्पयति प्रमाणयति वा. ९ वेणुदण्डस्य. १० सर्वस्मिन्नूर्ध्वाधोभागे. ११ प्रलिप्तत्वम्।

किर्मीरताखचितवहुतराधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धवहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्म्मकिर्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती[1] समनुमिनोति[2] तस्य[3] सर्वत्रा[4]विशुद्धत्वम् । यथा च तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिवन्धनविचित्रकिर्म्मीरतान्वयः । तथा च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयः[5] । यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्मीरताभावात्सुविशुद्धत्वं । तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्मीरतान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति ॥ २० ॥

ज्ञानादिस्वरूपेण शुद्ध एव तिष्ठति । यदा रागादिपरिणामाविष्टः सन् सविकल्परूपेन्द्रियज्ञानेन विचारं करोति तदा यथा वहिर्भागे रागाद्याविष्टमात्मानमशुद्धं पश्यति तथाभ्यन्तरेपि केवलज्ञानादिस्वरूपेप्यशुद्धत्वं मन्यते भ्रान्तिज्ञानेन । यथा वेणुदण्डे विचित्रचित्रमिश्रितत्वं भ्रान्तिज्ञानकारणं तथात्र जीवे मिथ्यात्वरागादिरूपं भ्रान्तिज्ञानकारणं भवति । यथा वेणुदण्डो विचित्रचित्रप्रक्षालने कृते शुद्धो भवति तथायं जीवोपि यदा गुरूणां पार्श्वे शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशकं परमागमं जानाति । कीदृशमिति चेत् । "एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः । वाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वदा" इत्यादि । तथैव च देहात्मनोरत्यन्तभेदो भिन्नलक्षणलक्षितत्वाज्जलानलादिवदित्यनुमानज्ञानं जानाति तथैव च वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं जानाति । तदित्थंभूतागमानुमानस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानात् शुद्धो भवति । अत्राभूतपूर्वसिद्धत्वरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं

उसके आधे वाँसमें तो चित्र किये हुये हैं और आधे वाँसमें चित्र किये हुये नहीं हैं । जिस आधे भागमें चित्र नहीं, वह तो ढक रक्खा है और जिस अर्धभागमें चित्र हैं सो निरावरण (उघड़ा हुवा) है । जो पुरुप इस वाँसके इस भेदको नहीं जानता हो, उसको यह वाँस दिखाया जाय तो वह पुरुष पूरे वाँसको चित्रित कहेगा, क्योंकि चित्ररहित जो अर्द्ध भाग निर्मल है, उसको जानता नहीं है । उसही प्रकार यह जीव पदार्थ एक भाग तो अनेक संसारपर्यायोंके द्वारा चित्रित हुआ वहुरूप है और एक भाग शुद्ध सिद्धपर्याय लिये हुये है । जो शुद्ध पर्याय है सो प्रत्यक्ष नहीं है । ऐसे जीव द्रव्यका स्वरूप जो अज्ञानी जीव नहीं जानता हो, सो संसारपर्यायको देखकर जीव-द्रव्यके स्वरूपको सर्वथा अशुद्ध ही मानेगा । जव सम्यग्ज्ञान होवे, तव सर्वज्ञप्रणीत यथार्थ आगम ज्ञान अनुमान स्वसंवेदनज्ञान होवे तव इनके वलसे यथार्थ शुद्ध आत्मीक स्वरूपको जान, देख, आचरण कर, समस्त कर्म पर्यायोंको नाश करके सिद्ध पदको प्राप्त होता है । जैसे जलादिकसे धोनेपर चित्रित वाँस निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार

---

१ चिन्तयन्ती. २ अनुमानं करोति. ३ तस्य जीवस्य. ४ सर्वस्मिन् जीवद्रव्यज्ञानावरणादित्वम्. ५ चित्ररचनासंतानः. ६ पर्यायाभावान्वयः इति पाठान्तरम् ।

जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारो[१]ऽयं;—

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च ।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥२१॥

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च ।
गुणपर्यैयैः सहितः संसरन् करोति जीवः ॥ २१ ॥

द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातं । ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तं । तस्यैव[२] देवादिपर्य्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं[३] । तस्यैव च मनुष्यादिपर्य्यायरूपेण व्ययतोऽभावकर्तृत्वमाख्यातं । तस्यैव च सतो[४] देवादिपर्य्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुपपादितं । तस्यैव चासतः पुनर्मनुष्यादिपर्य्यायस्योत्पादमारभमाणस्याभावभावकर्तृत्वमभिहितं । सर्वमिदमनवद्यं द्रव्यपर्य्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्या-

---

शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः ॥ २० ॥ एवं तृतीयस्थले पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्याभूतपूर्वोत्पादव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपसंहारव्याख्यानमुद्योतयति,—**एवं भावमभावं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन पूर्वं मनुष्यपर्यायस्याभावं व्ययं कृत्वा पश्चाद्देवोत्पत्तिकाले भावं देवपर्यायस्योत्पादं **कुणदि** करोति **भावाभावं** पुनरपि देवपर्यायच्यवनकाले विद्यमानस्य देवभावस्य पर्यायस्याभावं करोति **अभावभावं च** पश्चान्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिकाले अभावस्याविद्यमानमानुष्यपर्यायस्य भावमुत्पादं करोति । स कः कर्ता । **जीवो** जीवः । कथंभूतः । **गुणपज्जयेहि**

सम्यग्ज्ञानकर मिथ्यात्वादि भावोंके नाश होनेसे आत्मा शुद्ध होता है ॥ २० ॥ आगे जीवकी उत्पादव्यय दशाओं द्वारा 'सत्‌का' उच्छेद 'असत्' का उत्पाद इनकी संक्षेपतासे सिद्धि दिखाते हैं;—[**एवं**] इस पूर्वोक्तप्रकार पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे [**संसरन्**] पंचपरावर्तन अवस्थाओंसे संसारमें भ्रमण करता हुआ यह [**जीवः**] आत्मा [**भावं**] देवादिक पर्यायोंको [**करोति**] करता है [**च**] और [**अभावं**] मनुष्यादि पर्यायोंका नाश करता है । [**'च'**] तथा [**भावाभावं**] विद्यमान देवादिक पर्यायोंके नाशका आरंभ करता है [**'च'**] और [**अभावभावं**] जो विद्यमान नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसके उत्पादका आरंभ करता है । कैसा है यह जीव [**गुणपर्यायैः**] जैसी अवस्था लिये हुये है, उसही तरह अपने शुद्ध अशुद्ध गुणपर्यायोंसे [**सहितः**] संयुक्त है । **भावार्थ**—अपने द्रव्यत्वस्वरूपसे समस्त पदार्थ उपजते विनशते नहीं, किंतु नित्य हैं, इस कारण जीवद्रव्य भी अपने द्रव्यत्वसे नित्य है । उस ही जीवद्रव्यके अशुद्धपर्यायकी अपेक्षा भाव, अभाव, भावाभाव, अभावभाव इन

---

१ अभिप्रायः. २ तस्य जीवस्य. ३ पर्य्यायोत्पादकत्वमुक्तम्. ४ अविद्यमानस्य ।

नात् । तथा हि—यदा जीवः पर्यायगुणत्वेन[1] द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते न विनश्यति न च क्रमवृत्त्यावर्तमानत्वात् सत्पर्यायजातमुच्छिनत्ति, नासदुत्पादयति । यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति विनश्यति सत्पर्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति[2], असदुपस्थितं[3] स्वकालमुत्पादयति चेति । स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोधः ॥२१॥ इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा ।

सहिदो कुमतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायसहितः । न च केवलज्ञानादिस्वभावगुणसिद्धरूपशुद्धपर्यायसहितः । कस्मादिति चेत् । तत्र केवलज्ञानाद्यवस्थायां नरनारकादिविभावपर्यायाणामसंभवात् अगुरुलघुकगुणषड्ढानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं, करोति नास्ति विरोधः । किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति । संसरमाणो संसरन् परिभ्रमन् सन् । क । द्रव्यक्षेत्रकालभवभावस्वरूपपञ्चप्रकारसंसारे । अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये यत्सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणं तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्तः सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पादं करोति तथैव चाभावं व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथा-

---

भेदोंसे चार प्रकार पर्यायका अस्तित्व कहा गया है । जहाँ देवादिपर्यायोंकी उत्पत्तिरूप होकर परिणमता है, वहाँ तो भावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहाँ मनुष्यादि पर्यायके नाशरूप परिणमता है, वहाँ अभावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहां विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशकी प्रारंभदशारूप होकर परिणमता है, वहां भावअभावका कर्तृत्व है । और जहाँ नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसकी प्रारंभदशारूप होकर परिणमता है, वहां अभाव भावका कर्तृत्व कहा जाता है । यह चार प्रकार पर्यायकी विवक्षासे अखंडित व्याख्यान जानना । द्रव्यपर्यायकी मुख्यता और गौणतासे द्रव्योंमें भेद होता है, वह भेद दिखाया जाता है । जब जीवका कथन पर्यायकी गौणता और द्रव्यकी मुख्यतासे किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकार कर्तृत्व नहीं संभवता । और जब द्रव्यकी गौणता और पर्यायकी मुख्यतासे जीवका कथन किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकारके पर्यायका कर्तृत्व अविरुद्ध संभवता है । इस प्रकार यह मुख्य गौण भेदके कारण व्याख्यान भगवत्सर्वज्ञप्रणीत अनेकांतवादमें विरोध भावको नहीं धरता है । स्यात्पदसे अविरुद्ध साधता है । जैसे द्रव्यकी अशुद्धपर्यायके कथनसे सिद्धि की, उसीप्रकार आगमप्रमाणसे शुद्ध पर्यायोंकी भी विवक्षा जाननी । अन्य द्रव्योंका भी सिद्धांतानुसार गुणपर्यायका कथन साध लेना । यह सामान्य स्वरूप षड्द्रव्योंका व्याख्यान जानना ॥२१॥

---

१ गौणत्वेन. २ उच्छेदयति. ३ असद्रूपेणावस्थितम् ।

अत्र सामान्येनोक्तलक्षणानां षण्णां द्रव्याणां मध्यात् पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्था-
पितम्;—

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा ।
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्य ॥२२॥

जीवाः पुद्गलकायाः आकाशमस्तिकायौ शेषौ ।
अमया अस्तित्वमयाः कारणभूता हि लोकस्य ॥२२॥

अकृतत्वात् अस्तित्वमयत्वात् विचित्रात्मपरिणतिरूपस्य लोकस्य कारणत्वाच्चाभ्युपग-
म्यमानेषु षट्सु द्रव्येषु जीवपुद्गलाकाशधर्म्माधर्म्माः प्रदेशप्रचयात्मकत्वात् पञ्चास्तिकायाः ।
न खलु कालस्तदभावादस्तिकाय इति सामर्थ्यादवसीयत[3] इति ॥ २२ ॥

नुचरणं च निरन्तरं सर्वतात्पर्येण कर्तव्यमिति भावार्थः ॥ २१ ॥ एवं द्रव्यार्थिकनयेन नित्य-
त्वेपि पर्यायार्थिकनयेन संसारिजीवस्य देवमनुष्याद्युत्पादव्ययकर्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन
चतुर्थस्थले गाथा गता । इति स्थलचतुष्टयेन द्वितीयं सप्तकं गतं । एवं प्रथमगाथासप्तके यदुक्तं
स्थलपञ्चकं तेन सह नवभिरन्तरस्थलैश्चतुर्दशगाथाभिः प्रथममहाधिकारमध्ये द्रव्यपीठिका-
भिधाने द्वितीयोन्तराधिकारः समाप्तः । अथ कालद्रव्यप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं क-
थ्यते । तत्र पञ्चगाथासु मध्ये षड्गुणमध्याज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनार्थं "जीवा पुग्गल-
काया" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनन्तरं निश्चयकालकथनरूपेण "सब्भावसहावाणं" इत्यादि
सूत्रद्वयं टीकाभिप्रायेण सूत्रमेकं, पुनश्च समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन "समओ णिमिसो"
इत्यादि गाथाद्वयं एवं स्थलत्रयेण तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका । अथ सामान्योक्तलक्ष-
णानां षण्णां द्रव्याणां यथोक्तस्मरणार्थमग्रे विशेषव्याख्यानार्थं वा पञ्चानामस्तिकायत्वं व्यवस्थाप-
यति;—**जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा** जीवाः पुद्गलकाया आकाशं
अस्तिकायिकौ शेषौ धर्माधर्मौ चेति एते पंच । कथंभूताः । **अमया** अकृतिमा, न केनापि
पुरुषविशेषेण कृताः । तर्हि कथं निष्पन्नाः । **अत्थित्तमया** अस्तित्वमयाः स्वकीयास्तित्वेन

आगे सामान्यतासे कहा जो यह षड्द्रव्योंका सामान्यवर्णन उनमेंसे पाँचद्रव्योंको पंचा-
स्तिकाय संज्ञा स्थापन करते हैं;—[जीवाः] एक तो जीवद्रव्य कायवंत हैं [पुद्गल-
कायाः] दूसरा पुद्गलद्रव्य कायवंत हैं और [आकाशः] तीसरा आकाशद्रव्य काय-
वंत है और [शेषौ] चौथा धर्म और पाँचवाँ अधर्मद्रव्य भी [अस्ति कायौ] कायवंत
हैं । ये पाँच द्रव्य कायवंत कैसे हैं [अमया] किसीके भी बनाये हुये नहीं हैं, स्वभाव-
हीसे स्वयंसिद्ध हैं । फिर कैसे हैं ? [अस्तित्वमयाः] उत्पादव्ययध्रौव्यरूप जो सद्-

---

१ कालः खल्वस्तिकाय इति बलात्कारेणाङ्गीक्रियते न व्यवह्रियते इत्यर्थः. २ प्रदेशप्रचयात्मक-
स्याभावात् कायत्वाभावात्. ३ निश्चीयते ।

अत्रास्तिकायत्वेनानुक्तस्यापि कालस्यार्थापन्नत्वं द्योतितं;—

सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च ।
परियट्टणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥२३॥

सद्भावस्वभावानां जीवानां तथा च पुद्गलानां च ।
परिवर्तनसम्भूतः कालो नियमेन प्रज्ञप्तः ॥ २३ ॥

इह हि जीवानां पुद्गलानां च सत्तास्वभावत्वादस्ति प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यैकवृत्ति-

---

स्वकीयसत्तया निर्वृत्ता निष्पन्ना जाता इत्यनेन पञ्चानामस्तित्वं निरूपितं । पुनरपि कथंभूताः । **कारणभूदा दु लोगस्स** कारणभूताः । कस्य । लोकस्य "जीवादिषड्द्रव्याणां समवायो मेलापको लोक" इति वचनात् । स च लोकः उत्पादव्ययध्रौव्यवान् तेनास्तित्वं लोक्यते, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति वचनात् । पुनरपि कथंभूतो लोकः ? ऊर्ध्वाधोमध्यभागेन सांशः सावयवस्तेन कायत्वं कथितं भवतीति सूत्रार्थः ॥ २२ ॥ एवं षड्द्रव्यमध्याज्जीवादिपञ्चानामस्तिकायत्वसूचनरूपेण गाथा गता । अथात्र पञ्चास्तिकायप्रकरणेऽस्तिकायत्वेनानुक्तोपि कालः सामर्थ्येन लब्ध इति प्रतिपादयति;—**सब्भावसहावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च** सद्भावस्सत्ता सैव स्वभावः स्वरूपं येषां ते सद्भावस्वभावास्तेषां सद्भावस्वभावानां जीवपुद्गलानां अथवा सद्भावानामित्यनेन धर्माधर्माकाशानि गृह्यन्ते **परियट्टणसंभूदो** परिवर्तनसंभूतः परिवर्तनं नवजीर्णरूपेण परिणमनं तत्परिवर्तनं संभूतं समुत्पन्नं यस्मात्स भवति परिवर्तनसंभूतः **कालो** कालाणुरूपो द्रव्यकालः **णियमेण** निश्चयेन **पण्णत्तो** प्रज्ञप्तः कथितः । कैः ? सर्वज्ञैः, तथापि पञ्चास्ति-

---

भाव उसके द्वारा अपने स्वरूप अस्तित्वको लियेहुये परिणामी हैं। फिर कैसे हैं ? [**हि**] निश्चयकरके [**लोकस्य**] नाना प्रकारकी परिणतिरूप लोकके [**कारणभूताः**] निमित्तभूत हैं अर्थात् लोक इनसे ही बना हुआ है । **भावार्थ**—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं । इनमेंसे काल द्रव्यके विना पाँचद्रव्य पंचास्तिकाय हैं । क्योंकि इन पाँचों ही द्रव्योंके प्रदेशोंका समूह काय है । जहाँ प्रदेशोंका समूह हो वहाँ काय संज्ञा कही जाती है । इस कारण ये पाँचों ही द्रव्य कायवंत हैं । कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है । इस कारण वह अकाय है । यह कथन विशेषकरके आगमप्रमाणसे जाना जाता है ॥ २२ ॥ आगे यद्यपि कालको कायसंज्ञा नहीं कही तथापि द्रव्यसंज्ञा है । इसके विना सिद्धि होती नहीं । यह काल अस्तिस्वरूप वस्तु है, ऐसा कथन करते हैं;—[**सद्भावस्वभावानां**] उत्पादव्ययध्रुवरूप अस्तिभाव जो है सो [**जीवानां**] जीवोंके [**च**] और [**तथाच**] वैसे ही [**पुद्गलानां**] पुद्गलोंके अर्थात् इन दोनों पदार्थों के [**परिवर्त्तनसम्भूतः**] नवजीर्णरूप परिणमन द्वारा जो प्रगट देखनेमें आता है, ऐसा जो पदार्थ है सो [**नियमेन**] निश्चयकरके [**कालः**] काल [**प्रज्ञप्तः**] भगवंत देवाधिदेवने

रूपः परिणामः । स[1] खलु सहकारिकारणसद्भावे[2] दृष्टः । गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत् । यस्तु सहकारिकारणं स कालस्तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते । यस्तु निश्चयकालपर्य्यायरूपो व्यवहारकालः स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्तदायत्त[3][4] एवाभिगम्यत एवेति ॥२३॥

कायव्याख्याने क्रियमाणे परमार्थकालस्यानुक्तस्याप्यर्थापन्नत्वमित्युक्तं पातनिकायां तत् कथं घटते ? प्रश्ने प्रत्युत्तरमाहुः—पञ्चास्तिकायाः परिणामिनः परिणामश्च कार्यं कार्यं च कारणमपेक्षते, स च द्रव्याणां परिणतिनिमित्तभूतः कालाणुरूपो द्रव्यकालः इत्यनया युक्त्या सामर्थ्येनार्थापन्नत्वं द्योतितं । किंच समयरूपः सूक्ष्मकालः पुद्गलपरमाणुना जनितः स एव निश्चयकालो भण्यते, घटिकादिरूपः स्थूलो व्यवहारकालो भण्यते, स च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रकाष्ठपुरुषहस्तव्यापाररूपः क्रियादिविशेषेण जनितो न च द्रव्यकालेनेति पूर्वपक्षे परिहारमाहुः—यद्यपि समयरूपः सूक्ष्मव्यवहारकालः पुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालश्च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनवस्त्रादिद्रव्यविशेषेण ज्ञायते तथापि तस्य समयघटिकादिपर्यायरूपव्यवहारकालस्य कालाणुरूपो द्रव्यकाल एवोपादानकारणं । कस्मात् ? उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । किंवदिति चेत् । कुंभकारचक्रचीवरादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य घटकार्यस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत् कुविंदतुरीवेमसलाकादिवहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य पटकार्यस्य तंतुसमूहोपादानकारणवत् इंधनाग्न्यादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य शाल्याद्योदनकार्यस्य शाल्यादितंडुलोपादानकारणवत्

कहा है । भावार्थ—इस लोकमें जीव और पुद्गलके समय समयमें नवजीर्णतारूप स्वभाव ही से परिणाम है, सो परिणाम किसी एक द्रव्यकी विना सहायताके नहीं होता । कैसे ? जैसे कि गति स्थिति अवगाहना धर्मादि द्रव्यकी सहायताके विना नहीं होती, वैसेही जीव पुद्गलकी परिणति किसी ही एक द्रव्यकी सहायताके विना नहीं होती । इस कारण परिणमनको कोई द्रव्य सहाय चाहिये, ऐसा अनुमान होता है । अतएव आगम प्रमाणतासे कालद्रव्य ही निमित्त कारण बनता है । उस कालके विना द्रव्योंके परिणामकी सिद्धि नहीं होती । इस कारण निश्चयकाल अवश्य मानना योग्य है । उस निश्चयकालकी जो पर्याय है सो समयादिरूप व्यवहारकाल जानना । यह व्यवहारकाल जीव और पुद्गलकी परिणतिद्वारा प्रगट होता है । पुद्गलके नवजीर्णपरिणामके आधीन जाना जाता है । इन जीव पुद्गलके परिणामोंका और कालका आपसमें निमित्तनैमित्तिक भाव है । कालके अस्तित्वसे जीव पुद्गलके परिणामका अस्तित्व है । और जीव-पुद्गलके

१ स परिणामः. २ अस्तित्वे सति. ३ प्रकटीक्रियमाणत्वात्. ४ जीवपुद्गलपरिणामाधीन एव गम्यते ।

ववगदपणवण्णरसो ववगददोगंधअट्ठफासो य ।
अगुरुलहुगो अमुत्तो वट्टणलक्खो य कालोत्ति ॥२४॥

व्यपगतपञ्चवर्णरसो व्यपगतद्विगन्धाष्टस्पर्शश्च ।
अगुरुलघुको अमूर्तो वर्त्तनलक्षणश्च काल इति ॥२४॥

स्पष्टम् ॥२४॥

कर्मोदयनिमित्तोत्पन्नस्य नरनारकादिपर्यायकार्यस्य जीवोपादानकारणवदित्यादि ॥२३॥ अथ पुनरपि निश्चयकालस्य स्वरूपं कथयति;—**ववगदपणवण्णरसो ववगददोअट्ठगंधफासो य** पञ्चवर्णपंचरसद्विगंधाष्टस्पर्शैर्व्यपगतो वर्जितो रहितः । पुनरपि कथंभूतः । **अगुरुलहुगो** षड्ढानिवृद्धिरूपागुरुलघुकगुणः । पुनरपि किंविशिष्टः । **अमुत्तो** यत एव वर्णादिरहितस्तत एवामूर्तः, ततश्चैव सूक्ष्मोतीन्द्रियज्ञानग्राह्यः । पुनश्च किंरूपः । **वट्टणलक्खो य कालोत्ति** सर्वद्रव्याणां निश्चयेन स्वयमेव परिणामं गच्छतां शीतकाले स्वयमेवाध्ययनक्रियां कुर्वाणस्य पुरुषस्याग्निसहकारिवत् स्वयमेव भ्रमणक्रियां कुर्वाणस्य कुम्भकारचक्रस्याधस्तनशिलासहकारिवद्बहिरङ्गनिमित्तत्वाद्वर्तनालक्षणश्च कालाणुरूपो निश्चयकालो भवति । किंच लोकाकाशाद्बहिर्भागे कालद्रव्यं नास्ति कथमाकाशस्य परिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—यथैकप्रदेशे स्पृष्टे सति लंवायमानमहावरत्रायां महावेणुदण्डे वा कुंभकारचक्रे वा सर्वत्र चलनं भवति यथैव च मनोजस्पर्शनेन्द्रियविषयैकदेशस्पर्शे कृते सति रसनेन्द्रियविषये च सर्वाङ्गेन सुखानुभवो भवति, यथैव चैकदेशे सर्पदष्टे व्रणादिके वा सर्वाङ्गेन दुःखवेदना भवति तथा लोकमध्ये स्थितेपि कालद्रव्ये सर्वत्रालोकाकाशे परिणतिर्भवति । कस्मात् । अखण्डैकद्रव्यत्वात् । कालद्रव्यमन्यद्रव्याणां परिणतिसहकारिकारणं भवति । कालस्य किं परिणतिसहकारिकारणमिति । आकाशस्याकाशाधारवत् ज्ञानादित्यरत्नप्रदीपानां स्वपरप्रकाशवच्च कालद्रव्यस्य परिणतेः काल एव सहकारिकारणं भवति । अथ मतं यथा कालद्रव्यं स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारी तथाशेषद्रव्याण्यपि स्वपरिणतेः स्वयमेव सहकारिकारणानि भविष्यन्ति कालद्रव्येण किं प्रयोजनमिति । परिहारमाह—सर्वद्रव्यसाधारणपरिणतिसहकारित्वं कालस्यैव गुणः । कथमिति

परिणामोंसे कालद्रव्यकी पर्याय जानी जाती है ॥ २३ ॥ आगे निश्चयकालके स्वरूपको दिखाते हैं और व्यवहारकालकी कथंचित् प्रकारसे पराधीनता दिखाते हैं;—[**कालः**] निश्चय काल [इति] इस प्रकार जानना कि [**व्यपगतपंचवर्णरसः**] नहीं हैं पाँच वर्ण और पाँच रस जिसमें (च) और [**व्यपगतद्विगंधाष्टस्पर्शः**] नहीं हैं दो गंध आठ स्पर्शगुण जिसमें, फिर कैसा है ? [**अगुरुलघुकः**] षड्गुणी हानिवृद्धिरूप अगुरुलघुगुणसंयुक्त है । [च] फिर कैसा है निश्चयकाल ? [**वर्त्तनलक्षणः**] अन्य द्रव्योंके परिणमानेको वाह्य निमित्त है लक्षण जिसका, ऐसा यह लक्षण कालाणु-

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्;—

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासोदुअयणसंवच्छरोत्ति काला परायत्तो ॥२५॥

चेत्। आकाशस्य सर्वसाधारणावकाशदानमिव धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथा-धर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव। तदपि कथमिति चेत्। अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्राप्तेः। किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणतेरुपादान कारणवत् सह-कारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यैः सहकारिका-रणभूतैः किं प्रयोजनं गतिस्थित्यवगाह्यः स्वयमेव भविष्यति। तथा सति किं दूषणं। जीवपुद्ग-लसंज्ञे द्वे एव द्रव्ये स चागमविरोधः। अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्यालाभे-ऽतीतानंतकाले संसारचक्रे भ्रमितोऽयं जीवः, ततः कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिरूपसंकल्पविकल्पकल्लोलमालापरिहारबलेन जीवन् स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः ॥२४॥ इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। अथ समयादिव्यवहार-कालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् कथं-

---

रूप निश्चयकालद्रव्यका जानना। **भावार्थ**—कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परिणतिको सहाई है। कैसे? जैसेकि—शीतकालमें शिष्यजन पठनक्रिया अपने आप करते हैं, उनको वहिरंगमें अग्नि सहाय होती है। तथा जैसे कुंभकार का चाक आपही से फिरता है, उसके परिभ्रमणको सहाय नीचेकी कीली होती है। इसी प्रकार सब द्रव्योंकी परणतिको निमित्तभूत कालद्रव्य है ॥ २४ ॥ यहां कोई प्रश्न करे कि—लोकाकाशसे बाहर कालद्रव्य नहीं है तब आकाश किसकी सहायता से परिणमता है? उसका **उत्तर**—जैसे कुम्भकारका चाक एक जगह फिराया जाता है, परंतु वह चाक सर्वांग फिरता है। तथा जैसे—एक जगह स्पर्शेन्द्रियका मनोज्ञ विषय होता है, परंतु सुखका अनुभव सर्वांग होता है। तथा—सर्प एक जगह काटता है, परंतु विष सर्वांगमें चढ़ता है। तथा फोड़ा आदि व्याधि एक जगह होती है, परंतु वेदना सर्वाङ्गमें होती है—वैसे ही कालद्रव्य लोकाकाशमें तिष्ठता है, परंतु अलोकाकाशकी परिणतिको भी निमित्तकारणरूप सहाय होता है। फिर यहाँ कोई प्रश्न करे कि—कालद्रव्य अन्य-द्रव्योंकी परिणतिको तो सहाय है, परंतु कालद्रव्यकी परिणतिको कौन सहाय है? **उत्तर**—कालको काल ही सहाय है। जैसे कि आकाशको आधार आकाश ही है। तथा जैसे ज्ञान सूर्य रत्नदीपादिक पदार्थ स्वपरप्रकाशक होते हैं। इनके प्रकाशको अन्य वस्तु सहाय नहीं होती है, वैसे ही कालद्रव्य भी स्वपरिणतिको स्वयं ही सहाय है। इसकी परिणतिको अन्य निमित्त नहीं है। फिर कोई प्रश्न करे कि—जैसे काल अपनी परिण-

समयो निमिषः काष्ठा कला च नाली ततो दिवारात्रं ।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः ॥ २५ ॥

परमाणुप्रचलनायत्तः समयः, नयनपुटघटनायत्तो निमिषः, तत्संख्याविशेषतः काष्ठा[1] कला[2] नाडी[3] च । गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः[4] । तत्संख्याविशेषतः मासः, ऋतुः,—

चित्परायत्तत्वं द्योतयति;—समओ मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यक्तीक्रियमाणः समयः **णिमिसो** नयनपुटविघटनेन व्यज्यमानः संख्यातीतसमयो निमिषः **कट्ठा** पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा **कला य** त्रिंशत्काष्ठाभिः कला **णाली** साधिकविंशतिकलाभिर्घटिका घटिकाद्वयं मुहूर्तः **तदो दिवारत्ती** त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः **मासो** त्रिंशद्दिवसैर्मासः **उडु** मासद्वयमृतुः **अयणं** ऋतुत्रयमयनं **संवत्सरोत्ति कालो** अयनद्वयं वर्षं इति । इतिशब्देन पल्योपमसागरोपमादिरूपो व्यवहारकालो ज्ञातव्यः । स च मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुव्यज्यमानः समयो जलभाजनादिवहिरङ्गनिमित्तभूतपुद्गलप्रकटीक्रियमाणा घटिका, दिनकरविंबगमनादिक्रियाविशेषव्यक्तीक्रियमाणो दिवसादिः व्यवहारकालः । कथंभूतः । **परायत्तो** कुम्भकारादिवहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नमृत्पिण्डोपादानकारणजनितघटवन्निश्चयेन द्रव्यकालजनितोऽपि व्यवहारेण परायत्तः पराधीन इत्युच्यते । किंच अन्येन क्रियाविशेषणादित्यगत्यादिना परिच्छिद्यमानोऽन्यस्य जातकादेः परिच्छित्तिहेतुः स एव कालोऽन्यो द्रव्यकालो नास्तीति । तन्न । पूर्वोक्तसमयादिपर्यायरूप आदित्यगत्यादिना व्यज्यमानः स व्यवहारकालः यश्चादित्यगत्यादिपरिणतेः सहकारिकारणभूतः

तिको आप सहायक है, वैसे अन्य जीवादिक द्रव्य भी अपनी परिणतिको सहाय क्यों नहीं होते ? कालकी सहायता क्यों वताते हो ? **उत्तर**—कालद्रव्यका विशेष गुण यही है जो कि अन्य पदार्थोंकी परिणतिको निमित्तभूत वर्त्तना लक्षण हो । जैसे आकाश धर्म अधर्म इनके विशेष गुण अन्य द्रव्योंको अवकाश, गमन, स्थानको सहाय देना है । वैसे ही कालद्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमानेको सहायक है । और उपादान अपनी परिणतिको आप ही सव द्रव्य हैं । उपादान एक द्रव्यको अन्य द्रव्य नहीं होता । कथंचित्प्रकार निमित्तकारण अन्य द्रव्यको अन्य पदार्थ होता है । अवकाश गति स्थिति परिणतिको आकाश आदिक द्रव्य कहे हैं । और जो अन्य द्रव्य निमित्त न माना जाय तो जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रह जाँय । ऐसा होनेसे आगम–विरोध होगा और लोकमर्यादा नहीं रहेगी । लोक षड्द्रव्यमयी है, यह सव कथन निश्चय कालका जानना । अव व्यवहारकालका वर्णन किया जाता है;–[**कालः इति**] यह व्यवहार काल [**परायत्तः**]

१ पञ्चदशनिमिषैः काष्ठाः. २ विंशतिकाष्ठाभिः कला. ३ साधिकविंशतिकलाभिः घटिका. ४ त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः ।

अयनं, संवत्सरः इति । एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितुमशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति ॥ २५ ॥

स द्रव्यरूपो निश्चयकालः । ननु आदित्यगत्यादिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं कालस्य किमायातं । नैवं । गतिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं भवति कालद्रव्यं च, सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति, यतः कारणाद् घटोत्पत्तौ कुम्भकारचक्रचीवरादिवत् मत्स्यादीनां जलादिवत् मनुष्याणां शकटादिवत् विद्याधराणां विद्यामन्त्रौषधादिवत् देवानां विमानवदित्यादिकालद्रव्यं गतिकारणं । कुत्र भणितं तिष्ठतीति चेत् । "पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं" क्रियावंतो भवंतीति कथयत्यग्रे । ननु यावता कालेनैकप्रदेशातिक्रमं करोति पुद्गलपरमाणुस्तत्प्रमाणेन समयव्याख्यानं कृतं, स एकसमये चतुर्दशरज्जुकाले गमनकाले यावंतः प्रदेशास्तावंतः समया भवंतीति । नैवं । एकप्रदेशातिक्रमेण या समयोत्पत्तिर्भणिता सा मंदगतिगमनेन, चतुर्दशरज्जुगमनं यदेकसमये भणितं तदक्रमेण शीघ्रगत्या कथितमिति नास्ति दोषः । अत्र दृष्टांतमाह—यथा कोपि देवदत्तो योजनशतं दिनशतेन गच्छति स एव विद्याप्रभावेण दिनेनैकेन गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति नैवैकदिनमेव तथा शीघ्रगतिगमने सति चतुर्दशरज्जु-

---

यद्यपि निश्चयकालकी समयपर्याय है तथापि जीव पुद्गलके नवजीर्णरूप परिणामसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है । अन्यके द्वारा कालकी पर्यायका परिमाण किया जाता है, इसलिये पराधीन है, सो ही दिखाया जाता है । [समयः] मंदगतिसे परिणत जो परमाणु उसकी अतिसूक्ष्म चाल जितने में हों सो समय है [निमिषः] जितनेमें नेत्रकी पलक खुले उसका नाम निमिष है । असंख्यात समय जब बीतते हैं, तब एक निमिष होता है । और [काष्ठा] पंद्रह निमिष मिलैं तो एक काष्ठा होती है [च] और [कला] जो बीस काष्ठा हों तो एक कला होती हैं । और [नाली] कुछ अधिक जो बीस कला बीते तो एक नाली वा घड़ी होती है । सो जलकटोरी, घड़ीयाल आदिकसे जानी जाती है । जो दो घड़ी हो तो मुहूर्त होता है । [ततः दिवारात्रं] जो तीस महूरत बीत जायें तो एक दिनरात्रि होती है, सो सूर्यकी गतिसे जाना जाता है । और [मासर्त्वयनसंवत्सरं] तीस दिनका महीना, दो महीने की ऋतु, तीन ऋतुका अयन, दो अयनका एक वर्ष होता है और जहाँ तक वर्ष गिने जाँय, वहाँ तक संख्यातकाल कहा जाता है । इसके उपरांत पल्य, सागर आदिक असंख्यात वा अनंतकाल जानना । यह व्यवहारकाल इसी प्रकार द्रव्यके परिणमनकी मर्यादासे गिन लिया जाता है । मूल पर्याय निश्चयकाल है । सबसे सूक्ष्म 'समय' नामक कालकी पर्याय है । अन्य सब स्थूलकालकी पर्याय हैं । समयके अतिरिक्त अन्य कालका सूक्ष्म भेद कोई नहीं है । परद्रव्यके परिणमनके विना व्यवहारकालकी मर्यादा नहीं कही जाती । इस कारण यह पराधीन है । निश्चयकाल

अत्र व्यवहारकालस्य कथंचित् परायत्तत्वे सदुपपत्तिरुक्ता;—

णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता ।
पुग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥२६॥

नास्ति चिरं वा क्षिप्रं मात्रारहितं तु सापि खलु मात्रा ।
पुद्गलद्रव्येण विना तस्मात्कालः प्रतीत्यभवः ॥ २६ ॥

इह हि व्यवहारकाले निमिषसमयादौ अस्ति तावत् चिरं इति क्षिप्रं इति संप्रत्ययः । स खलु दीर्घह्रस्वकालनिबंधनं प्रमाणमंतरेण न संभाव्यते । तदपि प्रमाणं पुद्गलद्रव्यप-

---

गमनेप्येकसमय एव नास्ति दोषः इति ॥ २५ ॥ अथ पूर्वगाथायां यद्व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं कथितं तत्केन रूपेण संभवतीति पृष्टे युक्तिं दर्शयति;—णत्थि नास्ति न विद्यते । किं । चिरं वा खिप्पं चिरं बहुतरकालस्वरूपं क्षिप्रं शीघ्रं च । कथंभूतं । **मत्तारहियं तु** मात्रारहितं परिमाणरहितं मानविशेषरहितं च तन्मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं चिरकालस्य घटिकाप्रहारादिरिति क्षिप्रस्य सूक्ष्मकालस्य च मात्राशब्दवाच्यं परिमाणं च । किं । समयावलिकादिति । **सावि खलु मत्ता पोग्गलदव्वेण विणा** सूक्ष्मकालस्य या समयादिमात्रा सा मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुनयनपुटविघटनादिपुद्गलद्रव्येण विना न ज्ञायते, चिरकालघटिकादिरूपा मात्रा च घटिकानिमित्तभूतजलभाजनादिद्रव्येण विना न ज्ञायते । **तम्हा कालो पडुच्च भवो** तस्मात्कारणात्समयघटिकादिसूक्ष्मस्थूलरूपो व्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन द्रव्यकालस्य पर्यायस्तथापि व्यवहारेण परमाणुजलादिपुद्गलद्रव्यं प्रतीत्याश्रित्य निमित्तीकृत्य भव उत्पन्नो जात इत्यभिधीयते । केन दृष्टान्तेन । यथा निश्चयेन पुद्गलपिंडोपादानकारणेन समुत्पन्नोपि घटः व्यवहारेण कुंभकारनिमित्तेनोत्पन्नत्वात्कुम्भकारेण कृत इति भण्यते तथा समयादिव्यवहारकालो यद्यपि निश्चयेन परमार्थकालोपादानकारणेन समुत्पन्नः तथापि समयनिमित्तभूतपरमाणुना घटिकानिमित्तभूतजलादिपुद्गलद्रव्येण च व्यज्यमानत्वात् प्रकटीक्रियमाणत्वात्पुद्गलोत्पन्न इति भण्यते ।

स्वाधीन है ॥२५॥ आगे व्यवहारकालको पराधीनता किस प्रकार है सो युक्तिपूर्वक समाधान करते हैं—[मात्रारहितं] कालके परिमाण विना [चिरं] बहुत काल [क्षिप्रं वा] शीघ्रही ऐसा कालका अल्प बहुत्व [नास्ति] नहीं है । अर्थात्—कालकी मर्यादाके विना थोड़ा बहुत कालका कथन नहीं होता । इस कारण कालके परिमाणका कथन अवश्य करना योग्य है । [तु] फिर [सापि] वह भी [खलु] निश्चयसे [मात्रा] कालकी मर्यादा [पुद्गलद्रव्येण विना] पुद्गल द्रव्यके विना ["नास्ति"] नहीं है । अर्थात्—परमाणुकी मंदगति, आँखका खुलना, सूर्यादिककी चाल इत्यादि अनेक प्रकारसे जो पुद्गल-द्रव्यके परिणाम हैं, उनसे ही कालका परिमाण होता है । पुद्गल द्रव्यके विना कालकी मर्यादा नहीं होती [तस्मात्] इस कारणसे [कालः] व्यवहार काल [प्रतीत्य भवः]

रिणाममंतरेण नावधार्यते । ततः परिणामद्योत्यमानत्वाद्व्यवहारकालो निश्चयेनानन्याश्रितोऽपि प्रतीत्यभाव इत्यभिधीयते । तदत्रास्तिकायसामान्यप्ररूपणायामस्तिकायत्वाभावात्साक्षादनुपन्यस्यमानोऽपि जीवपुद्गलपरिणामान्यथानुपपत्त्या निश्चयरूपस्तत्परिणामायत्ततया व्यवहाररूपः कालोऽस्तिकायपञ्चकवल्लोकरूपेण परिणत इति खरतरदृष्ट्याभ्युपगम्यत इति ॥ २६ ॥

इति समयव्याख्यायामंतर्नीति–षड्द्रव्य–पञ्चास्तिकायसामान्यव्याख्यानरूपः पीठबंधः समाप्तः ।

पुनरपि कश्चिदाह । समयरूप एव परमार्थकालो न चान्यः कालाणुद्रव्यरूप इति । परिहारमाह । समयस्तावत्सूक्ष्मकालरूपः प्रसिद्धः स एव पर्यायः न च द्रव्यं । कथं पर्यायत्वमिति चेत् । उत्पन्नप्रध्वंसित्वात्पर्यायस्य "समओ उप्पण्णपद्धंसी"ति वचनात् । पर्यायस्तु द्रव्यं विना न भवति, द्रव्यं च निश्चयेनाविनश्वरं, तच्च कालपर्यायस्योपादानकारणभूतं कालाणुरूपं कालद्रव्यमेव न च पुद्गलादि । तदपि कस्मात् । उपादानकारणसदृशत्वात्कार्यस्य मृत्पिंडोपादानकारणसमुत्पन्नघटकार्यवदिति । किंच कालशब्द एव परमार्थकालवाचकभूतः स्वकीयवाच्यं परमार्थकालस्वरूपं व्यवस्थापयति साधयति । किंवत् । सिंहशब्दः सिंहपदार्थवत्, सर्वज्ञशब्दः सर्वज्ञपदार्थवत्, इन्द्रशब्द इन्द्रपदार्थवदित्यादि । पुनरप्युपसंहाररूपेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते । तद्यथा—समयादिरूपसूक्ष्मव्यवहारकालस्य घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालस्य च यद्युपादानकारणभूतकालस्तथापि समयघटिकारूपेण या विवक्षिता व्यवहारकालस्य भेदकल्पना तया रहितस्त्रिकालस्थायित्वेनानाद्यनिधनो लोकाकाशप्रदेशप्रमाणकालाणुद्रव्यरूपः परमार्थकालः । यस्तु निश्चयकालोपादानकारणजन्योपि पुद्गलपरमाणुजलभाजनादिव्यज्यमानत्वात्समयघटिकादिवसादिरूपेण विवक्षितव्यवहारकल्पनारूपः स व्यवहारकाल इति । अत्र व्याख्यानेऽतीतानंतकाले दुर्लभो योऽसौ शुद्धजीवास्तिकायस्तस्मिन्नेव चिदानंदैककालस्वभावे सम्यक्श्रद्धानं रागादिभ्यो भिन्नरूपेण भेदज्ञानं रागादिविभावरूपसमस्तसंकल्पविकल्पजालत्यागेन तत्रैव स्थिरचित्तं च कर्तव्यमिति तात्पर्यार्थः ॥ २६ ॥ इति व्यवहारकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अत्र पंचा-

---

पुद्गलद्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न, ऐसा कहा जाता है । भावार्थ—पुद्गलद्रव्यकी आदि-अंत क्रियासे व्यवहारकाल गिन लिया जाता है । परंतु पर्याय निश्चयकालकी ही है । यद्यपि यह काल कायके अभावसे पंचास्तिकायमें नहीं कहा, तथापि जान लेना चाहिये कि—लोककी सिद्धि षड्द्रव्योंके विना नहीं होती, क्योंकि—जीव पुद्गलकी परणतिकी सिद्धि निश्चयकालके सहाय विना नहीं होती । और जीव पुद्गलके नवजीर्ण परिणामकी मर्यादा विना व्यवहारकालकी सिद्धि नहीं होती । इस कारण कालद्रव्यका स्वरूप जो जिनमती हैं उनको भलीभांति सूक्ष्मदृष्टिसे जानना चाहिये ॥ २६ ॥

इति श्रीसमयसारके व्याख्यानमें षड्द्रव्यपंचास्ति० सामान्य व्या० पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

अथामीषामेव विशेषव्याख्यानं । तत्र तावज्जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिः ।

अत्र संसारावस्थस्याऽऽत्मनः सोपाधि-निरुपाधि च स्वरूपमुक्तं—

जीवोत्ति हवदि चेदा उपओगविसेसिदो पहू कत्ता ।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥२७॥

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्त्ता ।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्त्तः कर्मसंयुक्तः ॥ २७ ॥

आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः[3] । व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः । निश्चयेन

स्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रवणेष्टांतराधिकारसहितप्रथममहाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारकालप्ररूपणाभिधानः पंचगाथाभिः स्थलत्रयेण तृतीयोंतराधिकारो गतः । एवं समयशब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका निश्चयव्यवहारकालव्याख्यानमुख्यतया चांतराधिकारत्रयेण षड्विंशतिगाथाभिः पंचास्तिकायपीठिका समाप्ता । अथपूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते । तद्यथा । "परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत्त किरिया य । णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरं हि यपदेसो" ॥ १ ॥ परिणामपरिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां शेषचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यञ्जनपर्यायाभावाद् मुख्यवृत्या पुनरपरिणामीनि । जीवशुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि । मुर्त्तं अमूर्तशुद्धात्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगंधवर्णवती

आगे इनही षड्द्रव्य पंचास्तिकायका विशेष व्याख्यान किया जाता है । सो पहिले ही संसारी जीवका स्वरूप नयविलाससे उपाधिसंयुक्त और उपाधिरहित दिखाते हैं;—[जीवः] जो सदा (त्रिकालमें) निश्चयनयसे भावप्राणों द्वारा, व्यवहार नयसे द्रव्य प्राणों द्वारा जीता है, सो [इति] यह जीवनामा पदार्थ [भवति] होता है । सो यह जीवनामा पदार्थ कैसा है ? [चेतयिता] निश्चय नयकी अपेक्षा अपने चेतना गुणसे अभेद एक वस्तु है । व्यवहारसे गुणभेदसे चेतनागुणसंयुक्त है, इस कारण जाननेवाला है । फिर कैसा है ? [उपयोगविशेषितः] जाननेरूप परिणामोंसे विशेषितः कहिये लखा जाता है । जो यहाँ कोई पूछे कि चेतना और उपयोग इन दोनों में क्या भेद है ? उसका उत्तर यह है कि—चेतना तो गुणरूप है, उपयोग उस चेतनाकी जाननेरूप पर्याय है । यह ही इनमें भेद है । फिर कैसा है यह आत्मा ? [प्रभुः] आस्रव संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष इन पदार्थोंमें निश्चय करके आप भावकर्मोंकी

---

१ पञ्चास्तिकायानां. २ सत्तासुखबोधचैतन्यात्. ३ आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सुखसत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति । तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति ।

चिदात्मकत्वाद् व्यवहारेण चिच्छक्तियुक्तत्वाच्चेतयिता[1] । निश्चयेनापृथग्भूतेन व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षितत्वादुपयोगविशेषितः[2] । निश्चयेन भावकर्मणां

मूर्तिरुच्यते तत्सद्भावात् मूर्तः पुद्गलः जीवद्रव्यं पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तं धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि । सपदेसं लोकमात्रप्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पंचद्रव्याणि पंचास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशलक्षणं कायत्वाभावादप्रदेशं । एय द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति, जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि । खेत्त सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात्क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपंचद्रव्याण्यक्षेत्राणि । किरिया य क्षेत्रात् क्षेत्रांतरगमनरूपा परिस्पंदवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावंतौ जीवपुद्गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि णिच्च धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यंजनपर्यायाभावान्नित्यानि; द्रव्यार्थिकनयेन च जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये । कारणपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वंतीति कारणाणि भवन्ति; जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां किमपि न करोति इत्यकारणं । कत्ता शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबंधयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति, विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति पुद्गलादीनां पञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वं वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव सव्वगदं लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते, लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौ च जीवद्रव्यं पुनरेकैकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थां विहायासर्वगतं नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति, पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कंदापेक्षया सर्वगतं शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति, कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया

समर्थतासंयुक्त है । व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकी ईश्वरता संयुक्त है । इस कारण प्रभु है । फिर कैसा है ? [कर्त्ता] निश्चय नयसे तो पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर जो जो परिणाम होते हैं उनका कर्त्ता है । व्यवहारसे आत्माके अशुद्ध परिणामोंका निमित्त पाकर जो पौद्गलिक कर्म परिणाम उत्पन्न होते हैं उनका कर्त्ता है । फिर कैसा है ? [भोक्ता]

---

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया वाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति. २ निश्चयेन केवलज्ञानरूपशुद्धोपयोगेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति ।

व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबंधनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात्[1]प्रभुः। निश्चयेन[2] पौद्गलिककर्मनिमित्तात्मपरिणामानां व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्तपौद्गलिककर्मणां कर्तृत्वात्[3]कर्त्ता। निश्चयेन शुभाशुभकर्मनिमित्तसुखदुःखपरिणामानां व्यवहारेण शुभाशुभकर्म्मसंपादितेष्टानि-

---

सर्वगतं न भवति लोकप्रदेशप्रमाणनानाकालाणुविवक्षया लोके सर्वगतं। इदरंहि यप्पवेसो यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यानुप्रवेशेन तिष्ठन्ति तथापि निश्चयेन चेतनाचेतनादिस्वकीयस्वकीयस्वरूपं न त्यजंतीति। अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानंदैकादिगुणस्वभावं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहितं निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ १ ॥ इत ऊर्ध्वं "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादिगाथायां पूर्वं पंचास्तिकाया ये सूचितास्तेषामेव विशेषव्याख्यानं क्रियते। तत्र पाठक्रमेण त्रिपंचाशद्गाथाभिर्नवांतराधिकारैर्जीवास्तिकायव्याख्यानं प्रारभ्यते। तासु त्रिपंचाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन नवाधिकारक्रमसूचनार्थं "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्याद्येकाधिकारसूत्रगाथा भवति। "तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्वं शेषमात्रता। अमूर्तत्वं च चैतन्यमुपयोगात्तथा क्रमात् ॥ १ ॥ कर्तृता भोक्तृता कर्मायुक्तत्वं च त्रयं तथा। कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यतः ॥२॥" इति श्लोकद्वयेन भट्टमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिपूर्वकत्वेनाधिकारव्याख्यानं क्रमशः सूचितम्। तत्रादौ प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं "कम्ममल" इत्यादि गाथाद्वयं भवति, तदनंतरं चार्वाकमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवसिद्ध्यर्थं जीवत्वव्याख्यानरूपेण "पाणेहिं चदुहिं" इत्यादि गाथात्रयं, अथ नैयायिकमीमांसकसांख्यमताश्रितशिष्यं प्रति जीवस्य स्वदेहमात्रस्थापनार्थं "जह पउम" इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनंतरं भट्टचार्वाकमतानुकूलशिष्यं प्रति जीवस्यामूर्तत्वज्ञापनार्थं "जेसिं जीवसहावो" इत्यादिसूत्रत्रयं, अथानादिचैतन्यसमर्थनव्याख्यानेन पुनरपि चार्वाकमतनिराकरणार्थं "कम्माणं फल"मित्यादि सूत्रद्वयं। एवमधिकारगाथामादिं कृत्वांतराधिकारपंचकसमुदायेन त्रयोदश गाथा गताः। अथ नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं "उवओगो खलु दुविहो" इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः कथ्यते—तत्रैकोनविंशतिगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनार्थं "उवओगो खलु" इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनार्थं "आभिणि" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ मत्यादिसंज्ञानपंचकविवरणार्थं "मदिणाण"मित्यादि पाठक्रमेण सूत्रपञ्चकं, तदनंतरमज्ञान-

---

निश्चयनयसे तो शुभ अशुभ कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुये जो सुखदुःखमय परिणाम, उनका भोक्ता है और व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मके उदयसे उत्पन्न जो इष्ट अनिष्ट

---

१ समर्थत्वात्. २ शुद्धनिश्चयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्परिणामानां रागद्वेषमोहाना कर्तृत्वात् कर्त्ता. ३ निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात्तथैवाशुद्धनिश्चयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति। भावकर्मरूपरागादिभावानां तथाचानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मणो कर्मधर्मादीनां कर्तृत्वात् कर्त्ता भवति।

ष्टविषयाण ... त्वाद्भोक्ता । निश्चयेन लोकमात्रोऽपि । विशिष्टावगाहपरिणामशक्तियुक्त-

त्मकथनरूपेण "मिच्छत्ता अण्णाणं" इत्यादि सूत्रमेकं इति ज्ञानोपयोगसूत्राष्टकं, अथ चक्षुरादिदर्शनचतुष्टयप्रतिपादनमुख्यत्वेन "दंसणमवि" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं ज्ञानदर्शनोपयोगाधिकारगाथामादिं कृत्वांतरस्थलपंचकसमुदायेन गाथानवकं गतं । अथ गाथादशकपर्यंतं व्यवहारेण जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयनयेन प्रदेशास्तित्वाभ्यां नैयायिकं प्रत्यभेदस्थापनं क्रियते अग्न्युष्णत्वयोरभेदवत् । जीवज्ञानयोः संज्ञालक्षणप्रयोजनानां स्वरूपं कथ्यते तथापि जीवद्रव्यस्य जीव इति संज्ञा ज्ञानगुणस्य ज्ञानमिति संज्ञा चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति जीवद्रव्यलक्षणं, ज्ञायंते पदार्था अनेनेति ज्ञानगुणलक्षणं । जीवद्रव्यस्य बंधमोक्षादिपर्यायैरविनष्टरूपेण परिणमनं प्रयोजनं ज्ञानगुणस्य पुनः पदार्थपरिच्छित्तिमात्रमेव प्रयोजनमिति संक्षेपेण संज्ञालक्षणप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि । तत्र दशगाथासु मध्ये जीवज्ञानयोः संक्षेपेणाभेदस्थापनार्थं "ण विअप्पदि" इत्यादि सूत्रत्रयं । अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां भेदे कथंचिद्भेदेपि घटंत इत्यादि समर्थनरूपेण "ववदेसा" इत्यादिगाथात्रयं, तदनंतरमेकक्षेत्रावगाहित्वेनायुतसिद्धानामभेदसिद्धानामाधाराधेयभूतानां पदार्थानां प्रदेशभेदेपि सति इहात्मनि ज्ञानमिह तंतुषु पट इत्यादिरूपेण इहेदमिति प्रत्ययः संबंधः समवाय इत्यभिधीयते । नैयायिकमते तस्य निषेधार्थं "ण हि सो समवायाहिं" इत्यादि सूत्रद्वयं, पुनश्च गुणगुणिनोः कथंचिद्भेदविषये दृष्टांतदार्ष्टांतव्याख्यानार्थं "वण्णरस" इत्यादि सूत्रद्वयमिति । दृष्टांतलक्षणमाह । दृष्टावंतौ धर्मौ स्वभावावग्निधूमयोरिव साध्यसाधकयोर्वादिप्रतिवादिभ्यां कर्तृभूताभ्यामविवादेन यत्र वस्तुनि सदृष्टांत इति । अथवा संक्षेपेण यथेति दृष्टांतलक्षणं तथेति दार्ष्टांतलक्षणमिति । एवं पूर्वोक्तगाथानवके स्थलपंचकमत्र तु गाथादशके स्थलचतुष्टयं चेति समुदायेन नवभिरंतरस्थलैरेकोनविंशतिसूत्रैरुपयोगाधिकारपातनिका । अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारसपरमसमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्नं यत्कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं सदसत्प्रतिपादनार्थं यत्र तत्रानुपूर्व्याष्टादशगाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्राष्टादशगाथासु मध्ये प्रथमस्थले "जीवा अणाइणिहणा" इत्यादि गाथात्रयेण समुदायकथनं तदनंतरं द्वितीयस्थले "उदयेण" इत्याद्येकगाथायामौदयिकादिपञ्चभावव्याख्यानं, अथ तृतीयस्थले "कम्मं वेदयमाणो" इत्यादिगाथाषट्केन कर्तृत्वमुख्यतया व्याख्यानं, अथ चतुर्थस्थले "कम्मं कम्मं कुव्वदि" इत्याद्येका पूर्वपक्षगाथा, तदनंतरं पञ्चमस्थले परिहारगाथाः सप्त । तत्र सप्तगाथासु मध्ये प्रथमं "ओगाढगाढ" इत्यादि गाथात्रयेण निश्चयेन द्रव्यकर्मणां जीवः कर्ता न भवतीति कथ्यते । तदनंतरं निश्चयनयेन जीवस्य द्रव्यकर्तृत्वेपि "जीवा पोग्गलकाया" इत्याद्येकगाथया कर्मफले

विषय उनका भोक्ता है । फिर कैसा है ? [च स्वदेहमात्रः] निश्चयनयसे यद्यपि लोक-

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानंदरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथाचोपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिबहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति ।

त्वात् नामकर्मनिर्वृत्तमणु महच्च शरीरमधितिष्ठन् व्यवहारेण देहमात्रो व्यवहारेण कर्मभिः सहैकत्वपरिणामान्मूर्तोऽपि निश्चयेन नीरूपस्वभावत्वान्नहि मूर्तः । निश्चयेन पुद्गलपरि-

---

भोक्तृत्वं, अथ "तम्हा कम्मं कत्ता" इत्याद्येकसूत्रेण कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारः, तदनंतरं "एवं कत्ता" इत्यादिगाथाद्वयेन क्रमेण कर्मसंयुक्तकर्मरहितत्वं च कथयतीति परिहारमुख्यत्वेन सप्तगाथा गताः । एवं पाठक्रमेणाष्टादशगाथाभिः स्थलपंचकेनैकांतमतनिराकरणाय तथैवानेकांतमतस्थापनाय च सांख्यमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं कर्तृत्वं बौद्धमतानुयायिशिष्यं प्रति बोधनार्थं भोक्तृत्वं सदाशिवमताश्रितशिष्यसंदेहविनाशार्थं कर्मसंयुक्तत्वमिति कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वाधिकारत्रयं ज्ञातव्यं । इत ऊर्ध्वं जीवास्तिकायसंबन्धिनवाधिकारव्याख्यानानंतरं "एक्को जेम महप्पा" इत्यादिगाथात्रयेण जीवास्तिकायचूलिका । एवं पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारसंबंधिषष्ठांतराधिकारेषु मध्ये त्रिपञ्चाशद्गाथाप्रमितचतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा अथ—संसारावस्थस्याप्यात्मनः शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिविशुद्धभावान् तथैवाशुद्धनिश्चयेन सोपाधिभावकर्मरूपरागादिभावान् तथा चासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मोपाधिजनिताशुद्धभावांश्च यथासंभवं प्रतिपादयति,—**जीवोत्ति हवदि** आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्जीवति तथा चाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति तथैव चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति, **चेदा** शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथैवाशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया चाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति, **उवओगविसेसिदो** निश्चयेन केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धोपयोगेन तथैव चाशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति, **पहू** निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात्तथैव चाशुद्धनयेन संसारसंसारकारणरूपाशुद्धपरिणामपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति, **कत्ता** शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धभावानां परिणामानां तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्मरूपरागादिभावानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मनोकर्मादीनां कर्तृत्वात्कर्ता भवति, **भोत्ता** शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मोत्थवीतरागपरमानंदरूपसुखस्य तथैवाशुद्धनिश्चयेनेन्द्रियजनितसुखदुःखानां तथा चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण सुखदुःखसाधकेष्टानिष्टाशनपानादिवहिरङ्गविषयाणां च भोक्तृत्वात् भोक्ता भवति, **सदेहमेत्तो** निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोपि व्यवहारेण[१] शरीरनामकर्मोदयजनिताणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति, **ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो** मूर्तिरहितः असद्भूतव्यवहारेणादिकर्मबं

मात्र असंख्यात प्रदेशी है, तथापि व्यवहार नयकी अपेक्षा संकोचविस्तारशक्तिसे नामकर्मके द्वारा निर्मापित जो लघु दीर्घ शरीर है उसके परिमाण ही होता है । इसकारण स्वदेहपरिमाण है । फिर कैसा है ? [न हि मूर्त्तः] यद्यपि व्यवहारसे कर्मोंसे

---

१ निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशप्रमितोऽपि व्यवहारेण शरीरनामकर्मोदयजनिताऽणुमहच्छरीरप्रमाणत्वात्स्वदेहमात्रो भवति. २ असद्भूतव्यवहारेणानादिकर्मबंधसहितत्वान्मूर्तोऽपि शुद्धनिश्चयेन वर्णादिरहितत्वादमूर्तोऽपि भवति ।

णामानुरूपचैतन्यपरिणामात्माभिर्व्यवहारेण चैतन्यपरिणामानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभिः कर्मभिः, संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त इति ॥ २७ ॥

धसहितत्वात्कर्मसंयुक्तश्च भवति । इति शब्दार्थनयार्थाः कथिता, इदानीं मतार्थः कथ्यते–जीवत्वव्याख्याने "वच्छक्खरं भवसारित्थसग्गणिरयपियराय । चुल्लियहंडयिपुणमयउ णव दिट्ठंता जाय ॥" इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैश्चार्वाकमतानुसारिशिष्यापेक्षया जीवसिद्ध्यर्थं अनादिचेतनागुणव्याख्यानं च तदर्थमेव । अथवा सामान्यचेतनाव्याख्यानं सर्वमतसाधारणं ज्ञातव्यं, अभिन्नज्ञानदर्शनोपयोगव्याख्यानं तु नैयायिकमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं मोक्षोपदेशकमोक्षसाधकप्रभुत्वव्याख्यानं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं वचनं प्रमाणं भवतीति "रयणदिवदिणयरु दम्हि उडु दाउपासणुसुणरुप्पफलिहउ अगणि णव दिट्ठंता जाणु" इति दोहकसूत्रकथितनवदृष्टांतैर्भट्टचार्वाकमताश्रितशिष्यापेक्षया सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं, शुद्धाशुद्धपरिणामकर्तृत्वव्याख्यानं तु नीत्याकर्तृत्वैकांतसांख्यमतानुयायिशिष्यसंबोधनार्थं भोक्तृत्वव्याख्यानं कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति बौद्धमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं स्वदेहप्रमाणं व्याख्यानं नैयायिकमीमांसककपिलमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं अमूर्तत्वव्याख्यानं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं द्रव्यभावकर्मसंयुक्तत्वव्याख्यानं च सदामुक्तनिराकरणार्थमिति मतार्थो ज्ञातव्यः । आगमार्थव्याख्यानं पुनर्जीवत्वचेतनादिधर्माणां संबंधित्वेन परमागमे प्रसिद्धमेव, कर्मोपाधिजनितमिथ्यात्वरागादिरूपसमस्तविभावपरिणामांस्त्यक्त्वा निरुपाधिकेवलज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकाय एव निश्चयनयेनोपादेयत्वेन भावयितव्य इति भावार्थः । एवं शब्दनयमतागमभावार्था व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्याः । जीवास्तिकायसमुदायपातनिकायां पूर्वं चार्वाकादिमतव्याख्यानं कृतं पुनरपि किमर्थमिति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमाहुः । तत्र वीतरागसर्वज्ञसिद्धे सति व्याख्यानं प्रमाणं प्राप्नोतीति व्याख्यानक्रमज्ञापनार्थं प्रभुताधिकारमुख्यत्वेनाधिकारनवकं सूचितं । तथा चोक्तं—वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यमिति । अत्र तु सति धर्मिणि धर्माश्चिंत्यंत इति वचनाच्चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणामाधारभूते विशेष्यलक्षणे जीवे धर्मिणि सिद्धे सति तेषां चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां

एक स्वभाव होनेसे मूर्तीक विभाव परिणामरूप परिणमता है, तथापि निश्चय स्वाभाविक भावसे अमूर्त है । फिर कैसा है ? [कर्मसंयुक्तः] निश्चयनयसे पुद्गल कर्मोंका निमित्त पाकर उत्पन्न हुये जो अशुद्ध चैतन्य विभाव परिणामकर्म, उनसे संयुक्त है । व्यवहारसे अशुद्ध चैतन्य परिणामोंका निमित्त पाकर जो हुये हैं पुद्गलपरिणामरूप द्रव्यकर्म, उन सहित है । ऐसा यह संसारी आत्माका शुद्ध अशुद्ध कथन नयोंकी विवक्षासे सिद्धांतानुसार जान

---

१ शुद्धनिश्चयेन कर्मरहितोऽप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वात् तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिरूपभावकर्मसंयुक्तो भवति ।

अत्र मुक्तावस्थस्यात्मनो निरुपाधिस्वरूपमुक्तम्;—

कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥२८॥

कर्ममलविप्रमुक्त ऊर्ध्वं लोकस्यांतमधिगम्य ।
स सर्वज्ञानदर्शी लभते सुखमतीन्द्रियमनंतम् ॥ २८ ॥

आत्मा हि परद्रव्यत्वात्कर्मरजसा साकल्येन यस्मिन्नेव क्षणे मुच्यते तस्मिन्नेवोर्ध्वगमनस्वभावत्वाल्लोकांतमधिगम्य परतो गतिहेतोरभावादवस्थितः केवलज्ञानदर्शनाभ्यां स्वरूपभूतत्वादमुक्तोऽनंतमतीन्द्रियं सुखमनुभवति । मुक्तस्य चास्य भावप्राणधारणलक्षणं जीवत्वं. चिद्रूपलक्षणं चेतयितृत्वं. चित्परिणामलक्षणं उपयोगः, निर्वर्तितसमस्ताधिकारशक्तिमात्रं प्रभुत्वं, समस्तवस्त्वसाधारणस्वरूपनिर्वर्तनमात्रं कर्तृत्वं, स्वरूपभूतस्वातन्त्र्यलक्षणसुखोपलम्भरूपं भोक्तृत्वं, अतीतानंतरशरीरपरिमाणावगाहपरिणामरूपं देहमात्रत्वं, उपाधिसंबंधविविक्तमात्यन्तिकमूर्तत्वं । कर्मसंयुक्तत्वं तु द्रव्यभावकर्मविप्रमोक्षान्न भवत्येव द्रव्यकर्माणि हि पुद्गलस्कंधा भावकर्माणि तु चिद्विवर्ताः । विवर्तते हि चिच्छक्तिरनादिज्ञानावरणादिकर्मसंपर्ककूणितप्रचारा परिच्छेद्यस्य विश्वस्यैकदेशेषु क्रमेण व्याप्रियमाणा । यदा तु ज्ञानावरणादिकर्मसंपर्कः प्रणश्यति तदा परिच्छेद्यस्य विश्वस्य सर्वदेशेषु युगपद्व्या-

धर्माणां व्याख्यानं घटत इति ज्ञापनार्थं जीवसिद्धिपूर्वकत्वेन मतांतरनिराकरणसहितमधिकारत्वकमुपदिष्टमिति नास्ति दोषः ॥ २७ ॥ एवमधिकारगाथा गता । अथ मोक्षसाधकत्वप्रभुत्वगुणद्वारेण सर्वज्ञसिद्धयर्थं मुक्तावस्थस्यात्मनः केवलज्ञानादिरूपं निरुपाधिस्वरूपं दर्शयति;— कम्ममलविप्पमुक्को द्रव्यकर्मभावकर्मविप्रमुक्तः सन् उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वाल्लोकस्यांतमधिगम्य प्राप्य सो सव्वणाणदरिसी परतो धर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन् सर्वविषये ज्ञानदर्शने सर्वज्ञानदर्शने ते विद्येते यस्य स भवति सर्वज्ञानदर्शी ।

लेना ॥ २७ ॥ आगे मोक्षमें विराजमान जो आत्मा, उनका उपाधिरहित शुद्ध स्वरूप कहा जाता है;—["यः"] जो जीव [कर्ममलविप्रमुक्तः] ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्म भावकर्म से सर्व प्रकारसे मुक्त हुआ है [सः] वह [सर्वज्ञानदर्शी] सबका देखने जाननेवाला शुद्ध जीव [ऊर्ध्वं] ऊंचे ऊर्ध्वगतिस्वभावसे [लोकस्य अंतं] तीन लोकसे ऊपर सिद्ध क्षेत्रको [अधिगम्य] प्राप्त होकर [अतीन्द्रियं] सविकार पराधीन इन्द्रिय

१ द्रव्यभावरूपेण. २ समये. ३ सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणं. ४ रचितः ५ विस्तार. ६ पर्यायाः ७ व्यापृतत्न करोति. ८ संकोचित. ९ ज्ञेयस्य ।

पूता[1] कथंचित्कौटस्थ्य[2]मवाप्य विषयांतर[3]मनाप्नुवंती न विवर्तते । स खल्वेष निश्चितः सर्वज्ञसर्वदर्शित्वोपलम्भः । अयमेव द्रव्यकर्मनिबंधनभूतानां भावकर्मणां कर्तृत्वोच्छेदः । अयमेव च विकारपूर्वकानुभवाभावादौपाधिकसुखदुःखपरिणामानां भोक्तृत्वोच्छेदः । इदमेव चानादिविवर्तखेदविच्छित्तिसुस्थितानंतचैतन्यस्यात्मनः स्वतंत्रस्वरूपानुभूतिलक्षणसुखस्य भोक्तृत्वमिति ॥ २८ ॥

एवंभूतः सन् किंकरोति । लहइ सुहमणिंदियमणंतं लभते । किं । सुखं । कथंभूतं । अतीन्द्रियं । पुनरपि कथंभूतं । अनंतमिति । किंच पूर्वसूत्रोदितजीवतत्त्वादिनवाधिकारेषु मध्ये कर्मसंयुक्तत्वं विहाय शुद्धजीवत्वशुद्धचेतनाशुद्धोपयोगादयोऽष्टाधिकारा यथासंभवमागमाविरोधेनात्र मुक्ताव-

---

सुखसे रहित ऐसे [अनंतं] अमर्यादीक [सुखं] आत्मीक स्वाभाविक अतीन्द्रिय सुखको [लभते] प्राप्त होता है । भावार्थ—यह संसारी आत्मा परद्रव्यके संबंधसे जब छूटता है, उस ही समय सिद्ध क्षेत्रमें जाकर तिष्ठता है । यद्यपि जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, तथापि आगे धर्मास्तिकाय नहीं है, इस कारण अलोकमें नहीं जाता, वहीं पर ठहर जाता है । अनंत ज्ञान, अनंत दर्शनस्वरूपसंयुक्त अनंत अतीन्द्रिय सुखको भोगता है । मोक्षावस्थामें भी इसके आत्मीक अविनाशी भावप्राण हैं । उनसे सदा जीवित है । इस कारण वहाँ भी जीवत्वशक्ति होती है । और उस ही चैतन्यस्वभाव शुद्धस्वरूपके अनुभवसे चेतयिता कहलाता है । और उस ही शुद्ध जीवको चैतन्य परिणामरूप उपयोगी भी कहा जाता है और उसके ही समस्त आत्मीक शक्तियोंकी समर्थता प्रगट हुई है, इस कारण प्रभुत्व भी कहा जाता है । और निजस्वरूप अन्य पदार्थोंमें नहीं, ऐसे अपने स्वरूपको सदा परिणमता है, इसलिए यही जीव कर्ता है । और स्वाधीन सुखकी प्राप्तिसे यही भोक्ता भी कहा जाता है और यही चरमशरीर अवगाहनसे किंचित् ऊन पुरुषाकार आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना लिए हुये है, इस कारण देहमात्र भी कहलाता है । पौद्गलिक उपाधिसे सर्वथा रहित हो गया है, इस कारण अमूर्त्तीक कहलाता है । और वही द्रव्यकर्म भावकर्मसे मुक्त हो गया है इस कारण कर्मसंयुक्त नहीं है । जो पहिली गाथामें संसारी जीवके विशेष कहे थे, वेही विशेष मुक्त जीवके भी होना संभव हैं । परन्तु उनमेंसे एक कर्मसंयुक्तपना नहीं होता है और सब मिलते हैं । कर्म दो प्रकार का है—एक द्रव्यकर्म, दूसरा भावकर्म । जीवके संबंधसे जो पुद्गलवर्गणास्कंध हैं वे तो द्रव्यकर्म कहलाते हैं और जो चेतनाके विभावपर्याय हैं वे भावकर्म हैं ॥ २८ ॥

---

१ चिच्छक्तिः. २ निश्चलत्वं प्राप्य. ३ ज्ञेयरूपं परद्रव्यं अनाप्नुवंती ।

इदं सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम्;—

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य ।
पप्पोदि सुहमणंतं अव्वावाधं सगममुत्तं ॥२९॥

जातः स्वयं स चेतयिता सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
प्राप्नोति सुखमनंतमव्याबाधं स्वकममूर्त्तम् ॥ २९ ॥

स्थायामपि योजनीया इति सूत्राभिप्रायः ॥२८॥ अथ यदेव पूर्वोक्तं निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखस्वरूपं तस्यैव "जादो सय"मितिवचनेन पुनरपि समर्थनं करोति;—जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य आत्मा हि निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसुखस्वभावस्तावत् इत्थंभूतोपि

यहाँ कोई पूछता है कि आत्माका लक्षण तो चेता है सो वह विभावरूप कैसे है ?

उत्तर—संसारी जीवके अनादिकालसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका संबंध है । उन कर्मोंके संयोगसे आत्माकी चैतन्यशक्ति भी अपने निजस्वरूपसे गिरी हुई है । इसलिए विभावरूप होता है । जैसे कि कीचके संबंधसे जलका स्वच्छ स्वभाव था सो छोड़ दिया है । वैसेही कर्मके संबंधसे चेतना विभाव रूप हुई है, इस कारण समस्त पदार्थोंके जाननेको असमर्थ है । एकदेश कुछही पदार्थोंको क्षयोपशमकी यथायोग्यतासे जानता है । और जब काललब्धि होती है तब सम्यग्दर्शनादि सामग्री आकर मिल जाती है, तब ज्ञानावरणादि कर्मोंका संबंध नष्ट होता है और शुद्ध चेतना प्रगट होती है । उस शुद्ध चेतनाके प्रगट होनेपर यह जीव त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें प्रत्यक्ष जान लेता है । निश्चल कूटस्थ अवस्थाको कथंचित्प्रकार प्राप्त होता है । और भ्रांति नहीं होती कुछ और जानना नहीं रहा, इस कारण अपने स्वरूपसे निवृत्ति नहीं होती, ऐसी शुद्ध चेतनासे निश्चल हुआ जो यह आत्मा सो सर्वदर्शी सर्वज्ञभावको प्राप्त हो गया है, तब इसके द्रव्यकर्मके जो कारण हैं विभाव भावकर्म उनके कर्तृत्वका उच्छेद होता है । और कर्म उपाधिके उदयसे जो सुखदुःख विभाव परिणाम उत्पन्न होते हैं उनका भोगना भी नष्ट होता है । और अनादि कालसे लेकर विभाव पर्यायोंके होनेसे जो आकुलतारूप खेद हुआ था उसके विनाश होनेसे स्वरूपमें स्थिर अनंत चैतन्य स्वरूप आत्माके स्वाधीन आत्मीक स्वरूपका अनुभूतरूप जो अनाकुल अनंत सुख प्रगट हुआ है उसका अनंतकालपर्यंत भोग बना रहेगा । यह मोक्षावस्थामें शुद्ध आत्मका स्वरूप जानना । आगे पहिले ही कह आये हैं कि जो आत्माके ज्ञान दर्शन सुखभाव उनको फिर भी आचार्य निरुपाधि शुद्धरूप कहते हैं;—[सः] वह शुद्धरूप [चेतयिता] चिदात्मा [स्वयं] आप अपने स्वाभाविक भावोंसे [सर्वज्ञः] सबका जाननेवाला [च] और [सर्वलोकदर्शी] सबका देखनेवाला ऐसा [जातः] हुआ है

आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसंकोचितात्मशक्तिः परद्रव्यसंपर्केण क्रमेण किंचित्किंचिज्ञानाति पश्यति परप्रत्ययं[1] मूर्तसंबंधं सव्याबाधं सातं सुखमनुभवति च । यदा त्वस्य[2] कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति, तदाऽनर्गलाऽसंकुचितात्म-

संसारावस्थायां कर्मावृतः सन् क्रमकरणव्यवधानजनितेन क्षायोपशमिकज्ञानेन किमपि किमपि जानाति तथाभूतदर्शनेन किमपि किमपि पश्यति तथा चेन्द्रियजनितं बाधासहितं पराधीनं मूर्तसुखं चानुभवति स एव चेतयितात्मा निश्चयनयेन स्वयमेव कालादिलब्धिवशात्सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातः । एवं जातः सन् किं करोति । **पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगममुत्तं** प्राप्नोति लभते । किं । सुखमित्यध्याहारः । कथंभूतं सुखं । इन्द्रियरहितं । पुनरपि किं विशिष्टं । स्वकमात्मोत्थं । पुनश्च किंरूपं । मूर्तेन्द्रियनिरपेक्षत्वादमूर्तं च । अत्र स्वयं जातमिति वचनेन पूर्वोक्तमेव निरुपाधित्वं समर्थितं । तथा च स्वयमेव सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातो निश्चयनयेनेति पूर्वोक्तमेव सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च समर्थितमिति । अथ भट्टचार्वाकमतानुसारी कश्चिदाह, नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः खरविषाणवत् । तत्र प्रत्युत्तरं दीयते-कुत्र सर्वज्ञो नास्त्यत्र देशे तथा चात्रकाले किं जगत्त्रये कालत्रये वा ? यद्यत्र देशे काले नास्तीति भण्यते तदा सम्मतमेव । अथ जगत्त्रये कालत्रयेपि नास्ति तत्कथं ज्ञातं भवता ? जगत्त्रयकालत्रयं सर्वज्ञरहितं ज्ञातं चेद्भवता तर्हि भवानेव सर्वज्ञः । कुत इति चेत् । योऽसौ जगत्त्रयं जानाति स एव सर्वज्ञः यदि पुनः सर्वज्ञरहितं जगत्त्रयं कालत्रयं न ज्ञातं भवता तर्हि जगत्त्रये कालत्रयेपि सर्वज्ञो नास्तीति कथं निषेधः क्रियते त्वया । अथ मतं किमत्रोदाहरणं यथा कश्चिद्देवदत्तो घटरहितभूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तमेव, अन्यः कोप्यंधः किमेवं ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्त्यपि तु नैवं । तथा योऽसौ जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति स एव सर्वज्ञ-

और वही भगवान [अनंतं] नहीं है पार जिसका और [अव्याबाधं] बाधारहित निरंतर अखंडित तथा [अमूर्त्तं] अतीन्द्रिय अमूर्त्तीक है, ऐसे [स्वकं] आत्मीक [सुखं] आकुलतारहित परम सुखको [प्राप्नोति] पाता है। **भावार्थ—** आत्मा ज्ञान-दर्शनरूप सुखस्वभाव है, सो संसार अवस्थामें अनादि कर्मबंधके कारण संक्लेश के द्वारा सावरण हुआ है । आत्मशक्ति घाती गई है । परद्रव्यके संबंधसे क्षयोपशम ज्ञानके बलसे क्रमशः कुछ कुछ जानता व देखता है। इस कारण पराधीन मूर्त्तीक इन्द्रियगोचर बाधासंयुक्त विनाशीक सुखको भोगता है। और जब इसके सर्वथा प्रकार कर्मक्लेश विनश जाते हैं, तब बाधारहित परकी सहाय के विना आप ही एकही बारमें समस्त पदार्थोंको जानता तथा देखता है। और स्वाधीन अमूर्त्तीक परसंयोगरहित अतीन्द्रिय अखंडित अनंत सुखको भोगता है । इस कारण सिद्ध परमेष्ठी स्वयं जानने देखनेवाला सुखका अनुभवन करनेवाला आप ही है। और परसे कुछ

१ पराधीनं वा पराश्रितं सुखं. २ आत्मनः ।

शक्तिरसहायः स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति पश्यति, स्वं[1]प्रत्ययममूर्तसंबंधमव्याबाधमनंत-सुखमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च, स्वं न परेण प्रयोजनमिति ॥ २९ ॥

निषेधे समर्थो न चान्योन्ध इव। यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञनिषेधं कथमपि न करोति । कस्मात् ? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानसहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति । किंचानुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदयुक्तं । कथमिति चेत् । किं भवतां सर्वज्ञानुपलब्धिरुत जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा। यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति । कथमिति चेत् । परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परिचितोवृत्तयश्च भवद्भिर्यदि न ज्ञायंते तर्हि किं न सन्ति। अथ जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां सर्वज्ञानुपलब्धेस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिरिति पूर्वमेवं विचारितं तिष्टति, इति हेतुदूषणं । यदप्युक्तं खरविषाणवदिति दृष्टांतवचनं, तदप्ययुक्तं । कथमिति चेत् । खरे विषाणं नास्ति न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते तथा सर्वज्ञेपि विवक्षितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषणं दृष्टांतदूषणं च ज्ञातव्यं । अथ मतं सर्वज्ञाभावे दूषणं दत्तं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाणं । तत्र प्रमाणं कथ्यते—अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति । अथवा द्वितीयमनुमानप्रमाणं कथ्यते । तद्यथा । सूक्ष्माव्यवहितदेशांतरितकालांतरितस्वभावांतरितार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवंतीति साध्यो धर्मः । कस्माद्धेतोः । अनुमानविषयत्वात् । यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं दृष्टं, यथाग्न्यादि अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवंतीति

प्रयोजन नहीं है । यहाँ कोई नास्तिकमती तर्क करता है कि, सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि सबका जानने देखनेवाला प्रत्यक्षमें कोई नहीं दीखता । जैसे गर्दभके सींग नहीं हैं, वैसे ही कोई सर्वज्ञ नहीं है । उत्तर—सर्वज्ञ इस देशमें नहीं कि इस कालमें ही नहीं अथवा तीन लोकमें ही नहीं या तीन कालमें ही नहीं ? यदि कहो कि इस देशमें और इस कालमें नहीं तो ठीक है, क्योंकि इस समय कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता । और यदि कहो कि तीन लोकमें तथा तीन कालमें भी नहीं है, तो तुमने यह वात किसप्रकार जानी ? क्योंकि तीन लोक और तीन कालकी वात सर्वज्ञके विना कोई जान ही नहीं सकता, और जो तुमने यह वात निश्चय करके जान ली कि कहीं भी सर्वज्ञ नहीं और किसी कालमें भी न तो हुआ न होगा, तो हम कहते हैं कि तुम ही सर्वज्ञ हो, क्योंकि जो तीन लोक और तीन कालकी जाने वही सर्वज्ञ है। और यदि तुम तीन लोक और तीन कालकी वात नहीं जानते तो तुमने तीन लोक और तीन कालमें सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा किस प्रकार जाना ? जो सवका जानने देखने वाला हो वही सर्वज्ञका निषेध कर सकता है और किसीकी भी शक्ति नहीं है ।

---

१ स्वात्मोत्थं सुखम् ।

जीवत्वगुणव्याख्येयम्;—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥३०॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यः खलु जीवितः पूर्वं ।
स जीवः प्राणाः पुनर्बलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वासः ॥ ३० ॥

इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणा हि प्राणाः । तेषु[1] चित्सामान्यान्वयिनो भावप्राणाः, पुद्गलसामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणाः, तेषामुभयेषाम्[2]अपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसंतानत्वेन धारणात्संसारिणो जीवत्वं । मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणानां धारणात्तदवसेयमिति ॥३०॥

संक्षेपेण सर्वज्ञसद्भावे प्रमाणं ज्ञातव्यं । विस्तरेणासिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्करहेतुदूषणसमर्थन-
मन्यत्र सर्वज्ञसिद्धौ भणितमास्ते, अत्र पुनरध्यात्मग्रंथत्वान्नोच्यते । इदमेव वीतरागसर्वज्ञस्वरूपं
समस्तरागादिविभावत्यागेन निरंतरमुपादेयत्वेन भावनीयमिति भावार्थः ॥ २९ ॥ एवं प्रभु-
त्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ जीवत्वगुणव्याख्यानं क्रियते;—'पाणेहिं' इत्यादि
पदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते । पाणेहिं चदुहिं जीवदि यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्ध-
चैतन्यादिप्राणैर्जीवति तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपैस्तथाशुद्धनिश्चयनयेन भावरू-
पैश्चतुर्भिः प्राणैः संसारावस्थायां वर्तमानकाले जीवति जीविस्सदि भाविकाले जीविष्यति ।
जो हु यो हि स्फुटं जीविदो पुव्वं जीवितः पूर्वकाले सो जीवो सः कालत्रयेपि प्राणचतु-
ष्टयसहितो जीवो भवति । पाणा पुण बलमिंदियमाउउस्सासो ते पूर्वोक्तद्रव्यभावप्राणाः पुनर-

---

इस कारण तुम ही सर्वज्ञ हो । इस न्यायसे सर्वज्ञकी सिद्धि होती है, निषेध नहीं
होता । जो वस्तु इस देशकालमें नहीं और सूक्ष्म परमाणु आदिक जो वस्तु हैं और
जो अमूर्त्त हैं उन वस्तुओं का ज्ञाता एक सर्वज्ञ ही है, और कोई नहीं
है ॥ २९ ॥ आगे जीवत्व गुणका व्याख्यान करते हैं;—[यः] जो [चतु-
र्भिः प्राणैः] चार प्राणोंसे [जीवति] वर्त्तमान कालमें जीता है [जी-
विष्यति] आगामी काल में जियेगा । [पूर्वं जीवितः] पूर्वही जीता था [सः]
वह [खलु] निश्चय से [जीवः] जीवनामक पदार्थ है । [पुनः] फिर उस
जीवके [प्राणाः] चार प्राण हैं । वे कौन कौनसे हैं । [बलं] एक तो मनवचन-
कायरूप बल प्राण है और दूसरा [इंद्रियम्] स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्ररूप
पांच इन्द्रिय प्राण हैं । तीसरा [आयुः] आयुःप्राण है, चौथा [उच्छ्वासः] श्वा-

---

१ प्राणेषु । २ अशुद्धनिश्चयेन भावरूपानां. उपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपाणाम् ।

अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः;—

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे ।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥३१॥

अगुरुलघुका अनंतास्तैरनंतैः परिणताः सर्वे ।
देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः ॥३१॥

भेदेन बलेन्द्रियायुरुच्छ्वासलक्षणा इति । अत्र सूत्रे मनोवाक्कायनिरोधेन पंचेंद्रियविषयव्यावर्तनबलेन च शुद्धचैतन्यादिशुद्धप्राणसहितः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयरूपेण ध्यातव्य इति भावार्थः ॥ ३० ॥ अथागुरुलघुत्वमसंख्यातप्रदेशत्वं व्यापकत्वाव्यापकत्वं मुक्तामुक्तत्वं च प्रतिपादयति,—**अगुरुलहुगाणंता** प्रत्येकं षट्स्थानपतितहानिवृद्धिभिरनंताविभागपरिच्छेदैः सहिता अगुरुलघवो गुणा अनंता भवन्ति । **तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे** तैः पूर्वोक्तगुणैरनंतैः परिणताः सर्वे । सर्वे के । जीवा इति संबंधः । **देसेहिं असंखादा** लोकाकाशप्रमिताखण्डप्रदेशैः सहितत्वादसंख्येयप्रदेशाः । **सियलोगं सव्वमावण्णा** स्यात्कथंचिल्लोकपूरणाव-

---

सोच्छ्वास प्राण है । भावार्थ—इन्द्रिय बल आयु श्वासोच्छ्वास इन चारों ही प्राणोंमें जो चैतन्यरूप परिणति हैं वे तो भावप्राण हैं और इनकी ही जो पुद्गलस्वरूप परिणति हैं वे द्रव्यप्राण कहलाते हैं । ये दोनों जातिके प्राण संसारी जीवके सदा अखंडित संतान द्वारा प्रवर्त्तते हैं । इनही प्राणोंसे संसारमें जीवित कहलाता है । और मोक्षावस्थामें केवल शुद्धचैतन्यादि गुणरूप भावप्राणोंसे जीवित है, इस कारण वह शुद्धजीव है ॥ ३० ॥ आगे जीवोंका स्वाभाविक प्रदेशोंकी अपेक्षा प्रमाण कहते हैं और मुक्त संसारी जीवका भेद कहते हैं;—[अगुरुलघुकाः] समय समयमें षट्गुणी हानिवृद्धि लिये अगुरुलघु गुण [अनंताः] अनंत हैं, वे अगुरुलघु गुण आत्माके स्वरूपमें थिरताके कारण अगुरुलघु स्वभाव हैं, उसके अविभागी अंश अति सूक्ष्म हैं । आगमकथित ही प्रमाण कहे जाते हैं । [तैः अनतैः] उन अनंत अगुरुलघु गुणोंके द्वारा [सर्वे] जितने समस्त जीव हैं उतने सब ही [परिणताः] परणत हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अनंत अगुरुलघुगुण रहित हो, किन्तु सबमें पाये जाते हैं । और वे सब ही जीव [देशैः] प्रदेशों के द्वारा [असंख्याताः] लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हैं । अर्थात्—एक एक जीवके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं । उन जीवों में से कितने ही जीव [स्यात्] किस ही एक प्रकारसे दंडकपाटादि अवस्थाओंमें [सर्वं लोकं] तीनसै तेतालीस रज्जुप्रमाण घनाकाररूप समस्त लोकके प्रमाणको [आपन्नाः]

केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा ।
विजुदा य तेहिं वहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥३२॥ (जुम्मं)

केचित्तु अनापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः ।
वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः ॥३२॥ (युग्मम्)

जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः । अगुरुलघवो गुणास्तु तेषामगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिवन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदाः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनंताः । प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा असंख्येयाः । एवंविधेषु तेषु केचित्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः । केचित्तु तदव्यापिनः इति । अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसंततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणो ये विमुक्तास्ते सिद्धास्ते च प्रत्येकं वहव इति ॥३१॥ ३२॥

स्थाप्रकारेण लोकव्यापकाः अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया लोकव्यापकाः । तथाचोक्तं । "आधारे थूलाओ सुहुमेहिं णिरंतरो लोगो"। पुनरपि कथंभूतास्ते जीवाः । केचिच्च अणावण्णा केचिच्च केचन पुनर्लोकपूरणावस्थारहिता अथवा बादरैकेन्द्रिया विकलेन्द्रियादयश्चाव्यापकाः । पुनरपि किंविशिष्टाः । मिच्छादंसणकसायजोगजुदा रागादिरहितपरमानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्यथासंभवं युक्ताः । न केवलं युक्ताः विजुदा य तेहिं तैरेव मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहिताश्च । उभयेपि कति संख्योपेताः । वहुगा वहवोऽनंताः । पुनरपि कथंभूताः । सिद्धा संसारिणो ये मिथ्यादर्शनकषाययोगविमुक्ता रहितास्ते सिद्धा, ये च युक्तास्ते संसारिण इति । अत्र जीविताशारूपरागादिविकल्पत्यागेन सिद्धजीवसदृशः परमाह्लादरूपसुखरसास्वादपरिणतनिजशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयमिति भावार्थः ॥३२॥

प्राप्त हुये हैं । दंडकपाटादिमें सब ही जातिके कर्मोंके उदयसे प्रदेशोंका विस्तार लोक प्रमाण होता है । इस कारण समुद्घातकी अपेक्षासे कई जीव लोकके प्रमाणानुसार कहे गये हैं । और [केचित्तु अनापन्नाः] कई जीव समुद्घातके विना सर्व लोकप्रमाण नहीं हैं, निज निज शरीरके प्रमाण ही हैं । उस अनंत जीवराशि में [बहवः जीवाः] अनंतानंत जीव [मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः] अनादि कालसे मिथ्यात्व कषाय योगसे संयुक्त [संसारिणः] संसारी हैं । अर्थात् जितने जीव मिथ्यादर्शनकषाययोग संयुक्त हैं वे सब संसारी कहे जाते हैं और जो [च तैः] उन मिथ्यात्व कषाय योगोंसे [वियुताः] रहित शुद्ध जीव हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध हैं । वे सिद्ध (मुक्त जीव भी) अनंत हैं । यह शुद्धाशुद्ध जीवोंका सामान्य स्वरूप जानना ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

---

१ जीवानाम्. २ अभिन्नाः ।

एष देहमात्रत्वदृष्टांतोपन्यासः;—

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरं पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥३३॥

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरं ।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति ॥३३॥

यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतोऽव्यतिरिक्तप्रभास्कंधेन तद् व्याप्नोति क्षीरं, तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम् । यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्धलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कंध उद्धलते पुनर्निविशमाने निविशते च । तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाऽऽहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति, पुनरपसर्पति अपसर्पन्ति च । यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र

एवं पूर्वोक्त "वच्छरक्ख" इत्यादि दृष्टांतनवकेन चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ देहमात्रविषये दृष्टांतं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति । एवमग्रेपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्याथवा सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं निरूपयतीति पातनिका लक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यं;—**जह पउमरायरयणं** यथा पद्मरागरत्नं कर्तृ । कथंभूतं । **खित्तं** क्षिप्तं । क्व । **खीरे** क्षीरे दुग्धे । क्षीरे किं करोति । **पहासयदि खीरं** प्रकाशयति तत्क्षीरं । **तह देही देहत्थो** तथा देही संसारी देहस्थः सन् **सदेहमेत्तं पहासयदि** स्वदेहमात्रं प्रकाशयतीति । तद्यथा—अत्र

आगे देहमात्र जीव किस दृष्टांतसे है सो कहा जाता है:—[**यथा**] जिस प्रकार [**पद्मरागरत्नं**] पद्मरागनामक महामणि [**क्षीरे क्षिप्तं**] दूध में डालने पर [**क्षीरं**] दूधको उस ही अपनी प्रभासे [**प्रभासयति**] प्रकाशमान करता है [**तथा**] वैसे ही [**देही**] संसारी जीव [**देहस्थः**] देह में रहता हुआ [**स्वदेहमात्र**] अपने को देहके बराबर ही [**प्रभासयति**] प्रकाशित करता है । **भावार्थ**—पद्मराग नामक रत्न दुग्धसे भरेहुये वर्त्तनमें डाला जाय तो उस रत्न में ऐसा गुण है कि अपनी प्रभासे समस्त दुग्धको अपने रंगसे रंगकर अपनी प्रभाको दुग्धके बराबर ही प्रकाशमान करता है । उसी प्रकार यह संसारी जोव भी अनादि कषायोंके द्वारा मैला होता हुआ शरीरमें रहता है । उस शरीरमें अपने प्रदेशोंसे व्याप्त होकर रहता है । इसलिये शरीरके परिमाण होकर रहता है । और जिस प्रकार वही रत्नसहित दुग्ध अग्निके संयोगसे उबलकर बढ़ता है तो उसके साथही रत्नकी प्रभा भी बढ़ती है, और जब अग्निका संयोग न्यून होता है, तब रत्नकी प्रभा घट जाती है ।

प्रभूतक्षीरे क्षिप्तं स्वप्रभास्कंधविस्तारेण तद् व्याप्नोति प्रभूतक्षीरम् । तथैव हि जीवोऽन्यत्र महति शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशविस्तारेण तद् व्याप्नोति महच्छरीरं । यथैव च तत्पद्म-रागरत्नमन्यत्र स्तोकक्षीरे निक्षिप्तं स्वप्रभास्कंधोपसंहारेण तद् व्याप्नोति स्तोकक्षीरं । तथैव च जीवोऽन्यत्राणुशरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशोपसंहारेण तद् व्याप्नोत्यणुशरीरमिति ॥३३॥

पद्मरागशब्देन पद्मरागरत्नप्रभा गृह्यते न च रत्नं यथा पद्मरागप्रभासमूहः क्षीरे क्षिप्तस्तत्क्षीरं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि स्वदेहस्थो वर्तमानकाले तं देहं व्याप्नोति। अथवा यथा विशिष्टाग्निसंयो-गवशात्क्षीरे वर्द्धमाने सति पद्मरागप्रभासमूहो वर्द्धते हीयमाने च हीयत इति तथा विशिष्टाहार-वशाद्देहे वर्धमाने सति विस्तरन्ति जीवप्रदेशा हीयमाने च संकोचं गच्छन्ति। अथवा स एव प्रभासमूहोऽन्यत्र बहुक्षीरे निक्षिप्तो बहुक्षीरं व्याप्नोति स्तोके स्तोकं व्याप्नोति तथा जीवोऽपि जग-त्त्रयकालत्रयमध्यवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशेन समर्थविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावचैतन्यच-मत्कारमात्राच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणैर्मिथ्यात्वरागादिविकल्पैर्यदुपार्जितं शरीरनामकर्म तदु-दयजनितविस्तारोपसंहाराधीनत्वेन सर्वोत्कृष्टावगाहपरिणतः सन् सहस्रयोजनप्रमाणं महामत्स्यश-रीरं व्याप्नोति, जघन्यावगाहेन परिणतः पुनरुत्सेधघनांगुलासंख्येयभागप्रमितं लब्ध्यपूर्णसू-क्ष्मनिगोतशरीरं व्याप्नोति, मध्यमावगाहेन मध्यमशरीराणि च व्याप्नोतीति भावार्थः ॥३३॥

इसी प्रकार स्निग्ध पौष्टिक आहारादिके प्रभावसे शरीर ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों शरीरस्थ जीवके प्रदेश भी बढ़ते रहते हैं। और आहारादिककी न्यूनतासे जैसे जैसे शरीर क्षीण होता है वैसे वैसे जीवके प्रदेश भी संकुचित होते रहते हैं। और यदि उस रत्नको बहुतसे दूधमें डाला जाय तो उसकी प्रभा भी विस्तृत होकर समस्त दूधमें व्याप्त हो जायगी। वैसे ही बड़े शरीरमें जीव जाता है तो जीव अपने प्रदेशोंको विस्तार करके उस ही प्रमाण हो जाता है, और वही रत्न जब थोड़े दूधमें डाला जाता है तो उसकी प्रभा भी संकुचित होकर दूधके प्रमाणही प्रकाश करती है। इसी प्रकार बड़े शरीरसे निकलकर छोटे शरीरमें जानेसे जीवके भी प्रदेश संकुचित होकर उस छोटे शरीरके बराबर रहेंगे। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि यह आत्मा कर्मजनित संकोच-विस्ताररूप शक्तिके प्रभावसे जब जैसा शरीर धारण करता है तब वैसा ही होकर प्रवर्तित होता है। उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजनकी स्वयंभूरमण समुद्रमें महामच्छकी होती है। और जघन्य अवगाहना अलब्धपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवोंकी है ॥ ३३ ॥ आगे

१ प्रचुरदुग्धे. २ अन्यस्मिन् ।

अत्र जीवस्य देहाद्देहांतरेऽस्तित्वं, देहात्पृथग्भूतत्वं, देहांतरसंचरणकारणं चोपन्यस्तम्;—

सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो ।
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥३४॥

सर्वत्रास्ति जीवो न चैक एककाये ऐक्यस्थः ।
अध्यवसायविशिष्टश्चेष्टते मलिनो रजोमलैः ॥३४॥

आत्मा हि संसारावस्थायां क्रमवर्तिन्यनवच्छिन्नशरीरसंताने यथैकस्मिन् शरीरे वृत्तः, तथा क्रमेणान्येष्वपि शरीरेषु वर्तत इति तस्य सर्वत्रास्तित्वम् । न चैकस्मिन् शरीरे नीर-

---

अत्र मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यं । अथ वर्तमानशरीरवत् पूर्वापरशरीरसंतानेपि तस्यैव जीवस्यास्तित्वं देहात्पृथक्त्वं भवांतरगमनकारणं च कथयति;—सव्वत्थ अत्थि जीवो सर्वत्र पूर्वापरभवशरीरसंताने य एव वर्तमानशरीरे जीवः स एवास्ति न चान्यो नवतर उत्पद्यते चार्वाकमतवत् । ण य एक्को निश्चयनयेन देहेन सह न चैकस्तन्मयः एक्कगो य अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेनैकोपि भवति । कस्मादिति चेत् । एक्कट्ठो क्षीरनीरवदेकार्थोऽभिन्नो यस्मात् अथवा सर्वत्र देहमध्ये जीवोस्ति न चैकदेशे अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया सर्वत्र लोकमध्ये जीवसमूहोस्ति । स च यद्यपि केवलज्ञानादिगुणसादृश्येनैकत्वं लभते तथापि नानावर्णवस्त्रवेष्टितषोडशवर्णिका सुवर्णराशिवत्स्वकीयस्वकीयलोकमात्रासंख्येयप्रदेशैर्भिन्न इति । भवांतरगमनकारणं कथ्यते । अज्झवसाणविसिट्ठो चेट्ठदि मलिणो रजमलेहिं अध्यवसानविशिष्टः संश्चेष्टते मलिनो रजमलैः । तथाहि—यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानदर्शनस्वभावस्तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यध्यवसानरूपभावकर्मभिस्तज्जनकद्रव्यकर्म-

---

जीवका देहसे अन्य देहमें अस्तित्व कहते हैं और देहसे जुदा दिखाते हैं तथा अन्य देहके धारण करनेका कारण भी बतलाते हैं:—[जीवः] आत्मा [सर्वत्र] संसार अवस्थामें क्रमवर्त्ती अनेक पर्यायोंमें सब जगह [अस्ति] है । अर्थात्—जैसे एक शरीरमें आत्मा प्रवर्तित है वैसे ही जब और पर्यायांतर धारण करता है, तब वहाँ भी वैसे ही प्रवर्तित होता है । इसलिये समस्त पर्यायोंकी परंपरासे वही जीव रहता है । नया कोई जीव उत्पन्न नहीं होता । [च] और [एककाये] व्यवहारनयकी अपेक्षासे यद्यपि एक शरीरमें [ऐक्यस्थः] क्षीरनीरकी तरह मिलकर एक स्वरूप धरकर रहता है तथापि [एकः न] निश्चयनयकी अपेक्षा देहसे मिलकर एकमेक नहीं होता । निजस्वरूपसे जुदा ही रहता है । और वह ही जीव जब [अध्यवसायविशिष्टः] अशुद्ध रागद्वेष मोह परिणामोंसे संयुक्त होता है तब [रजोमलैः] ज्ञानावरणादि कर्मरूप मैलसे [मलिनः] मैला होता [चेष्टते] संसारमें परिभ्रमण करता है । **भावार्थ**—यद्यपि यह आत्मा शरीरादि परद्रव्यसे जुदा ही है तथापि संसार अवस्थामें

क्षीरमिश्रै[1]क्येन स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वात्तेन सहैक इति । तस्य देहात्पृथग्भूतत्वं अना-दिबं[2]धनोपाधिविवर्तितविविधाऽध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूलकर्मजालमलीमसत्वाच्च चेष्टमा-नस्या[3]ऽऽत्मनस्तथाविधाऽध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीरप्रवेशो भवतीति त[4]स्य देहांतरसंचर-णकारणोपन्यास इति ॥ ३४ ॥

सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम्;—

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥ ३५ ॥

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य ।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धा वाग्गोचरमतीताः ॥ ३५ ॥

द्रव्यकर्ममलैश्च वेष्टितः सन् भवांतरं प्रति शरीरग्रहणार्थं चेष्टते वर्तत इति । अत्र य एव देहाद्भिन्नोऽनंतज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा भणितः स एव शुभाशुभसंकल्पविकल्पपरिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसकनैयायिकसांख्यमतानुसारिशिष्यसंश-यविनाशार्थं "वेयणकसायवेगुव्वियो य मारणंतियो समुग्घादो । तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु" इति गाथाकथितसप्तसमुद्घातान् विहाय स्वदेहप्रमाणात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ सिद्धानां शुद्धजीवत्वं अतीतशरीरप्रमाणाकाशव्यापकत्वादिति व्यवहारेण मूतपूर्वकन्यायेन किंचिन्न्यूनचरमशरीरप्रमाणं च व्यवस्थापयति;—**जेसिं जीवसहाओ णत्थि** येषां कर्मजनि-तद्रव्यप्राणभावप्राणरूपो जीवस्वभावो नास्ति **ते होंति सिद्धा** ते भवन्ति सिद्धा इति संबंधः । यदि तत्र द्रव्यभावप्राणा न संति तर्हि बौद्धमतवत्सर्वथा जीवाभावो भविष्यतीत्याशंक्योत्तरमाह **अभावो य सव्वहा तत्थ णत्थि** शुद्धसत्ताचैतन्यज्ञानादिरूपशुद्धभावप्राणसहितत्वात्तत्र सिद्धा-

---

अनादि कर्मसंबंधसे नानाप्रकारके विभावभाव धारण करता है । उन विभाव भावोंसे नये कर्मबंध होते हैं, उन कर्मोंके उदयसे फिर देहसे देहांतरको धारण करता है जिससे संसार बढ़ता है ॥ ३४ ॥ आगे सिद्धोंके जीवका स्वभाव दिखाते हैं और उनके ही किंचित् ऊन चरमदेहपरिमाण शुद्ध प्रदेशस्वरूप देह कहते हैं;—[येषां] जिन जीवोंके [जीवस्वभावः] जीवकी जीवितव्यताका कारण—प्राणरूप भाव [नास्ति] नहीं है । [च] और उन ही जीवोंके [तस्य] उस ही प्राणका [सर्वथा] सब तरहसे [अभावः] अभाव [नास्ति] नहीं है । कथंचित्प्रकार

---

१ एकस्वरूपत्वेन. २ अनादि च तदेव बंधनं च तस्योपाधिः तेन विवर्तिताः निष्पादितः ते च ते विविधा नानाप्रकाराः अध्यवसाया रागद्वेषमोहपरिणतिरूपाश्च तैर्विशिष्टत्वात्संयुक्तत्वात्. ३ रागद्वेषमोहरूपेण विक्रियां कुर्वाणस्य. ४ जीवस्य ।

सिद्धानां हि द्रव्य[1]प्राणधारणात्मको मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति । न च जीवस्वभावस्य सर्वथाभावोऽस्ति भाव[2]प्राणधारणात्मकस्य जीवस्वभावस्य मुख्यत्वेन सद्भावात् । न तेषां[3] शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः । यतस्ते तत्सं[4]पर्कहेतुभूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानंतरशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यंतभिन्न[5]देहाः । वाचां गोचरमतीतश्च तन्[6]महिमा । यतस्ते लौकिकप्राणधारणमंतरेण शरीरसंबंधमंतरेण च परिप्राप्तनिरुपाधिस्वरूपाः सततं प्रत[7]पंतीति ॥ ३५ ॥

वस्थायां सर्वथा जीवाभावोपि नास्ति च । सिद्धाः कथंभूताः । **भिण्णदेहा** अशरीराव शुद्धात्मनो विपरीताः शरीरोत्पत्तिकारणभूताः मनोवचनकाययोगाः क्रोधादिकषायाश्च न संतीति भिन्नदेहा अशरीरा ज्ञातव्याः । पुनश्च कथंभूताः । **वचिगोयरमतीदा** सांसारिकद्रव्यप्राणभावप्राणरहिता अपि विजयंते प्रतपंतीति हेतोर्वचनगोचरातीतास्तेषां महिमास्वभावः अथवा सम्यक्त्वाद्यष्टगुणैस्तदंतर्गतानंतगुणैर्वा सहितास्तेन कारणेन वचनगोचरातीता इति । अथात्र यथा पर्यायरूपेणपदार्थानां क्षणिकत्वं दृष्ट्वातिव्याप्तिं कृतद्रव्यरूपेणापि क्षणिकत्वं मन्यते सौगतः तथेन्द्रियादिदर्शनप्राणसहितस्याशुद्धजीवस्याभावं दृष्ट्वा मोक्षावस्थायां केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहि-

---

प्राण भी हैं [**ते सिद्धाः**] वे सिद्ध [**भवन्ति**] होते हैं । कैसे हैं वे सिद्ध ? [**भिन्नदेहाः**] शरीररहित अमूर्तीक हैं । फिर कैसे हैं ? [**वाग्गोचरमतीताः**] जिनकी महिमा वचनातीत है । **भावार्थ**—सिद्धांतमें प्राण दो प्रकारके कहे हैं—एक निश्चय, दूसरा व्यवहार । जितने शुद्ध ज्ञानादिक भाव हैं वे तो निश्चयप्राण हैं और जो अशुद्ध इन्द्रियादिक प्राण हैं सो व्यवहारप्राण हैं । प्राण उसको कहते हैं जिसके द्वारा जीवद्रव्यका अस्तित्व है । जीवभी संसारी और सिद्धके भेदसे दो प्रकारके हैं । जो अशुद्ध प्राणोंके द्वारा जीता है सो तो संसारी है, और जो शुद्ध प्राणोंसे जीता है वह सिद्ध जीव है । इसकारण सिद्धोंके कथंचित् प्रकार प्राण हैं भी और नहीं भी हैं । जो निश्चय प्राण हैं वे तो पाये जाते हैं और जो व्यवहार प्राण हैं वे नहीं हैं । फिर उन ही सिद्धोंके क्षीरनीरके समान देहसे संबंध भी नहीं है । किंचित् ऊन (कम) चरम (अंतके) शरीरप्रमाण प्रदेशोंकी अवगाहना है । ज्ञानादि अनंतगुणसंयुक्त अपार महिमा लिये आत्मलीन अविनाशी स्वरूपसहित विराजमान हैं ॥ ॥३५ ॥

---

१ द्रव्यप्राणाः इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणात्मकाः. २ भावप्राणस्य सत्तासुखबोधचैतन्यलक्षणस्य. ३ तेषां सिद्धानां. ४ तस्य शरीरस्य संपर्कः संयोगः तत्संपर्कहेतुभूताश्च ते कषाययोगाश्च तेषां विप्रयोगो विनाशस्तस्मात्. ५ अविशयेन त्यक्तदेहाः. ६ तेषां सिद्धानां महिमा तन्महिमा. ७ प्रकाशयन्ति ।

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम्;—

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥ ३६ ॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः ।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३६ ॥

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयाऽऽत्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्म्मरूपया च पुद्गलपरिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते न तथा सिद्धरूपेणापीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति । यथैव च स एव संसारी भावकर्म्मरूपामात्मपरिणामसंततिं, द्रव्यकर्मरूपां च पुद्गलपरिणामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति । सिद्धो ह्युभयकर्म्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादयन् नान्यत्किञ्चिदुत्पादयति ॥ ३६ ॥

तस्य शुद्धजीवस्याप्यभावं मन्यत इति भावार्थः ॥ ३५ ॥ अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणाभावं साधयति;—ण कदाचिवि उप्पण्णो संसारिजीववन्नरनारकादिरूपेण कापि काले नोत्पन्नः जम्हा यस्मात्कारणात् कज्जं ण तेण सो सिद्धो तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति उप्पादेदि ण किंचिवि स्वयं कर्मनोकर्मरूपं किमपि नोत्पादयति कारणमिह तेण ण सो होहि तेन कारणेन स सिद्धः इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारणमपि न भवतीति । अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धनिश्चयेन कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणं च न भवति स एवानंतज्ञानादिसहितः कर्मोदयजनितनवतरकर्मादानकारणभूतमनोवचनकायव्यापार-

---

आगे संसारी जीवके जैसे कार्यकारणभाव हैं, वैसे सिद्ध जीवके नहीं हैं, ऐसा कथन करते हैं;—[यस्मात्] क्योंकि [कुतश्चित् अपि] किसी और वस्तुसे भी [सिद्धः] शुद्ध सिद्धजीव [उत्पन्नः न] उपजा नहीं है । [तेन] इसलिए [सः] वह सिद्ध [कार्यं] कार्यरूप नहीं है । कार्य उसे कहते हैं जो किसी कारणसे उपजा हो, सो सिद्ध किसीसे भी नहीं उपजे, इसलिये सिद्ध कार्य नहीं हैं । और जिस कारणसे [किंचित् अपि] अन्य कुछ भी वस्तु [उत्पादयति न] उत्पन्न नहीं करता है [तेन] इस कारणसे [सः] वह सिद्ध जीव [कारणं अपि] कारणरूप भी [न भवति] नहीं है । कारण वही कहलाता है जो किसीका उपजानेवाला हो । सो सिद्ध कुछ उपजाते नहीं । इसलिये सिद्ध कारण भी नहीं हैं भावार्थ—जैसे संसारी जीव कार्य-कारण भावरूप है वैसे सिद्ध नहीं हैं । सो ही दिखाया जाता है । संसारी जीवके अनादि पुद्गल संबंधके होनेसे भावकर्मरूप परिणति और द्रव्यकर्मरूप परिणति है । इनके कारण देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी

अत्र जीवाभावो मुक्तिरिति निरस्तम्;—

सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च ।
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥ ३७ ॥

शाश्वतमथोच्छेदो भव्यमभव्यं च शून्यमितरच्च ।
विज्ञानमविज्ञानं नापि युज्यते असति सद्भावे ॥ ३७ ॥

द्रव्यं द्रव्यतया शाश्वतमिति, नित्ये द्रव्ये पर्यायाणां प्रतिसमयमुच्छेद इति, द्रव्यस्य सर्वदा अभूतपर्यायैः भाव्यमिति, द्रव्यस्य सर्वदा भूतपर्यायैरभाव्यमिति, द्रव्यमन्यद्रव्यैः

निवृत्तिकाले साक्षादुपादेयो भवतीति तात्पर्यं ॥ ३६ ॥ अथ जीवाभावो मुक्तिरिति सौगतमतं विशेषेण निराकरोति;—सस्सदमधमुच्छेदं सिद्धावस्थायां तावट्टंकोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेणाविनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति अथ अहो पर्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्ध्यपेक्षयोच्छेदोस्ति भव्वमभव्वं च निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं परिणमनं

पर्यायरूप जीव उपजता है । इस कारण द्रव्यकर्म भावकर्मरूप अशुद्ध परिणति कारण है और चार गतिरूप जीवका होना कार्य है । सिद्ध कार्यरूप नहीं है, क्योंकि द्रव्यकर्म भावकर्मका जब सर्वथा प्रकारसे नाश होता है, तब ही सिद्धपद होता है । और संसारी जीव द्रव्य—भावरूप अशुद्ध परिणतिको उपजाता हुआ चारगतिरूप कार्यको उत्पन्न करता है । इस कारण संसारी जीव कारण भी कहा जाता है । सिद्ध कारण नहीं हैं, क्योंकि सिद्धोंसे चार गतिरूप कार्य नहीं होता । सिद्धके अशुद्ध परिणति सर्वथा नष्ट होगई है । सो अपने शुद्ध स्वरूपको ही उपजाते हैं । और कुछ भी नहीं उपजाते ॥ ३६ ॥ आगे कई इक वौद्धमती जीवका सर्वथा अभाव होनेको ही मोक्ष कहते हैं । उनका निषेध करते हैं;—[सद्भावे] मोक्षावस्थामें शुद्ध सत्तामात्र जीव वस्तुके [असति] अभाव होते हुए [शाश्वतं] जीव द्रव्यस्वरूपसे अविनाशी है ऐसा कथन [नापि युज्यते] संभवित नहीं है । जब मोक्षमें जीव ही नहीं तो शाश्वत कौन होगा ? [अथ] और [उच्छेदः] नित्य जीवद्रव्यके समयसमयमें पर्यायकी अपेक्षासे नाश होता है यह भी कथन नहीं बनेगा । जब मोक्षमें वस्तु ही नहीं है तो नाश किसका कहा जाय ? (च) और [भव्यं] समयसमयमें शुद्ध भावों के परिणमन का होना सो भव्य भाव है [अभव्यं] जो अशुद्ध भाव विनष्ट हुये उनका अन होना अभव्यभाव कहाता है । ये दोनों प्रकारके भव्य अभव्य भाव यदि मुक्तमें जीव नहीं हो तो

---

१ सिद्धावस्थायां तावट्टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेण विनश्वरत्वाद्द्रव्यरूपेण शाश्वतस्वरूपमस्ति. २ अथ पर्य्यायरूपेणागुरुलघुकगुणषट्स्थानगतहानिवृद्ध्यपेक्षयोच्छेदोऽस्ति. ३ निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं भव्यत्वं ४ अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेन भवनं अपरिणमनमभव्यत्वं च ।

सह सदा शून्यमिति, द्रव्यं स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं ज्ञानं क्वचित्सांतं ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंतं क्वचित्सांतमज्ञानमिति । एतदन्यथानुपपद्यमानं मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥ ३७ ॥

भव्यत्वं अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेनाभवनमपरिणमनमभव्यत्वं । सुण्णमिदरं च स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वं निजपरमात्मानुगतस्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरश्चाशून्यत्वं विण्णाणमविण्णाणं समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानं विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञानमिति णवि जुज्जदि असदि सब्भावे इदं तु नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोस्ति । अत्र स एवोपा-

---

किसके होगा ? [च] तथा [शून्यं] परद्रव्यस्वरूपसे जीवद्रव्यरहित है । इसको शून्यभाव कहते हैं [इतरं] अपने स्वरूपसे पूर्ण है उसको अशून्यभाव कहते हैं । यदि मोक्षमें वस्तुही नहीं है तो ये दोनों भाव किसके कहे जायेंगे [च] और [विज्ञानं] यथार्थ पदार्थका जानना [अविज्ञानं] औरका और जानना । ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकारके भाव यदि मोक्षमें जीव नहीं हों तो कहे नहीं जायें, क्योंकि किसी जीवमें ज्ञान अनंत है, किसी जीवमें ज्ञान सांत है । किसी जीवमें अज्ञान अनंत है, किसी जीवमें अज्ञान सांत है । शुद्ध जीव-द्रव्यमें केवलज्ञानकी अपेक्षा अनंत ज्ञान है । सम्यग्दृष्टी जीवके क्षयोपशम ज्ञानकी अपेक्षा सांत ज्ञान है । अभव्य मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा अनंत अज्ञान है । भव्यमिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा सांत अज्ञान है । सिद्धोंमें समस्त त्रिकालवर्त्ती पदार्थोंकाके जाननेरूप ज्ञान है, इस कारण ज्ञानभाव कहा जाता है । और कथंचित्प्रकार अज्ञानभाव भी कहा जाता है । क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानका सिद्धोंमें अभाव है । इसलिये विनाशीक ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञानभाव जानना । यह दोनों प्रकारके ज्ञान-अज्ञानभाव यदि मोक्षमें जीवका अभाव हो तो नहीं वन सकते । भावार्थ—जो अज्ञानी जीव मोक्ष अवस्थामें जीवका नाश मानते हैं उनको समझानेके लिये आठ भाव हैं । इन आठ भावोंसे ही मोक्षमें जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है । और जो ये आठ भाव नहीं हों तो द्रव्यका अभाव हो जाय । द्रव्यके अभावसे संसार और मोक्ष दोनों अवस्थाका अभाव हो जायगा । इस कारण इन आठों भावज्ञानोंको जानना चाहिये । ध्रौव्यभाव १, व्ययभाव २, भव्यभाव ३, अभव्यभाव ४, शून्यभाव ५, अशून्यभाव ६, ज्ञान-

---

१ स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वम्. २ निजपरमात्मतावानुगतद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेतरमशून्यत्वम्. ३ समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानम्. ४ विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थाज्ञाने परिज्ञानादविज्ञानम्. ५ मोक्षावस्थायामिदं नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते । तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति ।

चेतयितृत्वगुणव्याख्येयम्;—

कम्माणं फलमेको एको कज्जं तु णाणमध एको ।
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥ ३८ ॥

कर्मणां फलमेकः एकः कार्यं तु ज्ञानमथैकः ।
चेतयति जीवराशिश्चेतकभावेन त्रिविधेन ॥ ३९ ॥

एके हि चेतयितारः प्रकृष्टतरमोहमलीमसेन प्रकृष्टतरज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन प्रकृष्टतरवीर्यांतरायाऽवसादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखरूपं कर्मफलमेव प्राधान्येन चेतयंते । अन्ये तु प्रकृष्टतरमोहमलीमसेनापि प्रकृष्टज्ञानावरणमुद्रितानुभावेन चेतकस्वभावेन मनाग्वीर्यांतरायक्षयोपशमासादितकार्यकारणसामर्थ्याः सुखदुःखानुरूपकर्मफलानुभवनसंबलितमपि कार्यमेव प्राधान्येन चेतयंते । अन्यतरे तु प्रक्षालितसकल-

---

देय इति भावार्थः ॥ ३७ ॥ एवं भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं जीवस्यामूर्तत्वव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं गतं । अथ त्रिविधचेतनाव्याख्यानं प्रतिपादयति;—**कम्माणं फलमेक्को चेदगभावेण वेदयदि जीवरासी** निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितप्रकृष्टतरमोहमलीमसेन चेतकभावेन प्रच्छादितसामर्थ्यः सन्नेको जीवराशिः कर्मफलं वेदयति **एक्को कज्जं तु** अथ पुनरेकस्तेनैव चेतकभावेनोपलब्धसामर्थ्येनेहापूर्वकेष्टानिष्टविकल्परूपं कर्म कार्यं तु वेदयत्यनुभवति **णाणमथमेक्को** अथ पुनरेको जीवराशिस्तेनैव चेतकभावेन विशुद्धशुद्धात्मानुभूतिभावनाविनाशितकर्ममलकलंकेन केवलज्ञानमनुभवति । कतिसंख्योपेतेन तेन पूर्वोक्तचेतकभावेन । ति—

भाव ७, अज्ञानभाव ८, इन आठ भावोंसे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है । और जीवद्रव्यके अस्तित्वसे इन आठोंका अस्तित्व रहता है ॥ ३७ ॥ आगे चैतन्यस्वरूप आत्माके गुणोंका व्याख्यान करते हैं;—[एकः] एक जीवराशि तो [कर्मणां] कर्मोंके [फलं] सुखदुःखरूप फलको [चेतयति] वेदती है [तु] और [एकः] एक जीवराशि ऐसी है कि कुछ उद्यम लिये [कार्यं] सुखदुखरूप कर्मोके भोगनेके निमित्त इष्ट अनिष्ट विकल्परूप कार्यको विशेषताके साथ वेदती है [अथ] और [एकः] एक जीवराशि ऐसी है कि [ज्ञानं] शुद्धज्ञानको ही विशेषतारूप से वेदती है । [त्रिविधेन] यह पूर्वोक्त कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतना, इसप्रकार तीन भेद लिये हैं [चेतकभावेन] चैतन्यभावोंसे ही [जीवराशिः] समस्त जीवराशि है । ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो इस त्रिगुणमयी चेतनासे रहित हो । इस कारण आत्माके चैतन्यगुण जान लेना । **भावार्थ**—अनेक जीव ऐसे हैं कि जिनके विशेषता करके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनी, वीर्यांतराय इन कर्मोका उदय है ।

---

१ स्थावरकायाः. २ आच्छादितावृतमाहात्म्येन. ३ आच्छादित. ४ द्वीन्द्रियादयः, ५ सिद्धाः ।

मोहकलङ्केन समुच्छिन्नकृत्स्नज्ञानावरणतयाऽत्यंतमुन्मुद्रितसमस्तानुभावेन चेतकस्वभावेन समस्तवीर्यांतरायक्षयासादितानंतवीर्या अपि निर्जीर्णकर्मफलत्वादत्यंतकृतकृत्यत्वाच्च स्वतोऽव्यतिरिक्तं स्वाभाविकं सुखं ज्ञानमेव चेतयंत इति ॥ ३८ ॥

अत्र कः किं चेतयत इत्युक्तं;—

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥ ३९ ॥

सर्वे खलु कर्मफलं स्थावरकायास्त्रसा हि कार्ययुतं ।
प्राणित्वमतिक्रांताः ज्ञानं विंदन्ति ते जीवाः ॥ ३९ ॥

चेतयंतेऽनुभवन्ति उपलभंते विंदंतीत्येकार्थाश्चेतनानुभूत्युपलब्धिवेदनानामेकार्थ-

---

विहेण कर्मफलकर्मकार्यज्ञानरूपेण त्रिविधेनेति ॥ ३८ ॥ अथात्र कः किं चेतयतीति निरूपयति इति निरूपयति इति कोर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति एवं प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः । सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया विंदन्ति ते सर्वे जीवाः प्रसिद्धाः पंचप्रकाराः स्थावरकाया जीवा अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूपं शुभाशुभकर्मफलं विंदंत्यनुभवन्ति तसा हि कज्जजुदं द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानास्संतो विशेषरागद्वेषरूपा तु या कार्यचेतना तत्सहितमनुभवन्ति पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ये तु विशिष्टशुद्धात्मानुभूतिभावनासमुत्पन्नपर-

---

इन कर्मोंके उदयसे आत्मीक शक्तिसे रहित हुये परिणमते हैं । इस कारण विशेषताकर सुखदुखरूप कर्मफलको भोगते हैं । निरुद्यमी हुये विकल्परूप इष्ट अनिष्ट कार्य करनेको असमर्थ हैं इसलिये इन जीवोंको मुख्यतासे कर्मफल-चेतना गुणके धारक जानों । और जो जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोह कर्मके विशेष उदयसे अतिमलीन हुये चैतन्यशक्तिसे हीन परणमते हैं परंतु उनके वीर्यांतराय कर्मका क्षयोपशम कुछ अधिक हुआ है, इस कारण सुखदुःखरूप कर्मफलके भोगनेको इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष मोह लिये उद्यमी हुये कार्य करनेको समर्थ हैं, वे जीव मुख्यतासे कर्मचेतनागुणसंयुक्त जानना । और जिन जीवोंके सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह और अंतराय-कर्म गये हैं; अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख, अनंतवीर्य ये गुण प्रगट हुये हैं, कर्म और कर्मफलके भोगनेमें विकल्परहित हैं और आत्मीक पराधीनतारहित स्वाभाविक सुखमें लीन होगये हैं, वे ज्ञानचेतनागुणसंयुक्त कहलाते हैं ॥ ३८ ॥ आगे इस तीन प्रकारकी चेतनाके धारक कौन कौन जीव हैं सो दिखाया जाता है;—[खलु] निश्चयसे [सर्वे] पृथिवी काय आदि जो समस्त ही पाँच प्रकार [स्थावरकायाः] स्थावर जीव हैं वे [कर्मफलं] कर्मोंका जो दुखसुखरूप फल उसको प्रगटरूपसे रागद्वेषकी विशेषता रहित अप्रगटरूप अपनी शक्त्यनुसार [विंदन्ति] वेदते हैं । क्योंकि एकेन्द्रिय

त्वात् । तत्र स्थावराः कर्मफलं[1] चेतयंते । त्रसाः[2] कार्यं चेतयंते । केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयंत इति ॥ ३९ ॥

अथोपयोगगुणव्याख्यानम्;—

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो ।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥ ४० ॥

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः ।
जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि ॥ ४० ॥

आत्मनश्चैतन्यानुविधायी[3] परिणाम उपयोगः । सोऽपि द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनो-

---

मानंदैकसुखामृतसमरसीभाववलेन दशविधप्राणत्वमतिक्रांताः सिद्धजीवास्ते केवलज्ञानं विंदन्ति इत्यत्र गाथाद्वये केवलज्ञानचेतना साक्षादुपादेया ज्ञातव्येति तात्पर्यं ॥ ३९ ॥ एवं त्रिविधचेतनाव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः प्रारभ्यते । तद्यथा । अथात्मनो द्वेधोपयोगं दर्शयति;—उवओगो आत्मनश्चैतन्यानुविधायि-परिणामः उपयोगः चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोयं पटोयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि खलु स्फुटं दुविहो द्विविधः । स च कथंभूतः । णाणेण य दंसणेण संजुत्तो सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं ताभ्यां संयुक्तः जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणाहि तं चोपयोगं जीवस्य संबन्धित्वेन

जीवोंके केवलमात्र कर्मफलचेतनारूप ही मुख्य है [हि] निश्चय करके [त्रसाः] द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे [कार्ययुतं] कर्मका जो फल सुखदुःखरूप है उसको रागद्वेषमोहकी विशेषता लिये उद्यमी हुये इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें कार्य करते हुए भोगते हैं इस कारण वे जीव कर्मफलचेतनाकी मुख्यतासहित जानना । और जो जीव [प्राणित्वं] दश प्राणोंसे [अतिक्रांताः] रहित हैं, अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं [ते] वे [जीवाः] शुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानी जीव [ज्ञानं] केवलज्ञान चैतन्य भावहीको [विंदन्ति] साक्षात् परमानंद सुखरूप अनुभवन करते हैं । ऐसे जीव ज्ञानचेतनासंयुक्त कहलाते हैं । ये तीन प्रकारके जीव तीन प्रकारकी चेतनाके धारक जानना ॥ ३९ ॥ आगे उपयोग-गुणका व्याख्यान करते हैं;—[खलु] निश्चय से [उपयोगः] चेतनता लिये जो परिणाम है सो [द्विविधः] दो प्रकारका है । वे दो प्रकार कौन कौन से हैं ? [ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः] ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ऐसे दो भेद लिये

---

१ अव्यक्तसुखदुःखानुभवरूप शुभाशुभकर्मफलमनुभवन्ति. २ द्वीन्द्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमानाः संतो विशेषरागद्वेषानुरूपया कार्यचेतनया सहितमनुभवन्ति. ३ चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति, अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोऽयं घटोऽयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयतीति चैतन्यानुविधायी ।

पयोगश्च । तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं । सामान्यग्राहि दर्शनम् । उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव । एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥ ४० ॥

ज्ञानोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्;—

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि ।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥ ४१ ॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि ।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञानैः संयुक्तानि ॥ ४१ ॥

तत्राभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं, मनःपर्य्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, कुमतिज्ञानं, कुश्रुतज्ञानं, विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यात्मा । स खल्वनादिज्ञानावरणकर्म्मच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणाऽवबुध्यते तदभिनिबोधिकज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादनिन्द्रियावलंबाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् श्रुत-

---

सर्वकालं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशैरभिन्नं विजानीहीति ॥ ४० ॥ एवं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनरूपेण गाथैका गता । अथ ज्ञानोपयोगभेदानां संज्ञां प्रतिपादयति;—आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पंचभेदानि भवन्ति कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभंगज्ञानमिति च मिथ्याज्ञानत्रयं भवति । अयमत्र भावार्थः । यथैकोप्यादित्यो मेघावर-

---

हुए हैं । जो विशेषता लिये पदार्थोंको जानता है सो ज्ञानोपयोग कहलाता है और जो सामान्यस्वरूप पदार्थोंको जानता है, सो दर्शनोपयोग कहा जाता है । सो दुविध उपयोग [जीवस्य] आत्मद्रव्यके [सर्वकालं] सदाकाल [अनन्यभूतं] प्रदेशोंसे जुदा नहीं है ऐसा [विजानीहि] हे शिष्य ! तू जान । यद्यपि व्यवहारनयाश्रित गुणगुणीके भेदसे आत्मा और उपयोगमें भेद है तथापि वस्तुकी एकताके न्यायसे एक ही है, भेद करनेमें नहीं आता, क्योंकि गुणके नाश होनेसे गुणीका भी नाश है और गुणीके नाशसे गुणका नाश है, इस कारण एकता है ॥ ४० ॥ आगे ज्ञानोपयोगके भेद दिखाते हैं;—[आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि] मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल [पञ्चभेदानि ज्ञानानि] ये पांच प्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं । [च] और [कुमतिश्रुतविभङ्गानि त्रीणि अपि] कुमति, कुश्रुत, विभङ्गावधि ये तीन कुज्ञान भी [ज्ञानैः संयुक्तानि] पूर्वोक्त पांचों ज्ञानोंसहित जानना । ये ज्ञानके आठ भेद हैं । भावार्थ—स्वाभाविक भावसे यह आत्मा अपने समस्त प्रदेशव्यापी अनंत-

---

१ अव समन्तात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमितत्वेन धीयते ध्रियते इत्यवधिः. २ परकीयमनोगतार्थे उपचारात् मनः, मनः पर्येति गच्छतीति मनःपर्ययः ।

ज्ञानं । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तदवधिज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तन्मनःपर्ययज्ञानम् । यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं विशेषेणावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानं । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमवधिज्ञानमेव विभङ्गज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम् । इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥४१॥

दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्;—

दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं ।
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥ ४२ ॥

णवशेन बहुधा भिद्यते तथा निश्चयनयेनाखंडैकप्रतिभासस्वरूपोप्यात्मा व्यवहारनयेन कर्मपटलवेष्टितः सन्मतिज्ञानादिभेदेन बहुधा भिद्यत इति ॥ ४१ ॥ इत्यष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता । अथ दर्शनोपयोगभेदानां संज्ञां स्वरूपं च प्रतिपादयति;—चक्षुर्दर्शनमचक्षु-

---

निरावरण शुद्धज्ञानसंयुक्त है । परंतु अनादिकालसे लेकर कर्मसंयोगसे दूषित हुआ प्रवर्तित है । इसलिये सर्वांग असंख्यात प्रदेशोंमें ज्ञानावरण कर्मके द्वारा आच्छादित है । उस ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मतिज्ञान प्रगट होता है । तब मन और पांच इन्द्रियोंके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्यको विशेषताकर जिस ज्ञानके द्वारा परोक्षरूप जानता है उसका नाम मतिज्ञान है । और उस ही ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मनके अवलंबसे किंचिन्मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान है । यदि कोई यहां पूछै कि श्रुतज्ञान तो एकेन्द्रियसे लगाकर असैनी जीव पर्यंत कहा है । इसका समाधान यह है कि—उनके मिथ्याज्ञान है, इस कारण वह श्रुतज्ञान नहीं लेना, और अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी ही प्रधानता है, इस कारण भी वह श्रुतज्ञान नहीं लेना । मनके अवलंबनसे जो परोक्षरूप जाना जाय उस श्रुतज्ञानको द्रव्यभावके द्वारा जानना और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जिस ज्ञानके द्वारा एकदेशप्रत्यक्षरूप किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्य जाने उसका नाम अवधिज्ञान है । और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अन्य जीवके मनोगत मूर्त्तीक द्रव्यको एकदेश प्रत्यक्ष जिस ज्ञानके द्वारा जाने, उसका नाम मनःपर्ययज्ञान कहा जाता है । और सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे जिस ज्ञानके द्वारा समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य, गुण, पर्यायसहित प्रत्यक्ष जाने जांय उसका नाम केवलज्ञान है । मिथ्यादर्शनसहित जो मतिश्रुतअवधिज्ञान हैं, वे ही कुमति कुश्रुत कुअवधिज्ञान कहलाते हैं । यह आठ प्रकारके ज्ञान जिनागमसे विशेषतया जानने चाहिये ॥४१॥ अब दर्शनोपयोगके नाम और स्वरूपका कथन करते हैं ।

दर्शनमपि चक्षुर्युतमचक्षुर्युतमपि चावधिना सहितं ।
अनिधनमनंतविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम् ॥ ४२ ॥

चक्षुर्दर्शन[1]मचक्षुर्दर्शन[2]मवधिदर्शनं[3] केवलदर्शन[4]मिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा । स खल्वनादिदर्शनावरणकर्म्मावच्छन्नप्रदेशः सन् यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनाववुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनाववुध्यते तदचक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनाववुध्यते तदवधिदर्शनम् । यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनाववुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति स्वरूपाभिधानम् ॥४२॥

दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति दर्शनोपयोगभेदानां नामानि । अयमात्मा निश्चयनयेनानंताखंडैकदर्शनस्वभावोपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झंपितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलंबने न यन्मूर्तं[1] वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनं, शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगद्रव्येन्द्रियद्रव्यमनोवलंवनेन यन्मूर्तामूर्तं[2] च वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनं, स एवात्मावधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं[3] वस्तु निर्विकल्पस-

[चक्षुर्युतं] द्रव्यनेत्रके अवलंवनसे जो [दर्शनं] देखना है उसका नाम चक्षुदर्शन [प्रज्ञप्तं] भगवानने कहा है [च] और [अचक्षुर्युतं] नेत्र इन्द्रियके विना अन्य चारों द्रव्यइन्द्रियोंके और मनके अवलंवनसे जो देखा जाय उसका नाम अचक्षुदर्शन है । [च] और [अवधिना सहितं] अवधिज्ञानके द्वारा [अपि] निश्चयसे जो देखना है, उसको अवधिदर्शन कहते हैं । और जो [अनिधनं] अंतरहित है [अनंतविषयं] तथा समस्त अनंत पदार्थ हैं विषय जिसके वह [कैवल्यं] केवलदर्शन [प्रज्ञप्तं] कहा गया है । भावार्थ—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चार भेदों द्वारा दर्शनोपयोग जानना । दर्शन और ज्ञानमें सामान्य और विशेषका भेद

१ अयमात्मा निश्चयनयेनाखंडैकदर्शनस्वभावोऽपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झम्पितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्वेन यन्मूर्तंवस्तुनि निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनम्. २ शेषेन्द्रियनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति बहिरङ्गचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलम्वेन यन्मूर्तामूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनम्. ३ स एवात्माऽवधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं. ४ रागादिदोषरहितं चिदानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तु वस्तुगतसत्तासामान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवति ।

एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानात्मकत्वसमर्थनमेतत्;—

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि ।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहि ॥ ४३ ॥

न विकल्पते ज्ञानाद् ज्ञानी ज्ञानानि भवंत्यनेकानि ।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानिभिः ॥ ४३ ॥

न तावज्ज्ञानी[1] ज्ञानात् पृथग्भवति, द्वयोरप्येकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् । द्वयो-

---

त्तावलोकेन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं रागादिदोषरहितचिदानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिल- क्षणनिर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुगतसत्तासा- मान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनंतविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवतीति । अत्र केवल- दर्शनाविनाभूतानंतगुणाधारः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥ एवं दर्शनो- पयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथात्मनो ज्ञानादिगुणैः सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभे- देपि निश्चयेन प्रदेशाभिन्नत्वं मत्याद्यनेकज्ञानत्वं च व्यवस्थापयति सूत्रत्रयेण;—**ण वियप्पदि** न विकल्पते न भेदेन पृथक् क्रियते । कोऽसौ ? **णाणी** ज्ञानी । कस्मात्सकाशात् । **णाणादो** ज्ञानगुणात् । तर्हि ज्ञानमप्येकं भविष्यति । नैवं । **णाणाणि होंति णेगाणि** मत्यादिज्ञानानि भवंत्यनेकानि यस्मादनेकानि ज्ञानानि भवन्ति **तम्हा दु विस्सरूवं भणियं** तस्मात्कारणादने-

---

मात्र है । जो विशेषरूप जाने उसको ज्ञान कहते हैं । इस कारण दर्शनका सामान्य जानना लक्षण है । आत्मा स्वभाविक भावोंसे सर्वांग प्रदेशोंमें निर्मल अनंतदर्शनमयी है परन्तु वही आत्मा अनादि दर्शनावरण कर्मके उदयसे आच्छादित है, इसकारण दर्शन शक्तिसे रहित है । उसही आत्माके अंतरंग चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्रके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखा जाय उसका नाम चक्षुदर्शन कहा जाता है । और अंतरंगमें अचक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्र इन्द्रियके विना चार इन्द्रियों और द्रव्यमनके अवलंबनसे किंचित् मूर्तीक द्रव्य अमूर्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखे जांय उसका नाम अचक्षुदर्शन कहा जाता है । और जो अवधि दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्योंको प्रत्यक्ष देखे उसका नाम अव- धिदर्शन है । और जिसके द्वारा सर्वथा प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखा जाय उसको केवलदर्शन कहते हैं । इसप्रकार दर्शनका स्वरूप जानना ॥ ४२ ॥ आगे कहते हैं कि एक आत्माके अनेक ज्ञान होते हैं, इसमें कुछ दूषण नहीं है—[ज्ञानात्] ज्ञानगुणसे [ज्ञानी] आत्मा [न विकल्पते] भेद भावको प्राप्त नहीं होता है । अर्थात्—परमार्थसे तो गुणगुणीमें भेद

---

१ आत्मा. २ आत्मज्ञानयोः ।

रप्यभिन्नप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् । द्वयोरप्येकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् । द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात् । न चैवमुच्यमानेप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिबोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यंते द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात् । द्रव्यं हि सहक्रमप्रवृत्तानंतगुणपर्य्यायाधारतयाऽनंतरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥ ४३ ॥

कज्ञानगुणापेक्षया विश्वरूपं नानारूपं भणितं । किं । दवियत्ति जीवद्रव्यमिति । कैर्भणितं । णाणीहिं हेयोपादेयतत्त्वविचारज्ञानिभिरिति मत्यादि । तथाहि—एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् एकप्रदेशनिर्वृत्तत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् मूर्तैकजडस्वरूपत्वेनैकस्वभावत्वाच्च परमाणोर्वर्णादिगुणैःसह यथा भेदो नास्ति तथैवैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् एकचैतन्यनिर्वृत्तत्वेनैकस्वभावत्वाच्च ज्ञानादिगुणैः सह जीवद्रव्यस्यापि भेदो नास्ति । अथवा शुद्धजीवापेक्षया शुद्धैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयाखंडैकशुद्धप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रपरिणतिरूपवर्तमानैकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् निर्मलैकचिज्ज्योतिःस्वरूपेणैकस्वभावत्वात् च सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनंतगुणैः सह शुद्धजीवस्यापि भेदो नास्तीति भावार्थः ॥ ४३ ॥

अथ मत्यादिपंचज्ञानानां क्रमेण गाथापंचकेन व्याख्यानं करोति, तथाहि;—

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो ।
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ॥ १ ॥

मदिणाणं अयमात्मा निश्चयनयेन तावदखण्डैकविशुद्धज्ञानमयः व्यवहारनयेन संसारावस्थायां कर्मावृतः सन्मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति पंचभिरिन्द्रियैर्मनसा च मूर्तामूर्तं वस्तु विकल्परूपेण यज्जानाति तन्मतिज्ञानं पुण तिविहं तच्च पुनस्त्रिविधं उवलद्धी भावणं च उवओगो

नहीं होता है, क्योंकि द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुणगुणी एक है । जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुणीका है वही गुणका है और जो गुणका है सो गुणीका है । इसी प्रकार अभेदनयकी अपेक्षा एकता जानना । भेदनयसे आत्मामें [ज्ञानानि] मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पांच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे [अनेकानि] दो तीन चार [भवन्ति] होते हैं । भावार्थ—यद्यपि आत्मद्रव्य और ज्ञानगुणकी एकता है तथापि ज्ञानगुणके अनेक भेद करनेसें कोई विरोध व दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्य कथंचित्प्रकार भेद अभेद स्वरूप है । अनेकांतके विना द्रव्यकी सिद्धि नहीं है [तस्मात् तु] इस कारणसे [ज्ञानीभिः] जो अनेकांत विद्याके जानकार ज्ञानी जीवोंके द्वारा [द्रव्यं] पदार्थ है सो [विश्वरूपं] अनेक प्रकारका [भणितं] कहा गया है [इति] इस प्रकार वस्तुका स्वरूप जानना । भावार्थ—यद्यपि द्रव्य अनंतगुण अनंतपर्यायके आधारसे एक वस्तु है, तथापि वही द्रव्य अनेक प्रकार भी कहा जाता है । इससे यह वात सिद्ध हुई कि अभेदसे आत्मा एक है, अनेक ज्ञानके पर्यायभेदोंसे अनेक है ॥ ४३ ॥

उपलब्धिर्भावना तथोपयोगश्च, मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरुपलब्धिर्ज्ञातेर्थे पुनः पुनश्चिंतनं भावना नीलमिदं पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः तह एव चदुवियप्पं तथैवावग्रहेहावायधाराणाभेदेन चतुर्विधं वरकोष्टबीजपदानुसारिसंभिन्नश्रोतृताबुद्धिभेदेन वा दंसणपुव्वं हवदि णाणं तच्च मतिज्ञानं सत्तावलोकदर्शनपूर्वकमिति । अत्र निर्विकारशुद्धानुभूत्यभिमुखं यन्मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानंतसुखसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥ १ ॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव ।
उवओगणयवियप्पं णाणेय य वत्थु अत्थस्स ॥ २ ॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति स एव पूर्वोक्तात्मा श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति यन्मूर्तामूर्तं वस्तु परोक्षरूपेण जानाति तत्पुनः श्रुतज्ञानं ज्ञानिनो भणन्ति । तच्च कथंभूतं । लद्धी य भावणा चेव लब्धिरूपं च भावनारूपं चैव । पुनरपि किंविशिष्टं । उवओगणयवियप्पं उपयोगविकल्पं नयविकल्पं च उपयोगशब्देनात्र वस्तुग्राहकं प्रमाणं भण्यते, नयशब्देन तु वस्त्वेकदेशग्राहको ज्ञातुरभिप्रायो विकल्पः । तथा चोक्तं । नयो ज्ञातुरभिप्रायः । केन कृत्वा वस्तुग्राहकं प्रमाणं वस्त्वेकदेशग्राहको नय इति चेत् । णाणेय य ज्ञातृत्वेन परिच्छेदकत्वेन ग्राहकत्वेन वत्थु अत्थस्स सकलवस्तुग्राहकत्वेन प्रमाणं भण्यते अर्थस्य वस्त्वेकदेशस्य । कथंभूतस्य । गुणपर्यायरूपस्य ग्रहणेन पुनर्नय इति । अत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्वसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥ २ ॥

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च ।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥ ३ ॥

ओहिं तहेव घेप्पदु अयमात्मावधिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तदवधिज्ञानं भवति, तावत् यथापूर्वमुपलब्धिभावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा साप्यवधिर्भावनां विहाय त्रिधा गृह्यतां ज्ञायतां भवद्भिः । देसं परमं च ओहि सव्वं च अथवा देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदेन त्रिधावधिज्ञानं किन्तु परमावधिसर्वावधिद्वयं चिदुच्छलननिर्भरानंदरूपपरमसुखामृतरसास्वादसमरसीभावपरिणतानां चरमदेहतपोधनानां भवति तथाचोक्तं—"परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स" । तिण्णिवि गुणेण णियमा त्रयोप्यवधयो विशिष्टसम्यक्त्वादिगुणेन निश्चयेन भवन्ति । भवेण देसं तहा णियदं भवप्रत्ययेन योऽवधिर्देवनारकाणां स देशावधिरेव नियमेनेत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं ।
एदे संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥ ४ ॥

विउलमदी अयमात्मा पुनः मनपर्ययज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति परकीयमनोगतं मूर्तं

वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं तच्च कतिविधं ? **विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं** ऋजुमतिविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्ययज्ञानं, तत्र विपुलमतिज्ञानं परकीयमनोवचनकायगतमर्थं वक्रावक्रं जानाति, ऋजुमतिश्च प्राञ्जलमेव निर्विकारात्मोपलब्धिभावनासहितानां चरमदेहमुनीनां विपुलमतिर्भवति। **एदे संजमलद्धी** एतौ मनःपर्ययौ संयमलब्धी उपेक्षासंयमे सति लब्धिर्ययोरतौ संयमलब्धी मनःपर्ययौ भवतः। तौ च कस्मिन् काले समुत्पद्येते ? **उवओगे** उपयोगे विशुद्धपरिणामे। कस्य। **अप्पमत्तस्स** वीतरागात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानभावनासहितस्य। "विकहा तहा कसाया" इत्यादि गाथोक्तपंचदशप्रमादरहितस्याप्रमत्तमुनेरिति। अत्रोत्पत्तिकाल एवाप्रमत्तनियमः पश्चात्प्रमत्तस्यापि संभवतीति भावार्थः ॥४॥

णाणं णेयणिमित्तं केवलणाणं ण होदि सुदणाणं।
णेयं केवलणाणं णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो ॥ ५ ॥

केवलणाणं णाणं णेयणिमित्तं ण होदि केवलज्ञानं यज्ज्ञानं तद्घटपटादिज्ञेयार्थमाश्रित्य नोत्पद्यते। तर्हि श्रुतज्ञानस्वरूपं भविष्यति। **ण होदि सुदणाणं** यथा केवलज्ञानं ज्ञेयनिमित्तं न भवति तथा श्रुतज्ञानस्वरूपमपि न भवति। **णेयं केवलणाणं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञेयं ज्ञातव्यं केवलज्ञानं। अयमत्रार्थः। यद्यपि दिव्यध्वनिकाले तदाधारेण गणधरदेवादीनां श्रुतज्ञानं परिणमति तथापि तच्छ्रुतज्ञानं गणधरदेवादीनामेव न च केवलिनां केवलज्ञानमेव। **णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो** न केवलं श्रुतज्ञानं नास्ति केवलिनां ज्ञानाज्ञानं च नास्ति, क्वापि विषये ज्ञानं क्वापि विषये पुनरज्ञानमेव न किंतु सर्वत्र ज्ञानमेव। अथवा मतिज्ञानादिभेदेन नानाभेदं ज्ञानं नास्ति किंतु केवलज्ञानमेकमेवेति। अत्र मतिज्ञानादिभेदेन यानि पंचज्ञानानि व्याख्यातानि तानि व्यवहारेणेति, निश्चयेनाखंडैकज्ञानप्रतिभास एवात्मा निर्मेघादित्यवदिति भावार्थः ॥ ५ ॥ एवं मत्यादिपंचज्ञानव्याख्यानरूपेण गाथापंचकं गतं।

अथाज्ञानत्रयं कथयति;—

मिच्छत्ता अण्णाणं अविरदिभावो य भावआवरणा।
णेयं पडुच्च काले तह दुण्णय दुप्पमाणं च ॥ ६ ॥

मिच्छत्ता अण्णाणं द्रव्यमिथ्यात्वोदयात्सकाशाद्भवतीति क्रियाध्याहारः। किं भवति ? **अण्णाणं अविरदिभावो य** ज्ञानमप्यज्ञानं भवति। अत्राज्ञानशब्देन कुमत्यादित्रयं ग्राह्यं। न केवलमज्ञानं भवति। अविरतिभावश्च अव्रतपरिणामश्च। कथंभूतान्मिथ्यात्वोदयादज्ञानमविरतिभावश्च भवति। **भावावरणा** भावस्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं भावसम्यक्त्वं तस्यावरणं झंपनं भावावरणं तस्माद्भावावरणाद्भावमिथ्यात्वादित्यर्थः। पुनरपि किं भवति मिथ्यात्वात् ? **तह दुण्णय दुप्पमाणं च** यथैवाज्ञानमविरतिभावश्च भवति तथा सुनयो दुर्नयो भवति, प्रमाणं दुःप्रमाणं च भवति। कदा भवति ? **काले** तत्त्वविचारकाले। किं कृत्वा ? **पडुच्च** प्रतीत्याश्रित्य। किमाश्रित्य ? **णेयं** ज्ञेयभूतं जीवादिवस्त्विति। अत्र मिथ्यात्वाद्विपरीतं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं निश्चय-

द्रव्यस्य गुणेभ्यो भेदे, गुणानां च द्रव्याद्भेदे दोषोपन्यासोऽयम्;—

जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे ।
दव्वाणंतियमधवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥ ४४ ॥

यदि भवति द्रव्यमन्यद्गुणतश्च गुणाश्च द्रव्यतोऽन्ये ।
द्रव्यानंत्यमथवा द्रव्याभावं प्रकुर्वन्ति ॥ ४४ ॥

गुणा हि क्वचिदाश्रिताः । यत्राश्रितास्तद्द्रव्यम्[१] । तच्चेदन्यद्गुणेभ्यः । पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रिताः । यत्राश्रितास्तद्द्रव्यं । तदपि अन्यच्चेद्गुणेभ्यः । पुनरपि गुणाः क्वचिदाश्रि-

---

सम्यक्त्वकारणभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं तस्य फलभूतं निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्त्वं चोपादेयं भवतीति भावार्थः ॥ ६ ॥

अथ द्रव्यस्य गुणेभ्य एकांतेन प्रदेशास्तित्वभेदे सति गुणानां च द्रव्याद्भेदे सति दोषं दर्शयति;— जदि हवदि दव्वमण्णं यदि चेत् द्रव्यमन्यद्भवति । केभ्यः ? गुणदो हि गुणेभ्यः । गुणा य दव्वदो अण्णे गुणाश्च द्रव्यतो यद्यन्ये भिन्ना भवन्ति । तदा किं दूषणं ? दव्वाणंतियं गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येकद्रव्यस्यापि आनंत्यं प्राप्नोति । अहवा दव्वाभावं पकुव्वंति अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं कुर्वंतीति । तद्यथा—गुणाः साश्रया वा निराश्रया वा ? साश्रयपक्षे दूषणं दीयते । अनंतज्ञानादयो गुणास्तावत् क्वचिच्छुद्धात्मद्रव्ये समाश्रिताः यत्रात्मद्रव्ये समाश्रिताः तदन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिज्जीवद्रव्यांतरे समाश्रितास्तदप्यन्यद्गुणेभ्यश्चेत् पुनरपि क्वचिदात्मद्रव्यांतरे समाश्रिता । एवं शुद्धात्मद्रव्यादनंतज्ञानादि-

---

आगे, यदि सर्वथा प्रकार द्रव्यसे गुण भिन्न हों और गुणोंसे द्रव्य भिन्न हों तो वड़ा दोष लगता है, ऐसा कथन करते हैं;—[च] और सर्वथा प्रकार [यदि] जो [द्रव्यं] अनेक गुणात्मक वस्तु [गुणतः] अंशरूप गुणसे [अन्यत्] प्रदेशभेदसे अलग [भवति] हो (च) और [द्रव्यतः] अंशीस्वरूप द्रव्यसे [गुणाः] अंशरूप गुण [अन्ये] प्रदेशोंसे भिन्न हों तो [द्रव्यानंत्यं] एक द्रव्यके अनंतद्रव्य हो जांय । अथवा यदि अनंतद्रव्य न हों तो [ते] वे गुण अलग होते हुये [द्रव्याभावं] द्रव्यके अभावको [प्रकुर्वन्ति] करते हैं । **भावार्थ**— आचार्योंने भी गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद दिखाया है । यदि उनमें सर्वथा प्रकार भेद हो तो एक द्रव्यके अनंत भेद हो जाते हैं, सो दिखाया जाता है । गुण अंशरूप है गुणी अंशी है । अंशसे अंशी अलग नहीं हो सकता, अंशीके आश्रय ही अंश रहते हैं । और यदि यह कहो कि अंशसे अंशी अलग होता है तो वे अंश आधारके विना किस

---

१ यस्मिन्वस्तुनि आश्रितास्तद्द्रव्यं स्यात् ।

ताः । यत्राश्रिताः तद्द्रव्यम् । तदप्यन्यदेव गुणेभ्यः । एवं द्रव्यस्य गुणेभ्यः भेदे भवति द्रव्यानंत्यम् । द्रव्यं हि गुणानां समुदायः । गुणाश्चेदन्ये समुदायात्, को नाम समुदायः ? एवं गुणानां द्रव्याद् भेदे भवति द्रव्याभाव इति ॥ ४४ ॥

द्रव्यगुणानां स्वोचितानन्यत्वोक्तिरियम्;—

अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमणत्तं ।
णिच्छंति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥४५॥

अविभक्तमनन्यत्वं द्रव्यगुणानां विभक्तमन्यत्वं ।
नेच्छन्ति निश्चयज्ञास्तद्विपरीतं हि वा तेषां ॥ ४५ ॥

अविभक्तप्रदेशत्वलक्षणं द्रव्यगुणानामनन्यत्वमभ्युपगम्यते । विभक्तप्रदेशत्वलक्षणं त्व-

---

गुणानां भेदे सति भवति शुद्धात्मद्रव्यानंत्यं । अथोपादेयभूतपरमात्मद्रव्ये गुणगुणिभेदे सति द्रव्यानंत्यं व्याख्यातं तथा हेयभूताशुद्धजीवद्रव्येपि पुद्गलादिष्वपि योजनीयं । अथवा गुणगुणिभेदैकांते सति विवक्षिताविवक्षितैकैकगुणस्य विवक्षिताविवक्षितैकैकद्रव्याधारे सति भवति द्रव्यानंत्यं द्रव्यात्सकाशान्निराश्रयभिन्नगुणानां भेदे द्रव्याभावः कथ्यते । गुणानां समुदायो द्रव्यं भण्यते । गुणसमुदायरूपद्रव्याद्गुणानां भेदैकांते सति गुणसमुदायरूपं द्रव्यं क्वास्ति ? न क्वापीति भावार्थः ॥ ४४ ॥ द्रव्यगुणानां यथोचितमभिन्नप्रदेशमनन्यत्वं प्रदर्शयति;—अविभत्तमणण्णत्तं अविभक्तमनन्यत्वं मन्यत इति क्रियाध्याहारः । केषां ? दव्वगुणाणं द्रव्यगुणानामिति । तथाहि—यथा परमाणोर्वर्णादिगुणैः सहानन्यत्वमभिन्नत्वं । कथंभूतं तत् ? अविभक्तमभिन्नप्रदे-

---

अंशीके आश्रयसे रहे ? उसकेलिये अन्य कोई अंशी चाहिये कि जिसके आधार पर अंश रहें । और यदि कहो कि अन्य अंशी है उसके आधार से रहते हैं, तो उस अंशीसे भी अंश जुदे कहने होंगे । और यदि कहोगे कि उससे भी अंश जुदे हैं, तो फिर अन्य अंशीकी कल्पना की जायगी । इसप्रकार कल्पना करनेसे गुणगुणीकी स्थिति नहीं होगी । क्योंकि गुण अनंत हैं । जुदा कहनेसे द्रव्य भी अनंत होंगे, सो एक दोष तो यह आयेगा और, दूसरा दोष यह है कि—द्रव्यका अभाव हो जायगा । क्योंकि द्रव्य वह कहलाता है जो गुणोंका समूह हो । इसलिये द्रव्यसे गुण जुदा हो तो द्रव्यका अभाव होता है । इसलिए सर्वथा प्रकार गुणगुणीका भेद नहीं है । कथंचित्प्रकारसे भेद है ॥ ४४ ॥ [द्रव्यगुणानां] द्रव्य और गुणोंका [अनन्यत्वं] एक भाव है सो [अविभक्तं] प्रदेशभेदसे रहित है । द्रव्यके नाश होनेसे गुणोंका अभाव और गुणोंके नाश होनेसे द्रव्यका अभाव, ऐसा

---

१ गुणेभ्यो द्रव्यस्य भेदे सत्येव द्रव्यस्याप्यानन्त्य प्राप्नोति । अथवा द्रव्यात्सकाशाद्यद्यन्ये भिन्ना गुणा भवन्ति तदा द्रव्यस्याभावं प्रकुर्वन्ति. २ "अङ्गीकारोऽभ्युपगमः" इति हैमः । तेन अंगीक्रियते इत्यर्थः ।

न्यत्वमनन्यत्वं च नाभ्युपगम्यते। तथाहि—यथैकस्य परमाणोरेकेनात्मप्रदेशेन सहाविभक्तत्वादनन्यत्वं, तथैकस्य परमाणोस्तद्वर्तिनां स्पर्शरसगंधवर्णादिगुणानां चाविभक्तप्र-

शत्वं तथा शुद्धजीवद्रव्ये केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपः स्वभावगुणानां तथैवाशुद्धजीवे मतिज्ञानादिव्यक्तिरूपविभावगुणानां शेषद्रव्याणां गुणानां च यथासंभवमभिन्नप्रदेशलक्षणमनन्यत्वं ज्ञातव्यं। विभत्तमण्णत्तं णेच्छंति विभक्तमन्यत्वं नेच्छन्ति। तद्यथा। अन्यत्वं भिन्नत्वं न मन्यंते। कथंभूतं तत्? विभक्तं भिन्नप्रदेशं सह्यविंध्ययोरिव। के नेच्छन्ति? णिच्चयण्हू निश्चयज्ञा जैनाः न केवलं भिन्नप्रदेशमन्यत्वं नेच्छन्ति तव्विवरीदं हि वा तद्विपरीतं वा तेसिं तेषां द्रव्यगुणानां तस्मादन्यत्वाद्विपरीतं तद्विपरीतमनन्यत्वमित्यर्थः। तदपि किं विशिष्टं नेच्छन्ति? एकक्षेत्रावगाहेपि भिन्नप्रदेशं, भिन्नतोयपयसोरिव। कस्मान्नेच्छंतीति चेत्सह्यविंध्ययोरिव तोयपयसोरिव, तेषां द्रव्यगुणानां भिन्नप्रदेशाभावादिति। अथवा अन्यत्वमभिन्नत्वं नेच्छन्ति द्रव्यगुणानां। कथंभूतं तत्? अविभक्तं एकांतेन यथा प्रदेशरूपेणाभिन्नं तथा संज्ञादिरूपेणाप्यभिन्नं नेच्छन्ति। न केवलमित्थंभूतं अनन्यत्वं नेच्छन्ति, अन्यत्वं भिन्नत्वमपि नेच्छंति। कथंभूतं? विभक्तं एकांतेन यथा संज्ञादिरूपेण भिन्नं तथा प्रदेशरूपेणापि भिन्नं। न केवलमेकांते-

एकभाव है। अर्थात् जैसे एक परमाणुकी अपने एक प्रदेशसे पृथकता नहीं है और जैसे उसही परमाणुमें स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंकी पृथकता नहीं है वैसे ही समस्त द्रव्योंमें प्रदेशभेदरहित गुणपर्यायका अभेद भाव जानो। ऐसी प्रदेशभेदरहित द्रव्यगुणोंकी एकता आचार्यजी ने अंगीकार की है, और [निश्चयज्ञाः] जो गुणगुणीमें कथंचित् भेदसे निश्चयस्वरूपके जाननेवाले हैं, वे [अन्यत्वं] द्रव्यगुणोंमें भेदभाव [विभक्तं] प्रदेशभेदसे रहित [न इच्छंति] नहीं चाहते हैं। भावार्थ—द्रव्य और गुणोंमें संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिसे यद्यपि भेद है तथापि ऐसा भेद नहीं है कि जिससे प्रदेशोंकी पृथकता हो। अतएव यह बात सिद्ध हुई कि गुणगुणीमें वस्तुरूप विचारसे प्रदेशोंकी एकतासे कुछ भी भिन्नता नहीं है। संज्ञामात्रसे भिन्नता है। एक द्रव्यमें भेद अभेद इसी प्रकार जानो [वा] अथवा [हि] निश्चयसे [तेषां] उन द्रव्यगुणोंके [तद्विपरीतं] उस पूर्वोक्त प्रकार भेद अभेदसे जो और प्रकार भेद अभेद है उसको [न इच्छन्ति] जो तत्त्वस्वरूपके वेत्ता हैं वे वस्तुमें नहीं मानते। भावार्थ—वस्तुमें कथंचित् गुणगुणीका जो भेद अभेद है, उसको वस्तुको साधनके वास्ते मानते हैं और जो उपचारमात्र पदार्थोंमें भेद अभेद लोकव्यवहारसे है उसको आचार्य नहीं मानते, क्योंकि लोकव्यवहारसे कुछ वस्तुका स्वरूप सधता नहीं है। सो दिखाया जाता है। जैसे—लोकव्यवहारसे विंध्याचल और हिमाचलमें बड़ा भेद कहा जाता है, क्योंकि

१ स्वकीयप्रदेशेन।

देशत्वादनन्यत्वं । यथा त्वत्यंतविप्रकृष्टयोः सह्यविंध्ययोरत्यंतसंनिकृष्टयोश्च मिश्रितयो-स्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्वं च । न तथा द्रव्यगुणानां विभक्तप्रदे-शत्वाभावादन्यत्वमनन्यत्वं चेति ॥ ४५ ॥

व्यपदेशादीनामेकांतेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबंधनत्वमत्र प्रत्याख्यातम्;—

ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा ।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जंते ॥ ४६ ॥

व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च भवन्ति ते बहुकाः ।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यंते ॥ ४६ ॥

यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेशः, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य गुणा इत्य-

---

नानन्यत्वमन्यं च नेच्छंति "तव्विवरीदे हि वा तेसि" मिति पाठांतरं तद्विपरीताभ्यां वा ताभ्यां परस्परसापेक्षानन्यत्वान्यत्वाभ्यां विपरीते निरपेक्षे तद्विपरीते ताभ्यां तद्विपरीताभ्यां वा कृत्वा तेषां द्रव्यगुणानामनन्यत्वान्यत्वे नेच्छन्ति किंतु परस्परसापेक्षत्वेनेच्छंतीत्यर्थः । अत्र गाथासूत्रे विशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वादन्यत्वरूपा ये विषयकषायास्तै रहितानां तस्मादेव परमचैतन्यरूपाद् परमात्मतत्त्वात् यदनन्यत्वस्वरूपं निर्विकल्पपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादानुभवनं तत्सहितानां च पुरुषाणां यदेव लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशैः सह केवलज्ञानादिगुणानामनन्यत्वं तदे-वोपादेयमिति भावार्थः ॥ ४५ ॥ इति गुणगुणिनोः संक्षेपेण भेदाभेदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा-त्रयं गतं । अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानामेकांतेन भिन्नत्वं न साधयंतीति समर्थयति;— ववदेसा संठाणा संखा विसया य व्यपदेशाः संस्थानानि संख्या विषयाश्च होंति भवन्ति ते ते पूर्वोक्तव्यपदेशादयः कतिसंख्योपेताः बहुगा प्रत्येकं बहवः ते तेसिमणण्णत्ते विज्जंते

हिमाचल कहीं है और विंध्याचल कहीं है । इसको नामभेद कहते हैं । तथा मिले हुये दुग्धजलको अभेद कहते हैं । परमार्थसे जल जुदा है, दुग्ध जुदा है । लोकव्यवहारसे एक माना जाता है, क्योंकि दुग्ध और जलमें प्रदेशोंकी ही पृथकता है । इसप्रकार लोकव्य-वहार कथित गुणगुणीमें भेदाभेद नहीं माने, किंतु प्रदेशभेदरहित जो गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद अभेद परमार्थ दिखानेके लिये कुन्दकुन्द आचार्योंने दिखाया है सो भले प्रकार जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ आगे व्यपदेश, संस्थान, संख्या, विषय, इन चार भेदोंसे सर्वथा प्रकार द्रव्य और गुणमें भेद दिखाते हैं;—[तेषां] उन द्रव्य और गुणोंके [ते] जिनसे गुणगुणीमें भेद होता है वे [व्यपदेशाः] कथनके भेद और [संस्थानानि] आकारभेद [संख्या] गणना [च] और [विषयाः] जिनमें रहें ऐसे आधार भाव, ये चार प्रकारके भेद [बहुकाः] बहुत प्रकारके [भवन्ति]

---

१ अत्यंतभिन्नयोः, २ मिलितयोः ।

नन्यत्वेऽपि । यथा देवदत्तः फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेशः । तथा मृत्तिका घटभावं स्वयं स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्याऽऽत्माऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि । यथा प्रांशो-र्देवदत्तस्य प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे संस्थानं । तथा प्रांशोर्वृक्षस्य प्रांशुः शाखाभरो, मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव इत्यन्यत्वे संख्या । तथैकस्य

ते व्यपदेशादयस्तेषां द्रव्यगुणानां कथंचिदनन्यत्वे विद्यंते । न केवलमनन्यत्वे विद्यंते । अण्ण-त्ते चावि कथंचिदन्यत्वे चापि । नैयायिकाः किल वदन्ति द्रव्यगुणानां यद्येकांतेन भेदो नास्ति तर्हि व्यपदेशादयो न घटंते । तत्रोत्तरमाहुः । द्रव्यगुणानां कथंचिद्भेदे तथैवाभेदेपि व्यप-देशादयः संतीति । तद्यथा । षट्कारकभेदेन संज्ञा द्विविधा भवति । देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे व्यप-देशः, तथैव वृक्षस्य शाखा जीवस्यानंतज्ञानादिगुणा इत्यनन्यत्वेपि व्यपदेशः । कारकसंज्ञा कथ्यते - देवदत्तः कर्ता फलं कर्मतापन्नमंकुशेन करणभूतेन धनदत्ताय निमित्तं वृक्षात्सकाशाद्वा-टिकायामधिकरणभूतायामवच्छिनोत्यन्यत्वे कारकसंज्ञा तथैवात्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते ध्यायतीत्यनन्यत्वेपि कारकसंज्ञा । दीर्घस्य देवदत्तस्य दीर्घो गौरित्यन्यत्वे संस्थानं दीर्घस्य वृक्षस्य दीर्घशाखाभारः मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यभेदे च संस्थानं । संख्या कथ्यते । देवदत्तस्य दशगाव इत्यन्यत्वे संख्या तथैव वृक्षस्य दशशाखा द्रव्यस्यानंतगुणा इत्यभेदेपि । विषयः कथ्यते—गोष्ठे गावः इति भेदे विषयः तथैव द्रव्ये गुणा इत्यभेदेऽपि । एवं व्यपदेशादयो भेदाभेदाभ्यां घटंते तेन कारणेन द्रव्यगुणानामेकां-

होते हैं । और [ते] वे व्यपदेशादिक चार प्रकारके भेद [अनन्यत्वे] कथंचित्प्रकार अभेद भावमें [च] और [अन्यत्वे] कथंचित्प्रकार भेद भावमें [अपि] भी [विद्यन्ते] प्रवर्तित हैं । भावार्थ—ये चार प्रकारके व्यपदेशादिक भाव अभेदमें भी हैं और भेदमें भी हैं । इनकी दो प्रकारकी विवक्षा है । जब एक द्रव्यकी अपेक्षा से कथन किया जाय तब तो ये चार भाव अभेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं और जब अनेक द्रव्यकी अपेक्षा से कथन किया जाय तब ये ही व्यपदेशादिक चार भाव भेदकथनकी अपेक्षा से कहे जाते हैं । आगे ये ही दोनों भेद दृष्टांतसे दिखाये जाते हैं । जैसे किसी पुरुषकी गाय कहना, यह भेदमें व्यपदेश है, वैसे ही वृक्षकी शाखा, द्रव्यके गुण, यह अभेदमें व्यपदेश जानो । और यह व्यपदेश षट्कारककी अपेक्षासे भी है, सो दिखाया जाता है । जैसे कोई पुरुष फलको अंकुसीसे धनवंतपुरुषके निमित्त वृक्षसे बाड़ीमें तोड़ता है, यह भेदमें व्यपदेश है । और मृत्तिका जैसे अपने घटभावको आपही अपने निमित्त आपसे आपमें करती है, वैसे ही आत्मा आपको अपनेद्वारा अपने निमित्त आत्मासे

१ पुष्टस्य. २ पुष्टः. ३ पुष्टस्य वा महतः. ४ महान् ।

वृक्षस्य दश शाखाः, एकस्य द्रव्यस्यानंता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। यथा गोष्ठे गाव इत्यन्यत्वे विषयः। तथा वृक्षे शाखाः, द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि। ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानां वस्तुत्वेन भेदं साधयंतीति ॥४६॥

वस्तुत्वभेदाभेदोदाहरणमेतत्;—

णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥४७॥

ज्ञानं धनं च करोति धनिनं यथा ज्ञानिनं च द्विविधाभ्यां।
भणंति तथा पृथक्त्वमेकत्वं चापि तत्त्वज्ञाः ॥ ४७ ॥

तेन भेदं न साधयंतीति। अत्र गाथायं नामकर्मोदयजनितनरनारकादिरूपव्यपदेशाभावेपि शुद्धजीवास्तिकायशब्देन व्यपदेश्यं वाच्यं निश्चयनयेन समचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितमपि व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिदूनचरमशरीराकारेण संस्थानं। केवलज्ञानाद्यनंतगुणरूपेणानंतसंख्यानमपि लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशरूपेणासंख्यातसंख्यानं पंचेन्द्रियविषयसुखरसास्वादरतानामविषयमपि पंचेन्द्रियविषयातीतशुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागसदानंदैकसुखरूपसर्वात्मप्रदेशपरमसमरसीभावपरिणतध्यानविषयं च यच्छुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति तात्पर्यं ॥ ४६ ॥ अथ निश्चयेन भेदाभेदोदाहरणं कथ्यते;—णाणं धणं च कुव्वदि ज्ञानं कर्तृ धनं च कर्तृ करोति। किं करोति। धणिणं णाणिणं च धनिनं ज्ञानिनं च करोति दुविहेहिं द्वाभ्यां नयाभ्यां व्यवहारनिश्चयाभ्यां जह यथा भण्णंति भणन्ति तह तथा। किं भणंति ?

आपमें जानता है। सो यह अभेदमें व्यपदेश जानो। और जैसे बड़े पुरुषकी गाय बड़ी है, यह भेदसंस्थान है, वैसे ही बड़े वृक्षकी बड़ी शाखा, मूर्त्तीक द्रव्यके मूर्त्तीक गुण, यह अभेद संस्थान जानो। और जैसे किसी पुरुषकी दस गायें हैं, ऐसा कहना सो भेदसंख्या है। वैसे ही एक वृक्षकी दश शाखायें, एक द्रव्यके अनंत गुण, यह अभेद संख्या जानो। और जैसे गोकुलमें गाय है, ऐसा कहना भेद-विषय है, वैसे ही वृक्षमें शाखा, द्रव्यमें गुण अभेद-विषय है। व्यपदेश, संस्थान, संख्या, विषय ये चार प्रकारके भेद द्रव्यगुणमें अभेदरूप दिखाये जाते हैं, अन्यद्रव्यसे भेदकर दिखाये जाते हैं। यद्यपि द्रव्यगुणमें व्यपदेशादिक कहे जाते हैं, तथापि वस्तुके विचारसे नहीं हैं ॥४६॥ आगे भेद अभेद कथनका स्वरूप प्रगट कर दिखाया जाता है;—[यथा] जैसे [धनं] द्रव्य [धनिनं] पुरुषको धनवान् [करोति] करता है अर्थात् धन जुदा है पुरुष जुदा है, परंतु धनके संबंधसे पुरुष धनी या धनवान् नाम पाता है [च] और [ज्ञानं] चैतन्यगुणसे [ज्ञानिनं] आत्मा 'ज्ञानी' कहलाता है। ज्ञान

---

१ गावः तिष्ठंत्यत्रेति गोष्ठं गवां स्थानं तस्मिन्।

यथा धनं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तम् भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य, पुरुषस्य धनीति व्यपदेशं पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते । यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्याभिन्नसंस्थानं अभिन्नसंस्थानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते । तथान्यत्राऽपि । यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशोऽस्ति तत्र पृथक्त्वं, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥ ४७ ॥

पुधत्तं एयत्तं चावि पृथक्त्वमेकत्वं चापि । के भणंति । तच्चण्हू तत्वज्ञा इति । तद्यथा—भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य भिन्नव्यपदेशं भिन्नव्यपदेशस्य भिन्नसंस्थानं भिन्नसंस्थानस्य भिन्नसंख्यं भिन्नसंख्यस्य भिन्नविषयलब्धवृत्तिकं भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य धनं कर्तृ पृथक्त्वप्रकारेण धनीति व्यपदेशं करोति यथा तथैव चाभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तं ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य अभिन्नव्यपदेशमभिन्नव्यपदेशस्य अभिन्नसंस्थानमभिन्नसंस्थानस्य अभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्य अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य ज्ञानं कर्तृ पुरुषस्यापृथक्त्वप्रकारेण ज्ञानीति व्यपदेशं करोति । दृष्टांतव्याख्यानं गतं तथान्यत्र दार्ष्टांतपक्षेपि यत्र विवक्षितद्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेन भेदो ज्ञातव्यः पूर्वगाथाकथितक्रमेण देवदत्तस्य गौरित्यादि । यत्र पुनरपि व्यपदेशादयो भवन्ति तत्र निश्चयेनाभेदो ज्ञातव्यः वृक्षस्य शाखा जीवस्य घानंतज्ञानादयो गुणा इत्यादि वदिति । अत्र सूत्रे यदेव जीवेन सहाभिन्नव्यपदेशं अभि-

और आत्मामें प्रदेशभेदरहित एकता है, परंतु गुणगुणीके कथनकी अपेक्षा ज्ञानगुणके द्वारा आत्मा 'ज्ञानी' नाम धारण करता है [तथा] वैसे ही [द्विविधाभ्यां] इन दो प्रकारके भेदाभेद कथनद्वारा [तत्त्वज्ञाः] वस्तुस्वरूपके जाननेवाले पुरुष [पृथक्त्वं] प्रदेशभेदकी पृथक्तासे जो संबंध है उसको पृथक्त्व कहते हैं । [च] और [अपि] निश्चयसे [एकत्वं] प्रदेशोंकी एकतासे संबंध है उसका नाम एकत्व है, ऐसे दो भेद [भणन्ति] कहते हैं । भावार्थ—व्यवहार दो प्रकारका है । एक पृथक्त्व और दूसरा एकत्व । जहां भिन्न द्रव्योंमें एकता का संबंध दिखाया जाय उसका नाम पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है, और एक वस्तुमें भेद दिखाया जाय उसका नाम एकत्व व्यवहार कहा जाता है । यह दोनों प्रकारका संबंध धन धनी, ज्ञान ज्ञानीमें व्यपदेशादिक चार प्रकारसे दिखाया जाता है । धन अपने नाम, संस्थान, संख्या और विषय इन चारों भेदोंसे जुदा है, और पुरुष अपने नाम, संस्थान, संख्या, विषयरूप चार भेदोंसे जुदा है । परंतु धनके संबंधसे पुरुष धनी कहलाता है । इसीको पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है । ज्ञान और ज्ञानीमें एकता है

१ संज्ञाम् ।

द्रव्यगुणानामर्थांतरभूतत्वे दोषोऽयम्;—

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदा दु अण्णमण्णस्स ।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥४८॥

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थांतरिते त्वन्योऽन्यस्य ।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग जिनावमतं ॥४८॥

ज्ञानी ज्ञानाद्यर्थांतरभूतस्तदा स्वकरणांशमंतरेण परशुरहितदेवदत्तवत्करणव्यापारा-

भसंस्थानं अभिन्नसंख्यं अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकं च तज्जीवं ज्ञानिनं करोति यस्यैवालाभादना-दिकालं नरनारकादिगतिषु भ्रमितोयं जीवो यदेव मोक्षवृक्षस्य बीजभूतं यस्यैव भावनाबलादक्रम-समाक्रांतः समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावजातं तस्यैव फलभूतं सकलविमलकेवलज्ञानं जायते तदेव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं भावनीयं ज्ञानिभिरित्यभिप्रायः ॥ ४७ ॥ अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे दोषं दर्शयति;—णाणी ज्ञानी जीवः णाणं च तहा ज्ञानगुणोपि तथैव अत्थंतरिदो दु अर्थांतरितो भिन्नस्तु यदि भवति । कथं । अण्णमण्णस्स अन्योन्यसंबंधित्वेन । तदा किं दूषणं । दोण्हं अचेदणत्तं द्वयोर्ज्ञानज्ञानिनोरचेतनत्वं जडत्वं पसयदि प्रसजति प्राप्नोति । तच्च जडत्वं कथंभूतं । सम्मं जिणावमदं सम्यक्प्रकारेण जिनानामवमतमसंमतमिति । तथाहि । यथाग्नेर्गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणो गुणो दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थविच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्नि-

परंतु नाम, संख्या, संस्थान विषयोंसे ज्ञानका भेद किया जाता है। वस्तुस्वरूपको भली भांति जाननेके कारण उस ज्ञानके संबंधसे ज्ञानी नाम पाता है । इसको एकत्व व्यवहार कहते हैं । ये दो प्रकारका संबंध समस्त द्रव्योंमें चार प्रकारसे जानो ॥ ४७ ॥

आगे ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार यदि भेद ही माना जाय तो बड़ा दोष आता है, ऐसा कथन करते हैं;—[ज्ञानी] आत्मा [च] और [ज्ञानं] चैतन्यगुणका [सदा] सदाकाल [अर्थांतरिते] सर्वथा प्रकार भेद हो [तु अन्योन्यस्य] तो परस्पर [द्वयोः] ज्ञानी और ज्ञानके [अचेतनत्वं] जड़भाव [प्रसजति] होता है [सम्यक्] यथार्थमें यह [जिनावमतं] जिनेन्द्र भगवान्‌का कथन है। भावार्थ—जैसे अग्निद्रव्यमें उष्णता गुण है । यदि इस अग्नि और उष्णतागुणमें प्रथक्ता होती तो ईंधन को जला नहीं सकती । यदि प्रथमसे ही उष्ण गुण जुदा होता तो किससे जलाती ? और यदि अग्नि जुदी होती तो उष्ण गुण किसके आश्रय रहता ? निराश्रय होकर

१ ज्ञान विना ।

समर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात् । ज्ञानञ्च यदि ज्ञानिनोऽर्थांतरभूतं तदा तत्कर्त्रंशमंतरेण देवदत्तरहितपरशुवत्तत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतनमेव स्यात् । न च ज्ञानज्ञानिनोर्युतसिद्धयोस्संयोगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति ॥ ४८ ॥

श्रयेन जडो भवति । अथ मतं यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवतीति । नैवं वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुस्य शक्तिविशेषस्तत्राभ्यंतरोपकरणं शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हस्तव्यापारे च सति छेदनक्रिया नास्ति तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति । अत्र यस्य ज्ञानस्याभावाज्जीवो जडः सन् वीतरागसहजसुन्दरानंदस्यन्दि पारमार्थिकसुखमुपादेयमजानन् संसारे परिभ्रमति तदेव रागादिविकल्प-

---

वह भी जलानेकी क्रियासे रहित हो जाता । क्योंकि गुणगुणी परस्पर जुदा होनेपर कार्य करनेमें असमर्थ होते हैं । यदि दोनोंकी एकता हो तो जलानेकी क्रियामें समर्थ हों । उसीप्रकार ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर जाननेकी क्रियामें असमर्थता होती है । ज्ञानके विना ज्ञानी कैसे जाने ? और ज्ञानीके विना ज्ञान निराश्रय होता तो वह भी जाननेरूप क्रियामें असमर्थ होता । ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर दोनों अचेतन होते हैं । और यदि कोई यहां यह कहे कि पृथक्रूप दांतसे काटनेपर पुरुष ही काटनेवाला कहलाता है, इसीप्रकार यदि प्रथक्रूप ज्ञानके द्वारा आत्माको जाननेवाला मानो तो इसमें क्या दोष है ? इसका उत्तर—काटनेकी क्रियामें दांत बाह्य निमित्त है, उपादान काटनेकी शक्ति पुरुषमें है । यदि पुरुषमें काटनेकी शक्ति न होती तो दांत कुछ कार्यकारी नहीं होते । इसलिये पुरुषका गुण प्रधान है । उस अपने गुणसे पुरुषके एकता है । उसी कारण ज्ञानी और ज्ञानके एक संबंध है । पुरुष और दांतकासा संबंध नहीं है । गुणगुणी वे ही कहलाते हैं जिनके प्रदेशोंकी एकता हो । ज्ञान और ज्ञानीमें संयोगसंबंध

---

१ यथाऽग्नेर्गुणिनः सकाशादत्यतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणगुणोऽग्नेर्दहनक्रियां प्रत्ययमसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा जीवात् गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नो ज्ञानगुणः पदार्थपरिच्छित्ति प्रत्ययमसमर्थः सन्नियमेन जडो भवति । यथोष्णगुणादत्यन्तभिन्नः सन् वह्निर्गुणी दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा ज्ञानगुणादत्यंतभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थपरिच्छित्ति प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो भवति । अथ मतं । यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति इति नैव वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं । वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषशक्तिविशेषस्त्वभ्यंतरोपकरणं । शक्तेरभावे दात्रोपकरणे हि तद्व्यापारे च सति यथा छेदनक्रिया नास्ति, तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति ।

ज्ञानज्ञानिनोः समवायसंबंधनिरासोऽयम्;—

ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी ।
अण्णाणीति य वयणं एगत्तप्पसाधगं होदि ॥४९॥

न हि सः समवायादर्थांतरितस्तु ज्ञानतो ज्ञानी ।
अज्ञानीति च वचनमेकत्वप्रसाधकं भवति ॥४९॥

न खलु ज्ञानादर्थांतरभूतः पुरुषो ज्ञानसमवायात् ज्ञानी भवतीत्युपपन्नं[2]। स खलु ज्ञानसमवायात्पूर्वं किं ज्ञानी किमज्ञानी ? यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो निष्फलः । अथाज्ञानी तदा किमज्ञानसमवायात्, किमज्ञानेन सहैकत्वात् ? न तावदज्ञानसमवायात् ।

रहितं निजशुद्धात्मानुभूतिज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ४८ ॥ एवं व्यपदेशादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसंबंधेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति;—**सो** स जीवः कर्ता **ण हि णाणी** ज्ञानी न भवति हि स्फुटं । कस्मात्सकाशात् ? **समवायादो** समवायसंबंधात् । कथंभूतः सन् ? **अत्थंतरिदो दु** अर्थांतरितस्त्वेकांतेन भिन्नः । कस्मात्सकाशात् ? **णाणादो** ज्ञानात् । **अण्णाणित्ति य वयणं एयत्तपसाहगं होदि** अज्ञानी चेति वचनं गुणगुणिनोरेकत्वप्रसाधकं भवतीति । तद्यथा—ज्ञानसमवायात्पूर्वं जीवो ज्ञानी किंवाऽज्ञानीति विकल्पद्वयमवतरति । तत्र यदि ज्ञानी तदा ज्ञानसमवायो व्यर्थो, यतो ज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति, अथवाऽज्ञानी तत्रापि विकल्पद्वयं किमज्ञानगुणसमवायादज्ञानी किं स्वभावेन वा ? न तावदज्ञानगुणसमवायादज्ञानिनो जीवस्याज्ञानगुणसमवायो वृथा येन

नहीं है, तन्मयभाव है ॥ ४८ ॥ आगे ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार भेद है । परंतु मिलापसे एक है, ऐसी एकताका निषेध करते हैं;—[सः] वह [हि] निश्चयसे [ज्ञानी] चैतन्यस्वरूप आत्मा [समवायात्] अपने मिलापसे [ज्ञानतः] ज्ञानगुणसे [अर्थांतरितस्तु] भिन्नस्वरूप तो [न] नहीं है, क्योंकि [अज्ञानी] आत्मा अज्ञानगुणसंयुक्त है । [इति वचनं] यह कथन [एकत्वप्रसाधकं] गुणगुणीमें एकताका साधनेवाला [भवति] होता है । **भावार्थ**—ज्ञानी और ज्ञानगुणकी प्रदेशभेदरहित एकता है। और यदि कहो कि एकता नहीं है, ज्ञानसंबंधसे ज्ञानी पृथक् है, तो जब ज्ञान-गुणका संबंध ज्ञानीके पूर्व ही नहीं था, तब ज्ञानी अज्ञानी था या ज्ञानी ? यदि कहोगे कि ज्ञानी था, तो ज्ञान-गुणके कथनका कुछ प्रयोजन नहीं, स्वरूपसे ही ज्ञानी था। और यदि कहोगे कि पहिले अज्ञानी था पीछेसे ज्ञानका संबंध होनेसे ज्ञानी हुआ है, तो जब अज्ञानी था तो अज्ञान गुणके संबंधसे अज्ञानी था कि अज्ञानगुणसे एकमेक था ? यदि कहोगे कि—अज्ञानगुणके संबंधसे ही

---

१ अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यंतभेदे सति समवायसंबंधेनाप्येकत्वं कर्तुं नायातीति प्रतिपादयति. २ त्वया अङ्गीकृतं चेत्तर्हि शृणु ।

अथाज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः । ज्ञानित्वं तु ज्ञानसमवायाभावात् नास्त्येव । ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव । सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनाऽपि सहैकत्वमवश्यं सिद्ध्यतीति ॥ ४९ ॥

संमवायस्य पदार्थांतरत्वनिरासोऽयम् ;—

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य ।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा ॥५०॥

समवर्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च ।
तस्माद्द्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा ॥५०॥

कारणेनाज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवा स्वभावेनाज्ञानित्वं तथैव ज्ञानित्वमपि स्वभावेनैव गुणत्वादिति । अत्र यथा मेघपटलावृते दिनकरे पूर्वमेव प्रकाशस्तिष्ठति पश्चात्पटलविघटनानुसारेण प्रकटो भवति तथा जीवे निश्चयनयेन क्रमकरणव्यवधानरहितं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तवस्तुगतानंतधर्मप्रकाशकमखंडप्रतिभासमयं केवलज्ञानं पूर्वमेव तिष्ठति, किंतु व्यवहारनयेनानादिकर्मावृतः सन्न ज्ञायते, पश्चात्कर्मपटलविघटनानुसारेण प्रकटं भवति, न च जीवाद्बहिर्भूतं ज्ञानं किमपीति पश्चात्समवायसंबंधबलेन जीवे संबद्धं न भवतीति भावार्थः ॥ ४९ ॥ अथ गुण-

---

अज्ञानी था तो वह अज्ञानी था, अज्ञानके संबंधसे कुछ प्रजोजन नहीं है, स्वभावसे ही अज्ञानी ठहरता है । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि—ज्ञानगुणका यदि प्रदेशभेदरहित ज्ञानीसे एकभाव माना जाय तो आत्माके अज्ञानगुणसे एकभाव होते हुये अज्ञानी पद ठहरता है । इसकारण ज्ञान और ज्ञानीमें अनादिकी अनंत एकता है । ऐसी एकता है कि ज्ञानके अभावसे ज्ञानीका अभाव हो जाता है, और ज्ञानीके अभावसे ज्ञानका अभाव हो जाता है । और यदि यों नहीं माना जाय तो आत्मा अज्ञानभावकी एकतासे अवश्यमेव अज्ञानी कहलायेगा । और यदि ऐसा कहा जाता है कि अज्ञानका नाश करके आत्मा ज्ञानी होता है, सो यह कथन कर्म-उपाधि-संबंधसे व्यवहारनयकी अपेक्षासे है । जैसे सूर्य मेघपटलद्वारा आच्छादित होनेसे प्रभारहित कहा जाता है, परंतु उस प्रभावसे सूर्य अपने स्वभावसे त्रिकाल पृथक् नहीं होता पटलकी उपाधिसे प्रभासे हीन-अधिक कहा जाता है । वैसे ही यह आत्मा अनादि पुद्गल-उपाधि-संबंधसे अज्ञानी हुआ प्रवर्तित है । परंतु वह आत्मा अपने स्वाभाविक अखंड केवलज्ञान स्वभावसे-स्वरूपसे किसी कालमें भी पृथक् नहीं होता । कर्मकी उपाधिसे ज्ञानकी हीनता-अधिकता कही जाती है । इस कारण निश्चयसे ज्ञानीसे ज्ञानगुण पृथक् नहीं है । कर्म-उपाधिके वश अज्ञानी कहा जाता है, कर्मके घटनेसे ज्ञानी होता है । यह कथन व्यवहारनयकी अपेक्षा से है ॥ ४९ ॥ आगे गुण-गुणीमें एकभावके विना

---

१ अथ गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति ।

द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादनादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्तित्वम् । स एव समवायो जैनानाम् । तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम् । तदेव युतसिद्धिनिबंधनस्यास्तित्वांतरस्याभावादयुतसिद्धत्वम् । ततो द्रव्यगुणानां समवर्तित्वलक्षणसमवायभाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति[1] ॥ ५० ॥

गुणिनोः कथंचिदेकत्वं विहायान्यः कोऽपि समवायो नास्तीति समर्थयति;—समवत्ती समवृत्तिः सहवृत्तिर्गुणगुणिनोः कथंचिदेकत्वेनादितादात्म्यसंबंध इत्यर्थः समवाओ स एव जैनमते समवायो नान्यः कोऽपि परिकल्पितः अपुधब्भूदो य तदेव गुणगुणिनोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशभेदाभावादपृथग्भूतत्वं भण्यते अजुदसिद्धा य तदेव दंडदंडिवद्भिन्नप्रदेशलक्षणयुतसिद्धत्वाभावादयुतसिद्धत्वं भण्यते तम्हा तस्मात्कारणात् दव्वगुणाणं द्रव्यगुणानां अजुदा सिद्धित्ति अयुतासिद्धिरिति कथंचिदभिन्नत्वसिद्धिरिति णिद्दिट्ठा निर्दिष्टा कथितेति । अत्र व्याख्याने यथा ज्ञानगुणेन सहानादितादात्म्यसंबंधः प्रतिपादितो द्रष्टव्यो जीवेन सह तथैव च यदव्याबाधरूपमप्रमाणमविनश्वरं स्वाभाविकं रागादिदोषरहितं परमानंदैकस्वभावं पारमार्थिकसुखं तत्प्रभृतयो ये अनंतगुणाः केवलज्ञानांतर्भूतास्तैरपि सहानादितादात्म्यसंबंधः श्रद्धातव्यो ज्ञातव्यः तथैव च समस्तरागादिविकल्पत्यागेन निरंतरं ध्यातव्य इत्यभिप्रायः ॥५०॥

और किसी प्रकारका संबंध नहीं है, ऐसा कथन करते हैं [समवर्तित्वं] द्रव्य और गुणोंके एक अस्तित्वसे अनादि अनंत धारावाहीरूप जो प्रवृत्ति है उसका नाम जिनमतमें [समवायः] समवाय है । भावार्थ—संबंध दो प्रकारके हैं एक संयोगसंबंध और दूसरा समवायसंबंध । जैसे—जीव-पुद्गलका संबंध है सो तो संयोगसंबंध है । और समवायसंबंध वहां होता है जहां अनेक भावोंका एक अस्तित्व होता है, जैसे गुणगुणीमें संबंध है । गुणों के नाश होनेसे गुणीका नाश और गुणीके नाश होनेसे गुणोंका नाश होता है । इसी प्रकार अनेक भावोंका जहां संबंध हो उसीका नाम समवायसंबंध कहा जाता है । [च अपृथग्भूतं] और वही गुणगुणीका समवायसंबंध प्रदेशभेदरहित जानना चाहिये । यद्यपि संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजनादिकसे गुणगुणीमें भेद है तथापि जैसे सुवर्णके और पीतादि गुणके समवायसंबंधमें प्रदेशभेद नहीं है, इसीप्रकार गुणगुणीकी एकता है । [च] और [अयुतसिद्धत्वं] वही गुणगुणीका समवायसंबंध मिलकर नहीं हुआ है, अनादिसिद्ध एकही है [तस्मात्] इस कारणसे [द्रव्यगुणानां] गुणगुणीमें वह समवाय संबंध [अयुता सिद्धिः] अनादिसिद्ध [इति] इसप्रकार [निर्दिष्टा] भगवंतदेवने दिखाया है । ऐसा

१ एवं समवायनियमकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम् ।

दृष्टांतदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थांतरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम् ;—

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि ।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ॥५१॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि ।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो ॥५२॥ जुम्मं ।

वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषा हि ।
द्रव्यतश्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति ॥५१॥
दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते ।
व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुते हि नो स्वभावात् ॥५२॥ युग्मम् ।

वर्णरसगंधस्पर्शा हि परमाणोः प्ररूप्यंते । ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्यत्वेऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने अप्यात्मनि

एवं समवायनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण द्रव्यगुणानां कथंचिदभेदव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते;—वण्णरसगंधफासा वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुपरूविदा परमाणुद्रव्यप्ररूपिताः कथिताः । कैः कृत्वा ? विसेसेहिं विशेषैः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदैः अथवा 'विसेसो हि' इति पाठांतरं विशेषा विशेषगुणधर्माः स्वभावा हि स्फुटं । ते कथंभूताः ? दव्वादो य परमाणुद्रव्याच्च सकाशात् अणण्णा निश्चयनयेनानन्ये अण्णत्तपयासगा होंति पश्चाद्व्यवहारनयेन संज्ञादिभेदेनान्यत्वप्रकाशका भवन्ति यथा । इति दृष्टांतगाथा गता । दंसणणाणाणि तहा दर्शनज्ञाने द्वे तथा । कथंभूते ? जीवणिबद्धाणि जीवनिबद्धे द्वे ।

गुणगुणीमें समवायसंबंध जानना चाहिये ॥ ५० ॥ आगे दृष्टांतसहित गुणगुणीकी एकताका कथन संक्षेपसे करते हैं;—[हि] निश्चयसे [परमाणुप्ररूपिताः] परमाणुओंमें कहे गये [वर्णरसगंधस्पर्शाः] वर्णरसगंधस्पर्श ऐसे, चार [विशेषाः] गुण [द्रव्यतः अनन्याः] पुद्गलद्रव्यसे पृथक् नहीं हैं । भावार्थ—निश्चयनयकी अपेक्षा वर्ण रस गंध स्पर्श ये चार गुण समवायसंबंधसे पुद्गलद्रव्यसे पृथक नहीं हैं [च] और ये ही चारों वर्णादिक गुण [अन्यत्वप्रकाशकाः भवन्ति] व्यवहारकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्यसे पृथक्ताको भी प्रकट करते हैं । भावार्थ—यद्यपि ये वर्णादिक गुण निश्चयसे पुद्गलसे एक हैं, तथापि व्यवहारनयकी अपेक्षा संज्ञाभेदसे भेद भी कहा जाता है । प्रदेशभेदसे भेद नहीं है । [तथा] और जैसे पुद्गलद्रव्यसे वर्णादिक गुण अभिन्न है, वैसेही निश्चयनयसे [जीवनिबद्धे] जीवसे समवायसंबंधयुक्त [दर्शनज्ञाने]

१ कथञ्चिद्भिन्नत्वम् ।

संबद्धं आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनाऽनन्येऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधैर्विशेषैः पृथक्त्वमासादयतः । स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रतः ॥ ५१ । ५२ ॥

इति उपयोगगुणव्याख्यानं समाप्तं । अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् । तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्घातः ।

जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो ।
सब्भावदो अणंता पंचग्गगुणप्पधाणा य ॥५३॥

जीवा अनादिनिधनाः सांता अनंताश्च जीवभावात् ।
सद्भावतोऽनंताः पञ्चाग्रगुणप्रधानाः च ॥ ५३ ॥

जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात् स्वभावानां कर्त्तारो भविष्यन्ति । तांश्च कुर्वाणाः

पुनरपि कथंभूते ? **अणण्णभूदाणि** निश्चयनयेन प्रदेशरूपेणानन्यभूते । इत्थंभूते ते किं कुरुतः ? **ववदेसदो पुधत्तं** व्यपदेशतः संज्ञादिभेदतः पृथक्त्वं नानात्वं **कुव्वंति** कुरुतः हु स्फुटं **णो सहावादो** नैव स्वभावतो निश्चयनयेन इति । अस्मिन्नधिकारे यद्यप्यष्टविधज्ञानोपयोगचतुर्विधदर्शनोपयोगव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धविवक्षा न कृता तथापि निश्चयनयेनादिमध्यांतवर्जिते परमानंदमालिनि परमचैतन्यशालिनि भगवत्यात्मनि यदनाकुलत्वलक्षणं पारमार्थिकसुखं तस्योपादेयभूतस्योपादानकारणभूतं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तदेवोपादेयमिति श्रद्धेयं ज्ञेयं तथैवार्तरौद्रादिसमस्तविकल्पजालत्यागेन ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ एवं दृष्टांतदार्ष्टांतरूपेण गाथाद्वयं गतं । अत्र प्रथमं 'उवओगो दुवियप्पो' इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण दर्शनज्ञानकथनरूपेणांतरस्थलपंचकेन गाथानवकं, तदनंतरं 'ण वियप्पदि णाणादो' इत्यादि पाठक्रमेण नैयायिकं प्रति गुणगुणिभेदनिराकरणरूपेणांतरस्थलचतुष्टयेन गाथादशकमिति समुदायेनैकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारव्याख्यानरूपनवाधिकारेषु मध्ये षष्ठ "उपयोगाधिकारः समाप्तः" । अथानंतरं वीतरागपरमानंदसुधारससमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशात् भिन्नं यत्कर्म

दर्शन ज्ञान असाधारण गुण भी [अनन्यभूते] जुदे नहीं हैं [व्यपदेशतः] संज्ञादि-भेदके कथनसे आचार्य आत्मा और ज्ञान-दर्शनमें [पृथक्त्वं] भेदभाव [कुरुते] करते हैं, तथापि [हि] निश्चयसे [स्वभावात्] निजस्वरूपसे [नो] भेद संभवित नहीं है । भगवंतका मत अनेकांत है, दो नयोंसे सधता है । इस कारण निश्चय-व्यवहारसे भेद-अभेद गुणगुणीका स्वरूप परमागमसे विशेषरूप जानना चाहिये । यह चार प्रकार दर्शनोपयोग, आठ प्रकार ज्ञानोपयोग, शुद्ध अशुद्ध भेद कथनसे सामान्यस्वरूप पूर्वोक्त प्रकारसे जानना चाहिये । यह उपयोग-गुणका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ ५१ । ५२ ॥

आगे कर्तृत्वका अधिकार कहते हैं । जिसमेंसे जीव निश्चयनयसे परभावोंके कर्त्ता नहीं हैं, अपने स्वभावके ही कर्ता होते हैं । वे ही जीव अपने परिणामोंको करते हुये अनादि-अनंत हैं या सादि-सांत हैं, अथवा सादि-अनंत हैं, और ऐसे

किमनादिनिधनाः, किं सादिसनिधनाः, किं साद्यनिधनाः, किं तदाकारेण परिणताः, किमपरिणताः भविष्यंतीत्याशङ्क्येदमुक्तम् । जीवा हि सहजचैतन्यलक्षणपारिणामिकभावेनाऽनादिनिधनाः । त एवौदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावैः सादिसनिधनाः । त एव क्षायिकभावेन साद्यनिधनाः । न च सादित्वात् सनिधनत्वं क्षायिकभावस्याशङ्क्यम्[1] । स[2] खलूपाधिनिवृत्तौ प्रवर्तमानः सिद्धभाव इव सद्भाव एव । जीवस्य सद्भावेन चानंता[3] एव जीवाः प्रतिज्ञायंते । न च तेषामनादिनिधनसहजचैतन्यलक्षणैकभावानां सादिसनिधनानि साद्य-

कर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयस्वरूपं तस्य संबन्धित्वेन पूर्वमष्टादशगाथासमुदायपातनिकारूपेण यत्सूचितं व्याख्यातं तस्येदानीं 'जीवा अणाइणिहणा' इत्यादि पाठक्रमेणांतरस्थलपंचकेन विवरणं करोति । तद्यथा । येषां जीवानामग्रे कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वसंयुक्तत्वत्रयं कथ्यते तेषां पूर्वं तावत्स्वरूपं संख्यां च प्रतिपादयति;—**जीवा अणाइणिहणा** जीवा हि शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धचैतन्यरूपेणानाद्यनिधनाः । पुनश्च कथंभूताः ? **संता** औदयिकक्षायोपशमिकौपशमिकभावत्रयापेक्षया सादिसनिधनाः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? **अणंता य** साद्यनंताः । कस्मात्सकाशात् ? **जीवभावादो** जीवभावतः क्षायिको भावस्तस्मात् । नहि क्षायिकभावस्य

अपने भावोंको परिणमित होते हैं कि नहीं परिणमित होते ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य समाधान करते हैं;—[**जीवाः**] जो आत्मद्रव्य हैं वे [**अनादिनिधनाः**] सहजशुद्ध चेतन पारिणामिकभावोंसे अनादि अनंत हैं । स्वाभाविक-भावकी अपेक्षा जीव तीनों कालोंमें टंकोत्कीर्ण अविनाशी हैं [**च**] और वे ही जीव [**सांताः**] सादि-सांत भी हैं और [**अनंताः**] सादि-अनंत भी हैं । औदयिक और क्षायोपशमिक भावोंसे सादि-सांत हैं, क्योंकि [**जीवभावात्**] जीवके कर्मजनित भाव होनेसे औदयिक और क्षायोपशमिकभाव कर्मजनित हैं । कर्म बंधते भी हैं और निर्जरा को भी प्राप्त होते हैं, इसलिये कर्म आदि अंत लिये हुये हैं । उन कर्मजनित भावोंकी अपेक्षा जीव सादि-सांत जानना चाहिये । और वे ही जीव क्षायिक भावोंकी अपेक्षा सादि-अनंत हैं, क्योंकि कर्मके क्षयसे क्षायिक भाव उत्पन्न होते हैं, इस कारण सादि हैं । आगे अनंतकालपर्यन्त रहेंगे, इस कारण अनंत हैं । ऐसा क्षायिक भाव सादि-अनंत है । सो क्षायिकभाव जैसे शुद्ध सिद्धका भाव अविनाशी निश्चलरूप है, वैसा अनंतकाल तक रहेगा [**सद्भावतः**] सत्तास्वरूपसे जीवद्रव्य [**अनंताः**] अनंत हैं । भव्य अभव्यके भेदसे जीवराशि अनंत है । अभव्य जीव अनंत हैं । उनसे अनंतगुणी अधिक भव्यराशि है । यदि कोई यहां प्रश्न करे कि आत्मा तो अनादि-अनंत सहज चैतन्यभावोंसे संयुक्त है, उसके सादि-सांत, सादि-अनंत भाव कैसे हो सकते हैं ? इसका

१ इति नाशङ्क्यम्. २ क्षायिकभावः. ३ विनाशरहिताः ।

निधनानि भावांतराणि नोपपद्यंत इति वक्तव्यम् । ते खल्वनादिकर्ममलीमसाः पंकसंपृक्ततोयवत्तदाकारे परिणतत्वात्पञ्चप्रधानगुणप्रधानत्वेनैवानुभूयंत इति ॥५३॥

जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वे साद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम्;—

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥५४॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः ।
इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम् ॥५४॥

एवं हि पञ्चभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्याऽस्य जीवस्य कदाचिदौदयिकेनैकेन मनुष्य-

---

सादित्वादंतोपि किल भविष्यतीत्याशंकनीयं । स हि कर्मक्षये सति क्षायिकभावः केवलज्ञानादिरूपेण समुत्पद्यमानः सिद्धभाव इव जीवस्य सद्भाव एव स च स्वभावस्य विनाशो नास्ति चेति अनाद्यनिधनसहजशुद्धपारिणामिकैकभावानां सादि—सनिधनान्यप्यौदयिकादिभावांतराणि कथं संभवंतीति ? चेद्, **पंचग्गगुणप्पहाणा य** यद्यपि स्वभावेन शुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यंत इति स्वरूपव्याख्यानं गतं । इदानीं संख्यां कथयति । **सब्भावदो अणंता** द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनंताः । सांतानंतशब्दयोर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—सहांतेन संसारविनाशे वर्तंते सांता भव्याः न विद्यतेंतः संसारविनाशो येषां ते पुनरनंता अभव्यास्ते चाभव्या अनंतसंख्यास्तेभ्योपि भव्याः अनंतगुणसंख्यास्तेभ्योप्यभव्यसमानभव्या अनंतगुणा इति । अत्र सूत्रे अनादिनिधना अनंतज्ञानादिगुणाधारा शुद्धजीवा एव सादिसनिधनमिथ्यात्वरागादिदोषपरिहारपरिणतानां भव्यानामुपादेया इति तात्पर्यार्थः ॥ ५३ ॥ अथ यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन विनाशोत्पादौ भवतः तथापि द्रव्यार्थिकनयेन न भवत इति पूर्वापरविरोधो नास्तीति कथयति;—**एवं सदो विणासो** एवं पूर्वगाथाकथितप्रकारेणौदयिकभावे-

---

उत्तर—अनादि कर्मसंबंधसे यह आत्मा अशुद्धभावसे परिणमन कर रहा है, इसलिए सादि-सांत, सादि-अनंतभाव होता है। जैसे कीचसे मिला हुआ जल अशुद्ध होता है। उस कीचके मिलाप होने या न होनेसे अशुद्ध या शुद्ध जल कहा जाता है, वैसे ही इस आत्माके कर्म संबंध होने या न होनेके कारण सादि-सांत, सादि-अनंत भाव कहे जाते हैं [च] और [**पञ्चाग्रगुणप्रधानाः**] औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक इन पांच भावोंकी प्रधानता सहित प्रवर्तित होते हैं ॥ ५३ ॥ आगे जीवोंके पांच भावोंसे यद्यपि सादि-सांत, अनादि-अनंत भाव हैं, तथापि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे विरोध नहीं है, ऐसा कथन करते हैं;—[**एवं**] इस पूर्वोक्त प्रकारके भावोंसे परिणमित जो जीव हैं

---

१ कर्दमसंमिश्रजलवत्. २ यद्यपि स्वभावेन विशुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यंते ।

त्वादिलक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथा परेणौदयिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत उत्पादो भवत्येव । एतच्च 'न सतो विनाशो नासत उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धमपि न विरुद्धम् । यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पादः । तस्यैव पर्यायार्थिकनयादेशेन सत्प्रणाशोऽसदुत्पादश्च । न चैतदनुपपन्नम् । नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्वदर्शनादिति ॥ ५४ ॥

जीवस्य सदसद्भावोच्छित्त्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत् ;—

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी ।
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ॥५५॥

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुताः प्रकृतयः ।
कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पादं ॥ ५५ ॥

नायुरुच्छेदवशान्मनुष्यपर्यायरूपेण सतो विद्यमानस्य विनाशो भवति **असदो जीवस्स हवदि उप्पादो** असतोऽविद्यमानस्य देवादिजीवस्य पर्यायस्य गतिनामकर्मोदयाद्भवत्युत्पादः **इदि जिणवरेहिं भणियं** इति जिनवरैर्वीतरागसर्वज्ञैर्भणितं, इदं तु व्याख्यातं । कथंभूतं ? **अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं** अन्योन्यविरुद्धमप्यविरुद्धं । कथमिति चेत् ? द्रव्यपीठिकायां सतो जीवस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति भणितं । अत्र सतो जीवस्य विनाशो भवत्यसत उत्पादो भवतीति भणितं तेन कारणेन विरोधः । तन्न । तत्र द्रव्यपीठिकायां द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ निषिद्धौ । अत्र तु पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ भवत इति नास्ति विरोधः । तदपि कस्मादिति चेत् ? द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परसापेक्षत्वादिति । अत्र यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन सादिसनिधनं जीवद्रव्यं व्याख्यातं तथापि शुद्धनिश्चयेन यदेवानादिनिधनं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं निर्विकारसदानंदैकस्वरूपं च तदेवोपादेयमित्यभिप्रायः ॥ ५४ ॥ अथ पूर्वसूत्रे जीवस्योत्पादव्ययस्वरूपं

उनके जब उत्पादव्ययकी अपेक्षा करते हैं। तब [सतः] विद्यमान मनुष्यादिक पर्यायका तो [विनाशः] विनाश और [असतः] अविद्यमान [जीवस्य] जीवकी [उत्पादः] देवादिक पर्यायकी उत्पत्ति [भवति] होती है [इति जिनवरैः] इस प्रकार जिनेंद्र भगवानके द्वारा [अन्योऽन्यविरुद्धं] परस्पर विरुद्ध होने पर भी [अविरुद्धं] विरोधरहित [भणितं] कहा गया है । **भावार्थ—** भगवानके मतमें दो नय हैं, एक द्रव्यार्थिक नय, दूसरा पर्यायार्थिक नय । द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका न तो उत्पाद है और न नाश है । और पर्यायार्थिक नयसे नाश भी है और उत्पाद भी है । जैसे कि जल नित्य – अनित्यस्वरूप है । द्रव्यकी अपेक्षा तो जल नित्य है और कल्लोलोंकी अपेक्षा उपजना विनशना होनेके कारण अनित्य है । इसी प्रकार द्रव्य नित्य–अनित्यस्वरूप कथंचित्प्रकारसे जानना चाहिये ॥ ५४ ॥ आगे जीवके

---

१ अविद्यमानस्य भावस्य ।

यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्विभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति । तथा जीवस्याऽपि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वंतीति ॥५५॥

जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत् ;—

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे ।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा ॥५६॥

उदयेनोपशमेन च क्षयेण च द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन ।
युक्तास्ते जीवगुणा बहुषु चार्थेषु विस्तीर्णाः ॥५६॥

यद्भणितं तस्य नरनारकादिगतिनामकर्मोदयकारणमिति कथयति;—णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवा इति नामसंयुक्ताः पयडी नामकर्मप्रकृतयः कर्तृ कुव्वंति कुर्वन्ति । कं ? सदो णासं सतो विद्यमानस्य भावस्य पर्यायस्य नाशं असदो भावस्स उप्पत्ती असतो भावस्य पर्यायस्योत्पत्तिमिति । तथाहि—यथा समुद्रस्य समुद्ररूपेणाविनश्वरस्यापि कल्लोला उत्पादव्ययद्वयं कुर्वन्ति तथा जीवस्य सहजानंदैकटंकोत्कीर्णज्ञायकस्वभावेन नित्यस्यापि व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशान्निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिच्युतस्य नरकगत्यादिकर्मप्रकृतय उत्पादव्ययं च कुर्वंतीति । तथा चोक्तं—"अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥" अत्र यदेव शुद्धनिश्चयनयेन मूलोत्तरप्रकृतिरहितं वीतरागपरमाह्लादैकरूपचैतन्यप्रकाशसहितं शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ५५ ॥ एवं कर्मकर्तृत्वादित्रयपीठिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयेण प्रथममंतरस्थलं गतं । अथ पीठिकायां पूर्वं जीवस्य यदौदयिकादिभावपंचकं सूचितं तस्य व्याख्यानं करोति;—जुत्ता युक्ताः ।

उत्पाद-व्ययका कारण कर्म-उपाधि दिखाते हैं;—[नारकतिर्यङ्मनुष्याः देवाः] नरक तिर्यञ्च मनुष्य देव [इति नामसंयुताः] इन नामोंसे संयुक्त [प्रकृतयः] नामकर्मसम्बन्धिनी प्रकृतियां [सतः] विद्यमानपर्यायका [नाशं] विनाश [कुर्वन्ति] करती हैं । और [असतः] अविद्यमान [भावस्य] पर्यायकी [उत्पादं] उत्पत्ति [कुर्वन्ति] करती हैं । भावार्थ—जैसे समुद्र अपने जलसमूहसे उत्पाद-व्यय अवस्थाको प्राप्त नहीं होता, अपने स्वरूपसे स्थिर है, परंतु चारों ही दिशाओंकी पवन आनेसे कल्लोलोंका उत्पाद-व्यय होता रहता है, वैसे ही जीवद्रव्य अपने आत्मीक स्वभावोंसे उपजता विनशता नहीं है, सदा टंकोत्कीर्ण है । परंतु उस ही जीवके अनादिकर्मोपाधिके वशसे चार गति नामकर्मका उदय उत्पादव्ययदशाको करता है ॥ ५५ ॥ आगे जीवके पांच भावोंका वर्णन करते हैं;—[ये] जो भाव [उदयेन] कर्मके

---

१ अनुपलभ्यमानस्य. २ वायवः.

कर्मणां फलदानसमर्थतयोद्भूतिरुदयः। अनुद्भूतिरुपशमः। उद्भूत्यनुद्भूती क्षयोपशमः। अत्यंतविश्लेषः क्षयः। द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः। तत्रोदयेन युक्त औदायिकः। उपशमेन युक्त औपशमिकः। क्षयोपशमेन युक्तः क्षायोपशमिकः। क्षयेण युक्तः क्षायिकः। परिणामेन युक्तः पारिणामिकः। त एते पञ्च जीवगुणाः। तत्रोपाधिचतुर्विधत्वनिबंधना-

---

के ? ते जीवगुणा ते परमागमप्रसिद्धाः जीवगुणाः जीवभावाः परिणामाः। केन केन युक्ताः ? उदयेण कर्मोदयेन उवसमेण कर्मोपमेन च खयेण कर्मक्षयेण दुहि मिस्सिदेण द्वाभ्यां क्षयोपशमाभ्यां मिश्रत्वेन परिणामे प्राकृतलक्षणबलात्सप्तम्यंतं तृतीयांतं व्याख्यायते परिणामेन करणभूतेन इतिव्युत्पत्तिरूपेणौदयिक औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिकः पारिणामिक एवं पंचभावा ज्ञातव्याः। ते च कथंभूताः ? बहुसुदसत्थेसु वित्थिण्णा बहुश्रुतशास्त्रेषु तत्त्वार्थादिषु विस्तीर्णाः औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकास्त्रयो भावाः कर्मजनिताः क्षायिकस्तु केवलज्ञानादिरूपो यद्यपि वस्तुवृत्त्या शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावः तथापि कर्मक्षयेणोत्पन्नत्वादुपचारेण कर्मजनित एव, शुद्धपारिणामिकः पुनः साक्षात्कर्मनिरपेक्ष एव। अत्र व्याख्यानेन मिश्रौपशमिकक्षायिकः मोक्षकारणं

उदयसे [च] और [उपशमेन] कर्मोंके उपशम होने से [च] तथा [क्षयेण] कर्मोंके क्षयसे [द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां] उपशम और क्षय इन दोनों जातिके मिले हुये कर्मपरिणामोंसे [च] और [परिणामेन] आत्मीक निजभावोंसे [युक्ताः] संयुक्त हैं [ते] वे भाव [जीवगुणाः] जीवके सामान्यतासे पांच भाव जानो। वे भाव कैसे हैं ? [बहुषु अर्थेषु] नाना प्रकारके भेदोंमें [विस्तीर्णाः] विस्तारको लिये हुये हैं। भावार्थ—सिद्धांतमें जीवके पांच भाव कहे हैं—औदयिक १, औपशमिक २, क्षायिक ३, क्षायोपशमिक ४ और पारिणामिक ५। जो शुभाशुभ कर्मके उदयसे जीवके भाव हों उनको औदयिकभाव कहते हैं। और कर्मोंके उपशमसे जीवके जो जो भाव होते हैं उनको औपशमिकभाव कहते हैं। जैसे कीचड़के नीचे बैठनेसे जल निर्मल होता है, उसी प्रकार कर्मोंके उपशम होनेसे औपशमिक भाव होते हैं। और जो भावकर्मके उदय-अनुदयसे हों वे क्षायोपशमिक भाव कहलाते हैं। और जो भाव सर्वप्रकार कर्मोंके क्षय होनेसे होते हैं उनको क्षायिक भाव कहते हैं। जिनके द्वारा जीव अस्तित्वरूप है वे पारिणामिक भाव हैं। ये पांच भाव जीवके होते हैं। इनमेंसे ४ भाव कर्मोपाधिके निमित्तसे हते हैं। एक पारिणामिक भाव कर्मोपाधिरहित स्वाभाविक भाव है। कर्मोपाधिके भेदसे और स्वरूपके भेद होनेसे ये ही पांच भाव नानाप्रकारके होते हैं।

---

१ कर्म्मणां फलदानसमर्थतयाऽनुद्भूतिरनुदयः. २ नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्म्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि कर्म तदुदयागतं व्यवहारेणैव. ३ उपाधिचतुर्विधत्वं निबंधनं कारणं येषां ते।

श्चत्वारः। स्वभावनिबंधन एकः। एते चोपाधिभेदात् स्वरूपभेदाच्च भिद्यमाना बहुष्वर्थेषु विस्तार्यंत इति ॥५६॥

जीवस्यौदयिकादिभावानां कर्तृत्वप्रकारोक्तिरियम् ;—

कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं ॥५७॥

कर्म वेदयमानो जीवो भावं करोति यादृशकं।
स तेन तस्य कर्त्ता भवतीति च शासने पठितं ॥५७॥

मोहोदयसहित औदयिको बंधकारणं शुद्धपारिणामिकस्तु बंधमोक्षयोरकारणमिति भावार्थः। तथा चोक्तं—"मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रोपशमिकक्षायिकाभिधाः। बंधमौदयिका भावा निःक्रियाः पारिणामिकाः॥" ॥ ५६ ॥ एवं द्वितीयांतरस्थले पंचभावकथनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं। तृतीयस्थलं कथ्यते। अथानंतरं प्रथमगाथायां निश्चयेन रागादिभावानां जीवस्य कर्तृत्वं कथ्यते। द्वितीयगाथायां तदुदयागतद्रव्यकर्मणो व्यवहारेण रागादिभावकर्तृत्वमिति स्वतन्त्रगाथाद्वयं। तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवस्य यद्येकांतेनोदयागतद्रव्यकर्मरागादिविभावानां कर्तृ भवति तदा जीवस्य सर्वप्रकारेणाकर्तृत्वं प्राप्नोतीति कथयति। द्वितीयगाथायां तु पूर्वोक्तदूषणस्य परिहारं ददातीति पूर्वपक्षपरिहारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं। तदनंतरं प्रथमगाथायां जीवः पुद्गलकर्मणां निश्चयेन कर्ता न भवतीत्यागमसंवादं दर्शयति। द्वितीयायां पुनः कर्मणो जीवस्य चाभेदषट्कारकीं कथयतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं। इति तृतीयांतरस्थले कर्तृत्वमुख्यत्वेन समुदायेन गाथाषट्कं कथयतीति।

औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीन भाव कर्मजनित हैं, क्योंकि ये कर्मके उदयसे, उपशमसे और क्षयोपशमसे होते हैं। इस कारण कर्मजनित कहे जाते हैं। यद्यपि क्षायिक भाव शुद्ध हैं, अविनाशी हैं, तथापि कर्मके नाश होनेसे होते हैं, इस कारण इनको भी कर्मजनित कहते हैं। और पारिणामिक भाव कर्मजनित नहीं हैं, क्योंकि वे शुद्ध पारिणामिक भाव जीवके स्वभाव ही हैं। इस कारण कर्मजनित नहीं हैं। और इन पारिणामिकोंके भेद—भव्यत्व अभव्यत्व दो भाव हैं। वे भी कर्मजनित नहीं हैं। यद्यपि कर्मकी अपेक्षा भव्य-अभव्य स्वभाव जाने जाते हैं। जिसके कर्मका नाश होना है, सो भव्य कहा जाता है। जिसके कर्मका नाश नहीं होना है सो अभव्य कहा जाता है। तथापि वे कर्मसे उपजे नहीं कहे जा सकते। क्योंकि कोई भव्य-अभव्य कर्म नहीं है। इस कारण कर्मजनित नहीं है। भवस्थितिके ऊपर जैसा कुछ केवलज्ञानमें प्रतिभास रहा है, जिस जीवका जैसा स्वभाव है वैसाही होता है, इस कारण भव्य अभव्यस्वभाव भवस्थितिके ऊपर है, कर्मजनित नहीं है। ये तीन प्रकारके पारिणामिक भाव स्वभावजनित हैं। ॥ ५६ ॥ आगे इन औदयिकादि पांच भावोंका कर्त्ता जीवको दिखाते

जीवेन हि द्रव्यकर्म व्यवहारनयेनानुभूयते । तच्चानुभूयमानं जीवभावानां निमित्तमात्रमुपवर्ण्यते । तस्मिन्निमित्तमात्रभूते जीवेन कर्तृत्वभूतेनात्मनः कर्म्मभूतो भावः क्रियते । अमुना यो येन प्रकारेण जीवेन भावः क्रियते, स जीवस्तस्य भावस्य तेन प्रकारेण कर्त्ता भवतीति ।।५७।।

द्रव्यकर्मणां निमित्तमात्रत्वेनौदयिकादिभावकर्तृत्वमत्रोक्तम् ;—

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा ।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ।।५८।।

कर्मणा विनोदयो जीवस्य न विद्यत उपशमो वा ।
क्षायिकः क्षायोपशमिकस्तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः ।। ५८ ।।

तद्यथा । औदयिकादिभावान् केन रूपेण जीवः करोतीति पृष्टे सत्युत्तरं ददाति;—कम्मं वेदयमाणो कर्म वेदयमानः नीरागनिर्भरानंदलक्षणप्रचंडाखंडज्ञानकांडपरिणतात्मभावनारहितेन मनोवचनकायव्यापाररूपकर्मकांडपरिणतेन च पूर्वं यदुपार्जितं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तदुदयागतं व्यवहारेण वेदमयानः । कोऽसौ ? जीवो जीवःकर्ता भावं करेदि जारिसयं भावं परिणामं करोति यादृशकं सो तस्स तेण कत्ता सः तस्य तेन कर्ता, स जीवस्तस्य रागादिपरिणामस्य कर्मतापन्नस्य तेनैव भावेन करणभूतेनाशुद्धनिश्चयेन कर्ता हवदित्ति य सासणे पढिदं भवतीति शासने परमागमे पठितमित्यभिप्रायः इति ।।५७।। जीवो निश्चयेन कर्मजनितरागादिविभावानां स्वशुद्धात्मभावनाच्युतः सन् कर्ता भोक्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता ।

हैं;—[कर्म वेदयमानः] उदय अवस्थाको प्राप्त हुये द्रव्यकर्मको अनुभवकर्त्ता [जीवः] आत्मा [यादृशकं भावं] जैसा अपने परिणामको [करोति] करता है [सः] वह आत्मा [तस्य] उस परिणामका [तेन] उस कारणसे [कर्ता] करनेवाला [भवति] होता है [इति] इस प्रकार कथन [शासने] जिनेद्र भगवानके मतमें [पठितं] तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंने कहा है । भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादिसंबंध द्रव्यकर्मका संबंध है । यह उस द्रव्यकर्मका व्यवहारनयसें भोक्ता है । जीव जब जिस द्रव्यकर्मको भोगता है, तब उस ही द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर जीवके जीवमयी चिद्विकाररूप परिणाम होते हैं । वह परिणाम जीवकी करतूत है । इसकारण कर्मका कर्ता आत्मा कहा जाता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिन भावोंसे आत्मा परिणमित होता है, उन भावोंका अवश्य कर्ता होता है । कर्ता, कर्म, क्रिया, इन तीन प्रकारसे कर्तृत्वकी सिद्धि होती है । जो परिणमित हो सो कर्त्ता, जो परिणाम सो कर्म, और जो करतूत सो क्रिया कही जाती है ।। ५७ ।। आगे द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर

---

१ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं दर्शयति ।

न खलु कर्मणा विना जीवस्योदयोपशमौ क्षयक्षायोपशमावपि विद्येते । ततः क्षायिकक्षायोपशमिकश्चौदयिकौपशमिकश्च भावः कर्मकृतोऽनुमंतव्यः । पारिणामिकस्त्वनादिनिधनो निरुपाधिः स्वाभाविक एव । क्षायिकस्तु स्वभावव्यक्तिरूपत्वादनंतोऽपि कर्मणः क्षयेनोत्पद्यमानत्वात् सादिरिति कर्मकृत एवोक्तः । औपशमिकस्तु कर्मणामुपशमे समुत्पद्यमानत्वादनुपशमे समुच्छिद्यमानत्वात् कर्मकृत एवेति । अथवा उदयोपशमक्षयक्षयोपशमलक्षणाश्चतस्रो द्रव्यकर्म्मणामेवावस्थाः । न पुनः परिणामलक्षणैकावस्थस्य जीवस्य ।

अथ रागादिपरिणामानामुदयागतं द्रव्यकर्म व्यवहारेण कारणं भवतीति दर्शयति;—कम्मेण विणा कर्मणा विना शुद्धज्ञानदर्शनलक्षणाद्भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविलक्षणात्परमात्मनो विपरीतं यदुदयागतं द्रव्यकर्म तेन विना उदयं जीवस्स ण विज्जदे रागादिपरिणामरूप औदयिकभावो जीवस्य न विद्यते न केवलमौदयिकभावः उवसमं वा औपशमिकभावो वा न विद्यते तेनैव द्रव्यकर्मोपशमेन विना खइयं खओवसमियं क्षायिकभावः क्षायोपशमिकभावस्तस्यैव द्रव्यकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन विना न भवति तम्हा भावं तु कम्मकदं तस्माद्भावस्तु कर्मकृतः यस्माच्छुद्धपारिणामिकभावं मुक्त्वा पूर्वोक्तमौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकभावचतुष्टयं द्रव्यकर्मणा विना न भवति तस्मादेवं ज्ञायते जीवस्यौदयिकादिभावचतुष्टयमनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकृतमिति । अत्र सूत्रे सामान्येन केवलज्ञानादिक्षायिकनवलब्धिरूपो विशेषेण तु केवलज्ञानांतर्भूतं यदनाकुलत्वलक्षणं निश्चयसुखं तत्प्रभृतयो येऽनंतगुणास्तेषामाधारभूतो

औदयिकादि भावोंका कर्त्ता आत्मा है, यह कथन किया जाता है;—[कर्मणा विना] द्रव्यकर्मके विना [जीवस्य] आत्माके [उदयः] रागादि विभावोंका उदय [वा] अथवा [उपशमः] द्रव्यकर्मके विना उपशम भाव भी [न विद्यते] नहीं है । जब द्रव्यकर्म ही नहीं होगा तो उपशमता किसकी होगी ? और औपशमिकभाव कहां से होगा ? [वा क्षायिकः] अथवा क्षायिकभाव भी द्रव्यकर्मके विना नहीं होगा । जब द्रव्यकर्म ही नहीं होगा तो क्षय किसका होगा ? तथा क्षायिकभाव भी कहांसे होगा ? [वा] अथवा [क्षायोपशमिकः] द्रव्यकर्मके विना क्षायोपशमिक भाव भी नहीं होंगे । क्योंकि जो द्रव्यकर्म नहीं है तो क्षायोपशमिक दशा किसकी होगी ? और क्षायोपशमिक भाव कहांसे होगा ? [तस्मात्] इस कारणसे [भावः तु] ये चार प्रकारके जीवके भाव [कर्मकृतः] कर्मने ही किये हैं । भावार्थ—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये चारों ही भाव कर्मजनित जानो । ये कर्मके निमित्तके विना नहीं होते हैं । इस कारण आत्माके स्वाभाविक भाव जानो । यद्यपि इन चारों ही भावोंका भावकर्मकी अपेक्षासे आत्मा कर्त्ता है, तथापि व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म इनका कर्ता है । क्योंकि उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय ये चारों अवस्थायें द्रव्यकर्मकी हैं । द्रव्यकर्म अपनी शक्तिसे इन चारों अवस्थाओं को परिणमता है ।

तत उदयादिसंजातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूततथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद्द्रव्यकर्मापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत इति ॥ ५८ ॥

जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम्;—

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता ।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥५९॥

भावो यदि कर्मकृतः आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्त्ता ?
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यं स्वकं भावं ॥५९॥

यदि खल्वौदयिकादिरूपा जीवस्य भावः कर्मणः क्रियते तदा जीवस्तस्य कर्त्ता न

योऽसौ क्षायिको भावः स एव सर्वप्रकारेणोपादेयभूत इति मनसा श्रद्धेयं ज्ञेयं मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निरंतरं ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५८ ॥ इति तेषामेव भावनामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्म कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । एवं निश्चयेन रागादिभावानां जीवः कर्ता पूर्वगाथायां भणितमत्र तु व्यवहारेण कर्म कर्तृ भवतीति स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं । अथ जीवस्यैकांतेन कर्माकर्तृत्वे दूषणद्वारेण पूर्वपक्षं करोति;—**भावो जदि कम्मकदो** भावो यदि कर्मकृतः यद्येकांतेन रागादिभावः कर्मकृतो भवति **आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता** तदात्मा द्रव्यकर्मणः कथं कर्ता भवति ? यतः कारणाद्रागादिपरिणामाभावे सति द्रव्यकर्म नोत्पद्यते । तदपि कथमितिचेत् । **ण कुणदि अत्ता किंचिवि** न करोत्यात्मा किमपि । किंकृत्वा ? **मुत्ता अण्णं सगं भावं** स्वकीयचैतन्यभावं मुक्त्वान्यत् द्रव्यकर्मादिकं न करोतीत्यात्मनः सर्वथाप्यकर्तृत्वदूषणद्वारेण पूर्वपक्षेऽग्रे द्वितीयगाथायां परिहार इत्येकं व्याख्यानं तावत् द्वितीय-

---

इस कारण इन चारों अवस्थाओंका निमित्त पाकर आत्मा परिणमता है । व्यवहारनयसे इन चारों भावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म जानो, निश्चयनयसे आत्माको कर्त्ता जानो ॥ ५८ ॥ आगे सर्वथा प्रकारसे यदि जीवभावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म कहा जाय तो दूषण है, ऐसा कथन किया जाता है;—[यदि] यदि सर्वथा प्रकार [भावः] भावकर्म [कर्मकृतः] द्रव्यकर्मके द्वारा किया हो तो [आत्मा] जीव [कर्मणः] भावकर्मका [कथं] कैसे [कर्त्ता] करनेवाला [भवति] होता है ? भावार्थ—यदि सर्वथा द्रव्यकर्मको औदयिकादि भावोंका कर्त्ता कहा जाय तो आत्माके अकर्त्ता होनेसे संसारका अभाव हो जायगा । और यदि कहा जाय कि आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता है, इस कारण संसारका अभाव नहीं होगा तो द्रव्यकर्म पुद्गलका परिणाम है, उसको आत्मा कैसे करेगा ? क्योंकि [आत्मा] जीवद्रव्य [स्वकं भावं] अपने भावकर्मको [मुक्त्वा] छोड़कर [अन्यत्] अन्य [किंचित् अपि] कुछ भी परद्रव्यसंबंधी भावको [न करोति] नहीं करता है । भावार्थ—सिद्धांतमें कार्यकी उत्पत्ति

भवति । न च जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते । ततः पारिशेष्येण द्रव्यकर्मणः कर्त्ताऽऽपद्यते । तत्तु कथं ? यतो निश्चयनयेनात्मा स्वभावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोतीति ॥५९॥

पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धांतोऽयम् ;—

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि ।
ण दु तेसिं खलु कत्ता, ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥६०॥

भावः कर्मनिमित्तः कर्म पुनर्भावकारणं भवति ।
न तु तेषां खलु कर्त्ता न विना भूतास्तु कर्त्तारं ॥६०॥

व्याख्याने पुनरत्रैव पूर्वपक्षोऽत्रैव परिहारो द्वितीयगाथायां स्थितपक्ष एव । कथमिति चेत् । पूर्वोक्तप्रकारेणात्मा कर्मणां कर्ता न भवतीति दूषणे दत्ते सति सांख्यमतानुसारिशिष्यो वदति । "अकर्ता निर्गुणः शुद्धो नित्यः सर्वगतोक्रियः । अमूर्त्तश्चेतनो भोक्ता जीवः कपिलशासने ॥" इति वचनादस्माकं मते आत्मनः कर्माकर्तृत्वं भूषणमेव न दूषणं । अत्र परिहारः । यथा शुद्धनिश्चयेन रागाद्यकर्तृत्वमात्मनः तथा यद्यशुद्धनिश्चयेनाप्यकर्तृत्वं भवति तदा द्रव्यकर्मबंधाभावस्तदभावे संसाराभावः, संसाराभावे सर्वदैव मुक्तप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इत्यभिप्राय ॥ ५९ ॥ एवं प्रथमव्याख्याने पूर्वपक्षद्वारेण द्वितीयव्याख्याने पुनः पूर्वपक्षपरिहारद्वारेणेति गाथा गता । अथ पूर्वसूत्रे आत्मनः कर्माकर्तृत्वे सति दूषणरूपेण पूर्वपक्षस्तस्य परिहारं ददाति द्वितीयव्या-

---

के लिये दो कारण कहे हैं । एक 'उपादान' और दूसरा 'निमित्त' । द्रव्यकी शक्तिका नाम उपादान है । सहकारी कारणका नाम निमित्त है । जैसे घटकार्यकी उत्पत्तिके लिये मृत्तिकाकी शक्ति तो उपादान कारण है और कुंभकार दंडचक्रादि निमित्त कारण हैं । इससे निश्चय करके मृत्तिका (मिट्टी) घटकार्यकी कर्त्ता है । व्यवहारसे कुंभकार कर्त्ता है । क्योंकि निश्चयसे तो कुंभकार अपने चेतनमयी घटाकार परिणामोंका ही कर्ता है । व्यवहारसे कुंभकार घटके परिणामोंका कर्त्ता है । जहां उपादानकारण है, वहाँ निश्चयनय है और जहाँ निमित्तकारण है वहां व्यवहारनय है । और यदि यों कहा जाय कि चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता सर्वथा प्रकार निश्चयनयसे घट ही है कुंभकार नहीं है, तो अचेतन घट चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता कैसे होगा ? चैतन्यद्रव्य अचेतन परिणामोंका कर्त्ता होता है, अचेतनद्रव्य चैतन्यपरिणामोंका कर्त्ता नहीं होता । वैसे ही आत्मा और कर्मोंमें उपादान निमित्तका कथन जानो । इस कारण शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि यदि सर्वथा प्रकार द्रव्यकर्म ही भावकर्मोंका कर्त्ता माना जाय तो आत्मा अकर्त्ता हो जायगा । द्रव्यकर्मको करनेके लिये फिर निमित्त कौन होगा ? इस कारण आत्माके भावकर्मोंका निमित्त पाकर द्रव्यकर्म होता है । द्रव्यकर्मसे संसार होता है । आत्मा द्रव्यकर्म कर्ता नहीं है, क्योंकि अपने भावकर्मके विना और परिणामोंका कर्त्ता आत्मा कदापि नहीं होता ॥ ५९ ॥ आगे शिष्यके इस प्रश्नका

करणतामात्मसात्कुर्वत् प्राप्यकर्मत्वपरिणामरूपेण कर्मतां कलयत् पूर्वभावव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालंबनादुपात्तापादानत्वमुपजायमानपरिणामरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वमाधीयमानपरिणामाधारत्वद्गृहीताधिकरणत्वं स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानं न कारकांतरमपेक्षते। एवं जीवोऽपि भावपर्य्यायेण प्रवर्तमानात्मद्रव्यरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणो भावपर्य्यायगमनशक्तिरूपेण करणतामात्मसात्कुर्वन्, प्राप्यभावपर्य्यायरूपेण कर्मतां कलयन्, पूर्वभावपर्य्यायव्यपायेऽपि ध्रुवत्वालंबनादुपात्तापादानत्वः, उपजायमानभावपर्य्यायरूपकर्मणाश्रीयमाणत्वादुपोढसंप्रदानत्वः, आधीयमानभावपर्य्यायाधारत्वाद्गृहीताधिकरणत्वः स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकांतरमपेक्षते। अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति ॥६२॥

रूपेण जीवोवि य तारिसओ जीवोपि च तादृशः। केन कृत्वा। कम्मसहावेण भावेण कर्मस्वभावेनाशुद्धभावेन रागादिपरिणामेनेति। तथाहि—कर्मपुद्गलः कर्ता कर्मपुद्गलं कर्मतापन्नं कर्मपुद्गलेन करणभूतेन कर्मपुद्गलाय निमित्तं कर्मपुद्गलात्सकाशात्कर्मपुद्गलेऽधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण परिणममानः कारकांतरं नापेक्षते, तथा जीवोपि आत्मा कर्तात्मानं कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मनः सकाशादात्मन्यधिकरणभूते करोतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानः कारकांतरं नापेक्षते। अयमत्र भावार्थः। यथैवाशुद्धषट्कारकीरूपेण परिणममानः सन्नशुद्धमात्मानं करोति तथैव शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपे-

---

[करोति] करता है [च] फिर [जीवः अपि] जीव पदार्थ भी [कर्मस्वभावेन] कर्मरूप [भावेन] भावोंसे [तादृशकः] जैसे द्रव्यकर्म आप अपने स्वरूपके द्वारा अपना ही कर्त्ता है वैसे ही आप अपने स्वरूपद्वारा आपको करता है। भावार्थ—जीव और पुद्गलमें अभेद षट्कारक हैं, सो विशेषतासे दिखाये जाते हैं। कर्मयोग्य पुद्गलस्कंधको करता है इस कारण पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है। ज्ञानावरणादि परिणाम कर्मको करते हैं इस कारण पुद्गलद्रव्य कर्मकारक भी है। कर्मभाव परिणमनको समर्थ ऐसी अपनी स्वशक्तिसे परिणमित होता है इस कारण वही पुद्गलद्रव्य करणकारक भी है। और अपना स्वरूप आपको ही देता है इसलिये संप्रदाना है। आपसे आपको करता है इस प्रकार आपही अपादानकारक है। अपने ही आधारसे अपने परिणामको करता है इस कारण आपही अधिकरणकारक है। इसप्रकार पुद्गलद्रव्य आप षट्कारकरूप परिणमित होता है, अन्य द्रव्यके कर्तृत्वको निश्चयसे नहीं चाहता है। इस प्रकार जीव द्रव्य भी अपने औदयिकादि भावोंसे षट्कारकरूप होकर परिणमित होता है और अन्य द्रव्यके कर्तृत्वको नहीं चाहता है। इसकारण यह वात सिद्ध हुई कि न तो जीव कर्मका कर्ता है

---

१ अन्यषट्कारकाणि न वांछते. २ रागद्वेषरूपेण भावकर्मणा. ३ निश्चयतः।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं ।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥६३॥

कर्म कर्म करोति यदि स आत्मा करोत्यात्मानं ।
कथं तस्य फलं भुङ्क्ते आत्मा कर्म च ददाति फलं ॥६३॥

कर्मजीवयोरन्योन्याकर्तृत्वेऽन्यदत्तफलान्योपभोगलक्षणदूषणपुरःसरः पूर्वपक्षोऽयम् ॥६३॥

अथ सिद्धांतसूत्राणि;—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहमेहिं वादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥६४॥

नाभेदषट्कारकीस्वभावेन परिणममानः शुद्धमात्मानं करोतीति ॥ ६२ ॥ एवमागमसंवादरूपेणाभेदषट्कारकीरूपेण च स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं । इति समुदायेन गाथाषट्केन तृतीयांतरस्थलं समाप्तं । अथ पूर्वोक्तप्रकारेणाभेदषट्कारकीव्याख्याने कृते सति निश्चयनयेनेदं व्याख्यानं कृतमिति नयविचारमजानन्नेकांतं गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति;—कम्मं कर्म कर्तृ कम्मं कुव्वदि जदि यद्येकांतेन जीवपरिणामनिरपेक्षं सद्द्रव्यकर्म करोति "जदि" सो अप्पा करेदि अप्पाणं यदि च स आत्मात्मानमेव करोति न च द्रव्यकर्म किह तस्स फलं भुंजदि कथमेतस्याकृतकर्मणः फलं भुंक्ते । स कः । अप्पा आत्मा कर्ता कम्मं च देदि फलं जीवेनाकृतं कर्म च कर्तृ कथमात्मने ददाति फलं न कथमपीति ॥६३॥ चतुर्थस्थले

और न कर्म जीवका कर्त्ता है ॥ ६२ ॥ आगे कर्म और जीवोंका अन्य कोई कर्त्ता है और इनको अन्य जीवद्रव्य फल देता है, ऐसा जो दूषण है, उसके लिये शिष्य प्रश्न करता है—[यदि] यदि [कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म-समूह [कर्म] अपने परिणामको [करोति] करता है और यदि [सः] वह संसारी [आत्मा] जीवद्रव्य [आत्मानं] अपने स्वरूपको [करोति] करता है [तदा] तो [तस्य] उस कर्मका [फलं] उदय अवस्थाको प्राप्त हुआ जो फल उसको [आत्मा] जीवद्रव्य [कथं] किस प्रकार [भुङ्क्ते] भोगता है ? [च] और [कर्म] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म [फलं] अपने विपाकको [कथं] कैसे [ददाति] देता है ? भावार्थ—यदि कर्म अपने कर्मस्वरूपका कर्त्ता है और आत्मा अपने स्वरूपका कर्त्ता है तो आत्मा जड़स्वरूप कर्मको कैसे भोगेगा ? और कर्म चैतन्यस्वरूप आत्माको फल कैसे देगा ? निश्चयनयकी अपेक्षा किसी प्रकार न तो कोई कर्म भोगता है और न भुगतवाता है, ऐसा शिष्यने प्रश्न किया, उसका गुरु समाधान करते हैं कि—आप ही जब आत्मा रागी द्वेषी होकर अनादि अविद्यासे परिणमित होता है, तब परद्रव्य संबंधी सुख दुःख मान लेता है और कर्म फल देता है ऐसा कहता है ॥ ६३ ॥ आगे शिष्यने जो यह

व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्त्ता । निश्चयेन तु न जीवभावानां कर्म कर्तृ, न कर्मणो जीवभावः । न च ते[1] कर्त्तारमंतरेण संभूयते । यतो निश्चयेन जीवपरिणामानां जीवः कर्त्ता, कर्मपरिणामानां कर्म कर्तृ इति ।।६०।।

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स ।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ।।६१।।

ख्यानपक्षे स्थितपक्षं दर्शयति;—भावो निर्मलचिज्ज्योतिःस्वभावाच्छुद्धजीवास्तिकायात्प्रतिपक्षभूतो भावो मिथ्यात्वरागादिपरिणामः । स च किंविशिष्टः ? कम्मणिमित्तं कर्मोदयरहिताच्चैतन्यचमत्कारमात्रात्परमात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतं यदुदयागतं कर्म तन्निमित्तं यस्य स भवति कर्मनिमित्तः कम्मं पुण ज्ञानावरणादिकर्मरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वादिलक्षणं यद्भावि द्रव्यकर्म पुनः । तत्कथंभूतं ? भावकारणं हवदि निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिभावात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ रागादिभावः स कारणं यस्य तद्भावकरणं भवति ण दु नैव तु पुनः तेसिं तयोर्जीवगतरागादिभावद्रव्यकर्मणोः । किं नैव ? कत्ता परस्परोपादानकर्तृत्वं खलु स्फुटं ण विणा नैव विना भूदा दु भूते संजाते तु पुनस्ते द्रव्यभावकर्मणी द्वे । कं विना ? कत्तारं उपादानकर्तारं विना किंतु जीवगतरागादिभावानां जीव एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मणां कर्मवर्गणायोग्यपुद्गल एवेति । द्वितीयव्याख्याने तु यद्यपि जीवस्य शुद्धनयेनाकर्तृत्वं तथापि विचार्यमाणमशुद्धनयेन कर्तृत्वं स्थितमिति भावार्थः ।। ६० ।। एवं पूर्वगाथायां प्रथमव्याख्यानपक्षे तत्र पूर्वपक्षोत्र पुनरुत्तरमिति गाथाद्वयं गतं ।

उत्तर कहा जाता है;—[भावः] औदयिकादि भाव [कर्मनिमित्तः] कर्मका निमित्त पाकर होते हैं [पुनः] फिर [कर्म] ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म [भावकारणं] औदयिकादि भावकर्मोंका निमित्त [भवति] होता है [तु] और [तेषां] उन द्रव्यकर्म—भावकर्मोंका [खलु] निश्चयसे [कर्त्ता न] आपसमें द्रव्य कर्त्ता नहीं है । न पुद्गल भावकर्मका कर्त्ता है और न जीव द्रव्यकर्मका कर्त्ता है [तु] और वे द्रव्यकर्म भावकर्म [कर्त्तारं विना] कर्त्ताके विना [नैव] निश्चयसे नहीं [भूताः] हुये हैं । अर्थात् वे द्रव्य—भावकर्म कर्त्ताके विना भी नहीं हुये । भावार्थ—निश्चयनयसे जीवद्रव्य अपने चिदात्मक भावकर्मोंका कर्त्ता है और पुद्गलद्रव्य भी निश्चयसे अपने द्रव्यकर्मका कर्त्ता है । व्यवहारनयकी अपेक्षासे जीव द्रव्यकर्मके विभावभावके कर्त्ता हैं । और द्रव्यकर्म जीवके विभावभावोंके कर्त्ता हैं । इस प्रकार उपादान निमित्त कारणके भेदसे जीवकर्मका कर्तृत्व निश्चय—व्यवहार नयोंसे आगम प्रमाणसे जान लेना चाहिये । शिष्यने जो पूर्व गाथामें प्रश्न किया था, गुरुने इसप्रकार उसका समाधान किया है ।। ६० ।। आगे फिर भी दृढ कथनके निमित्त

---

१ भावकर्मणी अत्र द्विवचनम् ।

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्त्ता स्वकस्य भावस्य ।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम् ॥६१॥

निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥६१॥

अत्र निश्चयेनाभिन्नकारकत्वात् कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम् ;—

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६२॥

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानं ।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन ॥ ६२ ॥

कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कंधरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राणं कर्मत्वगमनशक्तिरूपेण

अथैव तदेव व्याख्यानमागमसंवादेन दृढयति;—कुव्वं कुर्वाणः । कं ? सगं सहावं स्वकं स्वभावं चिद्रूपं । अत्र यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानादिशुद्धभावाः स्वभावा भण्यंते तथापि कर्मकर्तृत्वप्रस्तावादशुद्धनिश्चयेन रागादयोपि स्वभावा भण्यंते, तान् कुर्वन् सन् अत्ता कत्ता सगस्स भावस्य आत्मा कर्ता स्वकीयभावस्य ण हि पोग्गलकम्माणं नैव पुद्गलकर्मणां हु स्फुटं निश्चयनयेन कर्ता इदि जिणवयणं मुणेदव्वं इति जिनवचनं मंतव्यं ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यशुद्धभावानां कर्तृत्वं स्थापितं तथापि ते हेयास्तद्विपरीता अनंतसुखादिशुद्धभावा उपादेया इति भावार्थः ॥ ६१ ॥ इत्यागमसंवादरूपेण गाथा गता । अथ निश्चयेनाभेदषट्कारकीरूपेण कर्मपुद्गलः स्वकीयस्वरूपं करोति जीवोपि तथैवेति प्रतिपादयति;—कम्मंपि सयं कर्मकर्तृ स्वयमपि स्वयमेव कुव्वदि करोति । किं करोति ? सम्ममप्पाणं सम्यग्यथा भवत्यात्मानं द्रव्यकर्मस्वभावं । केन कारणभूतेन ? सगेण भावेण स्वकीयस्वभावेनाभेदषट्कारकी-

---

आगमप्रमाण दिखाते हैं कि निश्चयसे जीवद्रव्य अपने भावकर्मोंका ही कर्ता है पुद्गलकर्मोंका कर्त्ता नहीं है;–[स्वकं] आत्मीक [स्वभावं] परिणामको [कुर्वन्] करता हुआ [आत्मा] जीवद्रव्य [स्वकस्य] अपने [भावस्य] परिणामोंका [कर्त्ता] करनेवाला होता है । [पुद्गलकर्मणां] पुद्गलमयी द्रव्यकर्मोंका कर्ता [हि] निश्चयसे [न] नहीं है [इति] इस प्रकार [जिनवचनं] जिनेन्द्र भगवानकी वाणी [ज्ञातव्यं] जानो । भावार्थ—आत्मा निश्चयसे अपने भावोंका कर्त्ता है, परद्रव्यका कर्त्ता नहीं है ॥ ६१ ॥ आगे निश्चयनयसे उपादान-कारणकी अपेक्षा कर्म अपने स्वरूपका कर्त्ता है, ऐसा कथन करते हैं;–[कर्म] कर्मरूप परिणत पुद्गलस्कंध [अपि] निश्चयसे [स्वेन स्वभावेन] अपने स्वभावसे [सम्यक्] यथार्थ–जैसेका तैसा [स्वकं] अपने [आत्मानं] स्वरूपको

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चानंतानंतैर्विविधैः ॥ ६४ ॥

कर्मयोग्यपुद्गला अञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोकव्यापित्वाद्यत्रात्मा तत्रानानीता एवावतिष्ठंत इत्यत्रोक्तम् ॥ ६४ ॥

अन्याकृतकर्मसंभूतिप्रकारोक्तिरियम् ;—

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं ।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥ ६५ ॥

पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता । अथ परिहारमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तत्र गाथासु सप्तसु मध्ये पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वमुख्यत्वेन "ओगाढगाढ" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन च "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं बंधप्रभुत्वेन मोक्षप्रभुत्वेन च "एवं कत्ता भोत्ता" इत्यादि गाथाद्वयं । एवं समुदायेन परिहारगाथासूत्राणि सप्त । तद्यथा । यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञानाद्यनंतगुणपरिणतैः सूक्ष्मजीवैर्निरंतरं लोको भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपीति निरूपयति;—ओगाढगाढणिचिदो अवगाढगाढनिचितः यथा पृथ्वीकायिकादिपंचविधसूक्ष्मस्थावरैरंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेनावगाढगाढरूपेण नैरंतर्येण निचितो भृतः । कोऽसौ ? लोगो लोकः पोग्गलकायेहि तथा पुद्गलकायैश्च । कथं ? सव्वदो सर्वप्रदेशेषु । कथंभूतैः पुद्गलकायैः ? सुहुमेहिं बादरेहि य सूक्ष्मैर्दृष्ट्यगोचरैर्बादरैर्दृष्टिविषयैश्च । कतिसंख्योपेतैः ? अणंताणंतेहिं अनंतानंतैः । किंविशिष्टैः ? विविहेहि विविधैरंतर्भेदेन बहुभेदैरिति । अत्र कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यत्रात्मा तिष्ठति तत्रानानीता एव पूर्वं तिष्ठन्ति बंधकाले पश्चादागमिष्यंत्येव । यद्यपि पूर्वं ते तत्रात्मावगाढगाढक्षेत्रे क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठन्ति तथापि ते हेयास्तेभ्यो भिन्नः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ६४ ॥ अथात्मनो मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला निश्चये-

---

प्रश्न किया है उसका विशेष कथन किया जाता है । अब पहिले यह कहते हैं कि कर्मयोग्य पुद्गल समस्त लोकमें भरपूर होकर रह रहे हैं;—[लोकः] समस्त त्रैलोक्य [सर्वतः] सब जगह [पुद्गलकायैः] पुद्गलस्कंधोंके द्वारा [अवगाढगाढनिचितः] अतिशय भरपूर गाढा भरा हुआ है । जैसे कज्जलकी कज्जलदानी अंजनसे भरी होती हैं उसी प्रकार सर्वत्र पुद्गलोंसे लोक भरपूर रहता है । कैसे हैं पुद्गल ? [सूक्ष्मैः] अतिशय सूक्ष्म हैं [च] तथा [बादरैः] अतिशय बादर हैं । फिर कैसे हैं पुद्गल ? [अनंतानंतैः] अपरिमाण संख्याको लिये हुये हैं । फिर कैसे हैं पुद्गल ? [हि विविधैः] निश्चयसे कर्मपरमाणु स्कंध आदि अनेक प्रकारके हैं ॥६४॥ आगे कहते हैं कि अन्यसे कर्मकी उत्पत्ति

---

१ 'समुद्गकः' इत्युक्ते 'संपुटकः' इत्यर्थो भवति; तथाचोक्तममरकोशे नृवर्गे "समुद्गकः संपुटकः" इति । अञ्जनवर्णेन मर्दिताञ्जनेन यथा समुद्गकः संपुटकः कज्जलसंभृतो भवति तथा षड्द्रव्यैर्लोकः संभृतोऽस्तीति भावः।

आत्मा करोति स्वभावं तत्र गताः पुद्गलाः स्वभावैः।
गच्छन्ति कर्मभावमन्योन्यावगाहावगाढाः॥ ६५॥

आत्मा हि संसारावस्थायां पारिणामिकचैतन्यस्वभावमपरित्यजन्नेवानादिबंधनबद्धत्वादनादिमोहरागद्वेषस्निग्धैरविशुद्धैरेव भावैर्विवर्तते। स खलु यत्र यदा मोहरूपं, रागरूपं वा स्वस्य भावमारभते, तत्र तदा तमेव निमित्तीकृत्य जीवप्रदेशेषु परस्परावगाहेनानुप्रविष्टाः स्वभावैरेव पुद्गलाः कर्मभावमापद्यंत इति॥ ६५॥

नोपादानरूपेण स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमंतीति प्रतिपादयति;—अत्ता आत्मा कुणदि करोति। कं करोति? सहावं स्वभावं रागद्वेषमोहसहितं परिणामं। ननु रागद्वेषमोहरहितो निर्मलचिज्ज्योतिःसहितश्च वीतरागानंदरूपः स्वभावपरिणामो भण्यते रागादिविभावपरिणामः कथं स्वभावशब्देनोच्यत इति परिहारमाह—बंधप्रकरणवशादशुद्धनिश्चयेन रागादिभावपरिणामोपि स्वभावो भण्यते इति नास्ति दोषः। तत्थ गया तत्रात्मशरीरावगाढक्षेत्रे गताः स्थिताः। के ते? पोग्गला कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंदाः गच्छंति कम्मभावं गच्छन्ति परिणमन्ति कर्मभावं द्रव्यकर्मपर्यायं। कैः करणभूतैः? सहावेहिं निश्चयेन स्वकीयोपादानकारणैः। कथं गच्छन्ति? अण्णोण्णागाहं अन्योन्यावगाहसंबंधो यथा भवति। कथंभूताः संतः? अवगाढा क्षीरनीरन्यायेन संश्लिष्टा इत्यभिप्रायः॥ ६५॥ अथ कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यथा

नहीं है। जब रागादि भावोंसे आत्मा परिणमित होता है तब पुद्गलका बंध होता है। [आत्मा] जीव [स्वभावं] अशुद्ध रागादि विभाव-परिणामोंको [करोति] करता है [तत्र गताः पुद्गलाः] जहां जीवद्रव्य रहता है वहां वर्गणारूप पुद्गल रहते हैं, वे [स्वभावैः] अपने परिणामोंके द्वारा [कर्मभावं] ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप भावको [गच्छन्ति] प्राप्त होते हैं। कैसे हैं वे पुद्गल? [अन्योन्यावगाहावगाढाः] परस्पर एक क्षेत्र अवगाहना करके अतिशय गाढे भर रहे हैं। भावार्थ—यह आत्मा संसार अवस्थामें अनादि कालसे लेकर परद्रव्यके संबंधसे अशुद्ध चेतनात्मक भावोंसे परिणमित होता है। वही आत्मा जब मोह-राग-द्वेषरूप अपने विभाव भावोंसे परिणमित होता है, तब इन भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल अपनी ही उपादान शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मभावोंसे परिणमित होता है, तत्पश्चात् जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाहनारूप बंधते हैं। इससे यह बात सिद्ध हुई कि पूर्व बंधे हुये द्रव्यकर्मोंका निमित्त पाकर जीव अपनी अशुद्ध चैतन्यशक्तिके द्वारा रागादि भावोंका कर्त्ता होता है तब पुद्गलद्रव्य रागादिभावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मोंका कर्त्ता होता है। परद्रव्यसे निमित्त-नैमित्तिक भाव हैं, उपादान अपने आप हैं॥ ६५॥ आगे कर्मोंकी

१ आत्मा. २ रागद्वेषरूपमात्मभावम्।

अनन्यकृतत्वं कर्मणां वैचित्र्यस्यात्रोक्तम् ;—

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती ।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥६६॥

यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंधनिवृत्तिः ।
अकृता परैर्दृष्टा तथा कर्मणां विजानीहि ॥६६॥

यथा हि स्वयोग्यचंद्रार्कप्रभोपलंभे संध्याभ्रेंद्रचापपरिवेषप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः पुद्गलस्कंधविकल्पाः कर्त्रंतरनिरपेक्षा एवोत्पद्यंते तथा स्वयोग्यजीवपरिणामोपलंभे ज्ञानावरणप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः कर्माण्यपि कर्त्रंतरनिरपेक्षाण्येवोत्पद्यंते इति ॥ ६६ ॥

निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तृत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुध्यत इत्यत्रोक्तम् ;—

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा ।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥ ६७ ॥

स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति तथा दृष्टांतमाह;—**जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंदणिप्पत्ती अकदा परेहिं दिट्ठा** यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कंदनिष्पत्तिरकृता परैर्दृष्टा **तह कम्माणं वियाणाहि** तथा कर्मणामपि विजानीहि, हे शिष्य त्वमिति । तथाहि । यथा चंद्रार्कप्रभोपलंभे सति अभ्रसंध्यारागेंद्रचापपरिवेषादिभिर्बहुभिः प्रकारैः परेणाकृता अपि स्वयमेव पुद्गलाः परिणमन्ति लोके तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणभावनारूपाभेदरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररहितानां जीवानां मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला जीवेनोपादानकारणभूतेनाकृता अपि स्वकीयोपादानकारणैः कृत्वा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिरूपैर्बहुभेदैः परिणमन्ति इति भावार्थः ॥ ६६ ॥ एवं पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथाकृतकर्मणः कथं फलं भुंक्ते जीव

विचित्रताके उपादानकारणसे अन्यद्रव्य कर्त्ता नहीं है पुद्गलही है ऐसा कथन करते हैं;—
[यथा] जैसे **[पुद्गलद्रव्याणां]** पुद्गलद्रव्योंके **[बहुप्रकारैः]** नानाप्रकारके भेदोंसे **[स्कंधनिवृत्तिः]** स्कंधोंकी परिणति **[दृष्टा]** देखी जाती है । कैसी है स्कंधोंकी परिणति ? **[परैः]** अन्य द्रव्योंके द्वारा **[अकृता]** नहीं की हुई अपनी शक्तिसे उत्पन्न हुई है **[तथा]** वैसेही **[कर्मणां]** कर्मोंकी विचित्रता **[विजानीहि]** जानो । भावार्थ—जैसे चन्द्रमा या सूर्यकी प्रभाका निमित्त पाकर संध्याके समय आकाशमें अनेक वर्ण, बादल, इन्द्रधनुष, मंडलादिक नाना प्रकारके पुद्गलस्कंध अन्यतर विना किये ही अपनी शक्तिसे अनेक प्रकार होकर परिणमित होते हैं, वैसेही जीवद्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणायें अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मदशारूप होकर परिणमित होती हैं ॥ ६६ ॥ आगे निश्चयनयकी अपेक्षा यद्यपि जीव और पुद्गल अपने भावोंके कर्त्ता हैं, तथापि व्यवहारसे कर्मद्वारा

१ अन्यकर्तारं विना । २ उपदानरूपेण निजनिजस्वरूपकर्तृत्वेऽपि.

जीवाः पुद्गलकायाः अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः।
काले वियुज्यमानाः सुखदुःखं ददति भुञ्जन्ति ॥ ६७ ॥

जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात्पुद्गलस्कंधाश्च स्वभावस्निग्धत्वाद्बंधावस्थायां परमाणुद्वंद्वानीवान्योन्यावगाहग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठंते। यदा तु ते[1] परस्परं वियुज्यंते, तदोदितप्रच्यवमाना निश्चयेन सुखदुःखरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकायाः सुखदुःखरूपं फलं प्रयच्छन्ति। जीवाश्च निश्चयेन निमित्तमात्रभूतद्रव्यकर्मनिर्वर्तितसुखदुःखस्वरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेण द्रव्यकर्मो-

इति योऽसौ पूर्वपक्षः कृतस्तत्र फलभोक्तृत्वविषये नयविभागेन युक्तिं दर्शयति;—**जीवा पोग्गलकाया** जीवकायाः पुद्गलकायाश्च। कथंभूताः? **अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा** अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः स्वकीयस्वकीयरागादिस्निग्धरूक्षादिपरिणामनिमित्तेन पूर्वमेवान्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धाः संतः तिष्ठन्ति तावत् **काले विजुज्जमाणा** उदयकाले स्वकीयफलं दत्त्वा वियुज्यमाना निर्जरां गच्छंतः। किं कुर्वन्ति? **दिंति** निर्विकारचिदानंदैकस्वभावजीवस्य मिथ्यात्वरागादिभिः सहैकत्वरुचिरूपं मिथ्यात्वं तैरेव सहैकत्वप्रतिपत्तिरूपं मिथ्याज्ञानं तदैवैकत्वपरिणतिरूपं मिथ्याचारित्रमिति मिथ्यात्वादित्रयपरिणतजीवानां पुद्गलाः कर्तारो ददति प्रयच्छंति। किं ददति? **सुहदुक्खं** अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विपरीतं परमाकुलत्वोत्पादकमभ्यंतरे निश्चयेन हर्षविषादरूपं व्यवहारेण पुनर्बहिर्विषये विविधेष्टानिष्टेन्द्रियविषयप्राप्तिरूपं कटुकविषर-

दिये हुये सुखदुःखके फलको जीव भोगता है, यह कथन भी विरोधी नहीं है, ऐसा कहते हैं;—[**जीवाः**] जीवद्रव्य [**पुद्गलकायाः**] पुद्गलवर्गणाके पुञ्ज [**अन्योऽन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः**] परस्पर अनादि कालसे लेकर अत्यंत सघन मिलापसे बंध अवस्थाको प्राप्त हुये हैं। वे ही जीव पुद्गल [**काले**] उदयकाल अवस्थामें [**वियुज्यमानाः**] अपना रस देकर खिरते हैं तब [**सुखदुःखं**] साता असाता [**ददति**] देते हैं और [**भुञ्जन्ति**] भोगते हैं। **भावार्थ**—जीव पूर्वबंधसे मोहरागद्वेषरूप भावोंसे स्निग्धरूक्ष हैं और पुद्गल अपने स्वभावसे ही स्निग्धरूक्ष परिणामोंद्वारा प्रवर्तित होता है। आगमप्रमाणमें गुण अंशसे जैसी कुछ बंध अवस्था कही गई है, उस ही प्रकार अनादिकालसे लेकर आपसमें बंध रहे हैं। और जब फलकाल आता है तब पुद्गल कर्मवर्गणायें जीवके जो बंध रही हैं वे सुखदुःखरूप होती हैं। निश्चयसे आत्माके परिणामोंको निमित्तमात्र सहाय है। व्यवहारसे शुभ-अशुभ जो बाह्य पदार्थ हैं उनको भी कर्म निमित्त कारण हैं, सुखदुःख-फलको देते हैं। और जीव अपने

१ जीवपुद्गलस्कंधाः।

दयापादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वात्तथाविधं फलं भुञ्जते इति । एतेन जीवस्य भोक्तृत्वगुणोऽपि व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्;—

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स ।
भोत्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥६८॥

तस्मात्कर्म कर्ता भावेन हि संयुतमथ जीवस्य ।
भोक्ता तु भवति जीवश्चेतकभावेन कर्मफलं ॥ ६८ ॥

तत् एतत् स्थितं निश्चयेनात्मनः कर्म–कर्तृ–व्यवहारेण जीवभावस्य । जीवोऽपि निश्चयेनात्मभावस्य कर्ता व्यवहारेण कर्मण इति । यथात्रोभयनयाभ्यां कर्म–कर्तृ, तथैकेनापि नयेन न भोक्तृ । कुतः ? चैतन्यपूर्वकानुभूतिसद्भावाभावात् । ततश्चेतनत्वात्केवल

सास्वादस्वभावं सांसारिकसुखदुःखं भुंजंति वीतरागपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादभोजनरहिता जीवा निश्चयेन भावरूपं व्यवहारेण द्रव्यरूपं भुजंते सेवंत इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥ एवं भोक्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ कर्तृत्वभोक्तृत्वोपसंहारः कथ्यते;—**तम्हा** यस्मात्पूर्वोक्तनयविभागेन जीवकर्मणोः परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्ति तस्मात्कारणात् **कम्मं कत्ता** कर्म कर्तृ भवति । केषां ? निश्चयेन स्वकीयभावानां, व्यवहारेण रागादिजीवानां, जीवोपि व्यवहारेण द्रव्यकर्मभावानां निश्चयेन स्वकीयचेतकभावानां । कथंभूतं सत्कर्म स्वकीयभावानां कर्तृ भवति ? **संजुदा** संयुक्तं **अध** अथो । केन संयुक्तं ? **भावेण** मिथ्यात्वरागादिभावेन परिणामेन **जीवस्य** जीवस्य[1] जीवोपि कर्मभावेन संयुक्त इति **भोत्ता दु** भोक्ता पुनः **हवदि** भवति । कोसौ । **जीवो** निर्विकारचिदानंदैकानुभूतिरहितो जीवः । केन कृत्वा । **चेदग-**

निश्चयसे तो सुखदुःखरूप परिणामोंके भोक्ता हैं और व्यवहारसे द्रव्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुये जो शुभ–अशुभ पदार्थ उनको भोगते हैं । जीवमें भोगनेका गुण है । कर्ममें यह गुण नहीं है, क्योंकि कर्म जड़ है । जड़में अनुभवनशक्ति नहीं है ॥ ६७ ॥ आगे कर्तृत्व–भोक्तृत्वका व्याख्यान संक्षेपमात्र कहा जाता है;— [तस्मात्] उस कारणसे [हि] निश्चयसे [कर्म] द्रव्यकर्म [कर्ता] अपने परिणामोंका कर्ता है । कैसा है द्रव्यकर्म ? [जीवस्य] आत्मद्रव्यका [भावेन] अशुद्ध चेतनात्मपरिणामोंसे [संयुतं] संयुक्त है । भावार्थ—द्रव्यकर्म अपने ज्ञानावरणादिक परिणामोंका उपादानरूप कर्त्ता है । और आत्माके अशुद्ध चेतनात्मक परिणामोंको निमित्त मात्र है । इस कारण व्यवहारसे जीव भावोंका भी कर्त्ता कहा जाता है [अथ] फिर इसी प्रकार जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका उपादानरूप

---

१ स्वकीयस्य ।

एव जीवः कर्मफलभूतानां कथंचिदात्मनः सुखदुःखपरिणामानां कथंचिदिष्टानिष्टविषयाणां भोक्ता प्रसिद्ध इति ॥ ६८ ॥

कर्मसंयुक्तमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत् ;—

एवं कत्ता भोत्ता होज्झं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं ।
हिंडति पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥६९॥

एवं कर्त्ता भोक्ता भवन्नात्मा स्वकैः कर्मभिः ।
हिंडते पारमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥ ६९ ॥

एवमयमात्मा प्रकटितप्रभुत्वशक्तिः स्वकैः कर्मभिर्गृहीतकर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारोऽनादि-

---

भावेण परमचैतन्यप्रकाशविपरीतेनाशुद्धचेतकभावेन । किं भोक्ता भवति ? कम्मफलं शुद्धबुद्धकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्नं यत्सहजशुद्धपरमसुखानुभवनफलं तस्माद्विपरीतं सांसारिकसुखदुःखानुभवनरूपं शुभाशुभकर्मफलमिति भावार्थः ॥ ६८ ॥ एवं पूर्वगाथा कर्मभोक्तृत्वमुख्यत्वेन, इयं तु गाथा कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वयोरुपसंहारमुख्यत्वेनेति गाथाद्वयं गतं । अथ पूर्वं भणितमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन दर्शयति;—एवं कत्ता भोत्ता होज्जं निश्चयेन कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरहितोपि व्यवहारेणैवं पूर्वोक्तनयविभागेन कर्ता भोक्ता च भूत्वा । स कः ? अप्पा आत्मा । कैः कारणभूतैः ? सगेहिं कम्मेहिं स्वकीयशुभाशुभद्रव्यभावकर्मभिः । एवंभूतः सन् किं करोति ? हिंडदि हिंडते भ्रमति । कं ? संसारं निश्चयनयेनानंतसंसारव्या-

---

कर्त्ता है । ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मको अशुद्ध चेतनात्मक भाव निमित्तभूत हैं । इस कारण व्यवहारसे जीव द्रव्यकर्मका भी कर्त्ता है [तु] और [जीवः] आत्मद्रव्य जो है सो [चेतकभावेन] अपने अशुद्ध चेतनात्मक रागादि भावोंसे [कर्मफलं] साता असातारूप कर्मफलका [भोक्ता] भोगनेवाला [भवति] होता है । **भावार्थ—**जैसे जीव और कर्म निश्चय-व्यवहारनयोंके द्वारा दोनों परस्पर एक दूसरे के कर्त्ता हैं वैसे ही दोनों भोक्ता नहीं हैं । भोक्ता केवल मात्र एक जीवद्रव्य ही है, क्योंकि आप चैतन्यस्वरूप है इस कारण पुद्‍गलद्रव्य अचेतन स्वभावसे निश्चय व्यवहार दोनों नयोंमेंसे एक भी नयसे भोक्ता नहीं है । इस कारण जीवद्रव्य निश्चय नयकी अपेक्षा अपने अशुद्ध चेतनात्मक सुखदुःखरूप परिणामोंका भोक्ता है । व्यवहारनयसे इष्टानिष्ट पदार्थोंका भोक्ता कहा जाता है ॥ ६८ ॥ आगे कर्मसंयुक्त जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्व गुणका व्याख्यान करते हैं;—[स्वकैः] अनादि अविद्यासे उत्पन्न किये हुये अपने [कर्मभिः] ज्ञानावरणादिक कर्मोंके उदयसे [आत्मा] जीवद्रव्य [एवं] इस प्रकार [कर्त्ता] करनेवाला [भोक्ता] भोगनेवाला [भवन्] होता हुआ [पारं] भव्यकी अपेक्षा से सांत [अपारं] अभव्यकी अपेक्षा से अनंत [संसारं] पंचपरावर्त्तनरूप संसारको धारण कर अनेक स्वरूपसे चतुर्गतिमें [हिंडते] भ्रमण

मोहावच्छिन्नत्वादुपजातविपरीताभिनिवेशः प्रत्यस्तमितसम्यग्ज्ञानज्योतिः सांतमनंतं वा संसारं परिभ्रमतीति ॥ ६९ ॥

कर्मवियुक्तत्वमुखेन प्रभुत्वगुणव्याख्यानमेतत् ;—

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥७०॥

उपशांतक्षीणमोहो मार्गं जिनभाषितेन समुपगतः ।
ज्ञानानुमार्गचारी निर्वाणपुरं व्रजति धीरः ॥७०॥

अयमेवात्मा यदि जिनाज्ञया मार्गमुपगम्योपशांतक्षीणमोहत्वात्प्रहीणविपरीताभिनि-

---

त्तिरहितत्वेनानंतज्ञानादिगुणाधारात्परमात्मनो विपरीतं चतुर्गतिसंसारं । पुनरपि किं विशिष्टं । पारमपारं भव्यापेक्षया सपारं अभव्यापेक्षया त्वपारं । पुनरपि कथंभूतः स आत्मा ? विपरीताभिनिवेशोत्पादकमोहरहितत्वेन निश्चयनयेनानंतसद्दर्शनादिशुद्धगुणोपि व्यवहारेण दर्शनचारित्रमोहसंछन्नः प्रच्छादित इत्यभिप्रायः ॥ ६९ ॥ एवं कर्मसंयुक्तत्वमुख्यत्वेन गाथा गता । अथात्रापि पूर्वोक्तमपि प्रभुत्वं पुनरपि कर्मरहितत्वं मुख्यत्वेन प्रतिपादयति;—**उवसंतखीणमोहो** उपशांतक्षीणमोहः अत्रोपशमशब्देनौपशमिकसम्यक्त्वं क्षीणशब्देन क्षायिकसम्यक्त्वं द्वाभ्यां तु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमिति ग्राह्यं । **मग्गं** भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं **समुवगदो** समुपगतः प्राप्तः । केन ? **जिणभासिदेण** वीतरागसर्वज्ञभाषितेन **णाणं** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं अभेदेन तदाधारं शुद्धात्मानं वा **अणु** अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य तं ज्ञानगुणमात्मानं वा **मग्गचारी** पूर्वोक्तनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गचारी । एवंगुणविशिष्टो भव्यवरपुण्डरीकः **वजदि** व्रजति

करता है । कैसा है यह संसारी जीव ? [**मोहसंछन्नः**] मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्ररूप अशुद्ध परिणति द्वारा आच्छादित है । **भावार्थ**—यह जीव अपनी ही भूलसे संसारमें अनेक विभाव पर्याय धरधरकर नाचता है अर्थात् असत् वस्तुमें 'सत्' रूप मानता है । जैसे मदमत्त अगम्य पदार्थोंमें प्रवृत्त होता है वैसी चेष्टा करता हुआ अपना शुद्धभाव भूल जाता है ॥ ६९ ॥ आगे कर्मसंयोगरहित जीवकी मुख्यतासे प्रभुत्वगुणका व्याख्यान करते हैं;—[**उपशांतक्षीणमोहः**] अपनी फलविपाक दशारहित उपशम भावको अथवा मूलसत्तासे विनाशभावको प्राप्त हुआ है असत् वस्तुमें प्रतीतिरूप मोहकर्म जिसका ऐसा [**धीरः**] अपने स्वरूपमें निश्चल सम्यग्दृष्टी जीव [**निर्वाणपुरं**] मोक्षनगरमें [**व्रजति**] गमन करता है । भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव गुणस्थान - परिपाटीके क्रमसे मोहका उपशम तथा क्षय करके मुक्त होकर अनंत आत्मीक सुखका भोक्ता है । कैसा है वह सम्यग्दृष्टी जीव ? [**जिनभाषितेन मार्गं समुपगतः**] सर्वज्ञप्रणीत आगमके द्वारा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्षमार्गको प्राप्त हुआ है । फिर कैसा है ? [**ज्ञानानुमार्गचारी**] स्वसंवेदन-

वेशः समुद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिः कर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकारं परिसमाप्य सम्यक्प्रकटितप्रभु-
त्वशक्तिर्ज्ञानस्यैवानुमार्गेण चरति, तदा विशुद्धात्मतत्वोपलंभनरूपमपवर्गनगरं विगाहत
इति ॥ ७० ॥

अथ जीवविकल्पा उच्यंते;—

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो त्तिलक्खणो होदि ।
चदु चंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पधाणो य ॥७१॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभङ्गसब्भावो ।
अट्ठासओ णवत्थो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥७२॥ जुम्मं ।

एक एव महात्मा स द्विविकल्पस्त्रिलक्षणो भवति ।
चतुश्चंक्रमणो भणितः पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च ॥ ७१ ॥

गच्छति । किं ? णिव्वाणपुरं अव्याबाधसुखाद्यनंतगुणास्पदं शुद्धात्मोपलंभलक्षणं निर्वाणन-
गरं । पुनरपि किंविशिष्टः स भव्यः ? धीरो धीरः घोरोपसर्गपरीषहकालेपि निश्चयरत्नत्रयल-
क्षणसमाधेरच्युतः पाण्डवादिवदिति भावार्थः ॥ ७० ॥ इति कर्मरहितत्वव्याख्यानेन द्वितीयगाथा
गता । एवं "ओगाढगाढ" इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण परिहारगाथासप्तकं गतं । इति जीवा-
स्तिकायव्याख्यानरूपेषु प्रभुत्वादिनवाधिकारेषु मध्ये पंचभिरंतरस्थलैः समुदायेन "जीवा अणा-
इणिहणा" इत्याद्यष्टादशगाथाभिः कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयस्य यौगपद्यव्याख्यानं समाप्तं ।
अथ तस्यैव नवाधिकारकथितजीवास्तिकायस्य पुनरपि दशविकल्पैर्विंशतिविकल्पैर्वा विशेषव्या-
ख्यानं करोति;—एक्को चेव महप्पा सर्वसुवर्णसाधारणेन षोडशवर्णिकागुणेन यथा सुवर्ण-
राशिरेकः तथा सर्वजीवसाधारणकेवलज्ञानाद्यनंतगुणसमूहेन शुद्धजीवजातिरूपेण संग्रहनयेनै-
कश्चैव महात्मा अथवा उवजुत्तो सर्वजीवसाधारणलक्षणेन केवलज्ञानदर्शनोपयोगेनोपयुक्तत्वा-
त्परिणतत्वादेकः । कश्चिदाह । यथैकोपि चंद्रमा बहुषु जलघटेषु भिन्नभिन्नरूपो दृश्यते तथैकोपि

प्रत्यक्ष ज्ञानमार्गमें प्रवृत्ति करता है । भावार्थ—जो जीव काललब्धि पाकर अनादि अवि-
द्याको विनाश करके यथार्थ पदार्थोंकी प्रतीतिमें प्रवृत्त होता है, प्रगट भेदविज्ञान ज्योतिसे
कर्तृत्व-भोक्तृत्वरूप अंधकारको विनाश कर आत्मीक शक्तिरूप अनंत स्वाधीन बलसे स्वरू-
पमें प्रवृत्त होता है । वह जीव अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त होकर मोक्ष अवस्थाको पाता है ॥७०॥
आगे जीवद्रव्यके भेद करते हैं;—[सः जीवः] वह जीवद्रव्य [महात्मा] अवि-
नाशी चैतन्य [1]उपयोगसंयुक्त है, इस कारण [एक एव] सामान्य नयसे एक ही है ।
जो जीव है सो चैतन्यस्वरूप है, इस कारण जीव एक ही कहा जाता है । वह ही
जीवद्रव्य [द्विविकल्पः] ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकार भी कहा

---

१ निराकृत्य ।

षट्कापक्रमयुक्तः उपयुक्तः सप्तभङ्गसद्भावः ।
अष्टाश्रयो नवार्थो जीवो दशस्थानको भणितः ॥ ७२ ॥ युग्मम् ।

स खलु जीवो महात्मा नित्यचैतन्योपयुक्तत्वादेक एव । ज्ञानदर्शनभेदाद्द्विविकल्पः । कर्मफलकार्यज्ञानचेतनाभेदेन लक्ष्यमाणत्वात्त्रिलक्षणः । ध्रौव्योत्पादविनाशभेदेन वा । चतसृषु गतिषु चंक्रमणत्वाच्चतुश्चङ्क्रमणः । पञ्चभिः पारिणामिकौदयिकादिभिरग्रगुणैः प्रधानत्वात् पञ्चाग्रगुणप्रधानः । चतसृषु दिक्षूर्ध्वमधश्चेति भवांतरसंक्रमणषट्केनापक्रमेण युक्तत्वात् षट्कापक्रमयुक्तः । अस्तिनास्त्यादिभिः सप्तभङ्गैः सद्भावो यस्येति सप्तभङ्गसद्भावः ।

जीवो बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरूपेण दृश्यत इति । परिहारमाह । बहुषु जलघटेषु चंद्रकिरणोपाधिवशेन जलपुद्गला एव चंद्राकारेण परिणता न चाकाशस्थचंद्रमाः । अत्र दृष्टांतमाह । यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणानां पुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुखं नानारूपेण परिणमति, यदि परिणमति तदा दर्पणस्थं मुखप्रतिबिंबं चैतन्यं प्राप्नोति न च तथा तथैकचंद्रमा अपि नानारूपेण न परिणमतीति । किं च । न चैकब्रह्मनामा कोपि दृश्यते प्रत्यक्षेण यश्चंद्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्रायः । **सो दुवियप्पो** दर्शनज्ञानभेदद्वयेन संसारिमुक्तद्वयेन भव्याभव्यद्वयेन वा स द्विविकल्पः **तिलक्खणो हवदि** ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनात्रयेणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयेण द्रव्यगुणपर्यायत्रयेण वा त्रिलक्षणो भवति । **चदुसंकमो य भणिदो** यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निर्विकारचिदानंदैकलक्षणसिद्धगतिस्वभावस्तथापि व्यवहारेण मिथ्यात्वरागादिपरिणतः सन्नरकादिचतुर्गतिसंक्रमणो भणितः । **पंचग्गगुणप्पहाणो य** यद्यपि निश्चयेन क्षायिकशुद्धपारिणामिकभावद्वयलक्षणस्तथापि सामान्येनौदयिकादिपंचाग्रगुणप्रधानश्च ॥ **छक्कावक्कमजुत्तो** षट्केनापक्रमेण युक्तः अस्य वाक्यस्यार्थः कथ्यते— अपगतो विनष्टः विरुद्धक्रमः प्रांजलत्वं यत्र स भवत्यपक्रमो वक्र इति ऊर्ध्वाधोमहादिक्चतुष्टयगमनरूपेण षड्विधेनापक्रमेण मरणांते युक्त इत्यर्थः । सा चैवानुश्रेणिगतिरिति । **सत्तभंगसब्भावो** स्यादस्तीत्यादि सप्तभंगीसद्भावः । **अट्ठासवो** यद्यपि निश्चयेन वीतरागलक्षणनिश्चयस-

---

जाता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [त्रिलक्षणः] कर्मचेतना, कर्मफलचेतना, ज्ञानचेतना इन तीन भेदोंसे संयुक्त होनेसे तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य गुण संयुक्त होनेसे तीन प्रकार भी [भवति] होता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [चतुश्चंक्रमणा भणितः] चार गतियोंमें परिभ्रमण करता है, इस कारण चार प्रकार भी कहा जाता है । फिर वह ही जीव [पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च] पांच औदयिकादि भावोंसे संयुक्त है इस कारण पांच प्रकारका भी कहा जाता है । फिर वह ही जीवद्रव्य [षट्कापक्रमयुक्तः] छह दिशाओंमें गमन करनेवाला है अतः चार दिशायें और एक ऊपर, एक नीचा इन छह दिशाओंके भेदसे छह प्रकारका भी है । फिर वही जीव सप्तभङ्गसद्भावः उपयुक्तः] सप्तभङ्गी वाणीसे साधा जाता है, इस कारण सात प्रकार भी

अष्टानां कर्मणां गुणानां वा आश्रयत्वादष्टाश्रयः । नवपदार्थरूपेण वर्तनान्नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपेषु दशसु स्थानेषु गतत्वाद्दशस्थानग इति ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥७३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः सर्वतो मुक्तः ।
ऊर्ध्वं गच्छति शेषा विदिग्वर्ज्जां गतिं यांति ॥७३॥

स्यक्तवाद्यष्टगुणाश्रयस्तथापि व्यवहारेण ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मास्रवः णवट्ठो यद्यपि निर्विकल्पसमाधिस्थानां निश्चयेन सर्वजीवसाधारणत्वेनाखण्डैकज्ञानरूपः प्रतिभाति तथापि व्यवहारेण नानावर्णिकागतसुवर्णवन्नवपदार्थरूपः दह ठाणियो भणियो यद्यपि निश्चयेन शुद्धबुद्धैकलक्षणस्तथापि व्यवहारेण पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणवनस्पतिद्वयद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियरूपदशस्थानगतः । स कः ? जीवो जीवपदार्थः एवं दशविकल्परूपो भवति । अथवा द्वितीयव्याख्यानेन पृथगिमानि दशस्थानानि उपयुक्तपदस्य पृथग्व्याख्याने कृते सति तान्यपि दशस्थानानि भवंतीत्युभयमेलापकेन विंशभेदः स्यादिति भावार्थः ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अथ मुक्तस्योर्ध्वगतिः संसारिणां मरणकाले षड्गतय इति प्रतिपादयति;— पयडिट्ठिदि— अणुभाग—पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैर्विभावरूपैः समस्तरागादिविभावरहितेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणध्यानबलेन सर्वतो मुक्तोपि उड्ढं गच्छदि स्वाभाविकानंतज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणाविग्रहगत्योर्ध्वं गच्छति सेसा शेषाः संसारिणो जीवाः विदिसावज्जं गदिं

कहा जाता है । फिर वही जीव [अष्टाश्रयः] आठ सिद्धोंके गुण अथवा आठ कर्मके आश्रय होनेसे आठ प्रकारका भी है । फिर वही जीव [नवार्थः] नौ पदार्थोंके भेदोंसे नौ प्रकारका भी है । फिर वही जीवद्रव्य [दशस्थानकः] पृथिवीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, प्रत्येक, साधारण, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय इस प्रकार दश भेदोंसे दश प्रकारभी [भणितः] कहा गया है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ आगे कहते हैं कि जो जीव मुक्त होता है उसकी ऊर्ध्वगति होती है और जो अन्य जीव हैं वे छहों दिशाओंमें गति करते हैं । [प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशवंधैः] प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध, इन चार प्रकारके बंधोंसे [सर्वतः] सर्वांग असंख्यातप्रदेशोंसे [मुक्तः] छूटा हुआ शुद्ध जीव [ऊर्द्ध्वं] सिद्धगतिको [गच्छति] जाता है । भावार्थ—जो जीव अष्टकर्मरहित होता है वह एक ही समयमें अपने ऊर्ध्वगतिस्वभावसे श्रेणिवद्ध प्रदेशोंके द्वारा मोक्षस्थानमें जाता है [शेषाः] अन्य संसारी जीव [विदिग्वर्ज्जां] विदिशाओं को छोड़कर अर्थात्

बद्धजीवस्य षड्गतयः कर्मनिमित्तः। मुक्तस्याप्यूर्ध्वगतिरेका स्वाभाविकीत्यत्रोक्तम् ॥७३॥

इति जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम्। अथ पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

पुद्गलद्रव्यविकल्पादेशोऽयम् ।

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू ।
इति ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥७४॥

स्कंधाश्च स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाश्च भवन्ति परमाणवः ।
इति ते चतुर्विकल्पाः पुद्गलकाया ज्ञातव्याः ॥७४॥

पुद्गलद्रव्याणि हि कदाचित् स्कंधपर्यायेण, कदाचित् स्कंधदेशपर्य्यायेण, कदाचित्

जंति मरणान्ते विदिग्वर्ज्यां पूर्वोक्तषट्कापक्रमलक्षणमनुश्रेणिसंज्ञां गतिं गच्छन्ति इति । अत्र गाथासूत्रे "सदसिव संखो मंडलि बुद्धो णइआइगो य वइसेसा । ईसर मस्सरि पूरण विदूसणट्ठं कयं अट्ठं" इति गाथोक्ताष्टमतांतरनिषेधार्थं "अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा । अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा" इति द्वितीयगाथोक्तलक्षणं सिद्धस्वरूपमुक्तमित्यभिप्रायः ॥ ७३ ॥ इति जीवास्तिकायसंबंधे नवाधिकाराणां चूलिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रयं ज्ञातव्यं । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्यादि नवाधिकारसूचनार्थं गाथैका, प्रभुत्वमुख्यत्वेन गाथाद्वयं, जीवत्वकथनेन गाथात्रयं, स्वदेहप्रमितिरूपेण गाथाद्वयं, अमूर्तगुणज्ञापनार्थं गाथात्रयं, त्रिविधचैतन्यकथनेन गाथाद्वयं, तदनंतरं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयज्ञापनार्थं गाथा एकोनविंशतिः, कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसंयुक्तत्वत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा अष्टादश, चूलिकारूपेण गाथात्रयमिति सर्वसमुदायेन त्रिपंचाशद्गाथाभिः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकरमध्ये जीवास्तिकायनामा 'चतुर्थोंतराधिकारः' समाप्तः । अथानंतरं चिदानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्भिन्ने हेयरूपे पुद्गलास्तिकायाधिकारे गाथादशकं भवति । तद्यथा । पुद्गलस्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन "खंदा य खंददेसा" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथापंचकं, तत्र पंचकमध्ये परमाणुस्वरूपकथनेन "सव्वेसिं खंदाण"मित्यादिगाथासूत्रमेकं । अथ परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणार्थं "आदेसमत्त" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनंतरं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनमुख्यत्वेन "सद्दो खंदप्पभवो" इत्यादि सूत्रमेकं। अथ परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारेण समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्या-

---

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार दिशाओं और ऊर्ध्व तथा अधः इन छहों दिशाओंमें [गतिं] गति [यांति] करते हैं । भावार्थ—जो जीव मोक्षगामी हैं उनको छोड़कर अन्य जितने जीव हैं वे समस्त छहों दिशाओंमें ऋजु-वक्र गतिको धारण करते हैं। चार विदिशाओंमें उनकी गति नहीं होती ॥ ७३ ॥

यह जीवद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ ।

आगे पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान करते हैं, जिसमें प्रथम ही पुद्गलके भेद कहे

स्कंधप्रदेशपर्य्यायेण, कदाचित् परमाणुत्वेनात्र तिष्ठन्ति। नान्या गतिरस्ति। इति तेषां चतुर्विकल्पत्वमिति ॥ ७४ ॥

पुद्गलद्रव्यविकल्पनिर्देशोऽयम्;—

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेशो परमाणू चेव अविभागी ॥७५॥

स्कंधः सकलसमस्तस्तस्य त्वर्धं भणन्ति देश इति।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशः परमाणुश्चैवाविभागी ॥ ७५ ॥

अनंतानंतपरमाण्वारब्धोऽप्येकः स्कंधनाम पर्य्यायः। तदर्धं स्कंधदेशो नाम पर्य्यायः।

कथनेन च "णिच्चो णाणवगासो" इत्यादि सूत्रमेकं। तदनंतरं परमाणुद्रव्ये रसवर्णादिव्याख्या-नमुख्यत्वेन "एयरस वण्ण" इत्यादि गाथासूत्रमेकं। एवं परमाणुद्रव्यप्ररूपणद्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं। अथ पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण "उवभोज्ज" इत्यादि सूत्रमेकं। एवं गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा। पुद्गलद्रव्यविकल्प-चतुष्टयं कथ्यते;—खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति स्कंदाः स्कंददेशाः स्कंद-प्रदेशाश्चेति त्रयः स्कंदा भवन्ति परमाणू परमाणवश्च भवन्ति इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा इति स्कंदत्रयं परमाणवश्चेति भेदेन चतुर्विकल्पास्ते पुद्गलकाया ज्ञातव्या इति। अत्रोपादेयभूतानंतसुखरूपाच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणत्वाद्धेयतत्वमिदमिति भावार्थः ॥ ७४ ॥ अथ पूर्वोक्तस्कंदादिचतुर्विकल्पानां प्रत्येकलक्षणं कथयति;—खंदं सय-लसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति अद्धद्धं च पदेसो सकलसमस्तलक्षणः स्कंदो भवति, तदर्थलक्षणो देशो भवति, अर्द्धार्द्धलक्षणः प्रदेशो भवति। तथाहि—समस्तोपि विवक्षित-

---

जाते हैं। [स्कंधाः] एक पुद्गल पिंड तो स्कंध जातिके हैं [च] और [स्कंध-देशाः] दूसरे पुद्गलपिंड स्कंधदेश नामके हैं [च] तथा [स्कंधप्रदेशाः] एक पुद्गल स्कंधप्रदेश नामके हैं और एक पुद्गल [परमाणवः] परमाणु जातिके [भवन्ति] होते हैं। [इति] इस प्रकार [ते] वे पूर्वमें कहे हुये [पुद्गल-कायाः] पुद्गलकाय [चतुर्विकल्पाः] चार प्रकारके [ज्ञातव्याः] जानने चाहिये। भावार्थ—पुद्गलद्रव्यका चार प्रकार परिणमन है। इन चार प्रकारके पुद्गल परिणामोंके सिवाय और कोई भेद नहीं है। इनके सिवाय अन्य जो कोई भेद हैं वे इन चारों भेदोंमें ही गर्भित हैं ॥ ७४ ॥ आगे इन चार प्रकार पुद्गलोंका लक्षण कहते हैं। [स्कंधः] पुद्गलकाय जो स्कंध भेद हैं सो [सकलसमस्तः] अनंत समस्त परमाणुओंका मिलकर एक पिंड होता है [तु] और [तस्य] उस पुद्गल स्कंधका [अर्द्धं] अर्द्धभाग [देश इति] स्कंधदेश नामका [भणंति] अरहंतदेव कहते हैं [च] फिर [अर्द्धार्द्धं] उस स्कंधके आधेका आधा चौथाई भाग [स्कंधप्रदेशः]

---

१ लोके।

तदर्धार्धं स्कंधप्रदेशो नाम पर्य्यायः । तदर्धं स्कंधदेशो नाम पर्य्यायः । तदर्धार्धं स्कंधदेशो नाम पर्य्यायः । एवं भेदवशाद्द्व्यणुकस्कंधादनंताः स्कंधप्रदेशपर्यायाः । निर्विभागैकप्रदेशः स्कंधस्याभेदपरमाणुरेकः । पुनरपि द्वयोः परमाण्वोः संघातादेको द्व्यणुकस्कंधपर्य्यायः । एवं संघातवशादनंताः स्कंधपर्य्यायाः । एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति ॥ ७५ ॥

घटपटाद्यखण्डरूपः सकल इत्युच्यते तस्यानंतपरमाणुपिंडस्य स्कंदसंज्ञा भवति । तत्र दृष्टांतमाह–षोडशपरमाणुपिंडस्य स्कंदकल्पना कृता तावत् एकैकपरमाणोरपनयेन नवपरमाणुपिंडे स्थिते ये पूर्वविकल्पा गतास्तेपि सर्वे स्कंदा भण्यंते, अष्टपरमाणुपिंडे जाते देशो भवति तत्राप्येकैकापनयेन पंचपरमाणुपिंडपर्यंतं ये विकल्पा गतास्तेषामपि देशसंज्ञा भवति, परमाणुचतुष्टयपिंडे स्थिते प्रदेशसंज्ञा भण्यते पुनरप्येकैकापनयेन द्व्यणुकस्कंदे स्थिते ये विकल्पा गतास्तेषामपि प्रदेशसंज्ञा भवति **परमाणू चेव अविभागी** परमाणुश्चैवाविभागीति । पूर्वं भेदेन स्कंदा भणिता, इदानीं संघातेन कथ्यंते, परमाणुद्वयं संघातेन द्व्यणुकस्कंदो भवति, त्रयाणां संघातेन त्र्यणुक इत्याद्यनंतपर्यंता ज्ञातव्या । एवं भेदसंघाताभ्यामप्यनंता भवंतीति । अत्रो-

---

स्कंधप्रदेश नामका है [च एव] निश्चयसे [अविभागी] जिसका दूसरा भाग नहीं होता उसका नाम [परमाणुः] पुद्गलपरमाणु कहलाता है । **भावार्थ**—स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश इन तीन पुद्गलस्कंधोंमें अनंत अनंत भेद हैं । परमाणुका एक ही भेद है । दृष्टांतके द्वारा इस कथनको प्रगट कर दिखाया जाता है । अनंतानंत परमाणुओंके स्कंधकी निशानी सोलहका अंक जानना चाहिये । क्योंकि समझानेके लिये थोड़ासा गणित द्वारा दिखाते हैं । सोलह परमाणुका उत्कृष्ट स्कंध कहा जाता है । उसके आगे एक एक परमाणु घटाते जावें । नवके अंक तक परमाणुओंका जघन्य स्कंध है । नवसो पंद्रहसे लेकर दश तक मध्यम भेद जानो । इसी प्रकार स्कंधके भेद एक एक परमाणुकी कमीसे अनंत जानो । और आठ परमाणुका उत्कृष्ट स्कंधदेश जानो । पांच परमाणुका जघन्य स्कंधदेश जानो । सातसे लेकर छह तक मध्यम स्कंधदेशके भेद जानो । इसी प्रकार एक एक परमाणुकी कमीसे स्कंधदेशके भेद अनंत जानो । तथा चार परमाणुका उत्कृष्ट स्कंधप्रदेश जानो । दो परमाणुओंका जघन्य स्कंधप्रदेश होता है । तीनसे लेकर मध्यम स्कंधप्रदेशके भेद होते हैं । इसी प्रकार स्कंधप्रदेश भेद एक एक परमाणुकी कमीसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदोंसे अनंत जानो । और परमाणु अविभागी है । इसमें भेद कल्पना नहीं है । ये चार प्रकार भेदके द्वारा जानो और ये ही चार भेद मिलापके द्वारा भी गिने जाते हैं । मिलाप नाम संघातका है । दो परमाणुके मिलनेसे जघन्य स्कंधप्रदेस होता है । इसी प्रकार एक एक अधिक परमाणु मिलानेसे इन तीन स्कंधोंके भेद उत्कृष्ट स्कंध तक जानने चाहिये । भेद संघातके

स्कंधानां पुद्गलव्यवहारसमर्थनमेतत्;—

बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पुग्गलोत्ति ववहारो ।
ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥७६॥

बादरसौक्ष्म्यगतानां स्कंधानां पुद्गलः इति व्यवहारः ।
ते भवन्ति षट्प्रकारास्त्रैलोक्यं यैः निष्पन्नं ॥७६॥

स्पर्शरसवर्णगंधगुणविशेषैः[1] षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिः पूरणगलनधर्मत्वात् स्कंधव्यक्त्याविर्भावतिरोभावाभ्यामपि च पूरणगलनोपपत्तेः परमाणवः[2] पुद्गला इति निश्चीयंते। स्कंधास्त्वनेकपुद्गलमयैकपर्यायत्वेन पुद्गलेभ्योऽनन्यत्वात्पुद्गला[3] इति व्यवह्रियंते । तथैव

पादेयभूतात्परमात्मतत्वात्पुद्गलानां यद्भिन्नत्वेन परिज्ञानं तदेव फलमिति तात्पर्यं ॥ ७५ ॥ अथ स्कंदानां व्यवहारेण पुद्गलत्वं व्यवस्थापयति;—बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलोत्ति ववहारो बादरसूक्ष्मगतानां स्कंदानां पुद्गल इति व्यवहारो भवति । तद्यथा । यथा शुद्धनिश्चयेन सत्ताचैतन्यबोधादिशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति स किल सिद्धरूपो जीवः व्यवहारेण पुनरायुःप्रभृत्यशुद्धप्राणैर्योऽसौ जीवति गुणस्थानमार्गणादिभेदेन भिन्नः सोऽपि जीवः तथा "वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् । कुर्वन्ति स्कंदवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः" इति श्लोककथितलक्षणाः परमाणवः किल निश्चयेन पुद्गला भण्यंते व्यवहारेण पुनर्द्व्यणुकाद्यनंतपरमाणुपिंडरूपाः बादरसूक्ष्मगतस्कंदा अपि पुद्गला इति व्यवह्रियंते ते होंति छप्पयारा ते भवन्ति षट्प्रकाराः । यैः किं कृतं ? णिप्पण्णं जेहि तेलोक्कं यैर्निष्पन्नं त्रैलोक्यमिति । इदमत्र

द्वारा इन तीनों स्कंधोंके भेद परमागममें विशेषता कर गिने गये हैं । एक पृथ्वीपिंडमें ये चारों ही भेद होते हैं । सकलपिंडका नाम स्कंध कहा जाता है, आधेका नाम स्कंधदेश, चौथाईका नाम स्कंधप्रदेश कहा जाता है, अविभागीका नाम परमाणु कहा जाता है । इसी प्रकार खंड खंड करने पर भेदोंसे अनंत भेद होते हैं । दो परमाणु के मिलापसे लेकर सकल पृथ्वीखंडपर्यंत संघातसे अनंत भेद होते हैं । भेदसंघातसे पुद्गलकी अनंतपर्यायें होती हैं ॥ ७५ ॥ आगे इन स्कंधोंका नाम पुद्गल कहा जाता है, इसलिये पुद्गलका अर्थ दिखलाते हैं [बादरसौक्ष्म्यगतानां] बादर और सूक्ष्म परिणमनको प्राप्त [स्कंधानां] पुद्गलवर्गणा पिंडका [पुद्गलः] पुद्गल [इति] ऐसा नाम [व्यवहारः] लोकभाषामें कहा जाता है । भावार्थ—पूर्वमें ही जो चार प्रकारके स्कंधादिक भेद कहे हैं इनमें पूरण गलन स्वभाव है इसलिये इनका नाम पुद्गल कहा जाता है । जो बढ़े घटे उसको पुद्गल कहते हैं । परमाणु अपने

---

१ अस्तित्वप्रमेयत्वादयस्तु सामान्यगुणास्सर्वेषां द्रव्याणां मध्ये साधारणरूपेण विद्यंते । पुनः स्पर्शरसगंधवर्णगुणास्तु पुद्गलद्रव्ये एव विद्यंते । अत एव गुणविशेषाः कथ्यंते. २ वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं कुर्वन्ति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गला परमाणवः. ३ द्विप्रदेशादिस्कंधानां पुद्गलत्वग्रहणं प्रदेशपूरणगलनरूपत्वात्. ।

च बादरसूक्ष्मत्वपरिणामविकल्पैः षट्प्रकारतामापद्य त्रैलोक्यरूपेण निष्पद्य स्थितवंत इति । तथाहि—बादरबादराः, बादराः, बादरसूक्ष्माः, सूक्ष्मबादराः, सूक्ष्माः, सूक्ष्मसूक्ष्माः इति । तत्र छिन्नाः स्वयं संधानासमर्थाः काष्ठपाषाणादयो बादरबादराः । छिन्नाः स्वयं संधानसमर्थाः क्षीरघृततैलतोयरसप्रभृतयो बादराः । स्थूलोपलंभा अपि छेत्तुं भेत्तुमादातु-मशक्याः छायाऽऽतपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्माः । सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलंभाः स्पर्श-रसगंधवर्णशब्दाः सूक्ष्मबादराः सूक्ष्मत्वेऽपि हि करणानुपलभ्याः कर्मवर्गणादयः सूक्ष्माः । अत्यंतसूक्ष्माः कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्व्यणुकस्कंधपर्यंताः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति ॥ ७६ ॥

तात्पर्य–लोक्यंते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इतिवचनात्पुद्गलादिषड्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोकः न चान्येन केनापि पुरुषविशेषेण क्रियते ह्रियते ध्रियते वेति ॥ ७६ ॥

अथ तानेव षड्भेदान् विवृणोति;—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा ।
कम्मातीदा येवं छब्भेया पोग्गला होंति ॥ १ ॥

पृथिवी जलं च छाया चक्षुर्विषयं विहाय चतुरिन्द्रियविषयाः कर्मप्रायोग्याः कर्मातीता इति षड्भेदाः पुद्गला भवन्ति । ते च कथंभूताः ? स्थूलस्थूलाः स्थूलाः स्थूलसूक्ष्माः सूक्ष्मस्थूलाः

स्पर्शरसवर्णगंध गुणके भेदोंसे षटगुणी हानिवृद्धिके प्रभावसे पुद्गल नाम पाता है । और उस ही परमाणुमें किसी कालमें स्कंध होने की प्रगट शक्ति है । जो कभी नहीं होती तथापि परमाणुको पुद्गल संज्ञा है । और तीन प्रकार के जो स्कंध हैं वे अनंत परमाणु मिलकर एक पिंड अवस्थाको करते हैं । इस कारण उनमें भी पूरण–गलन स्वभाव है और उनका भी नाम पुद्गल कहा जाता है [ते] वे पुद्गल [षट्प्रकाराः] छह प्रकारके [भवन्ति] होते हैं । [यैः] जिन पुद्गलोंसे [त्रैलोक्यं] तीन लोक [निष्पन्नं] निर्मापित है । भावार्थ—वे छह प्रकारके पुद्गलस्कंध अपने स्थूल सूक्ष्म परिणामोंके भेदोंसे तीन लोककी रचनामें प्रवर्त्तते हैं । वे छह प्रकार कौन कौन से हैं सो वतलाते हैं । वादरवादर १, बादर २, बादरसूक्ष्म ३, सूक्ष्मबादर ४, सूक्ष्म ५, सूक्ष्म-सूक्ष्म ६, ये छह प्रकार हैं । जो पुद्गलपिंड दो खंड करने पर अपने आप फिर नहीं मिलें ऐसे काष्ठपाषाणादिकको वादरवादर कहते हैं १, और जो पुद्गलस्कंध खंड खंड किये हुये अपने आप मिल जायें ऐसे दुग्ध घृत तैलादिक पुद्गलोंको बादर कहते हैं २, और जो देखनेमें तो स्थूल हों किन्तु खंड खंड करनेमें नहीं आयें, हस्तादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आयें ऐसे धूप, चंद्रमाकी चांदनी आदिक पुद्गल बादरसूक्ष्म कहलाते हैं ३, और जो स्कंध हैं तो सूक्ष्म परंतु स्थूलसे प्रतिभासित होते हैं ऐसे स्पर्श रस गंध शब्दादिक पुद्गल सूक्ष्मवादर कहलाते हैं ४, और जो स्कंध अति सूक्ष्म हैं, इन्द्रियोंसे ग्रहण करनेमें नहीं आते ऐसे कर्मवर्गणादिक सूक्ष्मपुद्गल कहलाते हैं ५, और जो

परमाणुव्याख्येयम् ;—

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागि मुत्तिभवो ॥७७॥

सर्वेषां स्कंधानां योऽन्त्यस्तं विजानीहि परमाणु ।
स शाश्वतोऽशब्दः एकोऽविभागी मूर्तिभवः ॥ ७७ ॥

उक्तानां स्कंधपर्यायाणां योऽन्त्यो भेदः स परमाणुः । स तु पुनर्विभागाभावादविभागी । निर्विभागैकप्रदेशत्वादेकः । मूर्तद्रव्यत्वेन सदाप्यविनश्वरत्वान्नित्यः । अनादिनि-

---

सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्माः इति । तद्यथा—ये छिन्नाः संतः स्वयमेव संधातुमसमर्थास्ते स्थूलस्थूलाः भूपर्वतादयः । ये तु छिन्नाः संतः तत्क्षणादेव संधानेन स्वयमेव समर्थास्ते स्थूलाः सर्पिस्तैलजलादयः । ये तु हस्तेनादातुं देशांतरं नेतु अशक्यास्ते स्थूलसूक्ष्माः छायातपादयः, ये पुनर्लोचनविषया न भवन्ति ते सूक्ष्मस्थूलाश्चतुरिन्द्रियविषयाः । ये तु ज्ञानावरणादिकर्मवर्गणायोग्यास्ते सूक्ष्मा इन्द्रियज्ञानाविषयाः । ये चात्यंतसूक्ष्मत्वेन कर्मवर्गणातीतास्ते सूक्ष्मसूक्ष्माः कर्मवर्गणातीतेभ्यो (योग्येभ्यः)अत्यंतसूक्ष्मा द्व्यणुकस्कंदपर्यंता इति तात्पर्यं ॥ ७६ ॥ एवं प्रथमस्थले स्कंदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं समाप्तं । तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापंचकं कथ्यते । तथाहि । शास्वतादिगुणोपेतं परमाणुद्रव्यं प्रतिपादयति;—**सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू** यथा य एव कर्मस्कंधानामंतो विनाशस्तमेव शुद्धात्मानं विजानीहि तथा य एव षड्विधस्कंदानामंतोऽवसानो भेदस्तं परमाणुं विजानीहि । **सो** स च । कथंभूतः ? **सस्सदो** यथा परमात्मा टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन द्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरत्वात् शाश्वतः तथा पुद्गलत्वेनाविनश्वरत्वात्परमाणुरपि नित्यः, **असद्दो** यथा शुद्धजीवास्तिकायो निश्चयेन स्वसंवेदनज्ञानविषयोपि शब्दविषयः शब्दरूपो वा न भवतीत्यशब्दः तथा हि परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोपि व्यक्तिरूपेण शब्दपर्यायरूपो न भवतीत्यशब्दः, **एक्को** यथा शुद्धात्मद्रव्यं निश्चयेन परोपाधिरहितत्वेन केवलमसहायमेकं भण्यते तथा परमाणु-

---

कर्मवर्गणाओंसे भी अति सूक्ष्म द्व्यणुकस्कंध तक हैं वे सूक्ष्मसूक्ष्म कहलाते हैं ॥ ७६ ॥

आगे परमाणुका स्वरूप कहते हैं; [सर्वेषां] समस्त [स्कंधानां] स्कंधोंका [यः] जो [अंत्यः] अंतका भेद है [तं] उसको [परमाणुं] परमाणु [विजानीहि] जानो । अर्थात्—ये जो पूर्वमें छह प्रकारके स्कंध कहे उनमेंसे जो अंतका भेद (अविभागी खंड) है वह परमाणु कहलाता है [सः] वह परमाणु [शाश्वतः] त्रिकाल अविनाशी है । यद्यपि स्कंधोंके मिलापसे एक पर्यायसे पर्यायांतरको प्राप्त होता है तथापि अपने द्रव्यत्वसे सदा टंकोत्कीर्ण नित्य द्रव्य है । और कैसा है वह परमाणु ? [अशब्दः] शब्दरहित है । यद्यपि स्कंधके मिलापसे शब्द पर्यायको धारण करता है तथापि व्यक्तरूप शब्द पर्यायसे रहित है । और कैसा है परमाणु ?

धनरूपादिपरिणामोत्पन्नत्वान्मूर्तिभवः । रूपादिपरिणामोत्पन्नत्वेऽपि शब्दस्य परमाणुगुणत्वाभावात्पुद्गलस्कंधपर्य्यायत्वेन वक्ष्यमाणत्वाच्चाशब्दो निश्चीयत इति ॥७७॥

परमाणूनां जात्यंतरत्वनिरासोऽयम् ;—

आदेशमत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु ।
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥७८॥

आदेशमात्रमूर्त्तः धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु ।
स ज्ञेयः परमाणुः परिणामगुणः स्वयमशब्दः ॥७८॥

परमाणोर्हि मूर्तत्वनिबंधनभूताः स्पर्शरसगंधवर्णा आदेशमात्रेणैव भिद्यंते, वस्तुतस्तु यथा तस्य स एव प्रदेश आदिः, स एव मध्यः, स एवांतः इति । एवं द्रव्यगुणयोरविभक्तप्रदेशत्वात् य एव परमाणोः प्रदेशः स एव स्पर्शस्य, स एव गंधस्य, स एव रूप-

---

द्रव्यमपि द्व्यणुकादिपरोपाधिरहितत्वात्केवलमसहायमेकं भवत्येकप्रदेशत्वाद्वा अविभागी यथा परमात्मद्रव्यं निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशमपि विवक्षिताखंडैकद्रव्यत्वेन भागाभावादविभागी तथा परमाणुद्रव्यमपि निरंशत्वेन भागाभावादविभागी । पुनश्च कथंभूतः स परमाणुः ? मुत्तिभवो अमूर्तात्परमात्मद्रव्याद्विलक्षणा या तु स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्तिस्तया समुत्पन्नत्वात् मूर्तिभव इति सूत्राभिप्रायः ॥ ७७ ॥ इति परमाणुस्वरूपकथनेन द्वितीयस्थले प्रथमगाथा गता । अथ पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवो न संतीति निश्चिनोति;—आदेसमेत्तमुत्तो आदेशमात्रमूर्तः, आदेशमात्रेण संज्ञादिभेदेनैव परमाणोर्मूर्तत्वनिबंधनभूता वर्णादिगुणा भिद्यंते पृथक् क्रियंते न च सत्ताप्रदेशभेदेन । वस्तुतस्तु य एव परमाणोरादिमध्यांतभूतप्रदेशः स एव रूपादिगुणानामपि । अथवा मूर्त इत्यादिश्यते कथ्यते न च दृष्टया दृश्यते तेनादेशमात्रमूर्तः, धाउचउक्कस्स कारणं जो दु निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावैरपि पृथिव्यादिजीवैर्व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशेन यानि पृथिव्यप्तेजोवायुधातुचतुष्कसंज्ञानि शरीराणि ग्रहीतानि तिष्ठन्ति तेषामन्येषां च जीवेनागृहीतानां हेतुत्वेन निमित्तत्वाद्धातुचतुष्कस्य कारणं यस्तु सो णेओ परमाणू यः

[एकः] एकप्रदेशी है, द्व्यणुकादि स्कंधरूप नहीं है । फिर कैसा है ? [अविभागी] जिसका दूसरा भाग न हो ऐसा निरंश है । फिर कैसा है ? [मूर्त्तिभवः] सदाकाल रूप रस स्पर्श गंध इन चार गुणोंसे भेद ज्ञात होता है । इस प्रकार परमाणुका स्वरूप जानो ॥ ७७ ॥ आगे पृथ्वी आदि जातिके परमाणु भिन्न नहीं हैं ऐसा कथन करते हैं; [यः] जो [आदेशमात्रमूर्त्तः] गुणगुणीके संज्ञादि भेदोंसे मूर्त्तीक है [सः] वह [परमाणुः] परमाणु [ज्ञेयः] जानो । वह परमाणु कैसा है ? [धातुचतुष्कस्य] पृथिवी जल अग्नि वायु इन चार धातुओंका [कारणं]

---

१ पृथक् क्रियंते ।

स्येति । ततः क्वचित्परमाणौ गंधगुणे, क्वचित् गंधरसगुणयोः, क्वचित् गंधरसरूपगुणेषु अपकृष्यमाणेषु[1] तदविभक्तप्रदेशः परमाणुरेव विनश्यतीति । न तदपकर्षो युक्तः[2] । ततः पृथिव्यप्तेजोवायुरूपस्य धातुचतुष्कस्यैक एव परमाणुः कारणं । परिणामवशात् विचित्रो हि परमाणोः परिणामगुणः क्वचित्कस्यचिद्गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वेन विचित्रां परिणतिमादधाति । यथा च तस्य[3] परिणामवशादव्यक्तो गंधादिगुणोऽस्तीति प्रतिज्ञायते न तथा शब्दोऽप्यव्यक्तोऽस्तीति ज्ञातुं शक्यते । तस्यैकप्रदेशस्यानेकप्रदेशात्मकेन शब्देन सहैकत्वविरोधादिति ॥ ७८ ॥

पूर्वं कथित एकोपि परमाणुः पृथिव्यादिधातुचतुष्करूपेण कालांतरेण परिणमति स परमाणुरिति ज्ञेयः, **परिणामगुणो** औदयिकादिभावचतुष्टयरहितत्वेन पारिणामिकगुणः । पुनः किंविशिष्टः ? **सयमसद्दो** एकप्रदेशत्वेन कृत्वानंतपरमाणुपिंडलक्षणेन शब्दपर्यायेण सह विलक्षणत्वात्स्वयं

कारण है । ये चार धातु इन परमाणुओंसे ही पैदा होते हैं । फिर कैसा है ? [**परिणामगुणः**] परिणमन स्वभाववाला है [**स्वयं अशब्दः**] आप अशब्द है, किंतु शब्दका कारण है । **भावार्थ**—परमाणु तो द्रव्य है, उसमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये चार गुण हैं । इन चारों ही गुणोंसे परमाणु मूर्तीक कहलाता है । परमाणु निर्विभाग है क्योंकि जो प्रदेश आदिमें है वही मध्य और अंतमें है । इस कारण परमाणुका दूसरा भाग नहीं होता । द्रव्य गुणमें प्रदेशभेद नहीं होता । इसकारण जो प्रदेश परमाणुका है वही प्रदेश स्पर्श रस गंध वर्णका जानना चाहिये । ये चार गुण परमाणुमें सदा काल पाये जाते हैं, परंतु गौण मुख्यके भेदसे इन गुणोंका न्यूनाधिक भी कथन किया जाता है । पृथिवी जल अग्नि वायु ये चारों ही पुद्गलजातियां परमाणुओंसे उत्पन्न हैं । इनके परमाणुओंकी जाति पृथक नहीं है । पर्यायके भेदसे भेद होता है । पृथिवी जातिके परमाणुओंमें चारोंही गुणोंकी मुख्यता है । जलमें गंध गुणकी गौणता है, अन्य तीन गुणोंकी मुख्यता है । अग्निमें गंध और रसकी गौणता है, स्पर्श और वर्णकी मुख्यता है । वायुमें तीन गुणोंकी गौणता है, स्पर्श गुणकी मुख्यता है । पर्यायोंके कारण परमाणुमें नाना प्रकारके परिणामगुण होते हैं । कहीं पर किसी एक गुणकी प्रगटता अप्रगटताके कारण नाना प्रकारकी परिणतिको धारण करते हैं । प्रश्न—जिस प्रकार परमाणुओंके परिणमनसे गंधादिक गुण हैं उसी प्रकार शब्द भी प्रगट होता होगा ? यदि कोई ऐसी शंका करे तो उसका समाधान यह है कि—परमाणु एकप्रदेशी है इस लिये शब्द प्रगट नहीं होता । शब्द

---

१ पूर्वोक्तेषु एतेषु गुणेषु अपकृष्यमाणेषु गौणतां प्राप्तेषु सत्सु. २ तस्य परमाणोरपकर्षो विनाशो न युक्तः. ३ परमाणोः ।

शब्दस्य पुद्गलस्कंधपर्यायत्वख्यापनमेतत् ;—

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो ।
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥७९॥

शब्दः स्कंधप्रभवः स्कंधः परमाणुसङ्गसङ्घातः ।
स्पृष्टेषु तेषु जायते शब्द उत्पादको नियतः ॥७९॥

इह हि बाह्यश्रवणेन्द्रियावलम्बितो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः । स खलु स्वरूपेणानंतपरमाणूनामेकस्कंधो नाम पर्यायः । बहिरङ्गसाधनीभूतमहास्कंधेभ्यः तथाविधपरिणामेन समुत्पद्यमानत्वात् स्कंधप्रभवः । यतो हि परस्पराभिहतेषु महास्कंधेषु शब्दः समुपजायते । किंच स्वभावनिर्वृत्ताभिरेवानंतपरमाणुमयीभिः शब्दयोग्यवर्गणाभिरन्योन्य-

---

व्यक्तिरूपेणाशब्द इति सूत्रार्थः ॥ ७८ ॥ एवं परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणकथनेन द्वितीयगाथा गता । अथ शब्दस्य पुद्गलस्कंदपर्यायत्वं दर्शयति;—**सद्दो** श्रवणेन्द्रियावलम्बनो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिविशेषः शब्दः । स च किंविशिष्टः ? **खंदप्पभवो** स्कंदेभ्यः सकाशादुत्पन्नः प्रभवः इति स्कंदप्रभवः । स्कंदलक्षणं कथ्यते । **खंदो परमाणुसंगसंघादो** स्कंदो भवति । कथंभूतः ? परमाणुसंगसंघातः अनंतपरमाणुसंगानां समूहानामपि संघातः समुदायः । इदानीं स्कंदेभ्यः सकाशाच्छब्दस्य प्रभवत्वमुत्पत्तिं कथयति । **पुट्ठेसु तेसु** स्पृष्टेषु तेषु पूर्वोक्तेषु स्कंदेषु स्पृष्टेषु लग्नेषु परस्परं संघट्टितेषु सत्सु **जायदि** जायते प्रभवति । स कः ? कर्ता । **सद्दो** पूर्वोक्तशब्दः । अयमत्राभिप्रायः । द्विविधाः स्कंदा भवन्ति भाषावर्गणायोग्या ये तेऽभ्यंतरे कारणभूताः सूक्ष्मास्ते च निरंतरं लोके तिष्ठन्ति ये तु बहिरंगकारणभूतास्ताल्वोष्टपुटव्यापारघंटाभिघातमेघादयस्ते स्थूलाः क्वापि क्वापि तिष्ठन्ति न सर्वत्र यत्रेयमुभयसामग्री समुदिता तत्र भाषावर्गणाः शब्दरूपेण परिणमन्ति न सर्वत्र । स च शब्दः किं विशिष्टः ? **उप्पादिगो णियदो** भाषावर्गणास्कंदेभ्य उत्पद्यते इत्युत्पादकः नियतो निश्चितः न चाकाशद्र-

---

अनेक परमाणुओंके स्कंधोंसे उत्पन्न होता है इस कारण परमाणु अशब्दमय है ॥ ७८ ॥ आगे शब्दको पुद्गलका पर्यायत्व दिखाते हैं । [शब्दः] शब्द [स्कंधप्रभवः] स्कंधसे उत्पन्न है [परमाणुसङ्गसङ्घातः] अनंत परमाणुओंके मिलापका समूह [स्कंधः] स्कंध होता है । [तेषु स्पृष्टेषु] उन स्कंधोंके परस्पर स्पर्श होनेपर [नियतः] निश्चित [उत्पादकः] अन्य वर्गणाओंको शब्दायमान करनेवाला [शब्दः] शब्द [जायते] उत्पन्न होता है । **भावार्थ**—द्रव्यकर्णेन्द्रियके आधारसे भावकर्णेन्द्रियके द्वारा जो ध्वनि सुनी जाय उसे शब्द कहते हैं । वह शब्द अनंत परमाणुओंका पिंड अर्थात् स्कंधोंसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि जब परस्पर महास्कंधोंका संघट्ट

१ शब्दपर्य्यायेण. २ अन्योन्यसंघटितेषु ।

मनुप्रविश्य समंततोऽभिव्याप्य पूरितेऽपि सकले लोके यत्र यत्र बहिरंगकारणसामग्री समुदेति तत्र तत्र ताः शब्दत्वेन स्वयं व्यपरिणमंत इति शब्दस्य नियतमुत्पाद्यत्वात् स्कंधप्रभवत्वमिति ॥ ७९ ॥

व्यरूपस्तद्गुणो वा यद्याकाशगुणो भवति तर्हि श्रवणेन्द्रियविषयो न भवति। कस्मात्। आकाशगुणस्यामूर्तत्वादिति। अथवा "उप्पादिगो" प्रायोगिकः पुरुषादिप्रयोगप्रभवः "णियदो" नियतो वैश्रसिको मेघादिप्रभवः। अथवा भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरामकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतादिरूपेणार्यम्लेच्छभाषाहेतुः, अनक्षरात्मको द्विन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च। इदानीमभाषात्मकः कथ्यते। सोपि द्विविधो प्रायोगिको वैश्रसिकश्चेति। प्रायोगिकस्तु ततविततं घनसुषिरादिः। तथा चोक्तं। "ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकं। घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः।" वैश्रसिकस्तु मेघादिप्रभवः पूर्वोक्त एव। इदं

होता है, तब शब्दकी उत्पत्ति होती है। और स्वभावहीसे उत्पन्न अनंत परमाणुओंका पिंड ऐसी शब्द योग्य वर्गणायें परस्पर मिलकर इस लोकमें सर्वत्र (फैल) रही हैं। जहां जहां शब्दके उत्पन्न करनेको वाह्य सामग्रीका संयोग मिलता है वहां वहां वे शब्दयोग्य वर्गणायें स्वयमेव ही शब्दरूप होकर परिणमित हो जातीं हैं। इस कारण शब्द निश्चयसे पुद्गलस्कंधोंसे ही उत्पन्न होता है। कोई मतावलंबी शब्दको आकाशका गुण मानते हैं किन्तु वह आकाशका गुण कदापि नहीं हो सकता। यदि आकाशका गुण माना जाय तो कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आता, क्योंकि आकाश अमूर्तीक है, अमूर्तीक पदार्थका गुण भी अमूर्तीक होता है। इन्द्रियां मूर्तीक हैं, मूर्तीक पदार्थकी ही ज्ञाता हैं। इस लिये यदि शब्द आकाशका गुण होता तो कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण करनेमें नहीं आता। वह शब्द दो प्रकार का है—एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। जो शब्द पुरुषादिके संबंधसे उत्पन्न होता है उसको प्रायोगिक कहते हैं। और जो मेघादिसे उत्पन्न होता है वह वैश्रसिक कहलाता है। अथवा वही शब्द भाषा अभाषाके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे भाषात्मक शब्द अक्षर अनक्षरके भेदसे दो प्रकारका है। संस्कृत, प्राकृत, आर्य म्लेच्छादि भाषादिरूप जो शब्द हैं वे सब अक्षरात्मक हैं। और द्वीन्द्रियादिक जीवोंके शब्द, तथा केवलीकी दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक शब्द हैं। अभाषात्मक शब्दोंके भी दो भेद हैं—एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। प्रायोगिक तत, वितत, घन, सुषिरादिरूप होते हैं। तत शब्द उसे कहते हैं जो वीणादिसे उत्पन्न है। वितत शब्द ढोल दमामादिसे उत्पन्न होते हैं। और झांझ करतालादिसे उत्पन्न शब्द घन कहा जाता है। और वांसादिसे उत्पन्न शब्द सुषिर कहलाता है। इस प्रकार ये ४ भेद हैं। और जो मेघादिसे उत्पन्न होते

---

१ शब्दयोग्यपुद्गलवर्गणा।

परमाणोरेकप्रदेशत्वख्यापनमेतत्;—

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेत्ता ।
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥८०॥

नित्यो नानवकाशो न सावकाशः प्रदेशतो भेत्ता ।
स्कंधानामपि च कर्ता प्रविभक्ता कालसंख्यायाः ॥ ८० ॥

परमाणुः स खल्वेकेन प्रदेशेन रूपादिगुणसामान्यभाजा सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यः ।

सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्नं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ७९ ॥ एवं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनामुख्यत्वेन तृतीयगाथा गता । अथ परमाणोरेकप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति;—णिच्चो नित्य. । कस्मात् । पदेसदो प्रदेशतः परमाणोः खलु एकेन प्रदेशेन सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यो भवति णाणवगासो नानवकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन स्वकीयवर्णादिगुणानामवकाशदानात्सावकाशः ण सावगासो न सावकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन द्वितीयादिप्रदेशाभावान्निरवकाशः भेत्ता खंधाणं भेत्ता स्कंदानां कत्ता अवि य कर्ता अपि च स्कंदानां जीववत् । तद्यथा । यथायां जीवः स्वप्रदेशगतरागादिविकल्परूपनिस्नेहभावेन परिणतः सन् कर्मस्कंदानां भेत्ता विनाशको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशगतनिस्नेहभावेन परिणतः सन् स्कंदानां विघटनकाले भेत्ता भेदको भवति । यथा स एव जीवो निस्नेहात्परमात्मतत्त्वाद्विपरीतेन स्वप्रदेशगतमिथ्यात्वरागादिस्निग्धभावेन परिणतः सन्नवतरज्ञानावरणादिकर्मस्कंदानां कर्ता भवति तथा स एव परमाणुरेकप्रदेशगतस्निग्धभावेन परिणतः सन् द्व्यणुकादिस्कंदानां कर्ता भवति । अत्र योसौ स्कंदानां भेदको भणितः स कार्यपरमाणुरुच्यते यस्तु कारकस्तेषां स कारणपरमाणुरिति कार्यकारणभेदेन द्विधा परमाणुर्भवति । तथा चोक्तं । "स्कंदभेदाद्भवेदाद्यः स्कंदानां जनकोपरः ।" अथवा

हैं वे वैश्रसिक अभाषात्मक शब्द होते हैं । ये समस्त प्रकारके ही शब्द पुद्गलस्कंधोंसे उत्पन्न होते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ ७९ ॥ अब परमाणुके एकप्रदेशत्व दिखाते हैं;—परमाणु कैसा है ? [नित्यः] सदा अविनाशी है । अपने एक प्रदेशसे रूपादिक गुणोंसे भी कभी त्रिकालमें रहित नहीं होता । फिर कैसा है ? [न अनवकाशः] जगह देनेकेलिये समर्थ है, परमाणुके प्रदेशसे जो स्पर्शादि गुण जुदे नहीं हैं उनको अवकाश देनेके लिये समर्थ है । फिर कैसा है ? [न सावकाशः] जगह देता भी नहीं, अपने एकप्रदेशसे आदि मध्य अन्तमें निर्विभाग एक ही है । इस कारण दो आदि प्रदेशोंकी समाई (जगह) उसमें नहीं है । इसलिये अवकाशदान देनेको असमर्थ भी हैं । फिर कैसा है ? [प्रदेशतः भेत्ता] अपने एक ही प्रदेशसे स्कंधोंका भेद करनेवाला है । जब अपने विघटनका समय पाता है उस समय स्कंधसे निकल जाता है, इस कारण स्कंधका खंड करनेवाला कहा जाता है । फिर कैसा है ? [स्कंधानां] स्कंधोंका [कर्ता अपि] कर्ता भी है, अर्थात् अपना काल पाकर अपनी मिलनशक्तिसे

एकेन प्रदेशेन तदविभक्तवृत्तीनां स्पर्शादिगुणानामवकाशदानानवकाशः। एकेन प्रदेशेन द्व्यादिप्रदेशाभावादात्मादिनात्ममध्येनात्मांतेन न सावकाशः। एकेन प्रदेशेन स्कंधानां भेदनिमित्तत्वात् स्कंधानां भेत्ता। एकेन प्रदेशेन स्कंधसंघातनिमित्तत्वात्स्कंधानां कर्त्ता। एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तिततद्गतिपरिणामापन्नेन समयलक्षणकालविभागकरणात् कालस्य प्रविभक्ता। एकेन प्रदेशेन तत्सूत्रितद्व्यादिभेदपूर्विकायाः स्कंधेषु द्रव्यसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तदवच्छिन्नैकाकाशप्रदेशपूर्विकायाः, क्षेत्रसंख्यायाः एकेन प्रदेशेनैकाकाशप्रदेशातिवर्तिततद्गतिपरिणामावच्छिन्नसमयपूर्विकायाः कालसंख्यायाः, एकेन प्रदेशेन तद्विवर्तिजघन्यवर्णादिभावावबोधपूर्विकाया भावसंख्यायाः प्रविभागकरणात् प्रविभक्ता संख्याया अपीति ॥ ८० ॥

भेदविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते। परमाणुरयं। कस्मात्? एकप्रदेशत्वेन बहुप्रदेशस्कंदाद्भिन्नत्वात्, स्कंदोयं। कस्मात्? बहुप्रदेशत्वेनैकप्रदेशत्वेनैकप्रदेशपरमाणोर्भिन्नत्वादिति पविभक्ता कालसंखाणं प्रविभक्ता कालसंख्ययोर्जीववदेव। यथा एकप्रदेशस्थकेवलज्ञानांशेनैकसमयेन भगवान् केवली समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता परिच्छेदको ज्ञायको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशेन मंदगत्याऽणोरण्वंतरव्यतिक्रमणलक्षणेन कृत्वा समयरूपव्यवहारकालस्य संख्यायाश्च प्रविभक्ता भेदको भवतीति। संख्या कथ्यते। द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण संख्या चतुर्विधा भवति, सा च जघन्योत्कृष्टभेदेन प्रत्येकं द्विविधा। एकपरमाणुरूपा जघन्या द्रव्यसंख्येति अनंतपरमाणुपुंजरूपोत्कृष्टद्रव्यसंख्येति, एकप्रदेशरूपा जघन्या क्षेत्रसंख्या, अनंतप्रदेशरूपोत्कृष्टा क्षेत्रसंख्या, एकसमयरूपा जघन्या व्यवहारकालसंख्या, अनंतसमयरूपोत्कृष्टव्यवहारकालसंख्या, परमाणुद्रव्ये वर्णादीनां सर्वजघन्या तु या शक्तिः सा जघन्या भावसंख्या, तस्मिन्नेव परमाणुद्रव्ये सर्वोत्कृष्टा

स्कंधोंमें जाकर मिल जाता है इसकारण इसको स्कंधोंका कर्त्ता भी कहा गया है। फिर कैसा है? [कालसंख्यायाः] कालकी संख्याका [प्रविभक्ता] भेद करनेवाला है। एक आकाशके प्रदेशमें रहनेवाले परमाणुको दूसरे प्रदेशमें गमन करते जो समयरूप कालपरिणाम प्रगट होता है उसको भेद करता है, इस कारण कालअंशका भी कर्त्ता है। फिर यह परमाणु द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकी संख्याके भेदको भी करता है, सो दिखाया जाता है। यही परमाणु अपने एकप्रदेश परिमाणसे द्व्यणुकादि स्कंधोंमें द्रव्यसंख्याका भेद करता है। और यही परमाणु अपने एकप्रदेशके परिमाणसे दो आदि प्रदेशोंसे लेकर अनंत प्रदेशपर्यंत क्षेत्रसंख्याका भेद करता है। फिर यही परमाणु अपने एकप्रदेशके द्वारा प्रदेशसे प्रदेशांतरगतिपरिणामसे दो समयसे लेकर अनंतकालपर्यंत कालसंख्याके भेद को करता है। फिर यही परमाणु अपने एकप्रदेशमें जो वर्णादिक भाव जघन्य हैं

१ अवकाशरहित इत्यर्थः. २ आकाशसहित इत्यर्थः।

परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायवृत्तिप्ररूपणमेतत् ;—

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं ।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणेहि ॥ ८१ ॥

एकरसवर्णगंधं द्विस्पर्शं शब्दकारणमशब्दं ।
स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुं तं विजानीहि ॥ ८१ ॥

सर्वत्रापि परमाणौ रसवर्णगंधस्पर्शाः सहभुवो गुणाः । ते च क्रमप्रवृत्तैस्तत्र स्वपर्य्यायैर्वर्तंते । तथाहि–पञ्चानां रसपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते । पञ्चानां वर्णपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते । उभयोर्गंधपर्य्यायोरन्यतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते । चतुर्णां शीतस्निग्धशीतरूक्षोष्णस्निग्धोष्णरूक्षरूपाणां स्पर्शपर्य्यायद्वंद्वानामन्यतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते । एवमयमुक्तगुणवृत्तिः परमाणुः शब्दस्कंधपरिणतिशक्तिस्वभावात्

तु या वर्णादिशक्तिः सा तूत्कृष्टा भावसंख्येति । एवं जघन्योत्कृष्टा प्रत्येकं द्रव्यक्षेत्रकालभावसंख्या ज्ञातव्याः ॥ ८० ॥ एवं परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारं कृत्वा समयादिव्यवहारकालकथनमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च द्वितीयस्थले चतुर्थगाथा गता । अथ परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायस्वरूपं कथयति;–एयरसवण्णगंधं दोफासं एकरसवर्णगंधद्विस्पर्शः । तथाहि– तत्र परमाणौ तिक्तादिपंचरसपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते, शुक्लादिपंचवर्णपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते, सुरभिदुरभिरूपगंधपर्याययोर्द्वयोरेकतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते, शीतस्निग्धशीतरूक्षउष्णस्निग्धउष्णरूक्षरूपाणां चतुर्णां स्पर्शपर्यायद्वंद्वानामेकतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते, सद्दकारणमसद्दं शब्दकारणोप्यशब्द आत्मवत् । यथात्मा व्यवहारेण ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दकारणभूतोपि निश्चयेनातीन्द्रियज्ञानविषयत्वाच्छब्दज्ञानविषयो न भवति शब्दादिपुद्गलपर्यायरूपो वा न भवति तेन कारणेनाशब्दः तथा परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोप्येकप्रदेशत्वेन शब्दव्यक्त्यभावादशब्दः, खंदतरिदं दव्वं परमाणु तं वियाणाहि यमेवमुक्तवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायवृत्तिविशि-

उत्कृष्ट भेदसे उस भेद संख्याको भी करता है । यह चार प्रकारका भेदभाव संख्या परमाणुजनित जानो ॥ ८० ॥ आगे परमाणु द्रव्यमें गुणपर्यायका स्वरूपकथन करते हैं;–हे शिष्य ! ['यत्'] जो द्रव्य [एकरसवर्णगंधं] एक है रस वर्ण गंध जिसमें ऐसा [द्विस्पर्शं] दो स्पर्श गुणवाला है [शब्दकारणं] शब्दकी उत्पत्तिका कारण है [अशब्दं] अपने एक प्रदेशसे शब्दत्व रहित है [स्कंधांतरितं] पुद्गलपिंडसे पृथक् है [तं द्रव्यं] उस द्रव्यको [परमाणुं] परमाणु [विजानीहि] जानो । भावार्थ—एक परमाणुमें पुद्गलके वीस गुणोंमें से जो पांच रस हैं, उनमेंसे कोई एक रस पाया जाता है । पांच वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण होता है । इसी प्रकार दो गंधोंमेंसे कोई एक गंध तथा शीतस्निग्ध, शीतरूक्ष, उष्णस्निग्ध, उष्णरूक्ष, इन चार स्पर्शके युगलोंमेंसे एक कोई युगल होता है । इस प्रकार एक परमाणु में पांच गुण

शब्दकारणं। एकप्रदेशत्वेन शब्दपर्यायपरिणतिवृत्त्यभावादशब्दः । स्निग्धरूक्षत्वप्रत्ययबंधवशादनेकपरमाण्वेकत्वपरिणतिरूपस्कंधांतरितोऽपि स्वभावमपरित्यजन्नुपात्तसंख्यत्वादेकमेव द्रव्यमिति ॥ ८१ ॥

सकलपुद्गलविकल्पोपसंहारोऽयम् ;—

उवभोज्जमिंदिएहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि ।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे ॥ ८२ ॥

उपभोग्यमिन्द्रियैश्चेन्द्रियः काया मनश्च कर्माणि ।
यद्भवति मूर्त्तमन्यत् तत्सर्वं पुद्गलं जानीयात् ॥ ८२ ॥

ग्स्कंदांतरितं द्रव्यरूपस्कंदपरमाणुं विजानीहि परमात्मवदेव । तद्यथा — यथा परमात्मा व्यवहारेण द्रव्यभावरूपकर्मस्कंन्दांतर्गतोपि निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव तथा परमाणुरपि व्यवहारेण स्कंदांतर्गतोपि निश्चयनयेन स्कंदवहिर्भूतशुद्धद्रव्यरूप एव । अथवा स्कंदांतरित इति कोऽर्थः ? स्कंदात्पूर्वमेव भिन्न इत्यभिप्रायः ॥ ८१ ॥ एवं परमाणुद्रव्यवर्णादिगुणस्वरूपशब्दादिपर्यायस्वरूपकथनेन पंचमगाथा गता । इति परमाणुद्रव्यरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं । अथ सकलपुद्गलभेदानामुपसंहारमावेदयति;—**उवभोज्जमिंदियेहिं य** वीतरागातींद्रियसुखास्वादरहितानां जीवानां यदुपभोग्यं पंचेन्द्रियविषयस्वरूपं **इंदियकाया** अतीन्द्रियात्मस्वरूपाद्विपरीतानीन्द्रियाणि अशरीरात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूता औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंज्ञाः पंचकायाः **मणोय** मनोगतविकल्पजालरहितात् शुद्धजीवास्तिकायाद्विपरीतं मनश्च **कम्माणि** कर्मरहितात्मद्रव्यात् प्रतिकूलानि ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माणि **जं हवदि मुत्तिमण्णं** अमूर्तात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतमन्यदपि यन्मूर्तं प्रत्येकानंतसंख्येयासंख्येयानंताणुस्कंदरूपमनंतविभागिपरमाणुराशिरूपं च **तं सव्वं पोग्गलं जाणे** तत्सर्वमन्यच्च नोकर्मादिकं पुद्गलं जानीहि । इति पुद्गलद्रव्यो-

---

जानो । यह परमाणु स्कंधभावको परिणमित हुआ शब्दपर्यायका कारण है । और जब स्कंधसे पृथक् होता है तब शब्द से रहित है । यद्यपि अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंका कारण पाकर अनेक परमाणुरूप स्कंधपरिणतिको धारण कर एक होता है तथापि अपने एकरूपसे स्वभावको नहीं छोड़ता, सदा एक ही द्रव्य रहता है ॥ ८१ ॥ आगे समस्त पुद्गलोंके भेद संक्षेपमें दिखाये जाते हैं;—['यत्'] जो [इन्द्रियैः] पांचों इन्द्रियोंसे [उपभोग्यं] स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दरूप पांच प्रकारके विषय भोगे जाते हैं [च] और [इन्द्रियः] स्पर्श जीभ नासिका कर्ण नेत्र यह पांच प्रकारकी द्रव्यइन्द्रियां [कायाः] औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण यह पाँच प्रकारके शरीर [च] और [मनः] पौद्गलीक द्रव्यमन तथा [कर्माणि] द्रव्यकर्म, नोकर्म और [यत्] जो कुछ [अन्यत्] और कोई [मूर्त्तं] मूर्तीक पदार्थ [भवति] है [तत्सर्वं] वह सब [पुद्गलं] पुद्गलद्रव्य [जानीयात्] जानो । **भावार्थ—**

इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगंधवर्णशब्दाश्च, द्रव्येन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि, कायाः औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणाणि, द्रव्यमनोद्रव्यकर्माणि नोकर्माणि, विचित्रपर्यायोत्पत्तिहेतवोऽनंताऽनंताणुवर्गणाः, अनंताऽसंख्येयाणुवर्गणाः, अनंताः संख्येयाणुवर्गणाः, द्व्यणुकस्कंधपर्यंताः परमाणवश्च, यदन्यदपि मूर्तं तत्सर्वं पुद्गलविकल्पत्वेनोपसंहर्तव्यमिति ॥ ८२ ॥ इति पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् । धर्मस्वरूपाख्यानमेतत्;—

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥८३॥

धर्मास्तिकायोऽरसोऽवर्णगंधोऽशब्दोऽस्पर्शः ।
लोकावगाढः स्पृष्टः पृथुलोऽसंख्यातप्रदेशः ॥ ८३ ॥

धर्मो हि स्पर्शरसगंधवर्णानामत्यंताभावादमूर्तस्वभावः । तत एव चाशब्दः । सकललोकाकाशाभिव्याप्यावस्थितत्वाल्लोकावगाढः । अयुतसिद्धप्रदेशत्वात् स्पृष्टः । स्वभावादेव

पसंहारः ॥ ८२ ॥ एवं पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथैका गता । इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारे गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलास्तिकायनामा पंचमोंतराधिकारः समाप्तः ॥ अथानंतरमनंतकेवलज्ञानादिरूपादुपादेयभूतात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्ने हेयरूपे धर्माधर्मास्तिकायाधिकारे गाथासप्तकं भवति। तत्र गाथासप्तकमध्ये धर्मास्तिकायस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "धम्मत्थिकायमरसं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं। तदनंतरमधर्मास्तिकायस्वरूपनिरूपणमुख्यत्वेन "जह हवदि" इत्यादि गाथासूत्रमेकं। अथ धर्माधर्मोभयसमर्थनमुख्यत्वेन तयोरस्तित्वाभावे दूषणमुख्यत्वेन च "जादो अलोग" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयमिति । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण धर्माधर्मास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा—धर्मास्तिकायस्वरूपं कथयति; धम्मत्थिकायं धर्मास्तिकायो भवति अरसमवण्णमगंधमसद्दमप्फासं रसवर्णगंधशब्दस्पर्शरहित लोगागाढं लोकव्यापकः पुट्ठं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरि-

---

पांच प्रकार इन्द्रियोंके विषय, पांच प्रकारकी इन्द्रियां, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म, नोकर्म, तथा इनके अतिरिक्त और जो अनेक पर्यायोंकी उत्पत्तिके कारण नाना प्रकारकी अनंतानंत पुद्गलवर्गणा हैं, अनंती असंख्येयाणुवर्गणा हैं और अनंती व असंख्याती संख्येयाणुवर्गणा हैं, दो अणुके स्कंध तक और परमाणु अविभागी इत्यादि जो भेद हैं वे समस्त ही पुद्गलद्रव्यमयी जानो । यह पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ ८२ ॥ आगे धर्म, अधर्म, द्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है, जिसमेंसे प्रथमही धर्म द्रव्यका स्वरूप कहा जाता है;— [धर्मास्तिकायः] धर्मद्रव्य काय

---

१ अङ्गीकर्तव्यम् ।

सर्वतो विस्तृतत्वात्पृथुलः । निश्चयनयेनैकप्रदेशोऽपि व्यवहारनयेनाऽसंख्यातप्रदेश इति ॥ ८३ ॥

धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं ।
गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ८४ ॥

अगुरुलघुकैः सदा तैः अनंतैः परिणतः नित्यः ।
गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः स्वयमकार्यः ॥ ८४ ॥

अपि च धर्मः अगुरुलघुभिर्गुणैरगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमयसंभवत्पट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैः सदा परिण-

---

णतजीवप्रदेशेषु परमानंदैकलक्षणसुखरसास्वादसमरसीभाववत् सिद्धक्षेत्रे सिद्धराशिवत् पूर्णघटे जलवत् तिलेषु तैलवद्वा स्पृष्टः परस्परप्रदेशव्यवधानरहितत्वेन निरंतरः न च निर्जनप्रदेशे भाविता-त्ममुनिसमूहवन्नगरे जनचयवद्वा सांतरः, बहुलं अभव्यजीवप्रदेशेषु मिथ्यात्वरागादिवल्लोके नभो-वद्वा पृथुलोऽनाद्यंतरूपेण स्वभावविस्तीर्णः न च केवलिसमुद्घाते जीवप्रदेशवल्लोके वस्त्रादिप्रदेश-विस्तारवद्वा पुनरिदानीं विस्तीर्णः । पुनरपि किंविशिष्टः ? असंखादियपदेसं निश्चयेनाखंडै-कप्रदेशोऽपि सद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशप्रमितासंख्यातप्रदेश इति सूत्रार्थः ॥ ८३ ॥ अथ धर्मस्यैवावशिष्टस्वरूपं प्रतिपादयति;—अगुरुगलहुगेहि सदा तेहि अणंतेहि परिणदं

सहित प्रवर्तमान है । वह धर्मद्रव्य कैसा है ? [अरसः] पांच प्रकारके रसरहित [अवर्णगंधः] पांच प्रकारके वर्ण और दो प्रकारके गंधरहित [अशब्दः] शब्दपर्यायसे रहित [अस्पर्शः] आठ प्रकारके स्पर्श गुणरहित है । फिर कैसा है ? [लोकावगाढः] समस्त लोकको व्याप्त होकर रहता है [स्पृष्टः] अपने प्रदेशोंके स्पर्शसे अखंडित है [पृथुलः] स्वभावसेही सब जगह विस्तृत है । और [असं-ख्यातप्रदेशः] यद्यपि निश्चयनयसे एक अखंडित द्रव्य है तथापि व्यवहारसे असं-ख्यातप्रदेशी है । भावार्थ—धर्मद्रव्य स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंसे रहित है इस कारण अमूर्त्तीक है, क्योंकि स्पर्श रस गंध वर्णवती वस्तु सिद्धांतमें मूर्त्तीक ही है । ये चार गुण जिसमें नहीं हों उसीका नाम अमूर्त्तीक है । इस धर्मद्रव्यमें शब्द भी नहीं है क्योंकि शब्द भी मूर्त्तीक होते हैं, इस कारण शब्दपर्यायसे रहित है । लोकप्रमाण असं-ख्यातप्रदेशी है । यद्यपि अखंडद्रव्य है परंतु भेद दिखानेके लिये परमाणुओं द्वारा असं-ख्यातप्रदेशी गिना जाता है ॥ ८३ ॥ आगे फिर भी धर्मद्रव्यका स्वरूप कुछ विशेषतासे दिखाया जाता है;—[सदा] सदा काल [तैः] उन द्रव्योंके अस्तित्व करनेवाले [अगुरुलघुकैः] अगुरुलघु नामक [अनंतैः] अनंत गुणोंसे [परिणतः]

तत्वादुत्पादव्ययभावेऽपि स्वरूपादप्रच्यवनान्नित्यः गतिक्रियापरिणतानामुदासीनाऽविनाभूतसहायमात्रत्वात्कारणभूतः । स्वास्तित्वमात्रनिर्वृत्तत्वात् स्वयमकार्य इति ॥ ८४ ॥

धर्मस्य गतिहेतुत्वे दृष्टांतोऽयम् ;—

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए ।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ८५ ॥

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके ।
तथा जीवपुद्गलानां धर्मं द्रव्यं विजानीहि ॥ ८५ ॥

अगुरुलघुकैः सदा तैरनंतै परिणतः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंततैरविभागपरिच्छेदैः परिणतः येऽगुरुलघुकगुणाः स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबंधनभूतास्तैः कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययपरिणतोपि द्रव्यार्थिकनयेन णिच्चं नित्यं गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं गतिक्रियायुक्तानां कारणभूत.। यथा सिद्धो भगवानुदासीनोपि सिद्धगुणानुरागपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वभावेनैव गतिपरिणतजीवपुद्गलानामुदासीनोपि गतिसहकारिकारणं भवति सयमकज्जं स्वयमकार्य । यथा सिद्धः स्वकीयशुद्धास्तित्वेन निष्पन्नत्वादन्येन केनापि न कृत इत्यकार्यः तथा धर्मोपि स्वकीयास्तित्वेन निष्पन्नत्वादकार्य इत्यभिप्रायः ॥८४॥ अथ धर्मस्य गतिहेतुत्वे लोकप्रसिद्धदृष्टांतमाह;—उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके तथैव जीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यं विजानीहि हे शिष्य ! तथाहि –यथा हि जलं स्वयमगच्छ-

---

समय समयमें परिणमता है ? फिर कैसा है । [नित्यः] टंकोत्कीर्ण अविनाशी वस्तु है । फिर कैसा है ? [गतिक्रियायुक्तानां] गमन अवस्था सहित जीव पुद्गलों के लिये [कारणभूतं] निमित्तकारण है । फिर कैसा है ? [स्वयमकार्यः] किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है । भावार्थ—धर्मद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण वस्तु है । यद्यपि अपने अगुरुलघु गुणसे षट्गुणी हानिवृद्धिरूप परिणमता है, परिणामसे उत्पादव्ययसंयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूपसे चलायमान नहीं होता, क्योंकि द्रव्य वही है जो उपजे विनशे स्थिर रहे । इस कारण यह धर्मद्रव्य अपने ही स्वभावको परिणमित पुद्गल को उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र गतिमें कारणभूत है । और यह अपनी अवस्थासे अनादि अनंत है, इस कारण कार्यरूप नहीं है । कार्य उसे कहते हैं जो किसीसे उपजा हो । गतिको निमित्त पाकर सहाई है, इसलिये यह धर्मद्रव्य कारणरूप है, किंतु कार्य नहीं है ॥ ८४ ॥ आगे धर्मद्रव्य गतिको निमित्तमात्र सहाय किस दृष्टांतसे है सो दिखाया जाता है;–[लोके] इस लोकमें [यथा] जैसे [उदकं] जल [मत्स्यानां] मछलियोंको [गमनानुग्रहकरं] गमनके उपका-

---

१ धर्मं विना गमनं नास्ति. २ जीवपुद्गलानाम् ।

यथोदकं स्वयमगच्छदगमयंच स्वयमेव गच्छतां मत्स्यानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति, तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छन् अगमयंश्च स्वयमेव गच्छतां जीवपुद्गलानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति इति ॥८५॥

अधर्मस्वरूपाख्यानमेतत्;—

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं ।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥ ८६ ॥

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथा तज्जानीहि द्रव्यमधर्माख्यं ।
स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं तु पृथिवीव ॥ ८६ ॥

न्मत्स्यानप्रेरयत्सत्तेषां स्वयं गच्छतां गतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वयमगच्छत्परानप्रेरयंश्च स्वयमेव गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति । अथवा भव्यानां सिद्धगतेः पुण्यवत् । तद्यथा—यथा रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मो यद्यपि सिद्धगतेरुपादानकारणं भव्यानां भवति तथा निदानरहितपरिणामोपार्जिततीर्थंकरप्रकृत्युत्तमसंहननादिविशिष्टपुण्यरूपधर्मोपि सहकारिकारणं भवति, तथा यद्यपि जीवपुद्गलानां गतिपरिणतेः स्वकीयोपादानकारणमस्ति तथापि धर्मास्तिकायोपि सहकारिकारणं भवति । अथवा भव्यानामभव्यानां वा यथा चतुर्गतिगमनकाले यद्यप्यभ्यंतरशुभाशुभपरिणाम उपादानकारणं भवति तथापि द्रव्यलिङ्गादि दानपूजादिकं वा वहिरंगशुभानुष्ठानं च बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां यद्यपि स्वयमेव निश्चयेनाभ्यंतरेऽन्तरंगसामर्थ्यमस्ति तथापि व्यवहारेण धर्मास्तिकायोपि गतिकारणं भवतीति भावार्थः ॥ ८५ ॥ एवं प्रथमस्थले धर्मास्तिकायव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथाधर्मास्तिकायस्वरूपं कथ्यते;—यथा भवति धर्मद्रव्यं तथार्थं कर्तुं जानीहि हे शिष्य !

रूो निमित्तमात्र सहाय [भवति] होता है [तथा] वैसे ही [जीवपुद्गलानां] जीव और पुद्गलोंके गमनको सहाय [धर्मद्रव्यं] धर्म नामक द्रव्य [विजानीहि] जानो । भावार्थ—जैसे जल मछलियोंके गमन करते समय न तो आप उनके साथ चलता है और न मछलियोंको चलाता है, किंतु उनके गमनमें निमित्तमात्र सहायक है, ऐसा ही कोई एक स्वभाव है । मछलियां जलके विना चलनेमें असमर्थ हैं इस कारण जल निमित्तमात्र है । इसी प्रकार जीव और पुद्गल धर्मद्रव्यके विना गमन करनेमें असमर्थ हैं । जीव-पुद्गलोंके चलते हुये धर्मद्रव्य आप नहीं चलता और न उनको प्रेरणा करके चलाता है । आप तो उदासीन है परंतु कोई एक ऐसा ही अनादिनिधनस्वभाव है कि जीव-पुद्गल गमन करें तो उनमें निमित्तमात्र सहायक होता है ॥ ८५ ॥ आगे धर्मद्रव्यका स्वरूप दिखाया जाता है;—[यथा] जैसे [तत्] जिसका स्वरूप पहिले कह आये वह [धर्मद्रव्यं] धर्मद्रव्य [भवति] है [तथा]

---

१ अन्यमगमयत् ।

यथा धर्मः प्रज्ञापितस्तथाऽधर्मोऽपि प्रख्यापनीयः । अयं तु विशेषः । स गतिक्रियायुक्तानामुदकवत्कारणभूतः एषः पुनः स्थितिक्रियायुक्तानां पृथिवीवत्कारणभूतः । यथा पृथिवी स्वयं पूर्वमेव तिष्ठंती परमस्थापयंती च स्वयमेव तिष्ठतामश्वादीनामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन स्थितिमनुगृह्णाति (?) ॥ ८६ ॥

धर्माधर्मसद्भावे हेतूपन्यासोऽयम् ;—

जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी ।
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥ ८७ ॥

द्रव्यधर्माख्यं । तच्च कथंभूतं ? स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं पृथिवीवत् । तथाहि—यथा पूर्वमरसादिविशेषणविशिष्टं धर्मद्रव्यं व्याख्यातं अधर्मद्रव्यमपि तद्रूपं ज्ञातव्यं, अयं तु विशेषः तन्मत्स्यानां जलवज्जीवपुद्गलानां गतेर्बहिरंगसहकारिकारणं इदं तु यथा पृथिवी स्वयं पूर्वं तिष्ठंती परं स्थापयंती तुरंगादीनां स्थितेर्बहिरंगसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां स्थापयत्स्वयं च पूर्वं तिष्ठत्सत् स्थितेस्तेषां कारणमिति पथिकानां छायावद्वा । अथवा शुद्धात्मस्वरूपे या स्थितिस्तस्या निश्चयेन वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनं कारणं व्यवहारेण पुनरर्हत्सिद्धादिपरमेष्ठिगुणस्मरणं च यथा तथा जीवपुद्गलानां निश्चयेन स्वकीयस्वरूपमेव स्थितेरुपादानकारणं व्यवहारेण पुनरधर्मद्रव्यं चेति सूत्रार्थः ॥ ८६ ॥ एवमधर्मद्रव्यव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथासूत्रमेकं गतं । अथ धर्माधर्मसद्भावे साध्ये हेतुं दर्शयति;—जादो जातं । किं कर्तृ ? अलोगलोगो लोकालोकद्वयं ।

वैसे ही [अधर्माख्यं] अधर्मनामक [द्रव्यं तु] द्रव्य [स्थितिक्रियायुक्तानां] स्थिर होनेकी क्रियासे युक्त जीव-पुद्गलोंको [पृथिवी इव] पृथिवीके समान सहकारी [कारणभूतं] कारण [जानीहि] जानो । **भावार्थ**—जैसे भूमि अपने स्वभावहीसे अपनी अवस्था को लिये पहिलेही विद्यमान है, स्थिर है, और घोड़ा आदि को बलात् नहीं ठहराती; घोड़ा आदि यदि स्वयं ही ठहरना चाहें तो पृथिवी सहज अपनी उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र स्थितिमें सहायक है । इसी प्रकार अधर्मद्रव्य अपनी साहजिक अवस्थासे अपने असंख्यात प्रदेश लिये लोकाकाश प्रमाणतासे अविनाशी है, अनादि कालसे विद्यमान है, उसका स्वभाव भी जीव-पुद्गलोंकी स्थिरताको निमित्तमात्र कारण है, परंतु वह अन्य द्रव्यको बलात् नहीं ठहराता । आपहीसे यदि जीव-पुद्गल स्थिर अवस्थारूप परिणमै तो आप अपनी स्वाभाविक उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र सहाय होता है । जैसे धर्मद्रव्य निमित्तमात्र गतिमें सहायक है उसी प्रकार अधर्मद्रव्य स्थिरतामें सहकारी कारण जानो । यह संक्षेपमें धर्म अधर्म द्रव्यका स्वरूप कहा ॥ ८६ ॥ अब यदि कोई कहे कि धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं, तो उसका

अधर्मः ।

जातमलोकलोकं ययोः सद्भावतश्च गमनस्थितिः।
द्वावपि च मतौ विभक्तावविभक्तौ लोकमात्रौ च॥ ८७॥

धर्माधर्मौ विद्येते। लोकालोकविभागान्यथानुपपत्तेः। जीवादिसर्वपदार्थानामेकत्र वृत्तिरूपो लोकः। शुद्धैकाकाशवृत्तिरूपोऽलोकः। तत्र जीवपुद्गलौ स्वरसत[1] एव गतितत्पूर्वस्थितिपरिणामापन्नौ। तयो[2]र्यदि गतिपरिणामं तत्पूर्वस्थितिपरिणामं वा स्वयमनुभवतोर्बहिरङ्गहेतू धर्माधर्मौ न भवेताम्, तदा तयोर्निरर्गलगतिस्थितिपरिणामत्वादलोकेऽपि वृत्तिः केन वार्येत? ततो न लोकालोकविभागः सिध्येत। धर्माधर्मयोस्तु जीवपुद्गलयोर्गतितत्पूर्वस्थित्योर्बहिरङ्गहेतुत्वेन सद्भावेऽभ्युपगम्यमा[3]ने लोकालोकविभागो जायत इति। किञ्च धर्माधर्मौ द्वावपि परस्परं पृथग्भूतास्तित्वनिर्वृत्तत्वाद्विभक्तौ। एकक्षेत्रावगाढत्वादविभक्तौ।

कस्माज्जातं? **जेसिं सब्भावदो य** ययोर्धर्माधर्मयोः स्वभावतश्च। न केवलं लोकालोकद्वयं जातं। **गमणठिदी** गतिस्थितिश्चैतौ द्वौ। कथंभूतौ? **दोवि य मया** द्वौ धर्माधर्मौ मतौ संमतौ स्तः अथवा पाठांतरं "अमया" अमयौ न केनापि कृतौ **विभत्ता** विभक्तौ भिन्नौ **अविभत्ता** अविभक्तौ **लोयमेत्ता य** लोकमात्रौ चेति। तद्यथा-धर्माधर्मौ विद्येते लोकालोकसद्भावात्, षड्द्रव्यसमूहात्मको लोकः तस्माद्बहिर्भूतं शुद्धमाकाशमलोकः, तत्र लोके गतिं तत्पूर्वकस्थितिमास्कंदतोः स्वीकुर्वतोर्जीवपुद्गलयोर्यदि बहिरंगहेतुभूतधर्माधर्मौ न स्यातां तदा लोकाद्बहिर्भूतबाह्यभागेपि गतिः केन नाम निषिध्यते? न केनापि। ततो लोकालोकविभागादेव ज्ञायते धर्माधर्मौ विद्येते।

समाधान करनेके लिये आचार्य कहते हैं;—[ययोः] जिन धर्माधर्म द्रव्यके [सद्भावतः] अस्तित्व होनेसे [अलोकलोकं] लोक और अलोक [जातं] हुआ है [च] और जिनसे [गमनस्थिति] गति-स्थिति होती है वे [द्वौ अपि] दोनों ही [विभक्तौ मतौ] अपने अपने स्वरूपसे जुदे जुदे कहे गये हैं, किंतु [अविभक्तौ] एकक्षेत्र अवगाहसे जुदे जुदे नहीं हैं। [च] और [लोकमात्रौ] असंख्यातप्रदेशी लोकमात्र हैं। **भावार्थ**—यहाँ प्रश्न किया था कि—धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं, आकाश ही गति स्थितिमें सहायक है, उसका समाधान इस प्रकार हुआ कि—धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं। यदि यह दोनों नहीं होते तो लोक अलोकका भेद नहीं होता। लोक उसको कहते हैं जहां जीवादिक समस्त पदार्थ हों। जहां एक आकाश ही है वह अलोक है। इस लिये जीव पुद्गलकी गति-स्थिति लोकाकाशमें है, अलोकाकाशमें नहीं है। यदि इन धर्म-अधर्मके गति-स्थिति निमित्तका गुण नहीं होता तो लोक-अलोकका भेद दूर हो जाता। जीव और पुद्गल, दोनों ही द्रव्य गति-स्थिति अवस्थाको धारण करते हैं। इनकी गति-स्थितिमें वहिरंग कारण धर्म-अधर्म द्रव्य लोकमें ही

---

१ स्वभावतः. २ जीवपुद्गलयोः. ३ अङ्गीक्रियमाणे सति।

निष्क्रियत्वेन सकललोकवर्तिनोर्जीवपुद्गलयोर्गतिस्थित्युपग्रहणकरणाल्लोकमात्राविति ॥८७॥

धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वेऽप्यत्यंतौदासीन्याख्यापनमेतत् ;—

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ।
हवदि गती स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ॥ ८८ ॥

न च गच्छति धर्मास्तिको गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य ।
भवति गतेः सः प्रसरो जीवानां पुद्गलानां च ॥ ८८ ॥

यथा हि गतिपरिणतः प्रभञ्जनो वैजयंतीनां गतिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य सहकारित्वेन परेषां गतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं ? किंतु सलिलमिव मत्स्यानां जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतेः प्रसरो भवति । अपि च यथा गतिपूर्व-

तौ च किंविशिष्टौ ? भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वान्निश्चयनयेन पृथग्भूतौ एकक्षेत्रावगाहत्वादसद्भूतव्यवहारनयेन सिद्धराशिवदभिन्नौ सर्वदैव निःक्रियत्वेन लोकव्यापकत्वाल्लोकमात्राविति सूत्रार्थः ॥८७॥ अथ धर्माधर्मौ गतिस्थितिहेतुत्वविषयेत्यंतोदासीनाविति निश्चिनोति;—**ण य गच्छदि** नैव गच्छति । स कः ? **धम्मत्थी** धर्मास्तिकायः **गमणं न करेदि अण्णदवियस्स** गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य **हवदि** तथापि भवति । स कः ? **पसरो** प्रसरः प्रवृत्तिः । कस्याश्च ? **गदिस्स य** गतेश्च । केषां गतेः ? **जीवाणं पोग्गलाणं च** जीवानां पुद्गलानां चेति ।

हैं । यदि ये धर्म अधर्म द्रव्य लोकमें नहीं होते तो लोक-अलोक का भेद ही नहीं होता । सब जगह ही लोक होता । इसलिये धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । जहां तक जीव पुद्गल गति-स्थितिको करते हैं वहां तक लोक है, उससे परे अलोक जानो । इसी न्याय से लोक-अलोकका भेद धर्म-अधर्म द्रव्यसे जानो । ये धर्म अधर्म द्रव्य दोनों ही अपने अपने प्रदेशोंको लिये हुये जुदे जुदे हैं । एक लोकाकाश क्षेत्रकी अपेक्षा जुदे जुदे नहीं हैं । क्योंकि लोकाकाशके जिन प्रदेशोंमें धर्मद्रव्य है उन ही प्रदेशोंमें अधर्मद्रव्य भी है । दोनों ही हलनचलनरूप क्रियासे रहित सर्वलोकव्यापी हैं । समस्त लोकव्यापी जीवपुद्गलोंको गति-स्थितिमें सहकारी कारण हैं । इसलिये दोनोंही द्रव्य लोकमात्र असंख्यातप्रदेशी हैं ॥ ८७ ॥ आगे धर्म अधर्म द्रव्य प्रेरक होकर गति स्थितिमें कारण नहीं है, अत्यंत उदासीन हैं, ऐसा कथन करने को गाथा कहते हैं । [धर्मास्तिकः] धर्मास्तिकाय [न] नहीं [गच्छति] चलता है । [च] और [अन्यद्रव्यस्य] अन्य जीव पुद्गलका प्रेरक होकर [गमनं] हलन चलन क्रियाको [न] नहीं [करोति] करता है [सः] वह धर्मद्रव्य [जीवानां] जीवोंकी और [पुद्गलानां] पुद्गलोंकी [गतेः] हलन चलन क्रियाका [प्रसरः]

१ वायुः. २ पताकानाम्. ३ धर्मद्रव्यस्य. ४ प्रवर्तको भवति, न प्रेरकतया प्रेरकः ।

स्थितिपरिणतस्तुरङ्गोऽश्ववारस्य स्थितिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मः । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपूर्वस्थितिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य[1] सहस्थायित्वेन[2] परेषां गतिपूर्वस्थितिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं ? किंतु पृथिवीवत्तुरङ्गस्य जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतिपूर्वस्थितेः प्रसरो भवतीति ॥ ८८ ॥

तथाहि–यथा तुरंगमः स्वयं गच्छन् स्वकीयारोहकस्य गमनहेतुर्भवति न तथा धर्मास्तिकायः । कस्मात् ? निष्क्रियत्वात्, किंतु यथा जलं स्वयं तिष्ठति सति वा तिष्ठःसत्स्वयं गच्छतां मत्स्यानामौदासीन्येन गतेर्निमित्तं भवति तथा धर्मोपि स्वयं तिष्ठन्सन् स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानामप्रेरकत्वेन बहिरंगनिमित्तं भवति । यद्यपि धर्मास्तिकायो य उदासीनो जीवपुद्गलगतिविषये तथापि जीवपुद्गलानां स्वकीयोपादानबलेन जले मत्स्यानामिव गतिहेतुर्भवति, अधर्मस्तु पुनः स्वयं तिष्ठतामश्वादीनां पृथिवीवत्पथिकानां छायावद्वा स्थितेर्बहिरंगहेतुर्भवतीति

प्रवर्त्तक [भवति] होता है । [च] फिर इसप्रकार ही अधर्मद्रव्य भी स्थितिमें निमित्तमात्र कारण जानो । **भावार्थ—**जैसे पवन अपने चंचल स्वभावसे ध्वजाओंकी हलन चलन क्रियाका कर्त्ता देखनेमें आता है, वैसे धर्मद्रव्य नहीं है । धर्मद्रव्य स्वयं हलन-चलनरूप क्रियासे रहित है, किसी कार्यमें भी आप गति-परिणतिको (गमनक्रियाको) धारण नहीं करता । इसलिये जीव-पुद्गलकी गति-परिणतिमें सहायक किस प्रकार होता है ? इसका दृष्टांत देते हैं । जैसे कि निष्कम्प सरोवरमें 'जल' मछलियोंकी गतिमें सहकारी कारण है,—जल स्वयं प्रेरक होकर मछलियोंको नहीं चलाता, मछलियां अपने ही गति-परिणाम के उपादान कारणसे चलती हैं, परंतु जलके विना नहीं चल सकतीं, जल उनको निमित्तमात्र कारण है । उसी प्रकार जीव-पुद्गलोंकी गति अपने उपादान कारणसे है । धर्मद्रव्य स्वयं चलता नहीं है किंतु अन्य जीव-पुद्गलोंकी गतिके लिये निमित्तमात्र होता है । इसीप्रकार अधर्मद्रव्य भी निमित्तमात्र है । जैसे घोडा प्रथम ही गति क्रियाको करके फिर स्थिर होता है किन्तु असवारकी स्थितिका कर्त्ता दिखाई देता है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य प्रथम स्वयं चलकर जीव-पुद्गलकी स्थिरक्रियाका स्वयं कर्त्ता नहीं है, किंतु स्वयं निःक्रिय है, इसलिये गतिपूर्वस्थिति परिणाम अवस्थाको प्राप्त नहीं होता है । यदि परद्रव्यकी क्रियासे इसकी गति पूर्वक्रिया नहीं होती तो किस प्रकार स्थिति क्रियाका सहकारी कारण होता है ? जैसे घोड़ेकी स्थिति क्रियाका निमित्त कारण भूमि (पृथिवी) होती है । भूमि चलती नहीं, परंतु गतिक्रियाके करनेवाले घोड़ेकी स्थितिक्रियामें सहकारिणी है । उसी प्रकार अधर्मद्रव्य जीव-पुद्गलकी स्थितिमें उदासीन अवस्थासे स्थितिक्रियामें सहायक है ॥ ८८ ॥ आगे धर्म अधर्म

---

१ अधर्मद्रव्यस्य. २ सहचलनरूपेण ।

धर्माधर्मयोरौदासीन्ये हेतूपन्यासोऽयम् ;—

विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि ।
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥८९॥

विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ।
ते स्वकपरिणामैस्तु गमनं स्थानं च कुर्वन्ति ॥ ८९ ॥

धर्मः किल न जीवपुद्गलानां कदाचिद्गतिहेतुत्वमभ्यस्यति, न कदाचित्स्थितिहेतुत्वमधर्मः । तौ हि परेषां गतिस्थित्योर्यदि मुख्यहेतू स्यातां तदा येषां गतिस्तेषां गतिरेव, न स्थितिः, येषांस्थितिस्तेषां स्थितिरेव, न गतिः । तत एकेषामपि[१] गतिस्थितिदर्शनादनुमीयते न तौ तयोर्मुख्यहेतू । किंतु व्यवहारनयव्यवस्थापितौ उदासीनौ । कथमेवं गतिस्थिति-

---

भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानामभिप्रायः ॥ ८८ ॥ अथ धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वोदासीनविषये युक्तिमुद्योतयति;—विद्यते येषां गमनं स्थानं पुनस्तेषामेव संभवति ते जीवपुद्गलाः स्वकपरिणामैरेव स्थानं गमनं च कुर्वंतीति । तथाहि—धर्मस्तावत्कापि काले गतिहेतुत्वं न त्यजति न चाधर्मः स्थितिहेतुत्वं तौ यदि गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू स्यातां तदा गतिस्थितिकाले परस्परं मत्सरो भवति । कथमिति चेत् ? येषां गतिस्तेषां सर्वदैव गतिरेव न च स्थितिः येषां पुनः स्थितिस्तेषां सर्वदैव स्थितिरेव न च गतिः । न तथा दृश्यते । किंतु ये गतिं कुर्वन्ति त एव पुनरपि स्थितिं कुर्वन्ति, ये स्थितिं कुर्वन्ति त एव पुनर्गतिं कुर्वन्ति । ततो ज्ञायते न तौ धर्माधर्मौ गतिस्थित्योर्मुख्यहेतू । यदि मुख्यहेतू न भवेतां तर्हि गतिस्थितिमतां जीवपुद्गलानां कथं गति-

---

द्रव्यको गतिस्थितिका उपादानकारण मुख्यतासे नहीं है, उदासीनमात्र भावसे निमित्तकारणमात्र कहा जाता है । धर्मद्रव्य अकेला स्वयं ही किसी कालमें भी गतिकारणरूप अवस्थाको धारण नहीं करता और अधर्मद्रव्य भी अकेला किसी कालमें भी स्थितिकारणरूप अवस्थाको धारण नहीं करता, किंतु गति-स्थितिपरिणतिके कारण हैं । यदि दोनों धर्म अधर्म द्रव्य गतिस्थितिके उपादानरूप मुख्य कारण होते तो [येषां] जिन जीवपुद्गलोंका [गमनं] चलना [स्थानं] स्थिर होना [विद्यते] होता है [पुनः] फिर [तेषां] उन ही द्रव्योंका [एव] निश्चयसे चलना व स्थिर होना [सम्भवति] होता है । यदि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण होकर जबरदस्तीसे जीवपुद्गलोंको चलाते और स्थिर करते तो सदाकाल जो चलते वे सदा चलते ही रहते और जो स्थिर होते वे सदा स्थिर ही रहते । इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं । [ते] वे जीवपुद्गल [स्वकपरिणामैः तु] अपने गतिस्थितिपरिणामके उपादानकारणरूपसे तो [गमनं] चलना [च] और [स्थानं] स्थिर होना

---

१ एकस्वरूपसरूपसमूहजीवपुद्गलानाम् ।

मतां पदार्थानां गतिस्थिती भवत इति चेत्, सर्वे हि गतिस्थितिमंतः पदार्थाः स्वपरिणामैरेव निश्चयेन गतिस्थिती कुर्वंतीति ॥ ८९ ॥ इति धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् । अथाकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

आकाशस्वरूपाख्यानमेतत्;—

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥

सर्वेषां जीवानां शेषाणां तथैव पुद्गलानां च ।
यद्ददाति विवरमखिलं तल्लोके भवत्याकाशं ॥ ९० ॥

स्थिती इति चेत् ? ते निश्चयेन स्वकीयपरिणामैरेव गतिं स्थितिं च कुर्वंतीति । अत्र सूत्रे निर्विकारचिदानंदैकस्वभावादुपादेयभूताव शुद्धात्मतत्त्वाद्भिन्नत्वाद्धेयतत्त्वमित्यभिप्रायः ॥ ८९ ॥ एवं धर्माधर्मोभयव्यवस्थापनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतं । इति गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेण पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये धर्माधर्मव्याख्यानरूपेण षष्ठांतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं शुद्धबुद्धैकस्वभावान्निश्चयमोक्षकारणभूतात्सर्वप्रकारोपादेयरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्न आकाशास्तिकायः सप्तगाथापर्यंतं कथ्यते । तत्र गाथासप्तकमध्ये प्रथमतस्तावल्लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "सव्वेसिं जीवाणं" इत्यादि गाथाद्वयं । अथ आकाशमेव गतिस्थितिद्वयं करिष्यति धर्माधर्माभ्यां किं प्रयोजनमिति पूर्वपक्षनिराकरणमुख्यत्वेन "आगासं अवगासं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं । तदनंतरं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चासद्भूतव्यवहारेणैकत्वं भिन्नलक्षणत्वान्निश्चयेन पृथक्त्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "धम्माधम्मागासा" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । आकाशस्वरूपं कथयति;— **सव्वेसिं जीवाणं** सर्वेषां जीवानां **सेसाणं तह य** शेषाणां तथैव च धर्माधर्मकालानां **पोग्गलाणं च** पुद्गलानां च **जं देदि** यत्कर्तृ ददाति । किं ? **विवरं** विवरं छिद्रं अवकाशमवगाहं **अखिलं** समस्तं **तं** तत्पूर्वोक्तं **लोगे** लोकविषये **हवदि आगासं** आकाशं भवति । अत्राह शिवकुमारमहाराजनामा

[कुर्वन्ति] करते हैं । इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहीं हैं । व्यवहार नयकी अपेक्षासे उदासीन अवस्थासे निमित्तकारण हैं । निश्चय करसे जीव-पुद्गलोंकी गति-स्थितिमें उपादानकारण अपने ही परिणाम हैं ॥ ८९ ॥ यहां धर्म अधर्मास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ । आगे आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है;—[सर्वेषां] समस्त [जीवानां] जीवोंको [तथैव] वैसेही [शेषाणां] धर्म अधर्म काल इन तीन द्रव्योंको [च] और [पुद्गलानां] पुद्गलोंको [यत्] जो [अखिलं] समस्त [विवरं] जगहको [ददाति] देता है [तत्] वह द्रव्य [लोके] इस लोकमें [आकाशं] आकाशद्रव्य

षड्द्रव्यात्मके लोके सर्वेषां शेषद्रव्याणां यत्समस्तावकाशनिमित्तं विशुद्धक्षेत्ररूपं तदाकाशमिति [९०]

लोकाद्बहिराकाशसूचनेयं;—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा ।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥९१॥

जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च लोकतोऽनन्ये ।
ततोऽनन्यदन्यदाकाशमंतव्यतिरिक्तं ॥ ९१ ॥

हे भगवन् ! लोकस्तावदसंख्यातप्रदेशः, तत्र लोके निश्चयनयेन नित्यनिरंजनज्ञानमयपरमानंदैकलक्षणाः अनंतानंतजीवास्तेभ्योप्यनंतगुणः पुद्गला लोकाकाशप्रमितप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो धर्माधर्मौ चेति सर्वे कथमवकाशं लभंत? इति । भगवानाह—एकापवरके अनेकप्रदीपप्रकाशवदेकगूढनागरसगद्याणके बहुसुवर्णवदेकस्मिन्नुष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटवदेकस्मिन् भूमिगृहे जयघंटादिशब्दवद्विशिष्टावगाहगुणेनासंख्येयप्रदेशेपि लोके अनंतसंख्या अपि जीवादयोऽवकाशं लभंत इत्यभिप्रायः ॥९०॥ अथ षड्द्रव्यसमवायो लोकस्तस्माद्बहिरनंतमाकाशमलोक इति प्रकटयति;—**जीवा** जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मद्वयं चकारात्कालश्च । एते सर्वे कथंभूताः ? **लोगदो अणण्णा** लोकात्सकाशादनन्ये **तत्तो** तस्माल्लोकाकाशात् **अणण्णमण्णं आगासं** अनन्यदन्यच्चाकाशं यदन्यद्लोकाकाशं । तत्किं प्रमाणं ? **अंतवदिरित्तं** अन्तव्यतिरिक्तमनंतमिति । अत्र सूत्रे यद्यपि सामान्येन पदार्थानां लोकादनन्यत्वं भणितं तथापि निश्चयेन मूर्तिरहितःवकेवलज्ञानत्वसहजपरमानंदत्वनित्य-

---

[भवति] होता है । भावार्थ—इस लोकमें पाँच द्रव्योंको जो अवकाश देता है उसको आकाश कहते हैं ॥ ९० ॥ आगे, लोकसे बाहर अलोकाकाश है, उसका स्वरूप कहते हैं;—[जीवाः] अनंत जीव [पुद्गलकायाः] अनंत पुद्गलपिंड [च] और [धर्माधर्मौ] धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य [लोकतः अनन्ये] लोकसे बाहर नहीं हैं । ये पांच द्रव्य लोकाकाशमें हैं । [ततः] उस लोकाकाशसे [अन्यत्] जो और है [अनन्यत्] और नहीं भी है, ऐसा [आकाशं] आकाशद्रव्य है सो [अंतव्यतिरिक्तं] अनंत है । भावार्थ—आकाश लोक अलोकके भेदसे दो प्रकारका है । लोकाकाश उसे कहते हैं जो जीवादि पांच द्रव्योंसे सहित है । और अलोकाकाश वह है जहां पर आप एक आकाश ही है । वह अलोकाकाश एक द्रव्यकी अपेक्षा लोकसे जुदा नहीं है, और वह अलोकाकाश पांच द्रव्यसे रहित है, जब यह अपेक्षा ली जाय तब जुदा है । अलोकाकाश अनंतप्रदेशी है, लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है । यहां कोई प्रश्न करे कि लोकाकाशका क्षेत्र किंचिन्मात्र है, तो उसमें अनंत

---

१ पञ्चद्रव्याणाम् ।

जीवादीनि शेषद्रव्याण्यवधृतपरिमाणत्वाल्लोकादनन्यान्येव । आकाशं त्वनंतत्त्वाल्लोकादनन्यदन्यच्चेति ॥ ९१ ॥

आकाशस्यावकाशैकहेतोर्गतिस्थितिहेतुत्वशङ्कायां दोषोपन्यासोऽयम् ;—

आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि ।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥९२॥

आकाशमवकाशं गमनस्थितिकारणाभ्यां ददाति यदि ।
ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः सिद्धाः तिष्ठन्ति कथं तत्र ॥ ९२ ॥

यदि खल्वाकाशमवगाहिनामवगाहहेतुर्गतिस्थितिमतां गतिस्थितिहेतुरपि स्यात्, तदा

त्वनिरंजनत्वादिलक्षणेन शेषद्रव्येभ्यो जीवानामन्यत्वं स्वकीयस्वकीयलक्षणेन शेषद्रव्याणां च जीवेभ्यो भिन्नत्वं । तेन कारणेन ज्ञायते संकरव्यतिकरदोषो नास्तीति भावः ॥ ९१ ॥ एवं लोकालोकाकाशद्वयस्वरूपसमर्थनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतं । अथाकाशं जीवादीनां यथावकाशं ददाति तथा यदि गतिस्थिती अपि ददाति तदा दोषं दर्शयति;—**आयासं** आकाशं कर्तृ **देदि जदि** ददाति यदि चेत् । किं ? **अवगासं** अवकाशमवगाहं । कथं सह काभ्यां ? **गमणट्ठिदिकारणेहिं** गमनस्थितिकारणाभ्यां । तदा किं दूषणं ? **उड्ढंगदिप्पधाणा** निर्विकारविशिष्टचैतन्यप्रकाशमात्रेण कारणसमयसारभावनाबलेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिविनाशं कृत्वा पश्चात्स्वाभाविकोर्ध्वगतिस्वभावाः संतः । के ते ? **सिद्धा** स्वभावोपलब्धिसिद्धिरूपाः सिद्धा भगवंतः **चेट्ठंति किह** तिष्ठन्ति कथं ? कुत्र ? **तत्थ** तत्र लोकाग्र इति । अत्र सूत्रे

जीवादि पदार्थ कैसे समा रहे हैं ? **उत्तर**—एक घरमें जिस प्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समा रहा है और जिसप्रकार एक छोटेसे गुटकेमें बहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है, उसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी आकाशमें साहजिक अवगाहना-स्वभावसे अनंत जीवादि पदार्थ समा रहे हैं । वस्तुओंके स्वभाव वचनगम्य नहीं हैं । सर्वज्ञ देव ही जानते हैं । इस कारण जो अनुभवी हैं वे सन्देह उत्पन्न नहीं करते, वस्तुस्वरूपमें सदा निश्चल होकर आत्मीक अनंत सुख का वेदन करते हैं ॥ ९१ ॥ आगे कोई प्रश्न करे कि धर्म-अधर्मद्रव्य को गति-स्थितिमें कारण क्यों कहते हो ? आकाशको ही गति-स्थितिका कारण क्यों नहीं कह देते ? उसे दूषण दिखाते हैं;—[यदि] यदि [आकाशं] आकाश नामक द्रव्य [गमनस्थितिकारणाभ्यां] चलन और स्थिरताके कारण धर्म अधर्म द्रव्योंके गुणोंसे [अवकाशं] जगह [ददाति] देता है [तदा] तो [ऊर्ध्वंगतिप्रधानाः] ऊर्ध्वगतिवाले प्रसिद्ध जो [सिद्धाः] मुक्त जीव हैं वे [तत्र] सिद्धक्षेत्रमें [कथं] कैसे [तिष्ठन्ति] रहते हैं ? **भावार्थ**—यदि गमन-स्थितिका

जीवपुद्गलानाम् ।

सर्वोत्कृष्टस्वाभाविकोर्ध्वगतिपरिणता भगवंतः सिद्धा बहिरङ्गांतरङ्गसाधनसामग्र्यां सत्यामपि कुतस्तत्राकाशे तिष्ठंत इति ॥ ९२ ॥

स्थितिपक्षोपन्यासोऽयम् ;—

जह्मा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
तह्मा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥९३॥

यस्मादुपरिस्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं ।
तस्माद्गमनस्थानमाकाशे जानीहि नास्तीति ॥९३॥

यतो गत्वा भगवंतः सिद्धाः लोकोपर्यवतिष्ठंते, ततो गतिस्थितिहेतुत्वमाकाशे नास्तीति निश्चेतव्यम् । लोकालोकावच्छेदकौ धर्माधर्मावेव गतिस्थितिहेतू मंतव्याविति ॥९३॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे हेतूपन्यासोऽयम् ;—

जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं ।
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी ॥९४॥

लोकाद्बहिर्भागेप्याकाशं तिष्ठति तत्र किं न गच्छंतीति भावार्थः ॥ ९२ ॥ अथ स्थितपक्षं प्रतिपादयति;—यस्मादुपरि स्थानं सिद्धानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं तस्माद्गमनस्थानमाकाशे नास्ति जानीहीति । तथाहि—यस्मात्पूर्वगाथायां भणितं लोकाग्रेऽवस्थानं । केषां ? अंजनसिद्धपादुकासिद्धगुटिकासिद्धदिग्विजयसिद्धखङ्गसिद्धादिलौकिकसिद्धविलक्षणानां सम्यक्त्वाद्यष्टगुणांतर्भूतनिर्नामनिर्गोत्रामूर्तत्वाद्यनंतगुणलक्षणानां सिद्धानां तस्मादेव ज्ञायते नभसि गतिस्थितिकारणं नास्ति किंतु धर्माधर्मादेव गतिस्थित्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥ ९३ ॥ अथाकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वाभावे साध्ये पुनरपि कारणं कथयति;—जदि हवदि यदि चेद्भवति । स कः ? गमण-

---

कारण आकाशको ही मान लिया जाय तो धर्म अधर्मका अभाव होनेसे सिद्ध परमेष्ठीका अलोकमें भी गमन होगा, इसलिये धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । उनसे ही लोककी मर्यादा है । लोकसे आगे गमनस्थिति नहीं है ॥ ९२ ॥ आगे लोकाग्रमें सिद्धोंकी थिरता दिखाते हैं;—[जिनवरैः] वीतराग सर्वज्ञ देवोंने [यस्मात्] जिस कारणसे सिद्धानां सिद्धोंका [स्थानं] निवासस्थान [उपरि] लोकके ऊपर [प्रज्ञप्तं] कहा है [तस्मात्] इस कारणसे [आकाशे] आकाश द्रव्यमें [गमनस्थानं] गतिस्थिति निमित्त गुण [नास्ति] नहीं है । [इति] यह [जानीहि] हे शिष्य ! तू जान । भावार्थ—यदि सिद्धपरमेष्ठीका गमन अलोकाकाशमें होता तो आकाशका गुण गतिस्थिति निमित्त होता, सो नहीं है । गतिस्थितिनिमित्त गुण धर्म अधर्म द्रव्यमें ही है, क्योंकि धर्म अधर्म द्रव्य लोकाकाशमें हैं आगे नहीं हैं, यही संक्षेप अर्थ जानो ॥ ९३ ॥ आगे आकाश गतिस्थितिमें निमित्त क्यों नहीं है सो दिखाते हैं;—[यदि] यदि [आकाशं] आकाश द्रव्य [तेषां]

यदि भवति गमनहेतुराकाशं स्थानकारणं तेषां ।
प्रसजत्यलोकहानिर्लोकस्य चांतपरिवृद्धिः ॥ ९४ ॥

नाकाशं गतिस्थितिहेतुः लोकालोकसीमव्यवस्थायास्तथोपपत्तेः । यदि गतिस्थित्योराकाशमेव निमित्तमिष्येत्, तदा तस्य[1] सर्वत्र सद्भावाज्जीवपुद्गलानां गतिस्थित्योर्निःसीमत्वात् प्रतिक्षणमलोको हीयते । पूर्वं पूर्वं व्यवस्थाप्यमानश्चांतो[2] लोकस्योत्तरोत्तरपरिवृद्ध्या विघटते । ततो न तत्र[3] तद्धेतुरिति[4] ॥ ९४ ॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वनिरासव्याख्योपसंहारोऽयम् —

तह्मा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥९५॥

हेदू गमनहेतुः । किं ? आयासं आकाशं, न केवलं गमनहेतुः ठाणकारणं स्थितिकारणं । केषां ? तेसिं तेषां जीवपुद्गलानां । तदा किं दूषणं भवति ? पसयदि प्रसजति प्राप्नोति । सा का ? अलोगहाणी अलोकहानिः, न केवलमलोकहानिः लोगस्स य अंतपरिवड्ढी लोकस्य चांतपरिवृद्धिरिति । तद्यथा । यद्याकाशं गतिस्थित्योः कारणं च भवति तदा तस्याकाशस्य लोकवहिर्भागेपि सद्भावात्तत्रापि जीवपुद्गलानां गमनं भवति ततश्चालोकस्य हानिर्भवति लोकांतस्य तु वृद्धिर्भवति न च तथा, तस्मात्कारणात् ज्ञायते नाकाशं स्थितिगत्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥ ९४ ॥ अथाकाशस्य गतिस्थितिकारणनिराकरणव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते;—

उन जीवपुद्गलोंको [गमनहेतुः] गमन करनेके लिये सहकारी कारण तथा [स्थानकारणं] स्थितिमें सहकारी कारण [भवति] हो ['तदा'] तो [अलोकहानिः] अलोकाकाश के नाशका [प्रसजति] प्रसंग आता है [च] और [लोकस्य] लोकके [अंतपरिवृद्धिः] अंतकी (पूर्णताकी) वृद्धि होती है । भावार्थ— आकाश गतिस्थितिका कारण नहीं है, क्योंकि यदि आकाश कारण हो जाय तो लोक अलोककी मर्यादा (हद) नहीं रहेगी अर्थात् सर्वत्र ही जीव पुद्गलकी गतिस्थिति हो जायगी । इसलिये लोक-अलोककी मर्यादाका कारण धर्म अधर्म द्रव्य ही है । आकाश द्रव्यमें गतिस्थिति गुणका अभाव है । यदि ऐसा न होता तो अलोकाकाशका अभाव हो जाता और लोकाकाश असंख्यातप्रदेश प्रमाणवाले धर्म अधर्म द्रव्योंसे अधिक हो जाता अर्थात् समस्त अलोकाकाशमें जीव-पुद्गल फैल जाते । अतएव गतिस्थिति गुण आकाशका नहीं है, किंतु धर्म अधर्म द्रव्यका है । जहां तक ये दोनों द्रव्य अपने असंख्यात प्रदेशोंसे स्थित हैं वहाँ तक लोकाकाश है और वहीं तक गमनस्थिति है ॥ ९४ ॥ आगे आकाशमें गति-स्थितिका कारण गुण नहीं है, सो संक्षेपमें बताते हैं:—

१ आकाशस्य. २ लोकस्यांतो. ३ आकाशे. ४ गमनस्थित्योः कारण न ।

तस्माद्धर्म्माधर्म्मौ गमनस्थितिकारणे नाकाशं ।
इति जिनवरैः भणितं लोकस्वभावं शृण्वंताम् ॥९५॥

धर्माधर्मावेव गतिस्थितिकारणे नाकाशमिति ॥ ९५ ॥

धर्माधर्मलोकाकाशानामवगाहवशादेकत्वेऽपि वस्तुत्वेनान्यत्वमत्रोक्तम्;—

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।
पुधगुवलद्धिविसेसा करंति एगत्तमण्णत्तं ॥९६॥

धर्माधर्माकाशान्यपृथग्भूतानि समानपरिमाणानि ।
पृथगुपलब्धिविशेषाणि कुर्वंत्येकत्वमन्यत्वं ॥ ९६ ॥

धर्माधर्मलोकाकाशानि हि समानपरिमाणत्वात्सहावस्थानमात्रेणैवैकत्वमाञ्जि । वस्तु-

---

तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे न चाकाशं इति जिनवरैर्भणितं । केषां संबन्धित्वेन ? भव्यानां । किं कुर्वंतां । समवशरणे लोकस्वभावं शृण्वतामिति भावार्थः ॥ ९५ ॥ एवं धर्माधर्मौ गतिस्थित्योः कारणं न चाकाशमिति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतं । अथ धर्माधर्माकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वाद्व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेन भिन्नत्वं दर्शयति;—**धम्माधम्मागासा** धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याणि भवन्ति । किंविशिष्टानि ? **अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा** व्यवहारनयेनापृथग्भूतानि तथा समानपरिमाणानि च । पुनश्च किंरूपाणि ? **पुधगुवलद्धिविसेसा** निश्चयेन पृथग्रूपेणोपलब्धविशेषाणि । इत्थंभूतानि संति किं कुर्वन्ति ? **करेंति** कुर्वन्ति **एयत्तमण्णत्तं** व्यवहारेणैकत्वं निश्चयेनान्यत्वं चेति । तथाहि—यथायं जीवः पुद्गलादि-

---

[तस्मात] इसलिये [धर्माधर्म्मौ] धर्म अधर्म द्रव्य [गमनस्थितिकारणे] गमन और स्थितिमें निमित्त-कारण हैं [आकाशं] आकाश गमनस्थितिमें कारण [न] नहीं है [इति] इस प्रकार [जिनवरैः] जिनेश्वर वीतराग सर्वज्ञने [लोकस्वभावं] लोकके स्वभावको [शृण्वतां] सुनने वाले जीवोंको [भणितं] कहा है ॥ ९५ ॥ आगे धर्म, अधर्म, आकाश ये तीनों ही द्रव्य एक क्षेत्रावगाहसे एक हैं, परंतु निजस्वरूपसे तीनों पृथक् पृथक् हैं, ऐसा कहते हैं;—[धर्म्माधर्म्माकाशानि] धर्म, अधर्म और लोकाकाश ये तीन द्रव्य व्यवहार नयकी अपेक्षा [अपृथग्भूतानि] एकक्षेत्रावगाही हैं अर्थात् जहाँ आकाश है वहां ही धर्म अधर्म ये दोनों द्रव्य हैं । [समानपरिमाणानि] और उपरोक्त तीनों द्रव्य समान असंख्यात प्रदेश वाले हैं तथा [पृथगुपलब्धिविशेषाणि] निश्चयनयकी अपेक्षा भिन्न भिन्न भेद वाले हैं । अर्थात् निज स्वभावसे टंकोत्कीर्ण अपनी जुदी जुदी सत्ता लिये हुये हैं । अत एव ये तीनों ही द्रव्य [एकत्वं] व्यवहारनयकी अपेक्षा एकक्षेत्रावगाही हैं, इसलिये एकभावको

तस्तु व्यवहारेण गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वरूपेण निश्चयेन विभक्तप्रदेशत्वरूपेण विशेषेण पृथगुपलभ्यमानेनान्यत्वभाञ्ज्येव भवंतीति ॥९६॥ इत्याकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

अथ चूलिका । अत्र द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं चोक्तम् ;—

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥ ९७ ॥

आकाशकालजीवा धर्माधर्मौ च मूर्तिपरिहीनाः ।
मूर्तं पुद्गलद्रव्यं जीवः खलु चेतनस्तेषु ॥ ९७ ॥

स्पर्शरसगंधवर्णसद्भावस्वभावं मूर्तं । स्पर्शरसगंधवर्णाभावस्वभावममूर्तं, चैतन्यसद्भावस्वभावं चेतनं । चैतन्याभावस्वभावमचेतनं । तत्रामूर्तमाकाशं, अमूर्तः कालः

पंचद्रव्यैः सह शेषजीवांतरैश्चैकक्षेत्रावगाहित्वाद्व्यवहारेणैकत्वं करोति निश्चयेन तु समस्तवस्तुगतानंतधर्मयुगपत्प्रकाशेन परमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणेन भिन्नत्वं च तथा धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याण्येकक्षेत्रावगाहेनाभिन्नत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चोपरितासद्भूतव्यवहारेण परस्परमेकत्वं कुर्वन्ति निश्चयनयेन गतिस्थित्यवगाहरूपस्वकीयस्वकीयलक्षणैर्नानात्वं चेति सूत्रार्थः ॥ ९६ ॥ एवं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकत्वान्यत्वकथनरूपेण तृतीयस्थले गाथासूत्रं गतं । इति पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्यानरूपः सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः । तदनंतरमष्टगाथापर्यंतं पंचास्तिकायषड्द्रव्यचूलिकाव्याख्यानं करोति । तत्र गाथाष्टकमध्ये चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयास" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं, पुनश्च प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तत्वकथनमुख्यत्वेन "जे खलु इंदियगेज्झा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नवजीर्णपर्यायादिस्थितिरूपो व्यवहारकालः जीवपुद्गलादीनां पर्यायपरिणतेः सहकारिकारणभूतः कालाणुरूपो निश्चयकाल इति कालद्वयव्याख्यानमुख्यत्वेन "कालो परिणामभवो" इत्यादि गाथाद्वयं, तस्यैव कालस्य द्रव्यलक्षणसंभवात् द्रव्यत्वं द्वितीयादिप्रदेशाभावादकायत्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "एदे कालागासा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ पंचास्तिकायांतर्गतस्य केवलज्ञानदर्शनरूपशुद्धजीवास्तिकायस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरिणतिकाले निश्चयमोक्षमार्गभूतस्य

और [अन्यत्वं] निश्चयनयकी अपेक्षा ये तीनों अपनी जुदी जुदी सत्ताके द्वारा भेदभावको [कुर्वन्ति] करते हैं। इस प्रकार इन तीनों द्रव्योंके व्यवहार निश्चय नयसे अनेक भेद जानो ॥ ९६ ॥ यह आकाशद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ । आगे द्रव्योंके मूर्त्तत्व, अमूर्त्तत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व इस प्रकार चार भाव दिखाते हैं;—[आकाशकालजीवाः] आकाशद्रव्य कालद्रव्य और जीवद्रव्य [च] और [धर्म्माधर्म्मौ] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [मूर्तिपरिहीनाः] स्पर्श, रस,

अमूर्तः स्वरूपेण जीवः पररूपावेशान्मूर्तोऽपि, अमूर्तो धर्मः, अमूर्तोऽधर्मः, मूर्तः पुद्गल एवैक इति । अचेतनमाकाशं, अचेतनः कालः, अचेतनो धर्मः, अचेतनोऽधर्मः, अचेतनः पुद्गलः, चेतनो जीव एवैक इति ॥ ९७ ॥

अत्र सक्रियत्वनिष्क्रियत्वमुक्तम्;—

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा ।
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥९८॥

जीवाः पुद्गलकायाः सह सक्रिया भवन्ति न च शेषाः ।
पुद्गलकरणा जीवाः स्कंधाः खलु कालकरणास्तु ॥ ९८ ॥

प्रदेशांतरप्राप्तिहेतुः परिस्पंदनरूपपर्यायः क्रिया । तत्र सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः जीवाः । सक्रिया बहिरंगसाधनेन सहभूताः पुद्गलाः । निष्क्रियमाकाशं, निष्क्रियो

भावनाफलप्रतिपादनरूपेण "एवं पवयणसारं" इत्यादि गाथाद्वयं । इत्यष्टगाथाभिः षट्स्थलैश्चूलिकायां समुदायपातनिका । तद्यथा । द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं प्रतिपादयति;—स्पर्शरसगंधवर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्ता भवन्ति । ते के ? आकाशकालजीवधर्माधर्माः, किंतु जीवो यद्यपि निश्चयेनामूर्ताखंडैकप्रतिभासमयत्वादमूर्तस्तथापि रागादिरहितसहजानंदैकस्वभावात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं मूर्तं कर्म तत्संसर्गाद्व्यवहारेण मूर्तोपि भवति स्पर्शरसगंधवर्णवत्त्वान्मूर्तं पुद्गलद्रव्यं संशयादिरहितत्वस्वपरपरिच्छित्तिसमर्थानंतचैतन्यपरिणतत्वाज्जीवः खलु चेतकस्तेषु स्वपरप्रकाशकचैतन्याभावात् शेषाण्यचेतनानीति भावार्थः ॥ ९७ ॥ एवं चेतनाचेतनमूर्तामूर्तप्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासूत्रं गतं । अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वं कथयति;—जीवाः पुद्गलकाया सह सक्किरिया हवंति सक्रिया भवंति । कथं ? सह । सह कोऽर्थः ? बहिरंगसहकारिकारणैः सहिताः । ण य सेसा न च जीवपुद्गलाभ्यां शेषद्रव्याणि सक्रियाणि । जीवानां सक्रियत्वे बहिरंगनिमित्तं कथ्यते पोग्गलकरणा जीवा मनोवचनकाय-

---

गंध, वर्ण इन चार गुणरहित अमूर्तीक हैं । [पुद्गलद्रव्यं] पुद्गलद्रव्य एक [मूर्त्तं] मूर्तीक है अर्थात् स्पर्शरसगंधवर्णवान् है । [तेषु] उनमें से [जीवः] जीवद्रव्य [खलु] निश्चयसे [चेतनः] ज्ञानदर्शनरूप चेतन है । और अन्य पांच द्रव्य-धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये अचेतन हैं ॥ ९७ ॥ आगे इनही षड्द्रव्योंकी सक्रिय निष्क्रिय अवस्था दिखाते हैं;—[जीवाः] जीवद्रव्य [पुद्गलकायाः] पुद्गलद्रव्य [सह सक्रियाः] निमित्तभूत परद्रव्यकी सहायतासे क्रियावंत [भवन्ति] होते हैं । [च] और [शेषाः] शेष चार द्रव्य क्रियावंत [न] नहीं हैं । सो आगे क्रियाका कारण विशेषतासे दिखाते हैं कि [जीवाः] जीवद्रव्य [पुद्गलकरणाः] पुद्गलका निमित्त पाकर क्रियावंत होते हैं । [तु]

---

१ स्वभावेन. २ कर्मनोकर्मसंयोगात् ।

धर्मः, निष्क्रियोऽधर्मः, निष्क्रियः कालः । जीवानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्गसाधनं कर्मनोकर्मोपचयरूपाः पुद्गला इति । ते[1] पुद्गलकरणाः । तदभावान्निःक्रियत्वं[2] सिद्धानां । पुद्गलानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्गसाधनं परिणामनिर्वर्तकः[3] काल इति ते कालकरणाः । नच कर्मादीनामिव कालस्याभावः । ततो न सिद्धानामिव निष्क्रियत्वं पुद्गलानामिति ॥९८॥

मूर्तामूर्तलक्षणाख्यानमेतत् ;—

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं होंति ते मुत्ता ।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥९९॥

व्यापाररूपक्रियापरिणतैर्निःक्रियनिर्विकारशुद्धात्मानुभूतिभावनाच्युतैर्जीवैर्ये समुपार्जिताः कर्मनोकर्मपुद्गलास्त एव करणं कारणं निमित्तं येषां ते जीवाः पुद्गलकरणा भण्यंते खंदा स्कंधाः स्कंधशब्देनात्र स्कंधाणुभेदभिन्नाद्द्विधा पुद्गला गृह्यंते । ते च कथंभूताः ? सक्रियाः । कैः कृत्वा ? कालकरणेहिं परिणामनिर्वर्तककालाणुद्रव्यैः खलु स्फुटं । अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मक्षये जाते कर्मनोकर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात् ? कालस्य सर्वदैव वर्णवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्तः विद्यमानत्वादिति भावार्थः ॥ ९८ ॥ एवं सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ पुनरपि प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपं कथ-

---

और जो [स्कंधाः] पुद्गलस्कंध हैं वे [खलु] निश्चयसे [कालकरणाः] कालद्रव्यके निमित्तसे क्रियावंत होकर नाना प्रकारकी अवस्थाको धारण करते हैं । भावार्थ— एक प्रदेशसे प्रदेशांतरमें गमन करनेका नाम क्रिया है । षट्द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य प्रदेशसे प्रदेशांतरमें गमन करते हैं और कंपरूप अवस्थाको धारण करते हैं इसलिये क्रियावंत कहे जाते हैं । और शेष चार द्रव्य निष्क्रिय, निष्कम्प हैं । जीव द्रव्यकी क्रियामें निमित्त बहिरंगमें कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल हैं । इनकी ही संगतिसे जीव अनेक विकाररूप होकर परिणमता है । और जब काल पाकर पुद्गलमयी कर्म नोकर्मका अभाव होता है तब साहजिक निष्क्रिय निष्कंप स्वाभाविक अवस्थारूप सिद्ध पर्यायको धारण करता है । इसकारण पुद्गलका निमित्त पाकर जीव क्रियावान् जानो । और कालका बहिरंग कारण पाकर पुद्गल अनेक स्कंधरूप विकारको धारण करता है । इसकारण काल पुद्गलकी क्रियामें सहकारी कारण जानो । परंतु इतना विशेष है कि जीवद्रव्यकी भांति पुद्गल निष्क्रिय कभी भी नहीं होता । जीव शुद्ध होने के बाद क्रियावान् किसी कालमें भी नहीं होगा । पुद्गलका यह नियम नहीं है । सदा क्रियावान् परसहायसे रहता है ॥ ९८ ॥ आगे मूर्त-अमूर्तका लक्षण कहते हैं;—[ये] जो [जीवैः]

---

१ जीवाः. २ पुद्गलकरणाभावात्. ३ निष्पादकः. ४ अत्र यथा शुद्धात्माऽनुभूतिबलेन कर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निष्क्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात्कालस्यैव सर्वत्रैव विद्यमानत्वादित्यर्थः ।

ये खलु इन्द्रियग्राह्या विषया जीवैर्भवन्ति ते मूर्ताः ।
शेषं भवत्यमूर्तं चित्तमुभयं समाददाति ॥ ९९ ॥

इह हि जीवैः[1] स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्भिरिन्द्रियैस्तद्विषयभूताः स्पर्शरसगंधवर्णस्वभावा अर्था गृह्यंते । श्रोत्रेन्द्रियेण तु त[3] एव तद्विषयहेतुभूतशब्दाकारपरिणता गृह्यंते । ते कदाचित्स्थूलस्कंधत्वमापन्नाः कदाचित्सूक्ष्मत्वमापन्नाः कदाचित्परमाणुत्वमापन्नाः इन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावाद् गृह्यमाणा अगृह्यमाणा वा मूर्ता इत्युच्यंते शेषमितरत् समस्तमप्यर्थसंजातं स्पर्शरसगंधवर्णाभावस्वभावमिन्द्रियग्रहणयोग्यताया अभावादमूर्तमित्यु-

यते;—जे खलु इंदियगेज्झा विसया ये खलु इन्द्रियैः करणभूतैर्ग्राह्या विषयाः कर्मतापन्नाः । कैः ? कर्तृभूतैः । जीवेहिं विषयसुखानंदरतैर्नीरागनिर्विकल्पनिजानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादच्युतैर्बहिर्मुखजीवैः होंति ते मुत्ता भवन्ति ते मूर्ता विषयातीतस्वाभाविकसुखस्वभावात्मतत्त्वविपरीतविषयास्ते च सूक्ष्मत्वेन केचन यद्यपीन्द्रियविषयाः वर्तमानकाले न भवन्ति तथापि कालांतरे भविष्यंतीतीन्द्रियग्रहणयोग्यतासद्भावादिन्द्रियग्रहणयोग्या भण्यंते सेसं हवदि अमुत्तं अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखादिगुणाधारं यदात्मद्रव्यं तत्प्रभृति पंचद्रव्यरूपं पुद्गलादन्यत् यच्छेषं तद्भवत्यमूर्तं चित्तं उभयं समादियदि चित्तमुभयं समाददाति । चित्तं हि मतिश्रुतज्ञा-

जीवोंसे [खलु] निश्चयसे [इन्द्रियग्राह्याः] इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करने योग्य [विषयाः] पुद्गलजनित पदार्थ हैं [ते] वे [मूर्त्ताः] मूर्त्तीक [भवन्ति] होते हैं [शेषं] पुद्गलजनित पदार्थोंसे जो भिन्न है सो [अमूर्तं] अमूर्त्तीक [भवति] होता है। अर्थात्—इस लोकमें जो स्पर्श-रस-गंध वर्णवंत पदार्थ स्पर्शन जीभ नासिका नेत्र इन चारों इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जांय और जो कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्दाकार परिणत पदार्थ ग्रहण किये जांय और जो पुद्गल किसी कालमें स्थूल स्कंधभाव परिणत हैं और जो पुद्गलस्कंध किसही काल सूक्ष्मभाव परिणत हैं और किसही काल जो पुद्गल, परमाणुरूप परिणत हैं वे सबही मूर्त्तीक कहलाते हैं। कोई-एक सूक्ष्मभाव परिणतिरूप पुद्गलस्कंध अथवा परमाणु यद्यपि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आते तथापि इन पुद्गलोंमें ऐसी शक्ति है कि यदि वे स्थूलताको धारण करें तो इन्द्रियग्रहण करने योग्य होते हैं। अतएव कैसी भी सूक्ष्मताको धारण करें, सब इन्द्रियग्राह्य ही कहे जाते हैं। और जीव धर्म अधर्म आकाश काल ये पांच पदार्थ हैं वे स्पर्श रस गंध वर्ण गुणसे रहित हैं, क्योंकि इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण करनेमें नहीं आते। इसीलिये इनको अमूर्त्तीक कहते हैं। [चित्तं] मन इन्द्रिय [उभयं] मूर्त्तीक अमूर्त्तीक दोनों प्रकारके पदार्थोंको [समाददाति] ग्रहण करता है। अर्थात् मन अपने विचारसे निश्चित पदार्थको जानता है। मन जब पदार्थोंको ग्रहण करता है तब पदार्थमें

१ कर्तृभूतैः. २ करणभूतैः. ३ अर्थाः ४ श्रोत्रेन्द्रियविषयभूतशब्दाकारपरिणताः. ५ विषयाः अर्थाः ।

च्यते । चित्तग्रहणयोग्यतासद्भावभाग्भवति तदुभयमपि चित्तं ह्यनियतविषयमप्राप्यकारि मतिश्रुतज्ञानसाधनीभूतं मूर्तममूर्तं च समाददातीति ॥ ९९ ॥ इति चूलिका समाप्ता ।

अथ कालद्रव्यव्याख्यानम् । व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपाख्यानमेतत्;—

कालो परिणामभवो परिणामो दव्वकालसंभूदो ।
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥१००॥

कालः परिणामभवः परिणामो द्रव्यकालसंभूतः ।
द्वयोरेष स्वभावः कालः क्षणभङ्गुरो नियतः ॥१००॥

तत्र क्रमानुपाती समयाख्यः पर्यायो व्यवहारकालः । तदाधारभूतं द्रव्यं निश्चयकालः । तत्र व्यवहारकालो निश्चयकालपर्य्यायरूपोपि जीवपुद्गलानां परिणामेनावच्छिद्यमानत्वात्तत्परिणामभव इत्युपगीयते । जीवपुद्गलानां परिणामस्तु बहिरङ्गनिमित्तभूतद्रव्यकालसद्भावे सति संभूतत्वाद्द्रव्यकालसंभूत इत्यभिधीयते । तत्रेदं तात्पर्यं । व्यवहार-

नयोरुपादानकारणभूतमनियतविषयं च तच्च श्रुतज्ञानस्वसंवेदनज्ञानरूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरूपपरमागमसंज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभयपरिच्छित्तिविषये व्याप्तिज्ञानरूपेण परोक्षमपि केवलज्ञानसदृशमित्यभिप्रायः । तथा चोक्तं । "सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो । सुदणाणं च परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं" ॥ ९९ ॥ एवं प्रकारांतरेण मूर्तामूर्तस्वरूपकथनगाथा गता । अथ व्यवहारकालस्य निश्चयकालस्य च स्वरूपं व्यवस्थापयति;—कालो समयनिमिषघटिकादिवसादिरूपो व्यवहारकालः । स च कथंभूतः ? परिणामभवो मंदगतिरूपेणाणोरण्वंतरव्यतिक्रमणं नयनपुटविघटनं जलभाजनहस्तविज्ञानरूपपुरुषचेष्टितं दिनकरबिंबागमनमित्येवं स्वभावः पुद्गलद्रव्यक्रियापर्यायरूपः परिणामस्तेन व्यज्यमानत्वात्प्रकटीक्रियमाणत्वाद्धेतोर्व्यवहारेण पुद्गलपरिणामभव इत्युपनीयते, परमार्थेन तु कालाणुद्रव्यरूपनिश्चयकालस्य पर्यायः परिणामो दव्वकालसंभूदो अणोरण्वंतरव्यतिक्रमणप्रभृतिपूर्वो-

नहीं जाता, किंतु आप ही संकल्परूप होकर वस्तुको जानता है । मतिश्रुतज्ञानका मन ही साधन है, इसलिये मन अपने विचारोंसे मूर्त्त अमूर्त्त दोनों प्रकारके पदार्थोंका ज्ञाता है । यह चूलिकारूप संक्षिप्त व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ ९९ ॥ आगे कालद्रव्यका व्याख्यान किया जाता है, उसमें पहिले व्यवहार और निश्चयकालका स्वरूप दिखाया जाता है;—[कालः] व्यवहारकाल [परिणामभवः] जीव-पुद्गलोंके परिणामसे उत्पन्न है । और [परिणामः] जीव पुद्गलका परिणाम [द्रव्यकालसंभूतः] निश्चयकालाणुरूप

१ मूर्त्तामूर्त्तं. २ यथा स्पर्शनेन्द्रियस्य स्पर्शः, रसनेन्द्रियस्य रसः, घ्राणेन्द्रियस्य गंधश्चक्षुरिन्द्रियस्य रूपं कर्णेन्द्रियस्य शब्दः विषयस्तथा चित्तस्य मनसः न नियतविषयोऽत एव चित्तमनियतविषयात्मकम्. ३ यथा स्पर्शरसघ्राणकर्णेन्द्रियाणि प्राप्यकारीणि तथा चित्तं प्राप्यकारि न, चक्षुरिन्द्रियवत् ।

कालस्य द्रव्यास्तिकायत्वविधिप्रतिषेधविधानमेतत् ;—

एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा ।
लब्भंति दव्वसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥ १०२ ॥

एते कालाकाशे धर्माधर्मौ च पुद्गला जीवाः ।
लभंते द्रव्यसंज्ञां कालस्य तु नास्ति कायत्वं ॥ १०२ ॥

यथा खलु जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि सकलद्रव्यलक्षणसद्भावाद्द्रव्यव्यपदेशभाञ्जि भवन्ति, तथा कालोऽपि । इत्येवं षड्द्रव्याणि । किंतु यथा जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानां द्व्यादिप्रदेशलक्षणत्वमस्ति अस्तिकायत्वं, न तथा लोकाकाशप्रदेशसंख्यानामपि कालाणूनामेकप्रदेशत्वादस्त्यस्तिकायत्वम् । अत एव च पञ्चास्तिकायप्रकरणे न हीह मुख्यत्वेनोपन्यस्तः

विवक्षितकल्पनाभेदरूपो व्यवहारकालो भवतीति ॥ १०१ ॥ एवं निर्विकारनिजानंदसुस्थितचिच्चमत्कारमात्रभावनारतानां भव्यानां वहिरंगकाललब्धिभूतस्य निश्चयव्यवहारकालस्य निरूपणमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतं । अथ कालस्य द्रव्यसंज्ञाविधानं कायत्वनिषेधं च प्रतिपादयति;—एदे एते प्रत्यक्षीभूताः **कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा** कालाकाशधर्माधर्मपुद्गलजीवाः कर्तारः **लब्भंति** लभंते । कां । **दव्वसण्णं** द्रव्यसंज्ञां । कस्मादिति चेत् । सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायलक्षणं चेति द्रव्यपीठिकाकथितक्रमेण द्रव्यलक्षणत्रययोगात् **कालस्स य णत्थि कायत्तं** कालस्य च नास्ति कायत्वं । तदपि कस्मात् ।

अनेक भेद होते हैं । इससे यह वात सिद्ध हुई कि-निश्चयकाल अविनाशी है, व्यवहारकाल विनाशीक है ॥ १०१ ॥ आगे कालकी द्रव्यसंज्ञा है कायसंज्ञा नहीं है, ऐसा कहते हैं;—[एते] ये [कालाकाशे] काल और आकाशद्रव्य [च] और [धर्माधर्मौ] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [पुद्गलाः] पुद्गलद्रव्य [जीवाः] जीवद्रव्य [द्रव्यसंज्ञां] द्रव्यनामको [लभंते] पाते हैं । भावार्थ—जिस प्रकार धर्म अधर्म आकाश पुद्गल जीव इन पांचों द्रव्योंमें गुणपर्याय हैं और जैसा इनका सद्द्रव्य लक्षण है तथा इनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है वैसे ही गुणपर्यायादि द्रव्यके लक्षण कालमें भी हैं, इस कारण कालका नाम भी द्रव्य है । कालको और अन्य पांचों द्रव्योंको द्रव्यसंज्ञा तो समान है परंतु धर्मादि पांच द्रव्योंकी कायसंज्ञा है, क्योंकि काय उसको कहते हैं जिसके बहुत प्रदेश होते हैं । धर्म अधर्म आकाश जीव इन चारों द्रव्योंके असंख्यात प्रदेश हैं, पुद्गलके परमाणु यद्यपि एकप्रदेशी हैं तथापि पुद्गलोंमें मिलनशक्ति है इस कारण पुद्गल संख्यात असंख्यात तथा अनंतप्रदेशी हैं । [कालस्य तु] कालद्रव्यके तो [कायत्वं] वहुप्रदेशरूप कायभाव [नास्ति] नहीं है । भावार्थ—कालाणु एकप्रदेशो है लोकाकाशके भी

---

१ कालस्य द्रव्यत्वविधिविधानं दर्शितं । पुनः अस्तिकायत्वप्रतिषेधविधानं दर्शितञ्चात्र सूत्रैः ।

कालः। जीवपुद्गलपरिणामावच्छिद्यमानपर्य्यायत्वेन तत्परिणामान्यथानुपपत्त्याऽनुमीयमान-द्रव्यत्वेनात्रै[1]वांतर्भावितः ॥१०२॥ इति कालद्रव्यव्याख्यानं समाप्तम्।

तदवबोधफलपुरस्सरः पञ्चास्तिकायव्याख्योपसंहारोऽयम्;—

एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥१०३॥

एवं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं विज्ञाय।
यो मुञ्चति रागद्वेषौ स गाहते दुःखपरिमोक्षं ॥ १०३ ॥

न खलु कालकलितपञ्चास्तिकायेभ्योऽन्यत् किमपि सकलेनाऽपि प्र[2]वचनेन प्रतिपा[3]द्यते। ततः प्रवचनसार एवायं पञ्चास्तिकायसंग्रहः। यो हि नामा[4]मुं समस्तवस्तुतत्त्वाभिधायि-

---

विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावशुद्धजीवास्तिकायप्रभृतिपंचास्तिकायानां बहुप्रदेशप्रचयत्वलक्षणं कायत्वं यथा विद्यते न तथा कालाणूनां "लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्का। रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि" इति गाथाकथितक्रमेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयद्रव्याणामपीति। अत्र केवलज्ञानादिशुद्धगुणसिद्धत्वागुरुलघुत्वादिशुद्धपर्यायसहितशुद्धजीवद्रव्याद्न्यद्रव्याणि हेयानीति भावः॥ १०२॥ एवं कालस्य द्रव्यास्तिकायसंज्ञाविधिनिषेधव्याख्यानेन पंचमस्थले गाथासूत्रं गतं। अथ पंचास्तिकायाध्ययनस्य मुख्यवृत्त्या तदंतर्गतशुद्धजीवास्तिकायपरिज्ञानस्य वा फलं दर्शयति;—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **वियाणित्ता** विज्ञाय पूर्वं। कं? **पंचत्थियसंगहं** पंचास्तिकायसंग्रहनामसंज्ञं ग्रंथं। किंविशिष्टं? **पवयणसारं** प्रवचनसारं पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां संक्षेपप्रतिपादकत्वात् मुख्यवृत्त्या परमसमाधिरतानां मोक्षमार्गत्वेन सारभूतस्य शुद्धजीवास्तिकायस्य प्रतिपादकत्वाद्वा द्वादशांगरूपेण विस्तीर्णस्यापि प्रवचनस्य सारभूतं

असंख्यात प्रदेश हैं, असंख्याते ही कालाणु हैं, अतः लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक कालाणु रहता है। इसी कारण इस पंचास्तिकाय ग्रंथमें कालद्रव्य कायरहित होनेके कारण इसका मुख्यरूपसे कथन नहीं किया। यह कालद्रव्य इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित होता है, क्योंकि जीव पुद्गलके परिणमनसे समयादि व्यवहारकाल जाना जाता है। जीव पुद्गलोंके नवजीर्णपरिणामोंके विना व्यवहारकाल नहीं जाना जाता है। यदि व्यवहारकाल प्रगट जाना जाय तो निश्चयकालका अनुमान होता है। इस कारण पंचास्तिकायमें जीव-पुद्गलोंके परिणमनद्वारा कालद्रव्य जाना ही जाता है। कालको इसलिये ही इन पंचास्तिकायोंमें गर्भित जानो। यह कालद्रव्यका व्याख्यान पूरा हुआ॥ १०२॥ अब पंचास्तिकायके व्याख्यानसे ज्ञान-फल होता है सो दिखाते हैं;—[यः] जो निकटभव्य जीव [एवं] पूर्वोक्तप्रकारसे [पञ्चास्तिकायसंग्रहं प्रवचनसारं] पंचास्तिकायके संक्षेपको अर्थात् द्वादशांगवाणीके रहस्यको [विज्ञाय] भले प्रकार जानकर [रागद्वेषौ] इष्ट

---

१ पञ्चास्तिकायमध्ये कालांतरभावः २ सिद्धांतेन. ३ कथ्यते. ४ पञ्चास्तिकायसंग्रहम्।

कालो जीवपुद्गलपरिणामेन निश्चीयते, निश्चयकालस्तु तत्परिणामान्यथानुपपत्त्येति । तत्र क्षणभङ्गी व्यवहारकालः, सूक्ष्मपर्यायस्य[2] तावन्मात्रत्वात् । नित्यो निश्चयकालः स्वगुणपर्यायाधारद्रव्यत्वेन सर्वदैवाऽविनश्वरत्वादिति ॥१००॥

नित्य[3]क्षणिकत्वेन कालविभागख्यापनमेतत् ;—

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥१०१॥

क्तपुद्गलपरिणामस्तु शीतकाले पाठकस्याग्निवत् कुम्भकारचक्रभ्रमणविषयेऽधस्तनशिलावद्बहिरङ्गसहकारिकारणभूतेन कालाणुरूपद्रव्यकालेनोत्पन्नत्वाद्द्रव्यकालसंभूतः **दोण्हं एससहाओ** द्वयोर्निश्चयव्यवहारकालयोरेषः पूर्वोक्तः स्वभावः । स किंरूपः व्यवहारकालः । पुद्गलपरिणामेन व्यज्यमानत्वात्परिणामजन्यः । निश्चयकालस्तु परिणामजनकः **कालो खणभंगुरो**—समयरूपो व्यवहारकालः क्षणभंगुरः **णियदो** स्वकीयगुणपर्यायाधारत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वाद्द्रव्यकालो नित्य इति । अत्र यद्यपि काललब्धिवशेन भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्राप्य जीवो रागादिरहितनित्यानंदैकस्वभावमुपादेयभूतं पारमार्थिकसुखं साधयति तथा जीवस्तस्योपादानकारणं न च काल इत्यभिप्रायः । तथा चोक्तं । आत्मोपादानसिद्धमित्यादिरिति ॥ १०० ॥ अथ नित्यक्षणिकत्वेन पुनरपि कालभेदं दर्शयति;—**कालोत्ति य ववदेसो** काल इति व्यपदेशः संज्ञा । स च

द्रव्यकालसे उत्पन्न है । [द्वयोः] निश्चय और व्यवहार कालका [एषः] यह [स्वभावः] स्वभाव है । [कालः] व्यवहारकाल [क्षणभंगुरः] समय समय विनाशीक है और [नियतः] निश्चयकाल अविनाशी है । **भावार्थ**—जो क्रमसे अतिसूक्ष्म हुआ प्रवर्तित है वह व्यवहारकाल है, और उस व्यवहारकालका जो आधार है वह निश्चयकाल कहलाता है । यद्यपि व्यवहारकाल निश्चयकालका पर्याय है, तथापि जीवपुद्गलके परिणामोंसे वह जाना जाता है । इसलिये जीव पुद्गलोंके नवजीर्णतारूप परिणामोंसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है । और जीव-पुद्गलोंका जो परिणमन है वह वाह्यमें द्रव्यकालके होते हुये समय-पर्याय में उत्पन्न है । इसलिये यह वात सिद्ध हुई कि समयादिरूप जो व्यवहारकाल है वह तो जीव-पुद्गलोंके परिणामोंसे प्रगट किया जाता है और निश्चयकाल समयादि व्यवहारकालमें अविनाभाव निमित्त होनेसे अस्तित्वको धारण करता है, क्योंकि पर्यायसे पर्यायीका अस्तित्व ज्ञात होता है । इनमेंसे व्यवहारकाल क्षणविनश्वर है, क्योंकि पर्यायस्वरूपसे सूक्ष्मपर्याय उतने मात्र ही है जितने कि समयावलिकादि हैं । और निश्चयकाल नित्य है, क्योंकि वह अपने गुण-पर्यायस्वरूप द्रव्यसे सदा अविनाशी है ॥ १०० ॥ आगे कालद्रव्यका स्वरूप नित्यानित्यका भेद करके दिखाया जाता है;—

१ निश्चीयते, २ समयादिरूपस्य. ३ नित्यत्वेन क्षणिकत्वेन नित्यो निश्चयकालः क्षणिको व्यवहारकालः ।

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंस्यपरो दीर्घांतरस्थायी ॥ १०१ ॥

यो हि द्रव्यविशेषः 'अयं कालः, अयं कालः,' इति सदा व्यपदिश्यते स खलु स्वस्य[1] सद्भावम्[2]आवेदयन्[3] भवति नित्यः । यस्तु पुनरुत्पन्नमात्र एव प्रध्वंस्यते स खलु तस्यैव द्रव्यविशेषस्य समयाख्यः पर्य्याय इति । स[4] तूत्संगितक्षणभङ्गोऽप्युपदर्शितस्वसंतानो[5] नयबलाद्दीर्घांतरस्थाय्युपगीयमानो न दुष्यति । ततो न खल्वावलिकापल्योपमसागरोपमादिव्यवहारो विप्रतिपिध्यते । तदत्र निश्चयकालो नित्यः द्रव्यरूपत्वात् । व्यवहारकालः क्षणिकः पर्य्यायरूपत्वादिति ॥ १०१ ॥

किं करोति ? सब्भावपरूवगो हवदि काल इत्यक्षरद्वयेन वाचकभूतेन स्वकीयवाच्यं परमार्थकालसद्भावं निरूपयति । क इव किं निरूपयति ? सिंहशब्द इव सिंहस्वरूपं सर्वज्ञशब्द इव सर्वज्ञस्वरूपमिति । एवं स्वकीयस्वरूपं निरूपयन् कथंभूतो भवति ? णिच्चो यद्यपि काल इत्यक्षरद्वयरूपेण नित्यो न भवति तथापि कालशब्देन वाच्यं यद्द्रव्यकालस्वरूपं तेन नित्यो भवतीति निश्चयकालो ज्ञातव्यः, अवरो अपरो व्यवहारकालः । स च किंरूपः ? उप्पण्णप्पद्धंसी यद्यपि वर्तमानसमयापेक्षयोत्पन्नप्रध्वंसी भवति तथापि पूर्वापरसमयसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन दीहंतरट्ठाई आवलिकापल्योपमसागरोपमादिरूपेण दीर्घांतरस्थायी च घटते, नास्ति दोषः । एवं नित्यक्षणिकरूपेण निश्चयव्यवहारकालो ज्ञातव्यः । अथवा प्रकारांतरेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूपं कथ्यते । तथाहि—अनाद्यनिधनः समयादिकल्पनाभेदरहितः कालाणुद्रव्यरूपेण व्यवस्थितो वर्णादिमूर्तिरहितो निश्चयकालः, तस्यैव पर्यायभूतः सादिसनिधनः समयनिमिषघटिकादि-

---

[च] और [काल इति] काल ऐसा जो [व्यपदेशः] नाम है सो निश्चयकाल [नित्यः] अविनाशी है । भावार्थ—जैसे 'सिंह' शब्द दो अक्षरका है, वह सिंह नामक पदार्थको दिखाने वाला है। जब कोई सिंह शब्द कहे तब ही सिंहका ज्ञान होता है, उसी प्रकार 'काल' इन दो अक्षरोंके कहनेसे नित्य कालपदार्थ जाना जाता है। जिस प्रकार अन्य जीवादि द्रव्य हैं उसी प्रकार एक कालद्रव्य भी निश्चयनयसे है। [अपरः] दूसरा समयरूप व्यवहारकाल [उत्पन्नप्रध्वंसी] उपजता और विनशता है । तथा वह [दीर्घांतरस्थायी] समयोंकी परंपरासे बहुत स्थिरतारूप भी कहा जाता है। भावार्थ—व्यवहारकाल सबसे सूक्ष्म 'समय' नाम वाला है, जो उपजता भी है विनशता भी है और निश्चय कालका पर्याय है । पर्याय उत्पादव्ययरूप सिद्धांतमें कहा गया है । उस समयको अतीत अनागत वर्त्तमानरूप परंपरा ली जाय तो आवली पल्योपम सागरोपम इत्यादि

---

१ स्वकीयस्य. २ अस्तित्वम्. ३ कथयन्सन्नित्यो भवति । अत्र दृष्टांतः । यथा—यो हि अक्षरद्वयवाच्यो सिंहशब्दः स स्वस्य सिंहनाम्नः तिरश्चो सद्भावमस्तित्वमावेदयन् नित्यो भवति. ४ व्यवहारकालः. ५ समयावलिपल्यादिसंतानः, वा क्रमेण समयोत्तरसंतानः ।

नमर्थतोऽर्थितं याऽवबुध्यात्रैव जीवास्तिकायांतर्गतमात्मानं स्वरूपेणात्यंतविशुद्धचैतन्यस्वभावं निश्चित्य परस्परकार्यकारणीभूतानादिरागद्वेषपरिणामकर्मबंधसंततिसमारोपितस्वरूपविकारं तदात्वेऽनुभूयमानमवलोक्य तत्कालोन्मीलितविवेकज्योतिः कर्मबंधसंततिप्रवर्तिकां रागद्वेषपरिणतिमत्येस्यति, स खलु जीर्यमाणस्नेहो जघन्यस्नेहगुणाभिमुखपरमाणुवद्भाविबंधपराङ्मुखः पूर्वबंधात्प्रच्यवमानः शिखितप्तोदकदौस्थ्यानुकारिणो दुःखस्य परिमोक्षं विगाहत इति॥१०३॥

एवं विज्ञाय । किं करोति ? जो मुयदि यः कर्ता मुञ्चति । कौ कर्मतापन्नौ । रायदोसे अनंतज्ञानादिगुणसहितवीतरागपरमात्मनो विलक्षणौ हर्षविषादलक्षणौ भाविरागादिदोषोत्पादककर्मास्रवजनकौ च रागद्वेषौ द्वौ। सो सः पूर्वोक्तः ध्याता गाहदि गाहते प्राप्नोति । कं ? दुक्खपरिमोक्खं निर्विकारात्मोपलब्धिभावनोत्पन्नपरमाल्हादैकलक्षणसुखामृतविपरीतस्य नानाप्रकार-

---

अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति और द्वेषभावको [मुञ्चति] छोड़ता है [सः] वह पुरुष [दुःखपरिमोक्षं] संसारके दुःखोंसे मुक्ति को [गाहते] प्राप्त होता है। भावार्थ—द्वादशांगवाणीके अनुसार जितने सिद्धांत हैं उनमें कालसहित पंचास्तिकायका निरूपण है और किसी जगह कुछ भी छूट नहीं की है, इसलिये इस पंचास्तिकायमें भी यह निर्णय है, इस कारण यह पंचास्तिकाय-प्रवचन भगवानके प्रमाणवचनोंमें सार है। समस्त पदार्थोंका दिखानेवाला जो यह ग्रन्थ समयसार पंचास्तिकाय है इसको जो कोई पुरुष शब्द अर्थसे भलीभांति जानेगा वह पुरुष षड्द्रव्योंमें उपादेयस्वरूप जो आत्मब्रह्म आत्मीय चैतन्यस्वभावसे निर्मल है चित्त जिसका ऐसा निश्चयसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न रागद्वेषपरिणाम आत्मस्वरूपमें विकार उपजानेवाले हैं उनके स्वरूपको जानता है कि ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार जब इसको भेदविज्ञान होता है तब इसके परमविवेकज्योति प्रगट होती है और कर्मबंधनको उपजानेवाली रागद्वेषपरिणति नष्ट हो जाती है, तब इसके आगामी बंधपद्धति भी नष्ट होती है। जैसे परमाणु बंधकी योग्यतासे रहित अपने जघन्य स्नेहभावको परिणमता आगामी बंधसे रहित होता है उसी प्रकार यह जीव रागभावके नष्ट होनेसे आगामी बंधका कर्त्ता नहीं होता, पूर्वबंध अपना रसविपाक देकर खिर जाता है तब यह चतुर्गति दुःखसे निवृत्त होकर मोक्षपदको पाता है। जैसे परद्रव्यरूप अग्निके संबंधसे जल तप्त होता है वही जल काल पाकर तप्त-विकारको छोड़कर स्वकीय शीतलभावको प्राप्त होता है, उसी प्रकार भगवद्वचनको अंगीकार करके

---

१ पदार्थतः. २ कार्यतया. ३ वर्तमानकाले. ४ त्यजति. ५ पूर्वोक्तः जीवः. ६ जीर्यमाणस्नेहो मोहः यस्य एवंभूतः सन् ७ यथा जघन्यस्नेहजघन्यसचिक्कणगुणेन अभिमुखसहितपरमाणुर्न बध्यते पूर्वबंधात्प्रच्यवते च जघन्यसचिक्कणत्वात् । स्नेहस्य जघन्यांशत्वादित्यर्थः. ८ अग्नितप्तोदकं दौस्थ्यं जाज्वल्यमानं तप्तभावं अनुकारि सदृशं जायते तत्सदृशस्य दुःखस्याभावं लभते । तद्यथा जलस्य शीतलस्वभावोऽस्ति परन्तु अग्निसंयोगात्ततरूपं विकारभावं प्राप्नोति । पुनः कर्मबंधवत् यदाऽग्निसंयोगो विघटते तदा शुद्धस्वभावं स्वस्य शीतलस्वभावं लभते एव । तथाहि—यदा कर्मबंधरहितः स आत्मा भवति तदा दुःखस्य अभाव लभते ।

दुःखविमोक्षकरणक्रमाख्यानमेतत्;—

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥ १०४ ॥

ज्ञात्वैतदर्थं तदनुगमनोद्यतो निहतमोहः ।
प्रशमितरागद्वेषो भवति हतपरापरो जीवः ॥ १०४ ॥

एतस्य शास्त्रस्यार्थभूतं शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते । ततस्तमेवानुगंतुमुद्यमते । ततोऽस्य क्षीयते दृष्टिमोहः[1] । ततः स्वरूपपरिचयादुन्मज्जति[2] ज्ञानज्यो-

शारीरमानसरूपस्य चतुर्गतिदुःखस्य परिमोक्षं मोचनं विनाशमित्यभिप्रायः ॥ १०३ ॥ अथ दुःखमोक्षकारणस्य क्रमं कथयति;—मुणिदूण मत्वा विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा तावत् । कं ? एदं इमं प्रत्यक्षीभूतं नित्यानंदैकशुद्धजीवास्तिकायलक्षणं अत्थं अर्थं विशिष्टपदार्थं तमणु तं शुद्धजीवास्तिकायलक्षणमर्थं अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य गमणुज्जुदो गमनोद्यतः तन्मयत्वेन परिणमनोद्यतः णिहदमोहो शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वप्रतिबंधकदर्शनमोहाभावात्तदनंतरं निहतमोहो नष्टदर्शनमोहः । पसमिइदरागदोसो निश्चलात्मपरिणतिरूपनिश्चयचारित्रप्रतिकूलचारित्रमोहोदयाभावात्तदनंतरं प्रशमितरागद्वेषः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वपरयोर्भेदज्ञाने सति शुद्धात्मरुचिरूपे सम्यक्त्वे तथैव शुद्धात्मस्थितिरूपे चारित्रे च सति पश्चात् हवदि भवति । कथंभूतः ? हदपरावरो हतपरापरः । अत्र परमानंदज्ञानादिगुणाधारत्वात्परशब्देन

ज्ञानी जीव कर्मविकारके आतापको नष्ट कर आत्मीक शांत-रस-गर्भित सुखको पाते हैं ॥ १०३ ॥ आगे दुःखोंके नष्ट करनेका क्रम दिखाते हैं अर्थात् किस क्रमसे जीव संसारसे रहित होकर मुक्त होता है सो दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [एतदर्थं] इस ग्रंथके रहस्य शुद्धात्मपदार्थको [ज्ञात्वा] जानकर [तदनुगमनोद्यतः] उस ही आत्मपदार्थमें प्रवीण होनेको उद्यमी [भवति] होता है [स जीवः] वह भेदविज्ञानी जीव [निहतमोहः] नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने, [प्रशमितरागद्वेषः] शांत होकर विला गये हैं रागद्वेष जिसमेंसे, [हतपरापरः] नष्ट किया है पूर्वापर बंध जिसने, ऐसा होकर मोक्षपदका अनुभवी होता है । भावार्थ—यह संसारी जीव अनादि अविद्याके प्रभावसे परभावोंमें आत्मस्वरूपत्व जानता है, अज्ञानी होकर रागद्वेषभावरूप परिणमित होता है । जब काललब्धि पाकर सर्वज्ञवीतरागके वचनोंको अवधारण करता है तब इसके मिथ्यात्वका नाश होता है । भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान-ज्योति प्रगट होती है । तत्पश्चात् चारित्रमोह भी नष्ट होता है । तब सर्वथा संकल्पविकल्पोंके अभावसे स्वरूपमें एकाग्रतासे लीन होता है । आगामी

१ दर्शनमोहः. २ प्रकटीभवति प्रकाशते ।

तिः ततो रागद्वेषौ प्रशाम्यतः । ततः उत्तरः पूर्वश्च बंधो विनश्यति । ततः पुनर्बंध-हेतुत्वाभावात् स्वरूपस्थो नित्यं प्रतपतीति ॥ १०४ ॥

इति समयव्याख्यायां श्रीमदमृतचंद्रसूरिविरचितायामंतर्नीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायवर्णनात्मकः प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ नवपदार्थाधिकारः ॥ २ ॥

"द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन, शुद्धं बुधानामिह तत्त्वमुक्तम् ।
पदार्थभङ्गेन कृतावतारं, प्रकीर्त्यते संप्रति वर्त्म तस्य ॥ १ ॥"

आप्तस्तुतिपुरस्सरा प्रतिज्ञेयम्;—

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं ।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥ १०५ ॥

मोक्षो भण्यते परशब्दवाच्यान्मोक्षादपरो भिन्नः परापरः संसार इति हेतोः विनाशितः परापरो येन स भवति हतपरापरो नष्टसंसारः । स कः ? जीवो भव्यजीवः ॥ १०४ ॥ इति पंचास्तिकायपरिज्ञानफलप्रतिपादनरूपेण षष्ठस्थले गाथाद्वयं गतं । एवं प्रथममहाधिकारमध्ये गाथाष्टकेन षट्भिःस्थलैश्चूलिकासंज्ञोष्टमोऽन्तराधिकारो ज्ञातव्यः । अत्र पंचास्तिकायप्राभृतग्रंथे पूर्वोक्तक्रमेण सप्तगाथाभिः समयशब्दपीठिका, चतुर्दशगाथाभिर्द्रव्यपीठिका, पंचगाथाभिर्निश्चयव्यवहारकालमुख्यता, त्रिपंचाशद्गाथाभिर्जीवास्तिकायव्याख्यानं, दशगाथाभिः पुद्गलास्तिकायव्याख्यानं, सप्तगाथाभिर्धर्माधर्मास्तिकायद्वयविवरणं, सप्तगाथाभिराकाशास्तिकायव्याख्यानं, अष्टगाथाभिश्चूलिकामुख्यत्वमित्येकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टांतराधिकारा गताः ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादनं नाम प्रथमो महाधिकारः समाप्तः ॥ १ ॥

इति ऊर्ध्वं 'अभिवंदिऊण सिरसा" इति इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पंचाशद्गाथापर्यंतं टीकाभिप्रायेणाष्टाधिकचत्वारिंशद्गाथापर्यंतं वा जीवादिनवपदार्थप्रतिपादको द्वितीयमहाधिकारः

बंधका भी निरोध हो जाता है, पिछला कर्मबंध अपना रस देकर खिर जाता है, तब वह ही जीव निर्बंध अवस्थाके धारणपूर्वक मुक्त होकर अनंतकालपर्यंत स्वरूपगुप्त अनंत सुखका भोक्ता होता है ॥ १०४ ॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत पंचास्तिकाय-समयसार ग्रंथकी बालबोधभाषाटीकामें षड्द्रव्यपंचास्तिकायका व्याख्यान नामक प्रथमश्रुतस्कंध पूर्ण हुवा ॥ १ ॥

पूर्वकथनमें केवल मात्र शुद्ध तत्त्वका कथन किया है । अब नव पदार्थके भेद-कथन करके मोक्षमार्ग कहते हैं, जिसमें प्रथम ही भगवान्की स्तुति

---

१ पञ्चास्तिकायव्याख्यायाम्. २ पदार्थविकल्पनेन भेदेन वा विवरणेन. ३ शुद्धात्मतत्त्वस्य ।

अभिवंद्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरं ।
तेषां पदार्थभङ्गं मार्गं मोक्षस्य वक्ष्यामि ॥ १०५ ॥

अमुना हि प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य मूलकर्तृत्वेनापुनर्भवकारणस्य भगवतः परमभट्टारकमहादेवाधिदेवश्रीवर्द्धमानस्वामिनः सिद्धिनिबंधनभूतां तां भावस्तुतिमासूत्र्य, कालकलितपञ्चास्तिकायानां पदार्थविकल्पो मोक्षस्य मार्गश्च वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञात इति ॥१०५॥

प्रारभ्यते । तत्र तु दशांतराधिकारा भवन्ति । तेषु दशाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावन्नमस्कारगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयपर्यंतं व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोतीति प्रथमांतराधिकारे समुदायपातनिका । तथाहि—अन्तिमतीर्थंकरपरमदेवं नत्वा पंचास्तिकायषड्द्रव्यसंबन्धिनं नवपदार्थभेदं मोक्षमार्गं च वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापुरःसरं नमस्कारं करोति;—अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं अभिवंद्य प्रणम्य । केन ? शिरसा । कं ? अपुनर्भवकारणं महावीरं । ततः किं करोमि ? वोच्छामि वक्ष्यामि । कं ? तेसिं पयत्थभंगं तेषां पंचास्तिकायषड्द्रव्याणां नवपदार्थभेदं । न केवलं नवपदार्थभेदं । मग्गं मोक्खस्स मार्गं मोक्षस्येति । तद्यथा । मोक्षसुखसुधारसपानपिपासितानां भव्यानां पारंपर्येणानंतज्ञानादिगुणफलस्य मोक्षकारणं महावीराभिधानमन्तिमजिनेश्वरं रत्नत्रयात्मकस्य प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य प्रतिपादकत्वात्प्रथमत एव प्रमाणमिति गाथापूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोति ग्रंथकारः, तदनंतरमुत्तरार्धेन च शुद्धात्मरुचिप्रतीतिनिश्चलानुभूतिरूपस्याभेदरत्नत्रयात्मकस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य परंपरया कारणभूतं व्यवहारमोक्षमार्गं तस्यैव व्यवहारमोक्षमार्गस्यावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतान्नवपदार्थांश्च प्रतिपादयामीति प्रतिज्ञां च करोति । अत्र यद्यप्यग्रे चूलिकायां मोक्षमार्गस्य विशेषव्याख्यानमस्ति तथापि नवपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थमत्रापि भणितं । कथं संक्षेपसूचनमितिचेत् । नवपदार्थव्याख्यानं तावदत्र प्रस्तुतं । ते च कथंभूताः । व्यवहारमोक्षमार्गे

करते हैं, क्योंकि जिसका वचन प्रमाण है वह पुरुष प्रमाण है, और पुरुष-प्रमाणसे वचनकी प्रमाणता है । मैं—कुन्दकुन्दाचार्य [अपुनर्भवकारणं] मोक्षके कारणभूत [महावीरं] वर्द्धमान—तीर्थंकर भगवान्को [शिरसा] मस्तकद्वारा [अभिवंद्य] नमस्कार करके [मोक्षस्य मार्गं] मोक्षके मार्ग अर्थात् कारणस्वरूप [तेषां] उन षड्द्रव्योंके [पदार्थभङ्गं] नवपदार्थरूप भेदको [वक्ष्यामि] कहूँगा ।

भावार्थ—वर्तमान पंचमकालमें धर्मतीर्थके कर्ता भगवान् परम भट्टारक देवाधिदेव श्रीवर्द्धमानस्वामीकी, मोक्षमार्गकी साधक स्तुति करके मोक्षमार्गके दिखानेवाले षड्द्रव्योंके विकल्प नवपदार्थरूप भेद दिखाने योग्य हैं,

---

१ सूत्रेण ।

मोक्षमार्गस्यैव तावत्सूचनेयम्;—

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रं रागद्वेषपरिहीनं ।
मोक्षस्य भवति मार्गो भव्यानां लब्धबुद्धीनां ॥१०६॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं, चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषापरिहीणम्, मोक्षस्यैव न भावतो [२]बंधस्य, मार्ग एव नामार्गः, भव्यानामेव

विषयभूता इत्यभिप्रायः ॥ १०५ ॥ अथ प्रथमतस्तावन्मोक्षमार्गस्य संक्षेपसूचनां करोति;— सम्मत्तणाणजुत्तं सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव न च सम्यक्त्वज्ञानरहितं चारित्तं चारित्रमेव न चाचारित्रं रागदोसपरिहीणं रागद्वेषपरिहीनमेव न च रागद्वेषसहितं। मोक्खस्स हवदि स्वात्मोपलब्धिरूपस्य मोक्षस्यैव भवति नच शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य, मग्गो अनंतज्ञानादिगुणामौल्यरत्नपूर्णस्य मोक्षनगरस्य मार्ग एव नैवामार्गः भव्वाणं शुद्धात्मस्वभावरूपव्यक्तियोग्यतासहितानां भव्यानामेव न च शुद्धात्मरूपव्यक्तियोग्यतारहितानामभव्यानां लद्धबुद्धीणं लब्धनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपबुद्धीनामेव न च मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपविषयानंदस्वसंवेदनकुबुद्धिसहितानां, क्षीणकषायशुद्धात्मोपलंभे सत्येव भवति न च सकषायाशुद्धात्मोपलंभे भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामष्टविधनियमोत्र द्रष्टव्यः । अन्वयव्यतिरेकस्वरूपं कथ्यते । तथाहि—सति संभवोऽन्वयलक्षणं असत्यसंभवो व्यतिरेकलक्षणं, तत्रोदाहरणं—निश्चयव्यवहारमोक्षकारणे सति

ऐसी श्रीकुन्दकुन्दस्वामीने प्रतिज्ञा की है ॥ १०५ ॥ आगे मोक्षमार्गका संक्षेप कथन करते हैं;—[सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं] सम्यक्त्व अर्थात् श्रद्धान और यथार्थ वस्तुके परिच्छेदन सहित [चारित्रं] आचरण [मोक्षस्य मार्गः] मोक्षका मार्ग [भवति] है । अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोंहीका जब एकबार परिणमन होता है तब ही मोक्षमार्ग होता है । दर्शनज्ञानयुक्त चारित्र कैसा है ? [रागद्वेषपरिहीनं] इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेषरहित समता-रसगर्भित है । ऐसा मोक्षमार्ग किनके होता है ? [लब्धबुद्धीनां] जिनको स्वपरविवेकभेदविज्ञानबुद्धि प्राप्त हुई है और [भव्यानां] जो भव्यजीव मोक्षमार्गके सन्मुख हैं उनके होता है। भावार्थ—चारित्र वही है जो दर्शन-ज्ञानसहित है, दर्शनज्ञानके विना चारित्र सो मिथ्याचारित्र है। जो चारित्र है वही चारित्र है, न कि मिथ्याचारित्र चारित्र होता है। और चारित्र वही है जो रागद्वेषरहित समतारससंयुक्त है। जो कषायरसगर्भित है वह चारित्र नहीं है, संक्लेशरूप है । ऐसा चारित्र सकलकर्मक्षय-

१ स्वात्मोपलब्धिरूपस्य. २ शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य ।

नाभव्यानां, लब्धबुद्धीनामेव नालब्धबुद्धीनां, क्षीणकषायत्वे भवत्येव न कषायसहितत्वे भवतीत्यष्टधा नियमोऽत्र द्रष्टव्यः ॥ १०६ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सूचनेयम्;—

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं ।
चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥१०७॥

सम्यक्त्वं श्रद्धानं भावानां तेषामधिगमो ज्ञानम् ।
चारित्रं समभावो विषयेष्वविरूढमार्गाणाम् ॥१०७॥

भावाः खलु कालकलितपञ्चास्तिकायविकल्परूपा नव पदार्थास्तेषां मिथ्यादर्शनोद-

---

मोक्षकार्यं संभवतीति विधिरूपोऽन्वय उच्यते, तत्कारणाभावे मोक्षकार्यं न संभवतीति निषेधरूपो व्यतिरेक इति । तदेव द्रढयति । यस्मिन्नग्न्यादिकारणे सति यद्धूमादिकार्यं भवति तदभावे न भवतीति तद्धूमादिकं तस्य कार्यमितरदग्न्यादिकं कारणमिति कार्यकारणनियम इत्यभिप्रायः ॥१०६॥ अथ व्यवहारसम्यग्दर्शनं कथ्यते;—

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्स भावदो भावे ।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदि जुत्ते ॥१॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जिणपण्णत्ते जिनप्रज्ञप्तान् वीतरागसर्वज्ञप्रणीतान् सद्दहमाणस्स श्रद्दधतः भावदो रुचिरूपपरिणामतः । कान्? कर्मतापन्नान् । भावे त्रिलोकत्रिकालविषयसमस्तपदार्थगतसामान्यविशेषस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थकेवलदर्शनज्ञानलक्षणात्मद्रव्यप्रभृतीन् समस्तभावान् पदार्थान् । कस्य? पुरिसस्स पुरुषस्य भव्यजीवस्य । कस्मिन् सति? आभिणिबोधे आभिनिबोधे मतिज्ञाने सति मतिपूर्वकश्रुतज्ञाने वा । दंसणसद्दे दर्शनिकोयं पुरुष इति शब्दः हवदि भवति । कथंभूतो भवति? जुत्तो युक्त उचित इति । अत्र सूत्रे यद्यपि क्वापि निर्विकल्पसमाधिकाले निर्विकारशुद्धात्मरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं स्पृशति तथापि प्रचुरेण बहिरंगपदार्थरुचिरूपं यद्व्यवहारसम्यक्त्वं तस्यैव तत्र मुख्यता । कस्मात्? विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । तदपि कस्मात्? व्यवहारमोक्षमार्गव्याख्यानप्रस्तावादिति भावार्थः ॥१॥ अथ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयस्य विशेषविवरणं करोति;—सम्यक्त्वं भवति । किं कर्तृ? सद्दहणं मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानं । केषां

लक्षण मोक्षस्वरूप है, न कि कर्मबंधरूप है । जो ज्ञानदर्शनयुक्त चारित्र है वह ही उत्तम मार्ग है, न कि संसारका मार्ग भला है । मोक्षमार्ग निकट संसारी जीवोंको होता है, अभव्य या दूर भव्योंको नहीं होता । जिनको भेदविज्ञान है उन ही भव्य जीवोंको होता है, स्वपरज्ञानशून्य अज्ञानीको नहीं होता । जिनके कषाय मूलसत्तासे क्षीण हो गई है उनके ही मोक्षमार्ग है, कषायी जीवोंके नहीं होता । यों आठ प्रकारके मोक्ष साधनका नियम जानो ॥ १०६ ॥ आगे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप कहते हैं;—[भावानां] षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय और नवपदार्थोंकी [श्रद्धानं] प्रतीतिपूर्वक दृढता [सम्यक्त्वं] सम्यग्दर्शन है [तेषां] उन ही पदार्थोंका

यापादिताश्रद्धानाभावस्वभावं, भावांतरं श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम् । तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयान्नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेणाध्यवसीयमानानां तन्निवृत्तौ समञ्जसाध्यवसायः सम्यक्ज्ञानं । मनाक् ज्ञानचेतनाप्रधानात्मतत्त्वोपलंभबीजम् । सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्यः समग्रेभ्यः परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषेण रूढमार्गाणां सतामिन्द्रियानिन्द्रियविषयभूतेष्वर्थेषु रागद्वेषपूर्वकविकाराभावान्निर्विकारावबोधस्वभावः समभावश्चारित्रं, तदात्वायतिरमणीयमनणीयसोऽपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजम् ।

संबन्धि । भावाणं पंचास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूपं जीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां । इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वं । किंविशिष्टं ? शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थायां साधकत्वेन बीजभूतं तदेव निश्चयसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वबीजभूतं । तेसिम—तेषाम् नवपदार्थानामधिगमो नौयानसंस्काररूप विपरीताव् अनभिनिवेशगतिरधिगमः संशयादिरहिताऽवबोधः । णाणं सम्यग्ज्ञानं इदं तु नवपदार्थविषयव्यवहारज्ञानं छद्मस्थावस्थायाम् आत्मविषयस्वसंवेदनज्ञानस्य परंपरया बीजं, तदपि स्वसंवेदनज्ञानं केवलज्ञानबीजं भवति । चारित्तं चारित्रं भवति । स कः ? समभावो समभावः । केषु ? विषयेषु इन्द्रियमनोगतसुखदुखोत्पत्तिरूपशुभाशुभविषयेषु । केषां भवति ? विरूढमग्गाणं पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञानबलेन समस्तान्यमार्गेभ्यः प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणां विरूढमार्गाणां परिज्ञातमोक्षमार्गाणां । इदं तु व्यवहारचारित्रं बहिरंगसाधकत्वेन वीतरागचारित्र-

---

[अधिगमः] यथार्थ अनुभवन [ज्ञानं] सम्यग्ज्ञान है और [विषयेषु] पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें [अविरूढमार्गाणां] नहीं की है अति दृढतासे प्रवृत्ति जिन्होंने ऐसे भेदविज्ञानी जीवोंका [समभावः] रागद्वेषरहित शान्तस्वभाव [चारित्रं] सम्यक्चारित्र है । भावार्थ—जीवोंके अनादि अविद्याके उदयसे विपरीत पदार्थोंकी श्रद्धा है । काललब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व नष्ट हो, तब पदार्थोंकी यथार्थ प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है । वही सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मपदार्थके निश्चय करने में बीजभूत है । मिथ्यात्वके उदयसे संशय, विमोह, विभ्रमस्वरूप पदार्थोंका ज्ञान होता है । जैसे नावपर चढ़ते

---

१ कथंभूतं सम्यग्दर्शनं शुद्धचैतन्यस्वरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम्. २ नवपदार्थानामेव. ३ यथा नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययेणेत्यनेन नावि स्थितस्य स्वस्य गमनं न दृश्यते । अन्येषां स्थिरीभूतानां सर्वेषां वृक्षपर्वतादीनां गमनं दृश्यते । कुतः स्वसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययात् । अनेन संस्कारादिस्वरूपविपर्य्ययेण अध्यवसीयमानानां निश्चीयमानानां, तथा मिथ्यादर्शनोदयात् स्वरूपविपर्ययेण गृहीतानां नवपदार्थानाम्. ४ पुनः तन्निवृत्तौ मिथ्यादर्शननिवृत्तौ सत्याम् ५ सम्यग्निर्णयः. ६ कथंभूतं सम्यग्ज्ञानं मनाक् ज्ञानचेतनायाः प्रधानात्मतत्त्वोपलम्भबीजम् ७ मार्गं आरूढानां तिष्ठतां. ८ कथंभूतं चारित्रं तदात्वायतिरमणीय वर्तमाने उत्तरकाले च रमणीयं सुखदायकं । पुनः कीदृशम्, अनणीयसः अपुनर्भवसौख्यस्यैकबीज । अनणीयसः महतः अपुनर्भवसौख्यस्य मोक्षस्य एक बीजम् ।

इत्येष त्रिलक्षणो मोक्षमार्गः पुरस्तान्निश्चयव्यवहाराभ्यां व्याख्यास्यते । इह तु सम्यग्दर्शन-ज्ञानयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां नवपदार्थानामुपोद्घातहेतुत्वेन सूचित इति ॥ १०७ ॥

पदार्थानां नामस्वरूपाभिधानमेतत् ;—

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ॥१०८॥

जीवाजीवौ भावौ पुण्यं पापं चास्रवस्तयोः ।
संवरनिर्जरबंधा मोक्षश्च भवन्ति ते अर्थाः ॥ १०८ ॥

जीवः, अजीवः, पुण्यं, पापं, आस्रवः, संवरः, निर्जरा, बंधः, मोक्ष इति नवपदार्थानां नामानि । तत्र चैतन्यलक्षणो जीवास्तिकाय एवेह जीवः । चैतन्याभावलक्षणोऽजीवः । स पञ्चधा पूर्वोक्त एव पुद्गलास्तिकः, धर्मास्तिकः, अधर्मास्तिकः आकाशास्तिकः, कालद्रव्यञ्चेति । इमौ हि जीवाजीवौ पृथग्भूताऽस्तित्वनिर्वृत्तत्वेन भिन्नस्वभावभूतौ मूलपदार्थौ ।

भावनोत्पन्नपरमात्मतृप्तिरूपस्य निश्चयसुखस्य बीजं तदपि निश्चयसुखं पुनरक्षयानंतसुखस्य बीजमिति । अत्र यद्यपि साध्यसाधकभावज्ञापनार्थं निश्चयव्यवहारद्वयं व्याख्यातं तथापि नवपदार्थविषयरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्यैव मुख्यत्वमिति भावार्थः ॥ १०७ ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारे व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन प्रथमोंतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं जीवादिनवपदार्थानां मुख्यवृत्त्या नाम गौणवृत्त्या स्वरूपं च कथयति;—जीवाजीवौ द्वौ भावौ पुण्यपापद्वयमिति पदार्थद्वयं आस्रवपदार्थस्तयोः पुण्यपापयोः संवरनिर्जराबंधमोक्षपदार्थचतुष्टयमपि तयोरेव । एवं ते प्रसिद्धा नव पदार्था भवंतीति नामनिर्देशः । इदानीं स्वरूपाभिधानं । तथाहि -ज्ञानदर्शनस्वभावो जीवपदार्थः, तद्विलक्षणः पुद्गलादिपंचभेदः पुनरप्यजीवः, दानपूजाषडावश्यकादिरूपो जीवस्य

हैं तो बाहरके स्थिर पदार्थ चलते हुए दिखाई देते हैं, इसोको विपरीतज्ञान कहते हैं । जब मिथ्यात्वका नाश हो जाता है तब यथार्थ पदार्थोंका ग्रहण होता है । उसी यथार्थज्ञान का ही नाम सम्यग्ज्ञान है । वही सम्यग्ज्ञान आत्मतत्त्व-अनुभवनकी प्राप्तिका मूल कारण है । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी प्रवृत्तिके प्रभावसे समस्त कुमार्गोंसे निवृत्त होकर आत्मस्वरूपमें लीन होकर इन्द्रियमनके विषय जो इष्ट अनिष्ट पदार्थ हैं उनमें रागद्वेषरहित समभावरूप निर्विकार परिणाम ही सम्यक्चारित्र है । सम्यक्चारित्र फिर जन्मसन्तान (संसारका) उपजानेवाला नहीं है । मोक्षसुखका कारण है । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों भावोंकी जब एकता हो तब ही मोक्षमार्ग कहलाता है । इनमें से किसी एककी कमी हो तो मोक्षमार्ग नहीं है । जैसे व्याधियुक्त रोगीको औषधिका श्रद्धान-ज्ञान-उपचार तीनों प्रकार हों तबही रोगी रोगसे मुक्त होता है । एककी कमी होनेसे रोग नहीं जाता । इसीप्रकार त्रिलक्षण मोक्षमार्ग है ॥ १०७ ॥ आगे निश्चय-व्यवहारनयोंकी अपेक्षा विशेष मोक्षमार्ग दिखाते हैं । यहां सम्यग्दर्शन-ज्ञानके द्वारा नव पदार्थ जाने जाते हैं, इसकारण मोक्षका संक्षेप स्वरूप ही कहा है । आगे नव पदार्थोंका संक्षेप स्वरूप औरनाम कहे जाते हैं;—[जीवाजीवौ भावौ]

स्वभावाः । चेतनपरिणामलक्षणेनोपयोगेन लक्षणीया[1]ः । तत्र संसारस्था देहप्रवीचारा[2]ः । निर्वृत्ता अदेह[3]प्रवीचारा इति ॥ १०९ ॥

पृथिवीकायादिपञ्चविधोद्देशोऽयम् ;—

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया ।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥ ११० ॥

पृथिवी चोदकमग्निर्वायुर्वनस्पतिः जीवसंश्रिताः कायाः ।
ददति खलु मोहबहुलं स्पर्शं बहुका अपि ते तेषां ॥ ११० ॥

पृथिवीकायाः, अप्कायाः, तेजःकायाः, वायुकायाः, वनस्पतिकायाः, इत्येते पुद्गल-

---

भोक्तृत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन च "ण हि इंदियाणि" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ जीवपदार्थोपसंहारमुख्यत्वेन तथैव जीवपदार्थप्रारम्भमुख्यत्वेन च "एवमधिगम्म जीव" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं पंचदशगाथाभिः षट्स्थलैर्द्वितीयांतराधिकारे समुदायपातनिका । तथाहि । जीवस्वरूपं निरूपयति;—जीवा भवन्ति । किंविशिष्टाः? संसारत्था णिव्वादा संसारस्था निर्वृताश्चैव चेदणप्पगा दुविहा । चेतनात्मका उभेपि कर्मचेतनाकर्मफलचेतनात्मकाः संसारिणः शुद्धचेतनात्मका मुक्ता इति उवओगलक्खणा वि य उपयोगलक्षणा अपि च । आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगः केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ताः क्षायोपशमिका अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः देहादेहप्पवीचारा देहादेहप्रवीचाराः अदेहात्मतत्त्वविपरीतदेहप्रवीचाराः अदेहाः सिद्धा इति सूत्रार्थः ॥ १०९ ॥ एवं जीवाधिकारसूचनगाथारूपेण प्रथमस्थलं गतं । अथ पृथिवीकायादिपंचभेदान् प्रतिपादयति;—पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिजीवान् कर्मतापन्नान् संश्रिताः कायाः ददति प्रयच्छन्ति खलु स्फुटं । कं ? मोहबहुलं स्पर्शविषयं बहुका अंतर्भेदैर्बहुसंख्या अपि ते

है;—[जीवाः] आत्मपदार्थ [द्विविधाः] दो प्रकारके हैं । एक तो [संसारस्थाः] संसारमें रहनेवाले अशुद्ध हैं, दूसरे [निर्वृत्ताः] मोक्षावस्थाको प्राप्त होकर शुद्ध हुये सिद्ध हैं । वे जीव कैसे हैं ? [चेतनात्मकाः] चैतन्यस्वरूप हैं [उपयोगलक्षणाः] ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोग (परिणाम) वाले हैं । [अपि] और निश्चयसे [च] फिर वे दो प्रकारके जीव कैसे हैं ? [देहादेहप्रवीचाराः] एक तो जो देहसे संयुक्त हैं वे संसारी हैं । दूसरे जो देहरहित हैं वे मुक्त हैं ॥ १०९ ॥ आगे पृथिवीकायादि पांच स्थावरके भेद दिखाते हैं;—[पृथिवी] पृथिवीकाय [च] और [उदकम्] जलकाय [अग्निः] अग्निकाय [वायुर्वनस्पतिः] वायुकाय और वनस्पतिकाय [कायाः] ये पांच स्थावरकायके भेद जानो [ते] वे

---

१ परीक्षणीयाः. २ देहस्य प्रवीचारो भोगस्तेन सहिताः देहसहिता इत्यर्थः. ३ न देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा इति समासः ।

परिणामा बंधवशाज्जीवानुसंश्रिताः. अवांतरजातिभेदाद्बहुका अपि स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमभाजां जीवानां बहिरङ्गस्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तिभूताः कर्मफलचेतनाप्रधानत्वान्मोहबहुलमेव स्पर्शोपलंभमुपपादयन्ति ॥ ११० ॥

ति त्थावरतणुजोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइंदिया णेया ॥१११॥

त्रयः स्थावरतनुयोगादनिलानलकायिकश्च तेषु त्रसाः।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥ १११ ॥

पृथिवीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयम् ॥ १११ ॥

कायास्तेषां जीवानामिति। अत्र स्पर्शनेन्द्रियादिरहितमखंडैकज्ञानप्रतिभासमयं यदात्मस्वरूपं तद्भावनारहितेनाल्पसुखार्थं स्पर्शनेन्द्रियविषयलांपट्यपरिणतेन जीवेन यदुपार्जितं स्पर्शनेन्द्रियजनकमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले स्पर्शनेन्द्रियक्षयोपशमं लब्ध्वा स्पर्शविषयज्ञानेन परिणमतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ११० ॥ अथ व्यवहारेणाग्निवातकायिकानां त्रसत्वं दर्शयति;— पृथिव्यब्वनस्पतयस्त्रयः स्थावरकाययोगात्संबंधात्स्थावरा भण्यंते अनलानिलकायिकाः तेषु पंचस्थावरेषु मध्ये चलनक्रियां दृष्ट्वा व्यवहारेण त्रसा भण्यंते यदि त्रसास्तर्हि किं मनो भविष्यति? नैवं। मणपरिणामविरहिदा मनःपरिणामविहीनास्तथा चैकेन्द्रियाश्च ज्ञेयाः। के? जीवा इति। तत्र स्थावरनामकर्मोदयाद्भिन्नमनंतज्ञानादिगुणसमूहादभिन्नत्वं यदात्मतत्वं तदनुभूतिरहितेन जीवेन यदुपार्जितं स्थावरनामकर्म तदुदयाधीनत्वात् यद्यप्यग्निवातका-

---

[जीवसंश्रिताः] एकेन्द्रियजीवसे सहित हैं। [बहुकाः अपि] यद्यपि अनेक अनेक अवांतर भेदोंसे बहुत जात काय शरीर-भेदसे [खलु] निश्चयसे [तेषां] उन जीवोंको [मोहबहुलं] मोहगर्भित बहुत परद्रव्योंमें रागभाव उत्पन्न करते हैं [स्पर्शं] स्पर्शनेन्द्रियके विषयको [ददति] देते हैं। भावार्थ—ये पांच प्रकार स्थावरकाय कर्मके संबंधसे जीवोंके आश्रित हैं। इनमें गर्भित अनेक जातिभेद हैं। ये सब एक स्पर्शनेन्द्रिय युक्त मोहकर्मके उदयसे कर्मफल चेतनारूप सुखदुःखरूप फलको भोगते हैं। एक कायके आधीन होकर जीव अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ ११० ॥ आगे पृथिवीकायादि पांच स्थावरोंको एकेंद्रियजातिका नियम करते हैं;— [स्थावरतनुयोगात्] स्थावरनाम कर्मके उदयसे [त्रयः जीवाः] पृथिवी जल, वनस्पति ये तीन प्रकारके जीव [एकेन्द्रियाः] एकेन्द्रिय [ज्ञेयाः] जानो [च] और [तेषु] उन पांच स्थावरोंमें [अनिलानलकायिका] वायुकाय और अग्निकाय यह दो प्रकारके जीव यद्यपि [त्रसाः] चलते हैं तथापि स्थावर नामकर्मके

---

१ सर्वेषां चेत् विवक्षा पृथक् पृथक् एव पृथिवीकायिकाः सप्तलक्षजातिका एवं अप् तेजः वायुरपि सप्तसप्तलक्षजातयः, वनस्पतीनां दशलक्षजातयः सन्ति। एवं पञ्चानां बहुका अवांतरभेदा ज्ञातव्याः।

जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ताः सप्तान्ये च पदार्थाः । शुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः[2] कर्मपरिणामः[3] पुद्गलानाञ्च पुण्यम् । अशुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानाञ्च पापम् । मोहरागद्वेषपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्चास्रवः । मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानाञ्च संवरः । कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गांतरङ्गतपोभिर्बृंहित[4]शुद्धोपयोगो जीवस्य, तदनुभाव[5]नीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानाञ्च निर्जरा । मोहरागद्वेषस्निग्धपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तेन कर्मत्वप-

---

शुभपरिणामो भावपुण्यं भावपुण्यनिमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादिशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपरमाणुपिंडो द्रव्यपुण्यं, मिथ्यात्वरागादिरूपो जीवस्याशुभपरिणामो भावपापं, तन्निमित्तेनासद्वेद्याद्यशुभप्रकृतिरूप पुद्गलपिंडो द्रव्यपापं, निरास्रवशुद्धात्मपदार्थविपरीतो रागद्वेषमोहरूपो जीवपरिणामो भावास्रव, भावनिमित्तेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां योगद्वारेणागमनं द्रव्यास्रवः, कर्मनिरोधे समर्थो निर्विकल्पकात्मोपलब्धिपरिणामो भावसंवरः, तेन भावनिमित्तेन नवतरद्रव्यकर्मागमनिरोधो द्रव्यसंवरः, कर्मशक्तिशातनसमर्थो द्वादशतपोभिर्वृद्धिं गतः शुद्धोपयोगः संवरपूर्विका भावनिर्जरा तेन शुद्धोपयोगेन नीरसभूतस्य चिरंतनकर्मण एकदेशगलनं द्रव्यनिर्जरा, प्रकृत्यादिबंधशून्यपरमात्मपदार्थप्रतिकूलो मिथ्यात्वरागादिस्निग्ध-

---

एक जीव पदार्थ और एक अजीव पदार्थ [पुण्यं] एक पुण्य पदार्थ [च] और [पापं] एक पाप पदार्थ [तयोः] उन दोनों पुण्य-पापोंका [आस्रवः] आत्मामें आगमन सो एक आस्रव पदार्थ, [संवरनिर्जरबंधाः] संवर, निर्जरा और बंध ये तीन पदार्थ हैं । [च] और [मोक्षः] एक मोक्ष पदार्थ है । इस प्रकार [ते] वे [अर्थाः] नव पदार्थ [भवन्ति] होते हैं । भावार्थ—जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६ निर्जरा ७, वंध ८ और मोक्ष ९ ये नव पदार्थ जानो । जिसका चेतना लक्षण है वह जीव है । चेतनारहित जड़ पदार्थ अजीव है, सो पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और कालद्रव्य यों पांच प्रकार अजीव हैं । ये जीव-अजीव दोनों ही पदार्थ अपने भिन्नस्वरूपके अस्तित्वसे मूल पदार्थ हैं । इनके अतिरिक्त जो सात पदार्थ हैं वे जीव और पुद्गलोंके संयोगसे उत्पन्न हुये हैं, सो दिखाये जाते हैं । यदि जीवके शुभ परिणाम हों तो उस शुभपरिणामके निमित्तसे पुद्गलमें शुभकर्मरूप शक्ति होती है, उसे पुण्य कहते हैं । जीवके अशुभ परिणामोंके निमित्तसे पुद्गल वर्गणाओंमें अशुभ कर्मरूप परिणतिशक्ति हो उसे पाप कहते हैं । मोह-रागद्वेषरूप जीवके परिणामोंके निमित्तसे मनवचनकायरूप योगोंद्वारा पुद्गलकर्म

---

१ भावपुण्यम् २ तदेव भावपुण्यं निमित्तं कारणं यस्य सः ३ कर्माष्टकपर्यायः द्रव्यपुण्यं. ४ वर्धित. ५ तस्य शुद्धोपयोगस्य अनुभावं प्रभावं तेन कारणेन रसरहितानां समुपात्तकर्मपुद्गलानां च निर्जरा ज्ञातव्या ।

रिणतानां जीवेन सहान्योन्यसंमूर्च्छनं पुद्गलानाञ्च बंधः । अत्यंतशुद्धात्मोपलम्भो जीवस्य जीवेन सहात्यंतविश्लेषः कर्मपुद्गलानां च मोक्ष इति ॥ १०८ ॥

अथ जीवपदार्थानां व्याख्यानं प्रपञ्चनार्थम्[3] । जीवस्वरूपोपदेशोऽयम् ;—

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥ १०९ ॥

जीवाः संसारस्था निर्वृत्ताः चेतनात्मका द्विविधाः ।
उपयोगलक्षणा अपि च देहादेहप्रवीचाराः ॥१०९॥

जीवाः हि द्विविधाः । संसारस्था अशुद्धा निर्वृत्ताः शुद्धाश्च । ते खलूभयेऽपि चेतन-

---

परिणामो भावबंधः भावबंधनिमित्तेन तैलम्रक्षितशरीरे धूलिबंधवज्जीवकर्मप्रदेशानामन्योन्यसंश्लेषो द्रव्यबंधः, कर्मनिर्मूलनसमर्थः शुद्धात्मोपलब्धिरूपजीवपरिणामो भावमोक्षः, भावमोक्षनिमित्तेन जीव कर्मप्रदेशानां निरवशेषः पृथग्भावो द्रव्यमोक्ष इति सूत्रार्थः ॥ १०८ ॥ एवं जीवाजीवादिनवपदार्थानां नवाधिकारसूचनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं । तदनंतरं पंचदशगाथापर्यंतं जीवपदार्थाधिकारः कथ्यते । तत्र पंचदशगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवपदार्थाधिकारसूचनमुख्यत्वेन "जीवा संसारत्था" इत्यादि गाथासूत्रमेकं अथ पृथ्वीकायादिस्थावरैकेन्द्रियपंचमुख्यत्वेन "पुढवीय" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ विकलेन्द्रियत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन "संबुक्क" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिचतुष्टयविशिष्टपंचेन्द्रियकथनरूपेण "सुरणर" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ भेदभावनामुख्यत्वेन हिताहितकर्तृत्व-

---

वर्गणाओंका आगमन होना आस्रव है । और जीवके मोह-राग-द्वेष परिणामोंको रोकनेवाले भावोंका निमित्त पाकर योगोंके द्वारा पुद्गल वर्गणाओंके आगमनका निरोध होना संवर है । कर्मोंकी शक्तिके घटानेको समर्थ, बहिरंग अंतरंगतपोंसे वर्द्धमान जीवके शुद्धोपयोगरूप परिणामोंके प्रभावसे पूर्वोपार्जित कर्मोंका नीरस भाव होकर एकदेश क्षय हो जाना निर्जरा है । और जीवके मोह-राग-द्वेषरूप स्निग्ध परिणामोंके निमित्तसे कर्मवर्गणारूप पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंसे परस्पर एकक्षेत्रावगाह करके संबंध होना बंध है । जीवके अत्यन्त शुद्धात्मभावकी प्राप्ति हो तो उसका निमित्त पाकर जीवके सर्वथा प्रकार कर्मोंका छूट जाना मोक्ष है ॥ १०८ ॥ आगे जीव पदार्थका व्याख्यान किया जाता है, जिसमें जीवका स्वरूप नाम मात्रको दिखाया जाता

---

१ एकदेशसङ्क्षयः. २ एकत्रसंबन्धित्वं द्रव्यबंधः. ३ प्रपञ्चयति' इति वा पाठः. ४ संसारस्थाः, निर्वृत्ताः तत्र संसारस्था अशुद्धा ज्ञातव्यास्तु पुनः निर्वृत्ताः शुद्धा ज्ञातव्या इत्यर्थः ।

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया ॥११२॥

एते जीवनिकायाः पञ्चविधाः पृथिवीकायिकाद्याः ।
मनःपरिणामविरहिता जीवा एकेन्द्रिया भणिताः ॥११२॥

पृथिवीकायिकादयो हि जीवाः स्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सत्येकेन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११२॥

एकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वे दृष्टांतोपन्यासोऽयम्;—

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया ।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया ॥११३॥

अंडेषु प्रवर्द्धमाना गर्भस्था मानुषाश्च मूर्च्छां गताः ।
यादृशास्तादृशा जीवा एकेन्द्रिया ज्ञेयाः ॥११३॥

अंडांतर्लीनानां, गर्भस्थानां मूर्च्छितानां च बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनेऽपि येन प्रकारेण

यिकानां व्यवहारेण चलनमस्ति तथापि निश्चयेन स्थावरा इति भावार्थः ॥ १११ ॥ अथ पृथ्वीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वं नियमयति;—एते प्रत्यक्षीभूता जीवनिकायाः पंचविधाः पृथ्वीकायिकादयो जीवाः । ते कथंभूताः भणिता ? मनःपरिणामविरहिताः न केवलं मनःपरिणामविरहिता एकेन्द्रियाश्च । कस्मिन् सतीत्थंभूताः भणिताः ? वीर्यांतरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सतीति । अथ सूत्रे विश्वोपाधिविमुक्तशुद्धसत्तामात्रदेशकेन निश्चयनयेन यद्यपि पृथ्व्यादिपंचभेदरहिता जीवास्तथापि व्यवहारनयेनाशुद्धमनोगतरागाद्यपध्यानसहितेन शुद्धमनोगतस्वसंवेदनज्ञानरहितेन यद्बद्धमेकेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयेनामनसः एवैकेन्द्रियाश्च भवंतीत्यभिप्रायः ॥ ११२ ॥ अथ पृथिवीकायाद्येकेन्द्रियाणां चैतन्यास्तित्वविषये दृष्टांतमाह;—अंडेषु प्रवर्तमानास्तिर्यंचो गर्भस्था मानुषा

उदयसे स्थावर एकेन्द्रिय ही कहे जाते हैं । ये एकेन्द्रिय कैसे हैं ? [मनःपरिणामविरहिताः] मनोयोगरहित हैं ॥ १११ ॥ पदार्थ—[एते] ये [पृथिवीकायिकाद्याः] पृथिवीआदिक [पञ्चविधाः] पांच प्रकारके [जीवनिकायाः] जीवोंके जो भेद हैं सो [मनःपरिणामविरहिताः] मनोयोगके विकल्पोंसे रहित [एकेन्द्रिया जीवाः] सिद्धांतमें एकेन्द्रिय जीव [भणिताः] कहे गये हैं । भावार्थ—पृथिवीकायादिक पांच प्रकारके स्थावर जीव स्पर्शन्द्रियावरणके क्षयोपशममात्रसे अन्य चार इन्द्रियोंके आवरणके उदयसे और मनआवरणके उदयसे एकेन्द्रिय जीव और अमनस्क मनरहित हैं ॥ ११२ ॥ आगे कोई ऐसा जाने कि एकेन्द्रिय जीवोंके चैतन्यताका अस्तित्व नहीं रहता होगा, उसको दृष्टांतपूर्वक चेतना

जीवत्वं निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामपि उभयेषामपि बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति ॥११३॥

द्वीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ;—

संवुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवाः ॥११४॥

शंबूकमातृवाहाः शङ्खाः शुक्तयोऽपादकाः च कृमयः।
जानन्ति रसं स्पर्शं ये ते द्वीन्द्रियाः जीवाः॥११४॥

मूर्छागताश्च यादृशा ईहापूर्वव्यवहाररहिता भवन्ति तादृशा एकेन्द्रियजीवा ज्ञेया इति। तथाहि— यथाण्डजादीनां शरीरपुष्टिं दृष्ट्वा वहिरंगव्यापाराभावेपि चैतन्यास्तित्वं गम्यते म्लानतां दृष्ट्वा नास्तित्वं च ज्ञायते तथैकेन्द्रियाणामपि। अयमत्र भावार्थः—परमार्थेन स्वाधीनतानंतज्ञानसुखसहितोपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म वध्नाति तेनांडजादिसदृशमेकेन्द्रियजं दुःखितं चात्मानं करोतीति॥ ११३ ॥ एवं पंचस्थावरव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतं। अथ द्वीन्द्रियभेदान् प्ररूपयति;— शंबूकमातृवाहा शंखशु-

---

दिखाते हैं;—[यादृशाः] जिसप्रकार [अंडेषु] पक्षियोंके अंडोंमें [प्रवर्द्धमानाः] वढ़ते हुये जीव हैं [तादृशाः] उसी प्रकार [एकेन्द्रियाः] एकेन्द्रिय जातिके [जीवाः] जीव [ज्ञेयाः] जानो। भावार्थ—जैसे अंडेमें जीव वढ़ता है परंतु ऊपरसे उसके उस्वासादिक या जीव मालूम नहीं होता उसीप्रकार एकेन्द्रिय जीव प्रगट नहीं जाना जाता, परंतु अंतर गुप्त जानना चाहिये। जैसे—वनस्पति अपनी हरितादि अवस्थाओंसे जीवत्वभावका अनुमान जनाती है। वैसेही सव स्थावर अपने जीवनगुणगर्भित हैं। [च] तथा [यादृशाः] जैसे [गर्भस्थाः] गर्भमें रहते हुये जीव ऊपरसे मालूम नहीं होते। जैसे—जैसे गर्भ वढ़ता है वैसे—वैसे उसमें जीवका अनुमान किया जाता है। तथा [मूर्च्छां गताः] मूर्च्छाको प्राप्त हुये [मानुषाः] मनुष्य जैसे मृतकसदृश दीखते हैं परंतु अंतरमें जीवगर्भित हैं। उसी प्रकार पांच प्रकारके स्थावरोंमें भी ऊपरसे जीवकी चेष्टा मालूम नहीं होती, परंतु आगमसे तथा उन जीवोंकी प्रफुल्लादि अवस्थाओंसे चैतन्य मालूम होता है ॥ ११३ ॥ आगे द्वीन्द्रिय जीवोंके भेद दिखाते हैं,—[ये] जो [शंबूकमातृवाहाः] संबूक (क्षुद्रशंख) और मातृवाह तथा [शङ्खाः शुक्तयः] संख सीपियां [च अपादकाः कृमयः] पांवरहित गिंडोला कृमि लट आदिक अनेक जातिके जीव हैं वे [रसं स्पर्शं] रस और स्पर्शमात्रको अर्थात् जीभसे स्वाद और स्पर्शेन्द्रियसे

---

१ जीवत्वं निश्चीयते. २ एकेन्द्रियाणां अंडमध्यादिवर्तिपंचेन्द्रियाणाञ्च।

एते स्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसयोः परिच्छेत्तारो द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११४॥

त्रीन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ;—

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा ।
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ॥११५॥

यूकाकुंभीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः कीटाः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं गंधं त्रीन्द्रियाः जीवाः ॥ ११५ ॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगंधानां परिच्छेत्तारस्त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥ ११५ ॥

क्त्थपादगक्रमयः कर्तारः स्पर्शरसद्वयं जानंत्येते जीवा यतस्ततो द्वीन्द्रिया भवंतीति । तद्यथा । शुद्धनयेन द्वीन्द्रियस्वरूपात्पृथग्भूतं केवलज्ञानदर्शनद्वयादपृथग्भूतं यत् शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तद्भावनोत्थसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादरहितैः स्पर्शनरसनेन्द्रियादिविषयसुखरसास्वादसहितैर्जीवैर्यदुपार्जितं द्वीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले वीर्यांतरायस्पर्शरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति द्वीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्रार्थः ॥ ११४ ॥ अथ त्रीन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति;—यूकामत्कुणकुंभीपिपीलिकाः पर्णवृश्चिकाश्च गणकीटकादयः कर्तारः स्पर्शरसगंधत्रयं जानन्ति यतस्ततः कारणात् त्रीन्द्रिया भवंतीति । तथाहि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसानुभवच्युतैः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियादिविषयसुखमूर्च्छितैर्जीवैर्यद्बद्धं त्रीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयाधीनत्वेन वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नो-

---

शीतोष्णादिकको [जानन्ति] जानते हैं, इस कारण [ते] वे [जीवा] जीव [द्वीन्द्रिया] दो इन्द्रिय संयुक्त जानो । भावार्थ—स्पर्शन रसना इन्द्रियोंके आवरणका जब क्षयोपशम हो और बाकी इन्द्रियों और मनआवरणके उदयसे स्पर्शन रसनाइन्द्रिय संयुक्त दो इन्द्रियोंके ज्ञानसे सुखदुःखके अनुभवी मनरहित द्वीन्द्रिय जानो ॥ ११४ ॥ अब त्रीन्द्रिय जीवके भेद दिखाते हैं;—[यूकाकुम्भीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः] जूं, कुम्भी, खटमल, चींटा, वृश्चिक आदिक जो [कीटाः] जीव हैं वे [रसं स्पर्शं] रस और स्पर्श तथा [गंधं] गंध इन तीन विषयोंको [जानन्ति] जानते हैं, इस कारण ये सब जीव [त्रींद्रियाः] सिद्धांतमें त्रीन्द्रिय कहे गये हैं । भावार्थ—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन, रसना, नासिका इन तीन इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम हो और अन्य इन्द्रियोंके

चतुरिन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ;—

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया ।
रूपं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ॥११६॥

उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः पतङ्गाद्याः ।
रूपं रसं च गंधं स्पर्शं पुनस्ते विजानन्ति ॥ ११६ ॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमात्, श्रोतेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगंधवर्णानां परिच्छेत्तारश्चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीति ॥११६॥

पञ्चेन्द्रियप्रकारसूचनेयम् ;—

सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू ।
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेंदिया जीवा ॥११७॥

सुरनरनारकतिर्यञ्चो वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः ।
जलचरस्थलचरखचरा बलिनः पञ्चेन्द्रिया जीवाः ॥ ११७ ॥

अथ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् नोइन्द्रियावरणोदये सति स्प-

---

इन्द्रियावरणोदये च सति त्रीन्द्रिया अमनसो भवंतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ११५ ॥ अथ चतुरिन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति;—उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमरपतंगाद्याः कर्तारः स्पर्शरसगंधवर्णान् जानन्ति यतस्ततः कारणाच्चतुरिन्द्रिया भवन्ति । तद्यथा—निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानभावनोत्पन्नसुखसुधारसपानविमुखैः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरादिविषयसुखानुभवाभिमुखैर्बहिरात्मभिर्यदुपार्जितं चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म तद्विपाकाधीना तथा वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् श्रोत्रेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति चतुरिन्द्रिया अमनसो भवंतीत्यभिप्रायः ॥ ११६ ॥ इति विकलेन्द्रियव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतं । पंचेन्द्रियभेदानावेदयति;—सुरनरनारकतिर्यंचः चत्वारः वर्णरसगंधस्पर्शशब्दज्ञाः यतः कारणा-

---

आवरणका उदय हो तब त्रीन्द्रिय जीव कहे जाते हैं ॥ ११५ ॥ आगे चौइन्द्रियके भेद कहते हैं,—[उद्दंशमशकमक्षिकामधुकरीभ्रमराः पतङ्गाद्याः] डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंग आदिक जीव [रूपं] रूप [रसं] स्वाद [गंधं] गंध [पुनः] और [स्पर्शं] स्पर्शको [विजानन्ति] जानते हैं इस कारण [ते] वे निश्चयसे चौइन्द्रिय जीव जानो । भावार्थ—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन, जीभ, नासिका, नेत्र इन चारों इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम एवं कर्णइन्द्रिय और मनके आवरणका उदय हो तब स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चार विषयोंके ज्ञाता चार इन्द्रियसहित कर्ण और मनसे रहित चौइन्द्रिय जीव होते हैं ॥ ११६ ॥ अब पंचेन्द्रिय जीवोंके भेद कहते हैं;—[सुरनरनारकतिर्यञ्चः] देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच गतिके जीव [पंचेन्द्रियाः]

र्शरसगंधवर्णशब्दानां परिच्छेत्तारः पञ्चेन्द्रिया अमनस्काः । केचित्तु नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमात् समनस्काश्च भवन्ति । तत्र देवमनुष्यनारकाः समनस्का एव, तिर्यञ्च उभयजातीया इति ॥११७॥

इन्द्रियभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबंधत्वेनोपसंहारोऽयम्;—

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया ।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥११८॥

देवाश्चतुर्निकायाः मनुजाः पुनः कर्मभोगभूमिजाः ।
तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः नारकाः पृथिवीभेदगताः ॥ ११८ ॥

ततः पंचेन्द्रियजीवा भवन्ति तेषु च मध्ये ये तिर्यंचस्ते केचन जलचरस्थलचरखचरा बलिनश्च भवन्ति । ते च के ? जलचरमध्ये ग्राहसंज्ञाः स्थलचरेष्वष्टापदसंज्ञाः खचरेषु भेरुंडा इति । तद्यथा - निर्दोषिपरमात्मध्यानोत्पन्ननिर्विकारतात्त्विकानंदैकलक्षणसुखविपरीतं यदिन्द्रियसुखं तदासक्तैर्बहिर्मुखजीवैर्यदुपार्जितं पंचेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयं प्राप्य वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभान्नोइन्द्रियावरणोदये सति केचन शिक्षालापोपदेशनशक्तिविकलाः पंचेन्द्रिया असंज्ञिनो भवन्ति, केचन पुनर्नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमलाभात्संज्ञिनो भवन्ति तेषु च मध्ये नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिन एव, तिर्यंचः पंचेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनो भवन्ति, एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियपर्यंता असंज्ञिन एव । कश्चिदाह—क्षयोपशमविकल्परूपं हि मनो भण्यते तत्तेषामप्यस्तीति कथमसंज्ञिनः ? परिहारमाह - यथा पिपीलिकाया गंधविषये जातिस्वभावेनैवाहारादिसंज्ञारूपं पटुत्वमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानविषये अन्येषामप्यसंज्ञिनां तथैव मनः पुनर्जगत्त्रयकालत्रयविषयव्याप्तिज्ञानरूपकेवलज्ञानप्रणीतपरमात्मादितत्त्वानां परोक्षपरिच्छित्तिरूपेण परिच्छेदकत्वात्केवलज्ञानसमानमिति भावार्थः ॥ ११७ ॥ तथैकेन्द्रियादिभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारः कथ्यते;—भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन देवा-

पंचेन्द्रिय [जीवाः] जीव हैं जो कि [जलचरस्थलचरखचराः] जलचर, भूमिचर व आकाशगामी हैं और [वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञाः] वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन पांचों विषयोंके ज्ञाता हैं । तथा [बलिनः] अपनी क्षयोपशम शक्तिसे बलवान् हैं । भावार्थ—जब संसारी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम हो तब पांचों विषयके जाननेवाले होते हैं । पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं-एक संज्ञी, एक असंज्ञी । जिन पंचेन्द्रिय जीवोंके मनआवरणका उदय हो वे तो मनरहित असंज्ञी हैं । और जिनके मनआवरणका क्षयोपशम हो वे मनसहित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होते हैं । अर्थात् तिर्यञ्च गति में मनसहित और मनरहित भी होते हैं । इसप्रकार इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीवोंकी जातिका भेद कहा ॥ ११७ ॥ अब इनहीं पांच जातिके जीवोंका चार गतिसंबंधसे संक्षेप में कथन किया जाता है;—[देवाः] देव देवगतिनामा कर्मके उदयसे

देवगतिनाम्नो देवायुषश्चोदयाद्देवास्ते च भवनवासिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकनिकायभेदाच्चतुर्धा । मनुष्यगतिनाम्नो, मनुष्यायुषश्च उदयान्मनुष्याः । ते कर्मभोगभूमिजभेदात् द्वेधा । तिर्यग्गतिनाम्नस्तिर्यगायुषश्च उदयात्तिर्यञ्चस्ते पृथिवीशम्बूकयूकोद्दंशजलचरोरगपक्षिपरिसर्पचतुष्पदादिभेदादनेकधा । नरकगतिनाम्नो, नरकायुषश्च उदयान्नारकाः । ते रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिजभेदात्सप्तधा । तत्र देवमनुष्यनारकाः पंचेन्द्रिया एव । तिर्यञ्चस्तु केचित्पंचेन्द्रियाः, केचिदेक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिया अपीति ॥११८॥

गत्यायुर्नामोदयनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वोद्योतनमेतत्,—

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु ।
पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥११९॥

श्चतुर्णिकायाः भोगभूमिकर्मभूमिजभेदेन द्विविधा मनुष्याः पृथिव्याद्येकेन्द्रियभेदेन शम्बूकयूकोदंशकादिविकलेन्द्रियभेदेन जलचरस्थलचरखचरद्विपदचतुःपदादिपंचेन्द्रियभेदेन तिर्यंचो बहुप्रकाराः रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिभेदेन नारकाः सप्तविधा भवंतीति । अत्र चतुर्गतिविलक्षणा स्वात्मोपलब्धिलक्षणा । या तु सिद्धगतिस्तद्भावनारहितैर्जीवैः सिद्धसदृशनिजशुद्धात्मभावनारहितैर्वा यदुपार्जितं चतुर्गतिनामकर्म तदुदयवशेन देवादिगतिषूत्पद्यंत इति सूत्रार्थः ॥ ११८ ॥ अथ गतिनामायुःकर्मनिर्वृत्तत्वाद्देवत्वादीनामनात्मस्वभावत्वं दर्शयति, अथवा ये केचन वदन्ति नान्यादृशं जगत्, देवो मृत्वा देव एव मनुष्या मृत्वा मनुष्या

जो देवशरीर पाते हैं सबसे उत्कृष्ट भोग भोगते हैं वे देव हैं सो [चतुर्निकायाः] चार प्रकारके हैं। एक भवनवासी, दूसरे व्यंतर, तीसरे ज्योतिषी, चौथे वैमानिक होते हैं । [पुनः] फिर [मनुजाः] मनुष्य [कर्मभोगभूमिजाः] एक कर्मभूमिमें उपजते हैं, दूसरे भोगभूमिमें उपजनेवाले, इस प्रकार दो तरहके मनुष्य होते हैं और [तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः] तिर्यञ्चगतिके जीव एकेन्द्रियसे लगाकर सैनी पंचेन्द्रियपर्यंत बहुत प्रकारके होते हैं । तथा [नारकाः पृथिवीभेदगताः] नारकी जीव जितने नरक—पृथिवीके भेद हैं उतने ही हैं । नरककी पृथिवी सात हैं सो सात प्रकारके ही नारकी जीव हैं। देव, नारकी, मनुष्य ये तीन प्रकारके जीव तो पंचेन्द्रिय ही हैं और तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रियादिक भेद हैं ॥ ११८ ॥ आगे गतिआयुनामकर्मके उदयसे ये देवादिक पर्याय होते हैं इस कारण इन पर्यायोंका अनात्मस्व—

---

१ अणिमादिगुणैर्दीव्यन्ति क्रीडंतीति देवाः. २ मनसा निपुणा मनसा उत्कृष्टा वा मानुषा मनुष्या वा. ३ तिरोऽञ्चतीति तिर्यङ् । तिरस् शब्दस्य वक्रवाचिनः ग्रहणात् ४ नरान् प्राणिनः कायति कदर्थयतीति नारकं कर्म तदुदयात् जाताः नारकाः । अथवा नरान् अज्ञानिन कायति घातयति खडीकरोतीति नरकं कर्म तदुदयाज्जाता नारकाः. ५ चतुर्गत्यादिभेदेषु ।

क्षीणे पूर्वनिबद्धे गतिनाम्नि आयुषि च तेऽपि खलु ।
प्राप्नुवन्ति चान्यां गतिमायुष्कं स्वलेश्यावशात् ॥११९॥

क्षीयते हि क्रमेणारब्धफलो गतिनामविशेषायुर्विशेषश्च जीवानाम् । एवमपि तेषां गत्यंतरस्यायुरंतरस्य[1] च कषायानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिलेश्या[2] भवति बीजं[3] ततस्तदुचितमेव[4] । गत्यंतरमायुरंतरञ्च ते प्राप्नुवन्ति । एवं क्षीणाक्षीणाभ्यामपि पुनः पुनर्नवीभूताभ्यां गतिनामायुःकर्मभ्यामनात्मस्वभावभूताभ्यामपि चिरमनुगम्यमानाः[5] संसरंत्यात्मानमचेतयमाना जीवा इति ॥ ११९ ॥

एवेति तन्निषेधार्थः;—क्रमेण दत्तफले क्षीणे सति । कस्मिन् ? पूर्वनिबद्धे पूर्वोपार्जिते गतिनामकर्मण्यायुषि च तेपि खलु ते जीवाः कर्तारः खलु स्फुटं प्राप्नुवन्ति । किम् ? अन्यदपूर्वं मनुष्यगत्यपेक्षया देवगत्यादिकं भवांतरे गतिनामायुष्कं च । कथंभूताः संतः ? स्वकीयलेश्यावशाः स्वकीयपरिणामाधीना इति । तद्यथा—"चंडो ण मुअइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो । दुट्ठो स ण एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स" इत्यादिरूपेण कृष्णादिषड्लेश्यालक्षणं गोमट्टशास्त्रादौ विस्तरेण भणितमास्ते तदत्र नोच्यते । कस्मात् ? अध्यात्मग्रंथत्वात् । तथा संक्षेपेणात्र कथ्यते । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभगतिनामकर्मण आयुः कर्मणश्च बीजं कारणं भवति तेन कारणेन तद्विनाशः कर्तव्यः । कथमितिचेत् ? क्रोधमानमायालोभरूपकषायोदयचतुष्काद्भिन्ने अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यचतुष्कादभिन्ने परमात्मनि यदा भावना क्रियते तदा कषायोदयविनाशो भवति तद्भावनार्थमेव शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारपरिहारे सति योगत्रयाभावश्चेति कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिरूपलेश्याविनाशस्तदभावे गतिनामायुष्कर्मणोरभावस्तयोरभावेऽक्षयानंत-

---

भाव दिखाते हैं;—[पूर्वनिबद्धे] पूर्वकालमें बांधा हुआ [गतिनाम्नि] गतिनामक कर्म [च] और [आयुषि] आयुनामक कर्मके [क्षीणे] अपना रस देकर खिर जाने पर [खलु ते अपि] निश्चयसे वे ही जीव [स्वलेश्यावशात्] अपनी कषायगर्भित योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याके प्रभावसे [अन्यां गतिं] अन्य गतिको [च] और [आयुष्कं] आयुको [प्राप्नुवन्ति] पाते हैं । भावार्थ—जीवोंके गति और आयु जो बंधती है सो कषाय और योगोंकी परिणतिसे बंधती है । यह श्रृंखलावत् नियम सदैव चला जाता है अर्थात् एक गति और आयु कर्म खिरता है और दूसरा गति और आयुकर्म बंधता है, इसीकारण संसारमार्ग कम नहीं होता । अज्ञानी जीव इसी प्रकार अनादि कालसे भ्रमण करते रहते हैं ॥ ११९ ॥

---

१ उदीयमानात् आयुषः अन्यत् इति आयुरंतरं तस्य. २ कर्मभिः आत्मानं लिपतीति लेश्या आत्मप्रवृत्तिलेश्या कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या इति. ३ कारणं ४ तेषां जीवानां लेश्याया वा उचितं योग्यम्. ५ प्राप्यमाणाः ।

उक्तजीवप्रपञ्चोपसंहारोऽयम् ;—

एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥१२०॥

एते जीवनिकाया देहप्रवीचारमाश्रिताः भणिताः ।
देहविहीनाः सिद्धाः भव्या संसारिणोऽभव्याश्च ॥१२०॥

एते ह्युक्तप्रकाराः सर्वे संसारिणो देहप्रवीचारा अदेहप्रवीचारा भगवंतः सिद्धाः ! शुद्धा जीवाः । तत्र देहप्रवीचारत्वादेकप्रकारत्वेऽपि संसारिणो द्विप्रकाराः । भव्या अभव्याश्च । ते शुद्धस्वरूपोपलम्भशक्तिसद्भावासद्भावाभ्यां पाच्यापाच्यमुद्गवदभिधीयंत इति ॥ १२० ॥

सुखादिगुणस्य मोक्षलाभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ ११९ ॥ अथ पूर्वोक्तजीवप्रपंचस्य संसारिमुक्तभेदेनोपसंहारव्याख्यानं करोति;—एते जीवनिकाया निश्चयेन शुद्धात्मस्वरूपाश्रिता अपि व्यवहारेण कर्मजनितदेहप्रवीचाराश्रिता भणिताः देहे प्रवीचारो वर्तना देहप्रवीचारः निश्चयेन केवलज्ञानदेहस्वरूपा अपि कर्मजनितदेहविहीना भवन्ति । ते के ? शुद्धात्मोपलब्धियुक्ताः सिद्धाः, संसारिणस्तु भव्या अभव्याश्चेति । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणव्यक्तिरूपा या शुद्धिस्तस्याः शक्तिर्भव्यत्वं भण्यते तद्विपरीतमभव्यत्वं । किंवत् ? पाच्यापाच्यमुद्गवत् सुवर्णेतरपाषाणवद्वा शुद्धिशक्तिर्यासौ सम्यक्त्वग्रहणकाले व्यक्तिमासादयति अशुद्धशक्तेर्यासौ व्यक्तिः सा चाशुद्धिरूपेण पूर्वमेव तिष्ठति तेन कारणेनानादिरित्यभिप्रायः ॥ १२० ॥ एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं

आगे फिर भी इनका विशेष दिखाते हैं;—[एते] पूर्वोक्त [जीवनिकायाः] चतुर्गतिसंबंधी जीव [देहप्रवीचारं] देहके पलटनभावको [आश्रिताः] प्राप्त हुए हैं ऐसा वीतराग भगवान्ने [भणिताः] कहा है । और जो [देहविहीनाः] देहरहित हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध जीव कहलाते हैं । तथा [संसारिणः] संसारी जीव हैं वे [भव्याः] मोक्ष अवस्था होने योग्य [च] और [अभव्याः] मुक्तभावकी प्राप्तिके अयोग्य हैं । भावार्थ—लोकमें जीव दो प्रकारके हैं । एक देहधारी और एक देहरहित । देहधारी तो संसारी हैं, देहरहित सिद्धपर्यायके अनुभवी हैं । संसारी जीवोंमें फिर दो भेद हैं । एक भव्य और दूसरे अभव्य । जो जीव शुद्धस्वरूपको प्राप्त होते हैं उनको भव्य कहते हैं, और जिनके शुद्धस्वभावके प्राप्त होनेकी शक्ति ही नहीं उनको अभव्य कहते हैं । जैसे एक मूंगका दाना तो ऐसा होता है कि वह सिजानेसे सीज जाता है अर्थात् पक जाता है और कोई कोई मूंग ऐसा होता है कि उसके नीचे कितनी ही लकड़ियां जलाओ वह सीजता ही नहीं, उसको कोरड्डू कहते हैं ॥ १२० ॥

व्यवहारजीवत्वैकांतप्रतिपत्तिनिरासोऽयम् ;—

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता ।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥१२२॥

न हीन्द्रियाणि जीवाः कायाः पुनः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः ।
यद्भवति तेषु ज्ञानं जीव इति च तत्प्ररूपयन्ति ॥ १२१ ॥

य इमे एकेन्द्रियादयः पृथिवीकायिकादयश्चानादिजीवपुद्गलपरस्परावगाहमवलोक्य, व्यवहारनयेन जीवप्राधान्याज्जीवा इति प्रज्ञाप्यंते । निश्चयनयेन तेषु स्पर्शनादीन्द्रियाणि, पृथिव्यादयश्च कायाः जीवलक्षणभूतचैतन्यस्वभावाभावान्न जीवा भवंतीति ।

पंचेन्द्रियव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थलं गतं । अत्र पंचेन्द्रिया इत्युपलक्षणं तेन कारणेन गौणवृत्त्या "तिरिया बहुप्पयारा ।" इति पूर्वोक्तगाथाखंडनैकेन्द्रियादिव्याख्यानमपि ज्ञातव्यं । उपलक्षणविषये दृष्टांतमाह—काकेभ्यो रक्षतां सर्पिरित्युक्ते मार्जारादिभ्योपि रक्षणीयमिति । अथेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकायाश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति प्रज्ञापयति;—इन्द्रियाणि जीवा न भवन्ति । न केवलमिन्द्रियाणि । पृथिव्यादिकायाः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ता ये परमागमे तेपि । तर्हि किं जीवः यद्भवति तेषु मध्ये ज्ञानं जीव इति तत्प्ररूपयन्तीति । तद्यथा—अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण स्पर्शनादिद्रव्येन्द्रियाणि तथैवाशुद्धनिश्चयेन लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेन्द्रियाणि यद्यपि जीवा भ-

आगे सर्वथा प्रकार व्यवहारनयाश्रित ही जीवोंको नहीं कहा जाता, कथंचित् अन्य प्रकार भी हैं सो दिखाते हैं;—[इन्द्रियाणि] स्पर्शादि इन्द्रियाँ [जीवाः] जीवद्रव्य [न हि] निश्चय करके नहीं है । [पुनः] फिर [षट्प्रकाराः] छह प्रकार [कायाः] पृथिवी आदिक काय [प्रज्ञप्ताः] कहे हैं वे भी निश्चय करके जीव नहीं हैं । तब जीव कौन है ? [यत्] जो [तेषु] उन इन्द्रिय और शरीरोंमें [ज्ञानं] चैतन्यभाव [भवति] है [तत्] उसको ही [जीव इति] जीव नामका द्रव्य [प्ररूपयंति] महापुरुष कहते हैं । भावार्थ—जो एकेन्द्रियादिक और पृथिवीकायिकादिक व्यवहारनयनकी अपेक्षा जीवके मुख्य कथनसे जीव कहे जाते हैं वे अनादि पुद्गल जीवके सम्बन्धसे पर्याय होते हैं । निश्चयनयसे विचारा जाय तो स्पर्शनादि इन्द्रिय, पृथिवीकायादिक काया चैतन्यलक्षणी जीवके स्वभावसे भिन्न हैं, जीव नहीं हैं । उनही पांच इन्द्रिय षट्कायोंमें जो स्वपरका जानने वाला है अपने ज्ञान गुणसे यद्यपि गुणगुणीभेदसंयुक्त है तथापि कथंचित् अभेदसंयुक्त है । वह अविनाशी अचल निर्मल चैतन्यस्वरूप जीव पदार्थ जानो । अनादि अविद्यासे देहधारी होकर पंच इन्द्रिय विषयोंका भोक्ता है । मोही होकर

१ संसारिजीवेषु ।

तेष्ववपर्त्स्वपरपरिच्छित्तिरूपेण प्रकाशमानं ज्ञानं तदेव गुणगुणिनोः कथञ्चिदभेदाज्जीवत्वेन प्ररूप्यत इति ॥ १२१ ॥

अन्यासाधारणजीवकार्यख्यापनमेतत्;—

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं बिभेदि दुक्खादो ।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥

जानाति पश्यति सर्वमिच्छति सौख्यं बिभेति दुःखात् ।
करोति हितमहितं वा भुङ्क्ते जीवः फलं तयोः ॥१२२॥

चैतन्यस्वभावत्वात्कर्तृस्थायाः[2] क्रियायाः ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्त्ता न तत्संबन्धः[3] पुद्गलो यथाकाशादि । सुखाभिलाषक्रियायाः दुःखोद्वेगक्रियायाः स्वसंवेदितहिताहितनिर्वर्तनक्रिया-

र्यंते तथैव व्यवहारेण पृथिव्यादिषट्कायाश्च तथापि शुद्धनिश्चयेन यदतीन्द्रियममूर्तं केवलज्ञानांतर्भूतमनंतसुखादिगुणकदंबकं स जीव इति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १२१ ॥ अथ ज्ञातृत्वादि कार्यं जीवस्य संभवतीति निश्चिनोति;—जानाति पश्यति । किं ? सर्वं वस्तु, इच्छति । किं ? सौख्यं विभेति । कस्मात् । दुःखात्, करोति । किं ? हितमहितं वा, भुंक्ते । स कः कर्ता ? जीवः । किं ? फलं । कयोः ? तयोर्हिताहितयोरिति । तथाहि—पदार्थपरिच्छित्तिरूपायाः क्रियाया ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्ता न तत्संबंधः पुद्गलः कर्मनोकर्मरूपः सुखपरिणतिरूपायाः इच्छाक्रियायाः स एव दुःखपरिणतिरूपाया भीतिक्रियायाः स एव च हिताहितपरिणतिरूपायाः कर्तृक्रिया-

मत्त पुरुषके समान परद्रव्यमें ममत्वभाव करता है, मोक्षके सुखसे पराङ्मुख है । ऐसे संसारी जीव यदि स्वाभाविक भावसे विचार किया जाय तो निर्मल चैतन्यविलासी आत्माराम हैं ॥ १२१ ॥ आगे अन्य अचेतनद्रव्योंमें न पायी जानेवाली कौन कौनसी करतूत है, ऐसा कथन करते हैं;—[जीवः] आत्मा [सर्वं] समस्त ही [जानाति] जानता है [पश्यति] सबको देखता है [सौख्यं] सुखको [इच्छति] चाहता है और [दुःखात्] दुःखसे [बिभेति] डरता है [हितं] शुभाचारको [वा] अथवा [अहितं] अशुभाचारको [करोति] करता है और [तयोः] उन शुभ-अशुभ क्रियाओंके [फलं] फलको [भुङ्क्ते] भोगता है । भावार्थ—ज्ञानदर्शनक्रियाका कर्त्ता जीव ही है, जीवका चैतन्यस्वभाव है, इस कारण यह ज्ञानदर्शनक्रियासे तन्मय है । उसही का संबंधी यह पुद्गल चैतन्य-क्रियाका कर्त्ता नहीं है । जैसे आकाशादि चार अचेतन द्रव्य भी कर्त्ता नहीं है । सुखकी अभिलाषा, दुःखसे डरना, शुभाशुभ प्रवर्तन इत्यादि क्रियाओंमें संकल्पविकल्पका कर्त्ता जीव ही है । इष्ट, अनिष्ट

१ इन्द्रियकायेषु. २ कथंभूतायाः क्रियायाः कर्तृस्थायाः । कर्तरि तिष्ठति इति कर्तृस्था तस्याः कर्तृस्थायाः. ३ अनादिकर्मबंधत्वात् तत्संबंधः जीवसंबंधः पुद्गलः कथ्यते । स पुद्गलो ज्ञप्तिक्रियायाश्च कर्त्ता दृशिक्रियायाश्च नेति तात्पर्यम् ।

याश्च चैतन्यविवर्तनरूपसंङ्कल्पप्रभवत्वात्स[2] एव कर्त्ता नान्यः । शुभाशुभकर्मफलभूताया इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियायाश्च सुखदुःखस्वरूपस्वपरिणामक्रियाया इव स एव कर्त्ता नान्यः । एतेन[3]ासाधारणकार्यानुमेयत्वं पुद्गलव्यतिरिक्तस्यात्मनो द्योतितमिति ॥१२२॥

जीवाजीवव्याख्योपसंहारोपक्षेपसूचनेयम् ;—

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं वहुगेहिं ।
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥१२३॥

एवमभिगम्य जीवमन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः ।
अभिगच्छत्वजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैः ॥ १२३ ॥

एवमनया दिशा व्यवहारनयेन कर्म[4]ग्रंथप्रतिपादितजीवगुणमार्गणास्थानादिप्रपञ्चितविचित्रविकल्परूपैः, निश्चयनयेन मोहरागद्वेषपरिणतिसंपादितविश्वरूपत्वात्कदाचिदशुद्धैः

याश्च स एव सुखदुःखफलानुभवनरूपाया भोक्तृक्रियायाश्च स एव कर्ता भवतीत्यसाधारणकार्येण जीवास्तित्वं ज्ञातव्यं । तच्च कर्तृत्वमशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण त्रिधा भिद्यते, अथवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकर्तृत्वं तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिविकल्परूपभावकर्मकर्तृत्वं शुद्धनिश्चयेन तु केवलज्ञानादिशुद्धभावानां परिणमनरूपं कर्तृत्वं नयत्रयेण भोक्तृत्वमपि तथैवेति सूत्रतात्पर्यं ॥ तथा चोक्तं । "पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो । चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं" ॥ १२२ ॥ एवं भेदभावनामुख्यत्वेन प्रथमगाथा जीवस्यासाधारणकार्यकथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पंचमस्थलं गतं । अथ गाथापूर्वार्धेन जीवाधिकारव्याख्यानोपसंहारमुत्तरार्धेन चाजीवाधिकारप्रारंभं करोति;—एवमभिगम्य ज्ञात्वा । कं । जीवं अन्यैरपि पर्यायैर्बहुकैः पश्चादभिगच्छतु जानातु । कं ? अजीवं ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैरिति ।

पदार्थोंकी भोगक्रियाका, अपने सुखदुःखरूप परिणामक्रियाका कर्त्ता एक जीव पदार्थको ही जानो । इनका कर्ता और कोई नहीं है । ये जो क्रियायें कही हैं वे सब शुद्ध-अशुद्ध चैतन्यभावमयी हैं, इस कारण ये क्रियायें पुद्गलकी नहीं हैं, आत्माकी ही हैं । ॥ १२२ ॥ आगे जीव-अजीवका व्याख्यान संक्षेपसे दिखाते हैं;—[एवं] इसप्रकार [अन्यैः अपि] अन्य भी [बहुकैः पर्यायैः] अनेक पर्यायोंसे [जीवं] आत्माको [अभिगम्य] जानकर [ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैः] ज्ञानसे भिन्न स्पर्शरसगंधवर्णादिचिन्होंसे [अजीवं] पुद्गलादिक पांच अजीव द्रव्योंको [अभिगच्छतु] जानो । भावार्थ—जैसे पूर्वमें जीवकी करतूतें दिखाई, वैसे ही व्यवहारनयसे कर्मपद्धतिके विचारमें जीवसमास, गुणस्थान, मार्गणास्थान इत्यादि अनेकप्रकार पर्यायविलासकी विचित्रतामें जीवपदार्थ जानना चाहिये । और अशुद्ध निश्चयनयसे कदाचित् मोहरागद्वेषपरिणतिसे

---

१ पर्यायरूपः. २ जीवः. ३ ज्ञप्तेर्हंशेश्च क्रियायाः कर्त्ता न स्यादित्यनेन. ४ गोम्मटसारादिकर्मग्रंथाः संप्रति विद्यंत एव वा अन्या अपि कर्मपद्धतयः संत्येव तैः प्रतिपादितः ।

कदाचित्तदभावाच्छुद्धैश्चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूपैर्बहुभिः पर्यायैः जीवमधिगच्छेत् । अधिगम्य चैवमचैतन्यस्वभावत्वात् ज्ञानादर्थांतरभूतैरितः प्रपञ्चमानैर्लिङ्गैर्जीवसंबद्धमसंबद्धं वा स्वतो भेदबुद्धिप्रसिद्ध्यर्थमजीवमधिगच्छेदिति ॥ १२३ ॥ इति जीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथाजीवपदार्थव्याख्यानम् । आकाशादीनामेवाजीवत्वे हेतूपन्यासोऽयम् ;—

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥१२४॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणाः ।
तेषामचेतनत्वं भणितं जीवस्य चेतनता ॥ १२४ ॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु चैतन्यविशेषरूपा जीवगुणा नो विद्यंते । आकाशादीनां

तद्यथा—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवपदार्थमधिगम्य । कैः ? पर्यायैः । कथंभूतैः ? पूर्वोक्तैः, न केवलं पूर्वोक्तैः व्यवहारेण गुणस्थानमार्गणास्थानभेदगतनामकर्मोदयादिजनितस्वकीयस्वकीयमनुष्यादिशरीरसंस्थानसंहननप्रभृतिबहिरंगाकारैर्निश्चयेनाभ्यंतरैः रागद्वेषमोहरूपैरशुद्धैस्तथैव च नीरागनिर्विकल्पचिदानंदैकस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसंजातपरमानंदसुस्थितसुखामृतरसानुभवसमरसीभावपरिणतमनोरूपैः शुद्धैश्चान्यैरपि । पश्चात् । किं करोतु ? जानातु । कं ? अजीवं पदार्थं । कैः ? लिंगैः चिन्हैः । किंविशिष्टैरग्रे वक्ष्यमाणैर्ज्ञानांतरितत्वात् जडैश्चेति सूत्राभिप्रायः ॥ ॥ १२३ ॥ एवं जीवपदार्थव्याख्यानोपसंहारः तथैवाजीवव्याख्यानप्रारंभ इत्येकसूत्रेण षष्ठस्थलं गतं । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवाजीवा भावा" इत्यादि नवपदार्थानां नामकथनरूपेण स्वतन्त्रगाथासूत्रमेकं, तदनंतरं जीवादिपदार्थव्याख्यानेन षट्स्थलैः पंचदशसूत्राणीति समुदा-

---

उत्पन्न अनेकप्रकार अशुद्ध पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है । और कदाचित् मोहजनित अशुद्ध परिणतिके विनाश होनेसे शुद्ध चेतनामयी अनेक पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है । इत्यादि अनेक भगवत्प्रणीत आगमके अनुसार नयविलासोंसे जीव पदार्थको जाने और अजीव पदार्थका स्वरूप जाने सो अजीवद्रव्य जड़स्वभावोंके द्वारा जाने जाते हैं । अर्थात् ज्ञानसे भिन्न अन्य स्पर्शरसगंधवर्णादिक चिन्होंसे जीवसे बंधे हुये कर्म नोकर्मादिरूप तथा नहीं बंधे हुये परमाणु आदिक सबही अजीव हैं । जीव अजीव पदार्थोंके लक्षणका जो भेद किया जाता है सो एकमात्र भेदविज्ञानकी सिद्धि के निमित्त है । इस प्रकार यह जीवपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥ आगे अजीव पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु] आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इन पांचों द्रव्योंमें [जीवगुणाः] सुखसत्ता बोध चैतन्यादि जीवके गुण [न] नहीं [सन्ति] हैं, [तेषां] उन

---

१ तेषां रागद्वेषमोहादीनामभावात्. २ इतः परं कथ्यमानैः ।

तेषामचेतनत्वसामान्यत्वात् । अचेतनत्वसामान्यञ्चाकाशादीनामेव । चेतनता जीवस्यैव । चेतनत्वसामान्यादिति ॥१२४॥

आकाशादीनामचेतनत्वसामान्ये पुनरनुमानमेतत्;—

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥१२५॥

सुखदुःखज्ञानं वा हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वं ।
यस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा विदंत्यजीवं ॥१२५॥

येन षोडशगाथाभिर्नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये "द्वितीयांतराधिकारः" समाप्तः । अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितः केवलज्ञानाद्यनंतगुणस्वरूपो जीवादिनवपदार्थांतर्गतो भूतार्थपरमार्थरूपः शुद्धसमयसाराभिधान उपादेयभूतो योऽसौ शुद्धजीवपदार्थस्तस्मात्सकाशाद्विलक्षणस्वरूपस्याजीवपदार्थस्य गाथाचतुष्टयेन व्याख्यानं क्रियते । तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये अजीवत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयासकाल" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं भेदभावनार्थं देहगतशुद्धजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन "अरसमरूवं" इत्यादि सूत्रमेकं, एवं गाथाचतुष्टपर्यंतं स्थलद्वयेनाजीवाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथाकाशादीनामजीवत्वे कारणं प्रतिपादयति;—आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेष्वनंतज्ञानदर्शनादयो जीवगुणाः सन्ति न ततः कारणात्तेषामचेतनत्वं भणितं । कस्मात् तेषां जीवगुणा न संतीतिचेत् । युगपज्जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थपरिच्छेदकत्वेन जीवस्यैव चेतकत्वादिति सूत्राभिप्रायः ॥ १२४ ॥ अथाकाशादीनामेवाचेतनत्वे साध्ये पुनरपि कारणं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—सुखदुःखज्ञातृता वा हितपरिकर्म च तथैवाहितभीरुत्वं यस्य पदार्थस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा ब्रुवंत्यजीवमिति । तदेव कथ्यते । अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिता चंदनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहिविषकंटकादि । संज्ञानिनां पुनरक्षयानंतसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कार-

आकाशादि पंचद्रव्योंके [अचेतनत्वं] चेतनारहित जड़भाव [भणितं] वीतराग भगवानने कहा है [चेतनता] चैतन्यभाव [जीवस्य] जीवद्रव्यके ही कहा गया है । भावार्थ—आकाशादि पांच द्रव्य अचेतन जानो, क्योंकि उनमें एक जड़ ही धर्म है । जीवद्रव्यमात्र एक चेतन है ॥ १२४ ॥ आगे आकाशादिकमें निश्चयसे चैतन्य है ही नहीं, ऐसा अनुमान दिखाते हैं;—[यस्य] जिस द्रव्यके [सुखदुःखज्ञानं] सुखदुःखको जानना [वा] अथवा [हितपरिकर्म] उत्तम कार्योंमें प्रवृत्ति [च] और [अहितभीरुत्वं] दुखदायक कार्यसे भय [न विद्यते] नहीं है [श्रमणाः] गणधरादिक [तं नित्यं] सदैव उस द्रव्यको [अजीवं] अजीव ऐसा नाम [विंदंति] जानते हैं । भावार्थ—जिन द्रव्योंसे सुखदुःखका जानना

सुखदुःखज्ञानस्य हितपरिकर्मणोऽहितभीरुत्वस्य चेति, चैतन्यविशेषाणां नित्यमनुपलब्धेरविद्यमानचैतन्यसामान्या एवाकाशादयोऽजीवा इति ॥ १२५ ॥

जीवपुद्गलयोः संयोगेऽपि भेदनिबंधनस्वरूपाख्यानमेतत्;—

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥१२६॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥१२७॥

संस्थानानि संघाताः वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च ।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणाः पर्यायाश्च वहवः ॥१२६॥
अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दं ।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥१२७॥

भूतं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमात्मद्रव्यं च एवं हिताहितादिपरीक्षारूपचैतन्यविशेषाणामभावादचेतना आकाशादयः पंचेति भावार्थः ॥ १२५ ॥ अथ संस्थानादिपुद्गलपर्याया जीवेन सह क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठंत्यपि निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति भेदज्ञानं दर्शयति;—समचतुरस्रादिषट्संस्थानानि औदारिकादिशरीरसंबंधिनः पंचसंघाताः वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाश्च संस्थानादि पुद्गलविकाररहितात्केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहितात्परमात्मपदार्थान्निश्चयेन भिन्नत्वादेते सर्वे च पुद्गलद्रव्यप्रभवाः । एतेषु मध्ये के गुणाः के पर्याया इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरमाह—वर्णरसस्पर्शगंधगुणा भवन्ति संस्थानादयस्तु पर्यायास्ते च प्रत्येकं वहव इति सूत्राभिप्रायः ॥ १२६ ॥ एवं पुद्गलादिपंचद्रव्याणामजीवत्वकथनमुख्यतया गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतं । अथ यदि संस्थानादयो जीवस्वरूपं न भवन्ति तर्हि किं जीवस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह;—अरसं रसगुणसहितपुद्गलद्रव्यरूपो न भवति रसगुणमात्रो वा न भवति रसग्राहकपौद्गलिकजिव्हाभिधानद्रव्ये-

---

नहीं है और जिन द्रव्योंमें इष्ट अनिष्ट कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, उन द्रव्योंके विषयमें ऐसा अनुमान होता है कि वे चेतना गुणसे रहित हैं सो वे आकाशादिक ही पांच द्रव्य हैं ॥ १२५ ॥ आगे यद्यपि जीवपुद्गलका संयोग है तथापि आपसमें लक्षणभेद है ऐसा भेद दिखाते हैं;-[संस्थानानि] जीवपुद्गलके संयोगमें जो समचतुरस्रादि षट् संस्थान हैं और [संघाताः] वज्रवृषभनाराच आदि संहनन हैं [च] और [वर्णरसस्पर्शगंधशब्दाः] वर्ण ५ रस ५ स्पर्श ८ गंध २ और शब्दादि [पुद्गलद्रव्यप्रभवाः] पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न [वहवः] वहुत जातिके [गुणाः] सहभू वर्णादि गुण [च] और [पर्यायाः] संस्थानादि पर्याय [भवन्ति] होते हैं। और [जीवं] जीवद्रव्यको [अरसं] रसगुणरहित, [अरूपं] वर्णरहित [अगंधं] गंध रहित [अव्यक्तं] अप्रगट [चेतनागुणं] ज्ञानदर्शन गुणवाला [अशब्दं] शब्दपर्याय

यत्खलु शरीरशरीरिसंयोगेन स्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वाच्छब्दत्वसंस्थानसङ्घातादिपर्य्याय-परिणतत्वाच्च, इन्द्रियग्रहणयोग्यं तत्पुद्गलद्रव्यम् । यत्पुनरस्पर्शरसगंधवर्णगुणत्वादशब्दत्वादनिर्दिष्टसंस्थानत्वादव्यक्तत्वादिपर्य्यायैः परिणतत्वाच्च नेन्द्रियग्रहणयोग्यम् , तच्चेतनागुणत्वात् रूपिभ्योऽरूपिभ्यश्चाजीवेभ्यो विशिष्टं जीवद्रव्यम् । एवमिह जीवाजीवयोर्द्वयोर्वास्तवो भेदः

न्द्रियरूपो न भवति तेनैव जिह्वाद्रव्येन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति निश्चयेन येन स्वयं द्रव्येन्द्रियेण रसग्राहको न भवतीति । निश्चयेन यः ग्राहको न भवतीति सर्वत्र संबंधनीयः । तथा रसास्वादपरिच्छेदकं क्षायोपशमिकं यद्भावेन्द्रियं तद्रूपो न भवति तेनैव भावेन्द्रियेण करणभूतेन परेषां स्वस्य वा रसवत्परिच्छेद्यो न भवति पुनस्तेनैव भावेन्द्रियेण रसपरिच्छेदको न भवति । तथैव सकलग्राहकाखंडैकप्रतिभासमयं यत्केवलज्ञानं तद्रूपत्वात् पूर्वोक्तं रसास्वादकं यद्भावेन्द्रियं तस्मात्कारणभूताद्रुत्पन्नं यत्कार्यभूतं रसपरिच्छित्तिमात्रं खंडज्ञानं तद्रूपो न भवति तथैव च रसं जानाति रसरूपेण तन्मयो न भवतीत्यरसः । अनेन प्रकारेण यथासंभवं रूपगंधशब्दविषयेषु तथाचाध्याहारं कृत्वा स्पर्शविषये च योजनीयं अव्वत्तं यथा क्रोधादिकषायचक्रं मिथ्यात्वरागादिपरिणतमनसां निर्मलस्वरूपोपलब्धिरहितानां व्यक्तिमायाति तथा परमात्मा नायातीत्यव्यक्तः । असंठाणं वृत्तचतुरस्रादिसकलसंस्थानरहिताखण्डैकप्रतिभासमयपरमात्मरूपत्वात् पौद्गलिककर्मोदयजनितसमचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितत्वादसंस्थानं अलिंगग्गहणं यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्षज्ञानेन व्यवहारनयेन धूमादग्निवदशुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानसमुत्पन्नपरमानंदरूपानाकुलत्वसुस्थितवास्तवसुखामृतजलेन पूर्णकलशवत्सर्वप्रदेशेषु भरितावस्थानां परमयोगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवतीत्यलिंगग्रहणः, चेदणागुणं "यत्सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां

रहित [अलिंगग्रहणं] इन्द्रियादि चिह्नोंसे ग्रहण करनेमें नहीं आवे ऐसा [अनिर्दिष्टसंस्थानं] निराकार [जानीहि] जानो । भावार्थ—अनादि मिथ्या वासनासे यह आत्मद्रव्य पुद्गलके संबंधसे विभावके कारण औरका और प्रतिभासा है, उस चित् और जड़ग्रन्थिके भेद दिखानेके लिये वीतराग सर्वज्ञने पुद्गल जीवका लक्षणभेद कहा है । उस भेदको जो जीव जान करके भेदविज्ञानी अनुभवी होते हैं वे मोक्षमार्गको साधकर निराकुल सुखके भोक्ता होते हैं, इस कारण जीवपुद्गलका लक्षणभेद दिखाया जाता है कि जो आत्मशरीर इन दोनोंके संबंध स्पर्श रस गंध वर्ण गुणात्मक हैं, शब्द संस्थान संहननादि मूर्तपर्यायरूपसे परिणत हैं और इन्द्रियग्रहण योग्य हैं सो सब पुद्गलद्रव्य हैं ।

१ शीर्यतेऽनेनात्मा तत् शरीरम् शरीरसंयोगे समचतुरस्रादिषु स्थानपर्य्यायपरिणतत्वात्. २ वज्रऋषभसंहननादिपर्य्यायपरिणतं तदपि पुद्गलमेव । अतएवइन्द्रियपरिणतं तदपि पुद्गलमेव । अतएव इन्द्रियग्रहणयोग्यम्. ३ आकाररहितत्वात् , अतएव आत्मनि आकारो वर्ण्यते. ४ ज्ञानस्य अगुरुलघुकैः पर्य्यायैः परिणतत्वात्. ५ पुद्गलेभ्यः ६ धर्मादिभ्यः ७ वस्तुसंबंधी भेदः ।

सम्यग्ज्ञानानां मार्गप्रसिद्ध्यर्थं प्रतिपादित इति ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इति अजीवपदार्थव्याख्यानं पूर्णम् ।

उक्तौ मूलपदार्थौ । अथ संयोगपरिणामनिमित्तेतरसप्तपदार्थानामुपोद्घातार्थं जीवपुद्गलकर्मचक्रमनुवर्ण्यते;—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा ॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि ।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥१३०॥

यः खलु संसारस्थो जीवस्ततस्तु भवति परिणामः ।
परिणामात्कर्म कर्मणो भवंति गतिषु गतिः ॥१२८॥
गतिमधिगतस्य देहो देहादिन्द्रियाणि जायंते ।
तैस्तु विषयग्रहणं ततो रागो वा द्वेषो वा ॥१२९॥
जायते जीवस्यैवं भावः संसारचक्रवाले ।
इति जिणवरैर्भणितोऽनादिनिधनः सनिधनो वा ॥१३०॥

गुणान् पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा । जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः" इति वृत्तकथितलक्षणेन केवलज्ञान संज्ञेन शुद्धचेतनागुणेन युक्तत्वाच्चेतनागुणश्च यः जाण जीवं हे शिष्य तमेवं गुणविशिष्टं शुद्धजीवपदार्थं जानीहीति भावार्थः ॥ १२७ ॥ एवं भेदभावनार्थंसर्वप्रकारोपादेयशुद्धजीवकथनरूपेणैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं । इति गाथा चतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये तृतीयांतराधिकारः समाप्तः । अथ द्रव्यस्य सर्वथा तन्मयपरिणामित्वे सति एक एव पदार्थो जीवपुद्गलसंयोगपरिणतिरूपः, अथवा सर्वप्रकारेणापरिणामित्वे सति द्वावेव पदार्थौ जीवपुद्गलौ शुद्धौ । न च पुण्यपापादिघ-

---

और जिसमें स्पर्शरसगंधवर्ण गुण नहीं, शब्दसे अतीत आकाररहित हैं, अंतगुप्त अतीन्द्रिय जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं, चेतनागुणमयी, मूर्त्तीक अमूर्त्तीक अजीव पदार्थोंसे भिन्न अमूर्त्त वस्तु मात्र है वह ही जीव पदार्थ जानो । इस प्रकार जीव अजीव पदार्थोंमें लक्षणभेद है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ आगे इनही जीवअजीव पदार्थोंके संयोगसे उत्पन्न जो सप्त पदार्थ हैं उनके कथननिमित्त परिभ्रमणरूप कर्मचक्रका स्वरूप कहा जाता है । [यः] जो [खलु] निश्चयसे [संसारस्थः] संसारमें रहनेवाला [जीवः] अशुद्ध आत्मा है । [ततः तु] उससे तो [परिणामः] अशुद्धभाव और

---

१ उदाहरणार्थम् ।

इह हि संसारिणो जीवादनादिबंधनोपाधिवशेन स्निग्धः परिणामो भवति । परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म ! कर्मणो नारकादि गतिषु गतिः । गत्यधिगमनाद्देहः । देहादिन्द्रिययाणि । इन्द्रियेभ्यो विषयग्रहणं । विषयग्रहणाद्रागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनः स्निग्धः परिणामः । परिणामात्पुनः पुद्गलपरिणामात्मकं कर्म । कर्मणः पुनर्नारकादिगतिषु गतिः । गत्यधिगमनात्पुनर्देहः । देहात्पुनरिन्द्रियाणि । इन्द्रियेभ्यः पुनर्विषयग्रहणं । विषयग्रहणात्पुनारागद्वेषौ । रागद्वेषाभ्यां पुनरपि स्निग्धः परिणामः । एवमिदमन्योन्यकार्यकारणभूतजीवपुद्गलपरिणामात्मकं कर्मजालं संसारचक्रजीवस्यानाद्यनिधनं अनादिसनिधनं

टनात्ततश्च किंदूषणं बंधमोक्षाभावः तद्दूषणनिराकरणार्थमेकांतेन परिणामित्वापरिणामित्वयोर्निषिद्धः तस्मिन्निषेधे सति कथंचित्परिणामित्वमिति ततश्च सप्तपदार्थानां घटना भवतीति । अत्राह शिष्यः । यद्यपि कथंचित्परिणामित्वे सति पुण्यादिसप्तपदार्था घटंते तथापि तैः प्रयोजनं जीवाजीवाभ्यामेव पूर्यंते यतस्तेपि तयोरेव पर्याया इति । परिहारमाह । भव्यानां हेयोपादेयतत्त्वदर्शनार्थं तेषां कथनं । तदेव कथ्यते । दुःखं हेयतत्त्वं तस्य कारणं संसारः संसारकारणमास्रववंधपदार्थौ तयोश्च कारणं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति, सुखमुपादेयतत्त्वं तस्य कारणं मोक्षः मोक्षस्य कारणं संवरनिर्जरापदार्थद्वयं तयोश्च कारणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमिति । एवं पूर्वोक्तं जीवाजीवपदार्थद्वयं वक्ष्यमाणं पुण्यादिसप्तपदार्थसप्तकं चेत्युभयसमुदायेन नवपदार्था युज्यंते इति नवपदार्थस्थापनप्रकरणं गतं । इत ऊर्ध्वं य एव पूर्वं कथंचित्परिणामित्वबलेन जीवपुद्गलयोः संयोगपरिणामः स्थापितः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिसप्तपदार्थानां कारणं बीजं ज्ञातव्यमिति चतुर्थांतराधिकारे पातनिका;—यः खलु संसारस्थो जीवः ततः परिणामो भवति परिणामादभिनवं कर्म भवति कर्मणः सकाशाद्गतिषु गतिर्भवति इति प्रथमगाथा । गतिमधिगतस्य देहो भवति देहादिन्द्रियाणि जायंते तेभ्यो विषयग्रहणं भवतीति ततो रागद्वेषौ चेति द्वितीयगाथा । जायते जीवस्यैवं भ्रमः परिभ्रमणं । क । संसारचक्रवाले । स च किंविशिष्टः ।

[परिणामात्] उस रागद्वेषमोहजनित अशुद्धपरिणामोंसे [कर्म] आठ प्रकारका कर्म [भवति] होता है । [कर्मणः] उस पुद्गलमयी कर्मसे [गतिषु] चार गतियोंमें [गतिः] नारकादि गतियोंमें जाना [भवति] होता है । [गतिं] गतिको [अधिगतस्य] प्राप्त होनेवाले जीवके [देहः] शरीर और [देहात्] शरीरसे [इन्द्रियाणि] इन्द्रियाँ [जायंते] होती हैं [तु] और [तैः] उन इन्द्रियोंसे [विषयग्रहणं] स्पर्शनादि पाँच प्रकारके विषयोंका राग बुद्धिसे ग्रहण [वा] अथवा [ततः] उस इष्ट अनिष्ट पदार्थसे [रागः] राग [वा] अथवा [द्वेषः] द्वेषभाव उपजता है । फिर उनसे पूर्वक्रमानुसार कर्मादिक उपजते हैं । यही परिपाटी जबतक काललब्धि नहीं होती तबतक इसीप्रकार चली जाती है [संसारचक्रवाले] संसाररूपी चक्रके परिभ्रमणमें [जीवस्य] राग द्वेषभावोंसे मलिन आत्माके

वा चक्रवत्परिवर्तते । तदत्र पुद्गलपरिणामनिमित्तो जीवपरिणामो जीवपरिणामनिमित्तः पुद्गलपरिणामश्च वक्ष्यमाणपदार्थबीजत्वेन संप्रधारणीय इति ॥ १२८।१२९।१३० ॥

जिनवरैर्भणितः । पुनरपि किं विशिष्टः ? अभव्यभव्यजीवापेक्षयानादिनिधनसनिधनश्चेति तृतीयगाथा । तद्यथा—यद्यपि शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावोऽयं जीवस्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबंधवशादात्मसंवित्तिलक्षणमशुद्धपरिणामं करोति, ततः परिणामात्कर्मातीतानंतज्ञानादिगुणात्मस्वभावप्रच्छादकं पौद्गलिकं ज्ञानावरणादिकर्म बध्नाति । कर्मोदयादात्मोपलब्धिलक्षणपंचमगतिसुखविलक्षणासु सुरनरनारकादिचतुर्गतिषु गमनं भवति । ततश्च शरीररहितचिदानंदैकस्वभावात्मविपरीतो देहो भवति । ततोऽतीन्द्रियामूर्तपरमात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतानीन्द्रियाणि समुत्पद्यंते । तेभ्योपि निर्विषयशुद्धात्मध्यानोत्थवीतरागपरमानंदैकस्वरूपसुखविपरीतं पंचेन्द्रियविषयसुखपरिणमनं भवति । ततो रागादिदोषरहितानंतज्ञानादिगुणास्पदात्मतत्त्वविलक्षणौ रागद्वेषौ समुत्पद्येते । रागद्वेषपरिणामात्कारणभूतात्पूर्ववत् पुनरपि कार्यभूतं कर्म भवतीति रागादिपरिणामानां कर्मणश्च योऽसौ परस्परं कार्यकारणभावः स एव वक्ष्यमाणपुण्यादिपदार्थानां कारणमिति ज्ञात्वा पूर्वोक्तसंसारचक्रविनाशार्थमव्याबाधानंतसुखादिगुणानां चक्रभूते समूहरूपे निजात्मस्वरूपे रागादिविकल्पपरिहारेण भावना कर्तव्येति । किंच कथंचित्परिणामित्वे सत्यज्ञानी जीवो निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति पापपदार्थस्यास्रवबंधपदार्थयोश्च कर्ता भवति । कदाचिन्मंदमिथ्यात्वोदयेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवति । यस्तु ज्ञानी जीवः स निर्विकारात्मतत्त्वविषये या रुचिस्तथा परिच्छित्तिर्निश्चलानुभूतिरित्यभेदरत्नत्रयपरिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां कर्ता भवति । यदा पुनः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रये स्थातुं न शक्नोति तदा निर्दोषिपरमात्मस्वरूपार्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च निर्भरासाधारणभक्तिरूपं संसारविच्छित्तिकारणं परंपरया मुक्तिकारणं च तीर्थंकरप्रकृत्यादिपुण्यानुबंधिविशिष्टपुण्यरूपमनीहितवृत्त्या निदानरहितपरिणामेन पुण्यपदार्थं च करोतीत्यनेन प्रकारेणाज्ञानी जीवः पापादिपदार्थ-

---

[एवं भावः] इसी प्रकारका अशुद्धभाव [जायते] उपजता है [स भावः] वह अशुद्धभाव [अनादिनिधनः] अभव्य जीवकी अपेक्षा अनादि—अनंत है [वा] अथवा [सनिधनः] भव्य जीवकी अपेक्षा अंत सहित है । [इति] इसप्रकार [जिनवरैः] जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा [भणितः] कहा गया है । **भावार्थ**—इस संसारी जीवके अनादि बंधपर्यायके वशसे सरागपरिणाम होते हैं । उनके निमित्तसे द्रव्यकर्मकी उत्पत्ति है। उससे चतुर्गतिमें गमन होता है। चतुर्गतिगमनसे देह, देहसे इन्द्रियां, इन्द्रियोंसे इष्टानिष्ट पदार्थोंका ज्ञान होता है । उससे रागद्वेषबुद्धि और उससे स्निग्धपरिणाम होते हैं । उनसे फिर कर्मादिक होते हैं । इसीप्रकार परस्पर कार्यकारणरूप जीव पुद्गल परिणाममयी कर्मसमूहरूप संसारचक्रमें जीवके अनादिअनंत अनादिसांत कुम्हारके चाकके समान परिभ्रमण होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि—पुद्गलपरिणामका निमित्त

अथ पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् । पुण्यपापयोग्यभावस्वभावाख्यापनमेतत् ;—

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥१३१॥

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य भावे ।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ॥ १३१ ॥

इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामतः मोहः । विचित्रचारित्रमोहनीयविपाकप्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ । तस्यैव मंदोदये विशुद्धपरिणामतः चित्तप्रसादपरिणामः[1] । एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यावश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः । तत्र[2] यत्र[3] प्रश-

---

चतुष्टयस्य कर्ता ज्ञानी तु संवरादिपदार्थत्रयस्येति भावार्थः ॥ १२८ । १२९ । १३० ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगवियोगपरिणामेन निर्वृत्ता इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थांतराधिकारः समाप्तः । अथ पुण्यपापाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति । तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये प्रथमं तावत्परमानंदैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य भावपुण्यापापयोग्यपरिणामस्य सूचनमुख्यत्वेन "मोहो व रागदोसो" इत्यादिगाथासूत्रमेकं । अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयस्वरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन "सुहपरिणामो" इत्यादि सूत्रमेकं । अथ नैयायिकमतनिराकरणार्थं पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेण "जह्मा कम्मस्स फलं" इत्यादि सूत्रमेकं । अथ चिरंतनागंतुकयोर्मूर्तयोः कर्मणोः स्पृष्टत्वबद्धत्वस्थापनार्थं शुद्धत्वनिश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्यानादिबंधसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन मूर्तत्वं मूर्तजीवेन सह मूर्तकर्मणो बंधप्रतिपादनार्थं च "मुत्तो पासदि" इत्यादि सूत्रमेकमिति गाथाचतुष्टयेन पंचमांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ पुण्यपापयोग्यभावस्वरूपं कथ्यते;—मोहो वा रागो वा द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य जीवस्य भावे मनसि विद्यते तस्य शुभोऽशुभो वा भवति परिणाम इति । इतो विशेषः—दर्शनमोहोदये सति निश्चयशुद्धात्मरुचिरहितस्य

पाकर जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, और उन अशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे पुद्गलपरिणाम होते हैं ॥ १२८ । १२९ । १३० ॥ आगे पुण्य-पाप पदार्थका व्याख्यान करते हैं । अब प्रथम ही पुण्य-पाप पदार्थोंके योग्य परिणामोंका स्वरूप दिखाते हैं;—[यस्य] जिसके [भावे] भावोंमें [मोहः] गहलरूप अज्ञानपरिणाम [रागः] परद्रव्योंमें प्रीतिरूप परिणाम [द्वेषः] अप्रीतिरूप परिणाम [च] और [चित्तप्रसादः] चित्तकी प्रसन्नता [विद्यते] प्रवर्तमान है [तस्य] उस जीवके [शुभः] शुभ [वा] । अथवा [अशुभः वा] अशुभ [परिणामः] परिणमन [भवति] होता है । **भावार्थ**—इस लोकमें जीवके निश्चयसे जब दर्शनमोहनीय कर्मका उदय होता है तब

---

१ निर्मलपरिणामः. २ परिणामयोर्मध्ये ३ यस्मिन् जीवे ।

स्तरागश्चित्तप्रसादश्च तत्र शुभः परिणामः । यत्र मोहद्वेषावप्रशस्तरागश्च तत्राऽशुभ इति ॥ १३१ ॥

पुण्यपापस्वरूपाख्यानमेतत्;—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स ।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥ १३२ ॥

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भवति जीवस्य ।
द्वयोः पुद्गलमात्रो भावः कर्मत्वं प्राप्तः ॥ १३२ ॥

जीवस्य कर्तुः निश्चयकर्मतामापन्नः[1] शुभपरिणामो द्रव्यपुण्यस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं[2] भवति भावपुण्यम् । एवं जीवस्य कर्तुर्निश्चयकर्मतामापन्नोऽशुभ-

---

व्यवहाररत्नत्रयतत्वार्थरुचिरहितस्य वा योऽसौ विपरीताभिनिवेशपरिणाम स दर्शनमोहस्तस्यैवात्मनो विचित्रचारित्रमोहोदये सति निश्चयवीतरागचारित्ररहितस्य व्यवहारव्रतादिपरिणामरहितस्य इष्टानिष्टविषये प्रीत्यप्रीतिपरिणामौ रागद्वेषौ भण्येते । तस्यैव मोहस्य मंदोदये सति चित्तस्य विशुद्धिश्चित्तप्रसादो भण्यते । अत्र मोहद्वेषावशुभौ विषयाद्यप्रशस्तरागश्च, दानपूजाव्रतशीलादिरूपः शुभरागश्चित्तप्रसादपरिणामश्च शुभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ १३१ ॥ एवं शुभाशुभपरिणामकथनरूपेणैकसूत्रेण प्रथमस्थलं गतं । अथ गाथापूर्वार्धेन भावपुण्यपापद्वयमपरार्धेन तु द्रव्यपुण्यपापद्वयं चेति प्रतिपादयतिः—**सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति होदि** शुभपरिणामः पुण्यं अशुभः पापमिति भवति । कस्य परिणाम ? **जीवस्स** जीवस्य । **दोण्हं** द्वाभ्यां पूर्वोक्तशुभाशुभजीवपरिणामाभ्यां निमित्तभूताभ्यां सकाशात् **भावो** भावः ज्ञानावरणादिपर्यायः । किं-

---

उसके रसविपाकसे जो शुद्ध तत्त्वके अश्रद्धानरूप परिणाम हों उसका नाम मोह है । और चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जो इसके रसविपाकका कारण पाकर इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें जो प्रीति अप्रीतिरूप परिणाम होता है, उसका नाम राग द्वेष है । उसही चारित्रमोह कर्मका जब मंद उदय हो और उसके रसविपाकसे जो कुछ विशुद्ध परिणाम हो जिसका नाम चित्तप्रसाद है । इसप्रकार जिस जीवके ये भाव हों उसके अवश्यमेव शुभा-अशुभ परिणाम होते हैं । जहां देवधर्मादिकमें प्रशस्त राग और चित्तप्रसाद दोनों ही शुभपरिणाम कहलाते हैं । और जहां मोहद्वेष हों और जहां इन्द्रियोंके विषयोंमें तथा धनधान्यादिकोंमें अप्रशस्त राग हो सो अशुभराग कहलाता है ॥ १३१ ॥ आगे पुण्यपापका स्वरूप कहते हैं;—[जीवस्य] जीवके [शुभपरिणामः] सत्क्रिया रूप परिणाम [पुण्यं] पुण्यनामक पदार्थ है [अशुभः] विषयकषायादिकमें प्रवृत्ति का होना [पापं इति] पाप पदार्थ [भवति] होता है [द्व-

---

१ अशुद्धनिश्चयनयेन. २ पूर्वं ।

परिणामो द्रव्यपापस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणीभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापम् पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नो विशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपुण्यम् । पुद्गलस्य कर्तृनिश्चयकर्मतामापन्नोऽविशिष्टप्रकृतित्वपरिणामो जीवाऽशुभपरिणामनिमित्तो द्रव्यपापम् । एवं व्यवहारनिश्चयाभ्यामात्मनो मूर्तममूर्तञ्च कर्म प्रज्ञापितमिति ॥ १३२ ॥

मूर्तकर्मसमर्थनमेतत् ;—

जह्मा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुञ्जदे णियदं ।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥१३३॥

विशिष्टः १ पोग्गलमेत्तो पुद्गलमात्रः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डरूपः कम्मत्तणं पत्तो कर्मत्वं द्रव्यकर्मपर्यायं प्राप्त इति । तथाहि—यद्यपि अशुद्धनिश्चयेन जीवेनोपादानकारणभूतेन जनितौ शुभाशुभपरिणामौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण नवतरद्रव्यपुण्यपापद्वयस्य कारणभूतौ यतस्ततः कारणद्भावपुण्यपापपदार्थौ भण्येते । यद्यपि निश्चयेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिण्डजनितौ तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण जीवेन शुभाशुभपरिणामेन जनितौ सद्वेद्यासद्वेद्यादिद्रव्यप्रकृतिरूपपुद्गलपिण्डौ द्रव्यपुण्यपापपदार्थौ भण्येते चेति सूत्रार्थः ॥ १३२ ॥ एवं शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः

योः] इन दोनों शुभाशुभ परिणामोंका [पुद्गलमात्रः भावः] द्रव्यपिण्डरूप ज्ञानावरणादि परिणाम [कर्मत्वं] शुभाशुभ कर्मावस्थाको [प्राप्तः] प्राप्त हुआ है । भावार्थ—संसारी जीवके शुभअशुभके भेदसे दो प्रकारके परिणाम होते हैं । उन परिणामोंका अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा जीव कर्त्ता है, शुभपरिणाम कर्म है, वही शुभ परिणाम द्रव्यपुण्यका निमित्तत्वसे कारण है । पुण्पुप्रकृतिके योग्य वर्गणा तब होती है जब कि शुभपरिणामका निमित्त मिलता है । इसकारण प्रथम ही भावपुण्य होता है; तत्पश्चात् द्रव्यपुण्य होता है । इसीप्रकार अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा जीव कर्त्ता है, अशुभ परिणाम कर्म है । उसका निमित्त पाकर द्रव्यपाप होता है, इसलिये प्रथम ही भावपाप होता है, तत्पश्चात् द्रव्यपाप होता है । और निश्चयनयकी अपेक्षा पुद्गल कर्त्ता है, शुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्य पुण्यकर्म है । वह जीवके शुभपरिणामका निमित्त पाकर उपजता है । और निश्चयनयसे पुद्गलद्रव्य कर्त्ता है । अशुभप्रकृति परिणमनरूप द्रव्य पापकर्म है, जो आत्माके ही अशुभ परिणामोंका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है । भावित पुण्यपापका उपादानकारण आत्मा है । द्रव्य पापपुण्यवर्गणा निमित्तमात्र है । द्रव्यसे पुण्यपापका उपादान कारण पुद्गल है । जीवके शुभाशुभ परिणाम निमित्तमात्र हैं । इसप्रकार आत्माके निश्चयनयसे भावित पुण्यपाप अमूर्तीक कर्म हैं और व्यवहारनयसे द्रव्यपुण्यपाप मूर्त्तीक कर्म हैं ॥ १३२ ॥ आगे मूर्तीक कर्मका स्वरूप दिखाते

---

१ समीचीनप्रवृत्तयः. २ द्रव्यकर्म— ।

यस्मात्कर्मणः फलं विषयः स्पर्शैर्भुज्यते नियतं।
जीवेन सुखं दुःखं तस्मात्कर्माणि मूर्त्तानि ॥ १३३ ॥

यतो हि कर्मणां फलभूतः सुखदुःखहेतुविषयो मूर्तो मूर्तैरिन्द्रियैर्जीवेन नियतं भुज्यते। ततः कर्मणां मूर्तत्वमनुमीयते। तथाहि-मूर्तं कर्म मूर्तसंबंधेनानुभूयमानं मूर्तफलत्वादाखु[1]विषवदिति ॥ १३३ ॥

मूर्तकर्मणोरमूर्तकर्मणोश्च बंधप्रकारसूचनेयम्;—

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि।
जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥१३४॥

सकाशाद्भिन्नस्य हेयरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्यानेनैकसूत्रेण द्वितीयस्थलं गतं। अथ कर्मणां मूर्तत्वं व्यवस्थापयति;—जह्मा यस्मात्कारणात् कम्मस्स फलं उदयागतकर्मणः फलं। तत्कथंभूतं? विसयं मूर्तपंचेन्द्रियविषयरूपं भुंजदे भुज्यते णियदं निश्चितं। केन? कर्तृभूतेन। जीवेन विषयातीतपरमात्मभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादच्युतेन जीवेन। कैः? करणभूतैः। फासेहिं स्पर्शनेन्द्रियादिरहितामूर्तशुद्धात्मतत्त्वविपरीतैः स्पर्शनादिमूर्तेन्द्रियैः। पुनरपि कथंभूतं तत्पंचेन्द्रियविषयरूपं कर्मफलं? सुहदुक्खं सुखदुःखं यद्यपि शुद्धनिश्चयेनामूर्तं तथापि अशुद्धनिश्चयेन पारमार्थिकामूर्तपरमाह्लादैकलक्षणनिश्चयसुखाद्विपरीतत्वाद्धर्षविषादरूपं मूर्तं सुखदुःखं। तह्मा मुत्ताणि कम्माणि यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण स्पर्शादिमूर्तपंचेन्द्रियरूपं मूर्तेन्द्रियैर्भुज्यते, स्वयं च मूर्तं सुखदुःखादिरूपं कर्म कार्यं दृश्यते, तस्मात्कारणसदृशं कार्यं भवतीति मत्वा कार्यानुमानेन ज्ञायंते मूर्तानि कर्माणि इति सूत्रार्थः ॥ १३३ ॥ एवं नैयायिकमताश्रितशिष्यसंबोधनार्थं नयविभागेन पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेणैकसूत्रेण तृतीयस्थलं गतं। अथ

हैं;—[यस्मात्] जिस कारणसे [कर्मणः] ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंका [सुखं दुःखं] सुखदुःखरूप [फलं] रस जो कि [विषयः] सुखदुःखका उपजानेवाला इष्ट-अनिष्टरूप मूर्त्तपदार्थ वह [स्पर्शैः] मूर्त्तीक इन्द्रियोंसे [नियतं] निश्चयसे [जीवेन] आत्माद्वारा [भुज्यते] भोगा जाता है [तस्मात्] इसकारणसे [कर्माणि] ज्ञानावरणादि कर्म [मूर्त्तानि] मूर्तीक हैं। भावार्थ—कर्मोंका फल इष्ट अनिष्ट पदार्थ है सो मूर्तीक है, इसीसे मूर्तीक स्पर्शादि इन्द्रियोंसे जीव भोगता है। इसलिये यह वात सिद्ध हुई कि कर्म मूर्तीक हैं अर्थात् ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि जिसका फल मूर्तीक होता है उसका कारण भी मूर्तीक होता है, अत. कर्म मूर्तीक हैं। मूर्तीक कर्मके संवंधसे ही मूर्त्तफल अनुभवन किया जाता है। जैसे चूहेका विष मूर्तीक है अतः मूर्तीक शरीरसे ही अनुभवन किया जाता है ॥ १३३ ॥ आगे मूर्त्तीक और अमूर्त्तीक जीवका वंध किसप्रकार होता है, यह सूचनामात्र कथन

---

१ मूषकविषवत्।

मूर्त्तः स्पृशति मूर्त्तं मूर्त्तेन बंधमनुभवति ।
जीवो मूर्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते ॥ १३४ ॥

इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसंतानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तकर्म । तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तकर्म स्पृशति । ततस्तन्मूर्तं तेन सह स्नेहगुणवशाद्बंधनमनुभवति । एष मूर्तयोः कर्मणोर्बंधप्रकारः । अथ निश्चयनयेनाऽमूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन्, विशिष्टतया मूर्त्तानि कर्माण्यवगाहते । तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽवगाह्यते च । अयं त्वन्योन्यावगाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारः ।

चिरंतनाभिनवमूर्तकर्मणोस्तथैवामूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च नयविभागेन बंधप्रकारं कथयंति । अथवा मूर्तरहितो जीवो मूर्तकर्माणि कथं बध्नातीति नैयायिकादिमतानुसारिणा शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति नयविभागेन परिहारं ददाति;—**मुत्तो** निर्विकारशुद्धात्मसंवित्त्यभावेनोपार्जितमनादिसंतानेनागतं मूर्तं कर्म तावदास्ते जीवे । तच्च किंकरोति ? **फासदि मुत्तं** स्वयं स्पर्शादिमत्त्वेन मूर्तत्वाद्भिनत्वं स्पर्शादिमत्संयोगमात्रेण मूर्तं कर्म स्पृशति । न केवलं स्पृशति । **मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि** अमूर्तातीन्द्रियनिर्मलात्मानुभूतिविपरीतं जीवस्य मिथ्यात्वरागादिपरिणामं निमित्तं लब्ध्वा पूर्वोक्तं मूर्तं कर्म नवतरमूर्तकर्मणा सह स्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणत्युपादानकारणेन संश्लेषरूपं बंधमनुभवति इति मूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारो ज्ञातव्यः । इदानीं पुनरपि मूर्तजीवमूर्तकर्मणोर्बंधः कथ्यते । **जीवो मुत्तिविरहिदो** शुद्धनिश्चयेन जीवो मूर्तिविरहितोपि व्यवहारेण अनादिकर्मबंधवशान्मूर्तः सन् । किं करोति ? **गाहदि ते** अमूर्तातीन्द्रियनिर्विकारसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादविपरीतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणामेन परिणतः सन् तान् कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलान् गाहते परस्परानुप्रवेश-

---

करते हैं;—[मूर्त्तः] बंधपर्यायकी अपेक्षा मूर्त्तीक संसारी जीवके कर्मपुञ्ज [मूर्त्तं] मूर्त्तीक कर्मको [स्पृशति] स्पर्शन करता है, इसकारण [मूर्त्तः] मूर्तीक कर्मपिंड [मूर्त्तेन] मूर्त्तीक कर्मपिण्डसे [बंधं] परस्पर बंधावस्थाको [अनुभवति] प्राप्त होता है । [मूर्तिविरहितः] मूर्तिभावसे रहित [जीवः] जीव [तानि] उन कर्मोंके साथ बंधावस्थाओंको [गाहति] प्राप्त होता है । [तैः] उन ही कर्मोंसे ["जीवः"] आत्मा [अवगाह्यते] एक क्षेत्रावगाह से बंधता है । भावार्थ—इस संसारी जीवके अनादि कालसे लेकर मूर्त्तीक कर्मों से संबंध है । वे कर्म स्पर्शरसगंधवर्णमयी हैं । इससे आगामी मूर्त्त कर्मोंसे अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंके द्वारा बंधता है, इसकारण मूर्त्तीक कर्मसे मूर्त्तीकका बंध होता है । फिर निश्चयनयकी अपेक्षा जीव अमूर्त्तीक है । अनादिकर्मसंयोगसे रागद्वेषादिक भावोंसे स्निग्धरूक्षभाव परिणमित हुवा नवीन कर्मपुञ्जका आस्रव करता है । उस कर्मसे पूर्वबद्ध-

---

१ आगामिमूर्तकर्म—२ निश्चयनयेन जीवः अमूर्तोऽस्ति परंतु अनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माणि अवगाहते ।

एवममूर्तस्यापि जीवस्य मूर्तेन पुण्यपापकर्मणा कथञ्चिद्बंधो न विरुध्यते ॥ १३४ ॥

इति पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् ।

अथास्रवपदार्थव्याख्यानम् । पुण्यास्रवस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥१३५॥

रागो यस्य प्रशस्तोऽनुकम्पासंश्रितश्च परिणामः ।
चित्ते नास्ति कालुष्यं पुण्यं जीवस्यास्रवति ॥ १३५ ॥

प्रशस्तरागोऽनुकम्पापरिणतिः चित्तस्याकलुषत्वञ्चेति त्रयः शुभा भावाः । द्रव्यपुण्यास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपुण्यास्रवः । तन्निमित्तः शुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपुण्यास्रव इति ॥ १३५ ॥

रूपेण बध्नाति तेहि उग्गहदि निर्मलानुभूतिविपरीतेन जीवस्य रागादिपरिणामेन कर्मत्वपरिणतैस्तैः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कंधैः कर्तृभूतैर्जीवोप्यवगाह्यते बध्यत इति । अत्र निश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्य व्यवहारेण मूर्तत्वे सति बंधः संभवतीति सूत्रार्थः । तथा चोक्तं । "बंधं पडि एयत्तं लक्खणदो होदि तस्स णाणत्तं । तम्हा अमुत्तिभावो णेगंतो होदि जीवस्स" ॥ १३४ ॥ इति सूत्रचतुर्थस्थलं गतं । एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयेन पंचमोंतराधिकारः समाप्तः । अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायैः शून्यात् शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसमरसीभावेन पूर्णकलशवद्भरितावस्थात्परमात्मनः सकाशाद्भिन्ने शुभाशुभास्रवाधिकारे गाथाषट्कं भवति । तत्र गाथाषट्कमध्ये प्रथमं तावत्पुण्यास्रवकथनमुख्यत्वेन "रागो जस्स पसत्थो" इत्यादिपाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं पापास्रवे "चरिया पमादबहुला" इत्यादि गाथाद्वयं, इति पुण्यपापास्रवव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ निरास्रवशुद्धात्मपदार्थात्प्रतिपक्षभूतं शुभास्रवमाख्याति;—**रागो जस्स पसत्थो** रागो यस्य प्रशस्तः वीतरागपरमात्मद्रव्याद्विलक्षणः पंचपरमेष्ठिनिर्भरगुणानुरागरूपः प्रशस्तधर्मानुरागः **अणुकंपासंसिदो य परिणामो** अनुकंपासंश्रितश्च परिणामः दयासहितो मनोवचनकायव्यापाररूपः शुभपरिणामः **चित्तम्हि णत्थि कलुसो** चित्ते नास्ति कालुष्यं मनसि क्रोधादिकलुषपरिणामो नास्ति

कर्मकी अपेक्षा बंध अवस्थाको प्राप्त होता है । यह आपसमें जीवकर्मका बंध दिखाया । इसही प्रकार अमूर्त्तीक आत्माको मूर्त्तीक पुण्यपापसे कथंचित्प्रकार बंधका विरोध नहीं है । इस प्रकार पुण्यपापका कथन पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥ अब आस्रव पदार्थका व्याख्यान करते हैं;—[यस्य] जिस जीवके [रागः] प्रीतिभाव [प्रशस्तः] भला है [च] और [अनुकंपासंश्रितः] अनुकम्पाके आश्रित अर्थात् दयारूप [परिणामः] भाव है तथा [चित्ते] चित्तमें [कालुष्यं] मलीनभाव [नास्ति]

प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥१३६॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा ।
अनुगमनमपि गुरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति ॥ १३६ ॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासनाप्रधाना चेष्टा । गुरूणामाचार्यादीनां रसिकत्वेनानुगमनम् । एषः प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात् । अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधान्यस्याज्ञानिनो भवति । उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्या-

---

पुण्णं जीवस्स आसवदि यस्यैते पूर्वोक्ता त्रयः शुभपरिणामाः संति तस्य जीवस्य द्रव्यपुण्यास्रवकारणभूतं भावपुण्यमास्रवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १३५ ॥ एवं शुभास्रवे सूत्रगाथा गता । अथ प्रशस्तरागस्वरूपमावेदयति;—अर्हत्सिद्धसाधुपु भक्तिः धम्मम्हि जा य खलु चेट्ठा धर्मे शुभरागचरित्रे या खलु चेष्टा **अणुगमणंपि** अनुगमनमनुव्रजनमनुकूलवृत्तिरित्यर्थः । केषां ? **गुरूणं** गुरूणां पसत्थरागोत्ति उच्चंति एते सर्वे पूर्वोक्ताः शुभभावाः परिणामाः प्रशस्तरागा इत्युच्यंते । तथाहि—निर्दोषिपरमात्मनः प्रतिपक्षभूतं यदार्तरौद्ररूपध्यानद्वयं तेनोपार्जिता या ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतयस्तासां रागादिविकल्परहितधर्मध्यानशुक्लध्यानद्वयेन विनाशं कृत्वा क्षुधाद्यष्टादशदोषरहिताः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयसहिताश्च जाता एतेऽर्हतो भण्यंते । लौकिकांजनसिद्धादिविलक्षणा ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माभावेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणलक्षणा लोकाग्रनिवासि-

---

नहीं है ["तस्य" जीवस्य] उस जीवके [पुण्यं] पुण्य [आस्रवति] आता है । भावार्थ—शुभ परिणाम तीन प्रकारके हैं अर्थात्-प्रशस्तराग १, अनुकम्पा २, और चित्तप्रसाद ३. ये तीनों प्रकारके शुभपरिणाम द्रव्यपुण्यक्रतियोंको निमित्तमात्र हैं, इसकारण जो शुभभाव हैं वे भावास्रव हैं । तत्पश्चात् उन भावोंके निमित्तसे शुभयोगद्वारसे जो शुभ वर्गणायें आती हैं वे द्रव्यपुण्यास्रव हैं ॥ १३५ ॥ आगे प्रशस्त रागका स्वरूप दिखाते हैं;—[अर्हत्सिद्धसाधुषु] अरहंत, सिद्ध और साधु इन तीन पदोंमें जो [भक्तिः] स्तुति-वंदनादिक [च] और [या] जो [धर्मे] अरहंतप्रणीत धर्ममें [खलु] निश्चयसे [चेष्टा] प्रवृत्ति, [गुरूणां] धर्माचरणके उपदेष्टा आचार्यादिकोंका [अनुगमनं अपि] भक्ति भावसहित उनके पीछे होकर चलना अर्थात् उनकी आज्ञानुसार चलने को भी [इति] इसप्रकार महापुरुष [प्रशस्तरागः] भला राग [ब्रुवंति] कहते हैं । भावार्थ—अरहंतसिद्धसाधुओंमें भक्ति व्यवहार चारित्रका आचरण और आचार्यादिक महंत पुरुषोंके चरणोंमें

---

१ प्रशस्तरागः. २ उपरितनशुद्धवीतरागदशायां, वा उपरितनगुणस्थानेषु. ३ अप्राप्तस्थानस्याज्ञानिनः इत्यर्थः.

स्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ १३६ ॥

अनुकम्पास्वरूपाख्यानमेतत्;—

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो ।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥१३७॥

तृषितं बुभुक्षितं वा दुःखितं दृष्ट्वा यस्तु दुःखितमनाः ।
प्रतिपद्यते तं कृपया तस्यैषा भवत्यनुकम्पा ॥ १३७ ॥

कश्चिदुदन्यादिदुःखप्लुतमवलोक्य करुणया तत्प्रतिचिकीर्षाकुलितचित्तत्वमज्ञानिनोऽ-

---

नश्च ये ते सिद्धा भवंति । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वविषये या निश्चयरुचिस्तथा परिच्छित्ति-स्तथैव निश्चलानुभूतिः परद्रव्येच्छापरिहारेण तत्रैवात्मद्रव्ये प्रतपनं तपश्चरणं तथैव स्वशक्त्यनवगूह-नेनानुष्ठानमिति निश्चयपंचाचारः तथैवाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तत्साधकव्यवहारपंचाचारः इत्यु-भयमाचारं स्वयमाचरंत्यन्यानाचारयंति ये ते भवंत्याचार्याः । पंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनव-पदार्थेषु मध्ये जीवास्तिकायं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धजीवतत्त्वं शुद्धजीवपदार्थं च निश्चयनयेनोपादेयं कथयंति तथैव भेदाभेदरत्नत्रयलक्षणं मोक्षमार्गं प्रतिपादयंति स्वयं भावयंति च ये ते भवंत्युपाध्या-याः, निश्चयचतुर्विधाराधनया ये शुद्धात्मस्वरूपं साधयंति ते भवंति साधव इति। एवं पूर्वोक्तलक्षण-योर्जिनसिद्धयोस्तथा साधुशब्दवाच्येष्वाचार्योपाध्यायसाधुषु च या बाह्याभ्यंतरा भक्तिः सा प्रशस्त-रागो भण्यते । तत्प्रशस्तरागमज्ञानी जीवो भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन करोति स ज्ञानी पुनर्निर्वि-कल्पसमाध्यभावे विषयकषायरूपाशुभरागविनाशार्थं करोतीति भावार्थः ॥ १३६ ॥ अथानु-कंपास्वरूपं कथयति;—तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा कमपि प्राणिनं दृष्ट्वा **जो हि दुहि-दमणो** यः खलु दुःखितमनाः सन् **पडिवज्जदि तं किवया** प्रतिपद्यति स्वीकरोति तं प्राणिनं

रसिक होना इसका नाम प्रशस्त राग है । क्योंकि शुभ रागसे ही पूर्वोक्त प्रवृत्ति होती है । यह प्रशस्त राग स्थूलतासे अकेला भक्तिहीके करनेवाले अज्ञानी जीवोंके जानना चाहिये और किसी काल ज्ञानीके भी होता है । कैसे ज्ञानीके होता है ? जो ज्ञानी ऊपरके गुणस्थानोंमें स्थिर होनेको असमर्थ हैं उनके यह प्रशस्त राग होता है । सो भी कुदेवादिकोंमें राग निषेधार्थ अथवा तीव्र विषयानुरागरूप ज्वरके दूर करनेके लिये होता है ॥ १३६ ॥ आगे अनुकम्पा अर्थात् दया का स्वरूप कहते हैं;— [तृषितं] जो कोई जीव तृषावंत हो [वा] अथवा [बुभुक्षितं] क्षुधातुर हो या [दुःखितं] रोगादिसे दुःखित हो [तं] उसको [दृष्ट्वा] देखकर [यः तु] जो पुरुष [दुःखितमनाः] उसकी पीड़ासे आप दुखी होता हुआ [कृपया]

---

१ अयोग्यदेवादिपदार्थेषु रागनिषेधार्थं. २ कदाचित्प्रशस्तरागो भवति. ३ उदन्या तृषा इत्यर्थः. ४. पीडितम्. तृष्णादिविनाशकप्रतीकारः ।

नुकम्पा । ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनःखेद इति ॥ १३७ ॥

चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज ।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति ॥१३८॥

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य ।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा वदन्ति ॥१३८॥

क्रोध-मान-माया-लोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम् तेषामेव मंदोदये तस्य[3]

कृपया **तस्सेसा होदि अणुकंपा** तस्यैषा भवत्यनुकंपेति । तथाहि—तीव्रतृष्णातीव्रक्षुधातीव्ररोगादिना पीडितमवलोक्याज्ञानी जीवः केनाप्युपायेन प्रतीकारं करोमीति व्याकुलो भूत्वानुकंपां करोति, ज्ञानी तु स्वस्य भावनामलभमानः सन् संक्लेशपरित्यागेन यथासंभवं प्रतीकारं करोति, तं दुःखितं दृष्ट्वा विशेषसंवेगवैराग्यभावना च करोतीति सूत्रतात्पर्यं ॥ १३७ ॥ अथ चित्तकलुषतास्वरूपं प्रतिपादयति;—**कोधो व** उत्तमक्षमापरिणतिरूपशुद्धात्मतत्त्वसंवित्तेः प्रतिपक्षरूपभूतक्रोधादयो वा **जदा माणो** निरहंकारशुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिकूलो यदा काले मानो वा **माया** निःप्रपंचात्मोपलंभविपरीता माया वा **लोहो व** शुद्धात्मभावनोत्थतृप्तेः प्रतिबंधको लोभो वा **चित्तमासेज्ज** चित्तमाश्रित्य **जीवस्स कुणदि खोहं** अक्षुभितशुद्धात्मानुभूतेर्विपरीतं जीवस्य क्षोभं चित्तवैकल्यं करोति **कलुसोत्ति य तं बुधा वेंति** तत्क्रोधादिजनितं चित्त-

---

दयाभावसे [प्रतिपद्यते] उस दुःखके दूर करनेकी क्रियाको प्राप्त होता है [तस्य] उस पुरुषके [एषा] यह [अनुकम्पा] दया [भवति] होती है। भावार्थ—दयाभाव अज्ञानीके भी होता है और ज्ञानीके भी होता है, परंतु इतना विशेष है कि अज्ञानीके जो दयाभाव है सो किस ही पुरुषको दुःखित देखकर तो उसके दुःख दूर करनेके उपायमें अहंबुद्धिसे आकुलचित्त होकर प्रवर्तित होता है और जो ज्ञानी नीचेके गुणस्थानोंमें प्रवर्तित है, उसके जो दयाभाव होता है सो जब दुःखसमुद्रमें मग्न संसारी जीवोंको जानता है तब ऐसा जानकर किसी कालमें मनको खेद उपजाता है ॥ १३७ ॥ आगे चित्तकी कलुषताका स्वरूप दिखाते हैं;—[यदा] जिस समय [क्रोधः] क्रोध [वा] अथवा [मानः] अभिमान [वा] अथवा [माया] कुटिलभाव अथवा [लोभः] इष्टमें प्रीतिभाव [चित्तं] मनको [आसाद्य] प्राप्त होकर [जीवस्य] आत्माके [क्षोभं] अति आकुलतारूप भाव [करोति] करता है [तं] उसको [बुधाः] जो बड़े महन्त ज्ञानी हैं वे [कालुष्यं इति] कलुष-

---

१ अनुकम्पा भवति. २ क्रोधमानमायालोभानाम्. ३ तस्य चित्तस्य ।

प्रसादोऽकालुष्यम् । तत् कादाचित्कविशिष्टकषायक्षयोपशमे सत्यज्ञानिनोऽपि भवति । कषायोदयानुवृत्तेरसमग्रव्यावर्तितोपयोगस्यावांतरभूमिकासु कदाचित् ज्ञानिनोऽपि भवतीति ॥ १३८ ॥

पापास्रवस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु ।
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥ १३९ ॥

चर्य्या प्रमादबहुला कालुष्यं लोलता च विषयेषु ।
परपरितापापवादः पापस्य चास्रवं करोति ॥ १३९ ॥

प्रमादबहुलचर्य्यापरिणतिः, कालुष्यपरिणतिः, विषयलौल्यपरिणतिः, परपरितापपरि-

---

वैकल्यं कालुष्यमिति बुधा विदंति कथयंतीति । तद्यथा—तस्य कालुष्यस्य विपरीतमकालुष्यं भण्यते तच्चाकालुष्यं पुण्यास्रवकारणभूतं कदाचिदनंतानुबंधिकषायमंदोदये सत्यज्ञानिनो भवति, कदाचित्पुनर्निर्विकारस्वसंवित्त्यभावे सति दुर्ध्यानवंचनार्थं ज्ञानिनोपि भवतीत्यभिप्रायः ॥ १३८ ॥ एवं गाथाचतुष्टयेन पुण्यास्रवप्रकरणं गतं । अथ गाथाद्वयेन पापास्रवस्वरूपं निरूपयति;— **चरिया पमादबहुला** निःप्रमादचिच्चमत्कारपरिणतेः प्रतिबंधिनी प्रमादबहुला चर्या परिणतिश्चारित्रपरिणतिः **कालुस्सं** अकलुषचैतन्यचमत्कारमात्राद्विपरीता कालुष्यपरिणतिः **लोलदा य विसयेसु** विषयातीतात्मसुखसंवित्तेः प्रतिकूला विषयलौल्यपरिणतिः **परपरिदाव** परपरितापरहितशुद्धात्मानुभूतेर्विलक्षणा परपरितापपरिणतिः **अपवादो** निरपवादस्वसंवित्तेर्विपरीता परापवाद-

---

भाव ऐसा नाम [वदन्ति] कहते हैं । भावार्थ—जब क्रोध मान माया लोभका तीव्र उदय होता है तब चित्तको जो कुछ क्षोभ हो उसको कलुषभाव कहते हैं । उन ही कषायोंका जब मंद उदय होता है तब चित्तकी प्रसन्नता होती है, उसको विशुद्धभाव कहते हैं । सो वह विशुद्ध चित्तप्रसाद किसी कालमें विशेष कषायोंकी मंदता होनेपर अज्ञानी जीवके होता है । और जिस जीवके कषायका उदय सर्वथा निवृत्त नहीं हो, उपयोग-भूमिका सर्वथा निर्मल नहीं हो, अन्तर-भूमिकाके गुणस्थानोंमें प्रवर्तित हैं उस ज्ञानी जीव के भी किसी कालमें चित्तप्रसादरूप निर्मलभाव पाये जाते हैं । इस प्रकार ज्ञानी अज्ञानीके चित्तप्रसाद जानना चाहिये ॥ १३८ ॥ आगे पापास्रवका स्वरूप कहते हैं;—[प्रमादबहुला चर्या] बहुत प्रमादसहित क्रिया [कालुष्यं] चित्तकी मलीनता [च] और [विषयेषु] इन्द्रियोंके विषयोंमें [लोलता] प्रीतिपूर्वक चपलता [च] और [परपरितापापवादः] अन्य जीवोंको दुःख देना, अन्यकी निंदा करना, बुरा बोलना इत्यादि आचरणोंसे अशुभी जीव [पापस्य] पापका

---

१ प्रसन्नता निर्मलता. २ तत् अकालुष्यम्. ३ अपरिपूर्ण—

णतिः, परापवादपरिणतिश्चेति पञ्चाशुभा भावा द्रव्यपापास्रवस्य निमित्तमात्रत्वेन कारणभूतत्वात्तदास्रवक्षणादूर्ध्वं भावपापास्रवः। तन्निमित्तोऽशुभकर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यपापास्रव इति ॥१३९॥

पापास्रवभूतभावप्रपञ्चाख्यानमेतत् ;—

सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि ।
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥ १४० ॥

संज्ञाश्च त्रिलेश्या इन्द्रियवशता चार्त्तरौद्रे ।
ज्ञानं च दुःप्रयुक्तं मोहः पापप्रदा भवन्ति ॥ १४० ॥

तीव्रमोहविपाकप्रभवा आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्तीव्रकषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिरूपाः कृष्णनीलकापोतलेश्यास्तिस्रः । रागद्वेषोदयप्रकर्षादिन्द्रियाधीनत्वरागद्वेषोद्रेकात्प्रिय-

---

परिणतिश्चेति पापस्स य आसवं कुणदि इयं पंचप्रकारा परिणतिर्द्रव्यपापास्रवकारणभूता भावपापास्रवो भण्यते भावपापास्रवनिमित्तेन मनोवचनकाययोगद्वारेणागतं द्रव्यकर्म द्रव्यपापास्रव इति सूत्रार्थः ॥ १३९ ॥ अथ भावपापास्रवस्य विस्तरं कथयति;—सण्णाओ आहारादिसंज्ञारहितशुद्धचैतन्यपरिणतेर्भिन्नाश्चतस्र आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञा तिलेस्सा कषाययोगद्वयाभावरूपविशुद्धचैतन्यप्रकाशात्पृथग्भूताः कषायोदयरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणास्तिस्रः कृष्णनीलकापोतलेश्याः इंदियवसदा य स्वाधीनातीन्द्रियसुखास्वादपरिणतेः प्रच्छादिका पंचेंद्रियविषयाधीनता अट्टरुद्दाणि समस्तविभावाकांक्षारहितशुद्धचैतन्यभावनायाः प्रतिवंधकं इष्टसंयोगानिष्टवियोगव्याधिविनाशभोगनिदानकांक्षारूपेणोद्रेकभावप्रचुरं चतुर्विधमार्तध्यानं क्रोधावेशरहितशुद्धात्मानुभूतिभावनायाः पृथग्भूतं क्रूरचित्तोत्पन्नं हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं चतुर्विधं रौद्रध्यानं च णाणं च दुप्पउत्तं शुभशुद्धोपयोगद्वयं विहाय मिथ्यात्वरागाद्यधीनत्वेनान्यत्र दुष्टभावे प्रवृत्तं दुःप्रयुक्तं ज्ञानं । मोहो मोहोदयजनितममत्वादिविकल्पजालवर्जितस्वसंवित्तेर्विनाशको दर्शनचारित्र-

---

[आस्रवं] आस्रव [करोति] करता है । भावार्थ—विषय कषायादिक अशुभक्रियाओंसे जीवके अशुभपरिणति होती है, उसको भावपापास्रव कहते हैं । उसी भावपापास्रवका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणारूप द्रव्यकर्म आते हैं । योगोंके द्वारसे उसका नाम द्रव्यपापास्रव है ॥ १३९ ॥ आगे पापास्रवके कारणभूत भाव विस्तारसे दिखाते हैं;--[संज्ञाः] चार संज्ञा [च] और [त्रिलेश्याः] तीन लेश्या [च] और [इन्द्रियवशता] इन्द्रियोंके आधीन होना [च] तथा [आर्त्तरौद्रे] आर्त्त और रौद्रध्यान और [दुःप्रयुक्तं ज्ञानं] सत्क्रियाके अतिरिक्त असत्क्रियाओंमें ज्ञानका लगाना तथा [मोहः] दर्शनमोहनीय, चारित्र-

---

१ 'अट्टरुद्दाणि' इत्यपि पाठः ।

सयोगाऽप्रियवियोगवेदनामोक्षणनिदानाकाङ्क्षणरूपमार्तं । कषायक्रूराशयत्वाद्धिंसाऽसत्यास्तेयविषयसंरक्षणानंदरूपं रौद्रम् नैष्कर्म्यं तु शुभकर्मणश्चान्यत्र दुष्टतया प्रयुक्तं ज्ञानम् । सामान्येन दर्शनचारित्रमोहनीयोदयोपजनिताविवेकरूपो मोहः । एषः भावपापास्रवप्रपञ्चो द्रव्यपापास्रवप्रपञ्चप्रदो भवतीति ॥ १४० ॥ इति आस्रवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ संवरपदार्थव्याख्यानम् । अनन्तरत्वात्पापस्यैव संवराख्यानमेतत् ;—

इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि ।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥ १४१ ॥

इन्द्रियकषायसंज्ञा निगृहीता यैः सुष्ठुमार्गे ।
यावत्तावत्तेषां पिहितं पापास्रवं छिद्रं ॥ १४१ ॥

मोहश्च इति विभावपरिणामप्रपंचः पावप्पदो होदि पापप्रदायको भवति । एवं द्रव्यपापास्रवकारणभूतः पूर्वसूत्रोदितभावपापास्रवस्य विस्तरो ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥ १४० ॥ किं च । पुण्यपापद्वयं पूर्वं व्याख्यातं तेनैव पूर्यते पुण्यपापास्रवव्याख्यानं किमर्थमिति प्रश्ने परिहारमाह । जलप्रवेशद्वारेण जलमिव पुण्यपापद्वयमास्रवत्यागच्छत्यनेनेत्यास्रवः । अत्रागमनं मुख्यं तत्र

मोहनीय कर्मके समस्त भाव [पापप्रदाः] पापरूप आस्रवके कारण [भवन्ति] होते हैं । भावार्थ—तीव्र मोहके उदयसे आहार भय मैथुन परिग्रह ये चार संज्ञायें होती हैं और तीव्र कषाय के उदयसे रंजित योगों की प्रवृत्तिरूप कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्यायें होती हैं । रागद्वेषके उत्कृष्ट उदयसे इन्द्रियाधीनता होती है । रागद्वेषके अति विपाकसे इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, पीड़ाचिन्तवन और निदानबंध ये चार प्रकारके आर्त्तध्यान होते हैं । तीव्र कषायोंके उदयसे जब अतिशय क्रूरचित्त होता है तब हिंसानंदी, मृषानंदी, स्तेयानंदी, विषयसंरक्षणानंदीरूप चार प्रकारके रौद्रध्यान होते हैं । दुष्ट भावोंसे धर्मक्रियासे अतिरिक्त अन्यत्र उपयोगी होना सो खोटा ज्ञान है । मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रके उदयसे अविवेकका होना मोह (अज्ञानभाव) है । इत्यादि परिणामोंका होना सो भाव पापास्रव कहलाता है । इसी पापपरिणतिका निमित्त पाकर द्रव्यपापास्रवका विस्तार होता है । यह आस्रव पदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १४० ॥ आगे संवर पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[यैः] जिन पुरुषोंने [इन्द्रियकषायसंज्ञाः] मनसहित पाँच इन्द्रिय, चार कषाय और चार संज्ञारूप पापपरिणति [यावत्] जिस समय [सुष्ठु मार्गे] संवरमार्गमें [निग्र-

---

१ हिंसानंदं, असत्यानंदं, स्तेयानंदं, विषयसंरक्षणानंदं । इति चतुर्धा रौद्रं भवति. २ प्रयोजन विना. ३ शुभकर्म त्यक्त्वा अन्यत्र प्रयुक्तं ज्ञानमित्यर्थः. ४ आस्रवानंतर ।

मार्गो हि संवरस्तन्निमित्तमिन्द्रियाणि कषायाश्च संज्ञाश्च यावतांशेन यावन्तं वा कालं निगृह्यन्ते तावतांशेन तावन्तं वा कालं पापास्रवद्वारं पिधीयते । इन्द्रियकषायसंज्ञाः भावपापास्रवो द्रव्यपापास्रवहेतुः पूर्वमुक्तः । इह तन्निरोधो भावपापसंवरो द्रव्यपापसंवरहेतुरवधारणीय इति ॥ १४१ ॥

सामान्यसंवरस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु ।
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥ १४२ ॥

तु पुण्यपापद्वयस्यागमनानंतरं स्थित्यनुभागबंधरूपेणावस्थानं मुख्यमित्येनावद्विशेषः । एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यपापास्रवव्याख्यानमुख्यतया गाथाषट्कसमुदायेन षष्ठोंतराधिकारः समाप्तः । अथ ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पवर्जितशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणपरमोपेक्षासंयमसाध्ये संवरव्याख्याने "इंदियकसाय" इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका ॥ अथ पूर्वसूत्रकथितपापास्रवस्य संवरमाख्याति;— इंद्रियकषायसंज्ञा णिग्गहिदा निगृहीता निषिद्धा जेहिं यैः कर्तृभूतैः पुरुषैः सुट्ठु सुष्ठुविशेषेण । किंकृत्वा ? पूर्वं स्थित्वा । क्व ? मग्गम्हि संवरकारणरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे । कथं निगृहीताः । यावत् यस्मिन् गुणस्थाने यावंतं कालं यावतांशेन "सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा । दुगतीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को" इति गाथाकथितत्रिभंगीक्रमेण तावत्तस्मिन् गुणस्थाने तावत्कालं तावतांशेन स्वकीयस्वकीयगुणस्थानपरिणामानुसारेण तेसिं तेषां पूर्वोक्तपुरुषाणां पिहिदं पिहितं प्रच्छादितं झंपितं भवति । किं ? पापासवच्छिद्दं पापास्रवछिद्रं पापागमनद्वारमिति । अत्र सूत्रे पूर्वगाथोदितद्रव्यपापास्रवकारणभूतस्य भावपापास्रवस्य निरोधः तु द्रव्यपापास्रवसंवरकारणभूतो भावपापास्रवसंवरो ज्ञातव्य इति सूत्रार्थः ॥ १४१ ॥ अथ सामान्येन पुण्यपापसंवरस्वरूपं कथयति;—जस्स ण विज्जदि यस्य न

हीताः] रोकी हैं [तावत्] तब [तेषां] उनके [पापाश्रवं छिद्रं] पापास्रवरूपी छिद्र [पिहितं] आच्छादित हुआ । भावार्थ—मोक्ष का मार्ग एक संवर है सो संवर जितना इन्द्रिय कषाय संज्ञाओंका निरोध हो उतना ही होता है । अर्थात् जितने अंश आस्रवका निरोध होता है उतने ही अंश संवर होता है । इन्द्रिय कषाय संज्ञा ये भावपापास्रव हैं । इनका निरोध करना भाव पापसंवर है । ये ही भावपापसंवर द्रव्यपापसंवरका कारण है । अर्थात् जब इस जीवके अशुद्ध भाव नहीं होते तब पौद्गलीक वर्गणाओंका आस्रव भी नहीं होता ॥ १४१ ॥ आगे सामान्य संवर का स्वरूप कहते हैं;—

[यस्य] जिस पुरुषके [सर्वद्रव्येषु] समस्त परद्रव्योंमें [रागः] प्रीतिभाव

---

१ इन्द्रियादीनां निरोधः ।

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदुःखस्य भिक्षोः ॥ १४२ ॥

यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भावः तस्य निर्वि-
कारचैतन्यत्वात्समसुखदुःखस्य भिक्षोः शुभमशुभञ्च कर्म नास्रवति । किन्तु संव्रियत एव ।
तदत्र मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो भावसंवरः । तन्निमित्तः शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो
योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ॥ १४२ ॥

विशेषेण संवरस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥ १४३ ॥

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य ।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥ १४३ ॥

यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मनःकायकर्मणि शुभपरिणामरूपं

विद्यते । स कः ? रागो दोसो मोहो व जीवस्य शुद्धपरिणामात् परमधर्मलक्षणाद्विपरीतो
रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा । केषु विषयेषु ? सव्वदव्वेसु शुभाशुभसर्वद्रव्येषु । णास-
वदि सुहं असुहं नास्रवति शुभाशुभकर्म । कस्य ? भिक्खुस्स तस्य रागादिरहितशुद्धोप-
योगेन तपोधनस्य । कथंभूतस्य ? समसुहदुक्खस्स समस्तशुभाशुभसंकल्परहितशुद्धात्मध्या-
नोत्पन्नपरमसुखामृततृप्तिरूपैकाकारसमरसीभावबलेन अनभिव्यक्तसुखदुःखरूपहर्षविषादविकार-
त्वात्समसुखदुःखस्येति । अत्र शुभाशुभसंवरसमर्थः शुद्धोपयोगो भावसंवरः भावसंवराधारेण
नवतरकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति तात्पर्यार्थः ॥ १४२ ॥ अथायोगिकेवलिजिनगुणस्थानापेक्षया
निरवशेषेण पुण्यपापसंवरं प्रतिपादयति;—जस्स यस्य योगिनः । कथंभूतस्य ? विरदस्स

[द्वेषः] द्वेषभाव [वा] अथवा [मोहः] तत्त्वोंकी अश्रद्धारूप मोह [न विद्यते] नहीं
है ["तस्य"] उस [समसुखदुःखस्य] समान सुखदुःख वाले [भिक्षोः]
महामुनिके [शुभ] शुभरूप [अशुभं] पापरूप पुद्गलद्रव्य [न आस्रवति]
आस्रवभावको प्राप्त नहीं होता । भावार्थ—जिस जीवके राग द्वेष मोहरूप भाव पर-
द्रव्योंमें नहीं है उस ही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होता । उसके संवर ही होता है ।
इस कारण रागद्वेष-मोहपरिणामोंका निरोध भावसंवर कहलाता है । उस भावसंवरके
निमित्तसे योगद्वारोंसे शुभाशुभरूप कर्मवर्गणाओंका निरोध होना द्रव्यसंवर
है ॥ १४२ ॥ आगे संवरका विशेष स्वरूप कहते हैं;—[खलु यदा]
निश्चय से जिस समय [यस्य] जिस [विरतस्य] परद्रव्यत्यागीके [योगे]

---

१ संवरो भवति ।

पुण्यमशुभपरिणामरूपं पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मणः संवरः स्वकारणभावात्प्रसिद्ध्यति । तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसंवरो द्रव्यपुण्यपापसंवरस्य हेतुः प्रधानोऽवधारणीय इति ॥ १४३ ॥ इति संवरपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम् । निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत् ;—

संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं ।
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥१४४॥

संवरयोगाभ्यां युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः ।
कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स नियतं ॥ १४४ ॥

शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, शुद्धोपयोगः । ताभ्यां युक्तस्तपोभिरनशनावमौदर्य-

---

शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितस्य णत्थि नास्ति जदा खलु यदा काले खलु स्फुटं । किं नास्ति ? पुण्णं पावं च पुण्यपापद्वयं । क नास्ति ? योगे मनोवाक्कायकर्मणि । न केवलं पुण्यपापद्वयं नास्ति । वस्तुतस्तु योगोपि संवरणं तस्स तदा तस्य भगवतस्तदा संवरणं भवति । कस्य संबंधि ? कम्मस्स पुण्यपापरहितानंतगुणस्वरूपपरमात्मनो विलक्षणस्य कर्मणः । पुनरपि किंविशिष्टस्य ? सुहासुहकदस्स शुभाशुभकृतस्येति । अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूति-भावसंवरस्तन्निमित्तद्रव्यकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति भावार्थः ॥ १४३ ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये संवरपदार्थव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण सप्तमोंतराधिकारः समाप्तः ॥ अथ शुद्धात्मानुभूतिलक्षणशुद्धोपयोगसाध्ये निर्जराधिकारे 'संवरजोगेहिं जुदो' इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका । अथ निर्जरास्वरूपं कथयति;—संवर जो गेहिं जुदो

मनवचनकायरूप योगोंमें [पापं] अशुभ परिणाम [च] और [पुण्यं] शुभपरिणाम [नास्ति] नहीं है [तदा] उस समय [तस्य] उस मुनिके [शुभाशुभ-कृतस्य कर्मणः] शुभाशुभ भावोंसे उत्पन्न किये हुए द्रव्यकर्मास्रवोंके [संवरणं] निरोधक संवरभाव होते हैं । भावार्थ—जब इस महामुनिके सर्वथा प्रकार शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति होती है तब उसके आगामी कर्मोंका निरोध होता है । मूल कारण भावकर्म हैं । जब भावकर्महो चले जांय तब द्रव्यकर्म कहां से हो ? इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि शुभाशुभ भावोंका निरोध होना भावपुण्यपाप संवर होता है । यह ही भावसंवर द्रव्यपुण्यपापका निरोधक प्रधान हेतु है । इस प्रकार सवर पदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १४३ ॥ अब निर्जरा पदार्थका व्याख्यान किया जाता है;—[यः] जो भेदविज्ञानी [संवरयोगाभ्यां] शुभाशुभास्रवनिरोधरूप संवर और शुद्धोपयोगरूप योगोंसे [युक्तः] संयुक्त [बहुविधैः] नाना प्रकारके [तपोभिः] अन्तरंग बहिरंग तपोंके द्वारा [चेष्टते] उपाय करता है

वृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशादिभेदाद्बहिरङ्गैः प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदादन्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यश्चेष्टते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति । तदत्र कर्मवीर्य्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा । तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां द्रव्यनिर्जरेति ॥१४४॥

मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम् ;—

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं ।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥१४५॥

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानं ।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः ॥१४५॥

निर्विकल्पलक्षणध्यानशब्दवाच्यशुद्धोपयोगो योगस्ताभ्यां युक्तः तवेहिं जो चेट्ठदे बहुविहेहिं तयोभिर्यश्चेष्टते बहुविधैः अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन शुद्धात्मानुभूतिसहकारिकारणैर्बहिरंगषड्विधैस्तथैव प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदेन सहजशुद्धस्वस्वरूपप्रतपनलक्षणैरभ्यंतरषड्विधैश्च तपोभिर्वर्त्तते यः कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स पुरुषः नियतं निश्चितमिति । अत्र द्वादशविधतपसा वृद्धिं गतो वीतरागपरमानंदैकलक्षणः कर्मशक्तिनिर्मूलनसमर्थः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा तस्य शुद्धोपयोगस्य सामर्थ्येन नीरसीभूतानां पूर्वोपार्जितकर्मपुद्गलानां संवरपूर्वकभावेनैकदेशसंक्षयो द्रव्यनिर्जरेति सूत्रार्थः ॥१४४॥ अथात्मध्यानं मुख्यवृत्त्या निर्जराकारणमिति प्रकटयति;—जो संवरेण जुत्तो यः संवरेण युक्तः यः कर्ता शुभाशुभरागाद्यास्रवनिरोधलक्षणसंवरः, निर्मलात्मानुभूतिबलेन शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, संवरयोगाभ्यां युक्तः

[सः] वह पुरुष [नियतं] निश्चयसे [बहुकानां] बहुत-से [कर्मणां] कर्मोंकी [निर्जरणं] निर्जरा [करोति] करता है । भावार्थ—जो पुरुष संवर और शुद्धोपयोगसे संयुक्त, तथा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश इन छह प्रकारके बहिरंग तप तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान इन छः प्रकारके अंतरंग तप सहित है वह बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करता है । इससे यह भी सिद्ध हुआ कि अनेक कर्मोंकी शक्तियोंके गालनेको समर्थ द्वादश प्रकारके तपोंसे बढ़ा हुआ शुद्धोपयोग ही भावनिर्जरा है । और भावनिर्जराके अनुसार नीरस होकर पूर्वमें बंधे हुये कर्मोंका एकदेश खिर जाना द्रव्यनिर्जरा है ॥ १४४ ॥ आगे निर्जराका कारण विशेषताके साथ दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष

---

१ कर्म अपना रस देकर खिर जाये, उसको निर्जरा कहते हैं ।

यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनाः आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्वस्तुत्वेनाभेदात्तमेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्संचेतयते स खलु नितान्तनिस्स्नेहः प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति । एतेन निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ॥ १४५ ॥

ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत् ;—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायए अगणी ॥१४६॥

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ॥१४६॥

संवरेण युक्तः अप्पट्ठपसाहगो हि आत्मार्थप्रसाधकः हि स्फुटं हेयोपादेयतत्त्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य शुद्धात्मानुभूतिलक्षणकेवलस्वकार्यप्रसाधकः अप्पाणं सर्वात्मप्रदेशेषु निर्विकारनित्यानन्दैकाकारपरिणतमात्मानं मुणिदूण मत्वा ज्ञात्वा रागादिविभावरहितस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा झादि निश्चलात्मोपलब्धिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन ध्यायति णियदं निश्चितं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावे निश्चलं यथा भवति । कथंभूतमात्मानं ? णाणं निश्चयेन गुणगुणिनोरभेदाद्विशिष्टभेदज्ञानपरिणतत्वादात्मापि ज्ञानं सो सः पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मध्यानं ध्याता । किं करोति ? संधुणोदि कम्मरयं संधुनोति कर्मरजो निर्जरयतीति । अत्र वस्तुवृत्त्या ध्यानं निर्जराकारणं व्याख्यातमिति सूत्रतात्पर्यं ॥ १४५ ॥ अथ पूर्वं यन्निर्जराकारणं भणितं ध्यानं तस्योत्पत्तिसा-

[संवरेण युक्तः] संवर भावोंसे संयुक्त है तथा [आत्मार्थप्रसाधकः] आत्मीक स्वभावका साधनेवाला है । [सः] वह पुरुष [हि] निश्चयसे [आत्मानं] शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वरूपको [ज्ञात्वा] जानकर [नियतं] सदैव [ज्ञानं] आत्माके सर्वस्वको [ध्यायति] ध्याता है, वही पुरुष [कर्मरजः] कर्मरूपी धूलिको [संधुनोति] उड़ा देता है । भावार्थ—जो पुरुष कर्मोंके निरोधसे संयुक्त है, आत्मस्वरूपका जाननेवाला है, वह परकार्योंसे निवृत्त होकर आत्मकार्यका उद्यमी होता है, तथा अपने स्वरूपको पाकर गुणगुणीके अभेद कथनसे अपने ज्ञानगुणको आपसे अभेद निश्चल अनुभव करता है, वह पुरुष सर्वथा प्रकार वीतराग भावोंके द्वारा पूर्वकालमें बंधी हुये कर्मरूपी धूलिको उड़ा देता है अर्थात् कर्मोंको खपा देता है । जैसे चिकनाई रहित शुद्ध स्फटिकका थंभ निर्मल होता है उसी प्रकार निर्जराका मुख्य हेतु ध्यान है अर्थात् निर्मलताका कारण है ॥ १४५ । अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं;—[यस्य] जिस जीवके

१ ज्ञानादि आत्मनः गुणः, आत्मा गुणी तयोः. २ अतिशयेन रागद्वेषमोहरहितः. ३ निराकरोति. ४ कथनेन ।

शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिर्हि ध्यानम्। अथास्यात्मलाभविधिरभिधीयते। यदा खलु योगी दर्शनचारित्रमोहनीयविपाकपुद्गलकर्मत्वात् कर्मसु संहृत्य, तदनुवृत्तेः व्यावृत्त्योपयोगममुह्यन्तमरज्यन्तमद्विषन्तं चात्यन्तशुद्ध एवात्मनि निष्कम्पं निवेशयति, तदास्य निष्क्रियचैतन्यरूपविश्रान्तस्य वाङ्मनःकायानभावयतः स्वकर्मस्वव्यापारयतः सकलशुभाशुभकर्मेन्धनदहनसमर्थत्वात् अग्निकल्पं, परमपुरुषार्थसिद्ध्युपायभूतं ध्यानं जायते इति।

मग्रीं लक्षणं च प्रतिपादयति;—जस्स ण विज्जहि यस्य न विद्यते। स कः? रागो दोसो मोहो व दर्शनचारित्रमोहोदयजनितदेहादिममत्वरूपविकल्पजालविरहितनिर्मोहशुद्धात्मसंवित्त्यादिगुणसहितपरमात्मविलक्षणो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा। पुनरपि किं नास्ति? यस्य योगिनः। जोगपरिणामो शुभाशुभकर्मकांडरहितनिःक्रियशुद्धचैतन्यपरिणतिरूपज्ञानकांडसहितपरमात्मपदार्थस्वभावाद्विपरीतो मनोवचनकायक्रियारूपव्यापारः। इयं ध्यानसामग्री कथिता। अथ ध्यानलक्षणं कथ्यते। तस्स सुहासुहदहणो झाणमओ जायदे अगणी तस्य निर्विकारनिःक्रियचैतन्यचमत्कारपरिणतस्य शुभाशुभकर्मेन्धनदहनसामर्थ्यलक्षणो ध्यानमयोऽग्निर्जायते इति। तथाहि। यथा स्तोकोप्यग्निः प्रचुरतृणकाष्ठराशिं स्तोककालेनैव दहति तथा मिथ्यात्वकषायादिविभावपरित्यागलक्षणेन महावातेन प्रज्वलितस्तथापूर्वाद्भुतपरमाह्लादैकसुखलक्षणेन घृतेन सिंचितो निश्चलात्मसंवित्तिलक्षणो ध्यानाग्निः मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं कर्मेंधनराशिं क्षणमात्रेण दहतीति। अत्राह शिष्यः। अद्य काले ध्यानं नास्ति। कस्मादिति चेत्। दशचतुर्दशपूर्वश्रुताधारपुरुषाभावात्प्रथमसंहननाभावाच्च। परिहारमाह—अद्य काले शुक्लध्यानं नास्ति। तथा चोक्तं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवैरेव मोक्षप्राभृते "भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ

रागः द्वेषः मोहः] राग द्वेष मोह [वा] अथवा [योगपरिकर्म] तीनयोगोंका परिणमन [न विद्यते] नहीं है [तस्य] उस जीवके [शुभाशुभदहनः] शुभ अशुभ भावोंको जलानेवाली [ध्यानमयः] ध्यानस्वरूपी [अग्निः] आग [जायते] उत्पन्न होती है। **भावार्थ**—परमात्मस्वरूपमें अडोल चैतन्यभाव जिस जीवके हो, वह ही ध्यान करनेवाला है। इस ध्याता पुरुषके स्वरूपकी प्राप्ति किस प्रकार होती हैं? सो कहते हैं। जब निश्चयके द्वारा योगीश्वर अनादि मिथ्यावासनाके प्रभावसे दर्शन-चारित्र मोहनीय कर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवर्तनेवाले उपयोगको काललब्धि पाकर वहांसे संकोचकर अपने स्वरूपमें लाये तब निर्मोह वीतराग द्वेषरहित अत्यन्त शुद्ध स्वरूपको शुद्धात्म-स्वरूपमें निष्कंप ठहरा सके और तब ही इस भेदविज्ञानी ध्यानीके स्वरूप-साधक पुरुषार्थसिद्धिका परम उपाय ध्यान उत्पन्न होता है। वह ध्यान करनेवाला पुरुष निःक्रिय चैतन्यस्वरूपमें स्थिरताके साथ मग्न हो रहा है, मन वचन कायकी भावना नहीं भाता है, कर्मकांडमें भी नहीं प्रवर्त्तता, समस्त शुभाशुभ कर्म-ईन्धनको जलानेके लिये अग्निवत् ज्ञानकांड

तथा चोक्तम्—"अंज्ञवि तियरणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइं इंदत्तं । लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति"[1] ॥ अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा । तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खइं कुणइ"[2] ॥ १४६ ॥ इति निर्जरापदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

णाणिस्स तं अप्पसहावविदे ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी" "अज्जवि तियरणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहि इंदत्तं लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति" । तत्र युक्तिमाह । यद्यद्यकाले यथाख्यातसंज्ञं निश्चयचारित्रं नास्ति तर्हि सरागचारित्रसंज्ञमपहृतसंयममाचरंतु तपस्विनः । तथा चोक्तं तत्त्वानुशासनध्यानग्रंथे "चरितारो न संत्यद्य यथाख्यातस्य संप्रति । तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरंतु तपोधनाः" । यच्चोक्तं सकलश्रुतधारिणां ध्यानं भवति तदुत्सर्गवचनं, अपवादव्याख्याने तु पंचसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकश्रुतिपरिज्ञानमात्रेणैव केवलज्ञानं जायते, यद्येवं न भवति तर्हि "तुसमासं घोसंतो सिवभूदी केवली जादो" इत्यादि वचनं कथं घटते ? तथा चोक्तं चारित्रसारादिग्रंथे पुलाकादिपंचनिर्ग्रंथव्याख्यानकाले । मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयंति ते निर्ग्रंथा भण्यंते क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनस्तेषामुत्कृष्टेन श्रुतं चतुर्दशपूर्वाणि जघन्येन पुनः पंचसमितित्रिगुप्तिसंज्ञा अष्टौ प्रवचनमातरः । यदप्युक्तं वज्रवृषभनाराचसंज्ञप्रथमसंहननेन ध्यानं भवति तदप्युत्सर्गवचनं अपवादव्याख्यानं पुनरपूर्वादिगुणस्थानवर्तिनां उपशमक्षपकश्रेण्योर्यच्छुक्लध्यानं तदपेक्षया स नियमः अपूर्वादधस्तनगुणस्थानेषु धर्मध्याने निषेधकं न भवति । तदप्युक्तं तत्रैव तत्त्वानुशासने "यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वचः । श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तत्राधस्तान्निषेधकं " एवं स्तोकश्रुतेनापि ध्यानं भवतीति ज्ञात्वा किमपि शुद्धात्मप्रतिपादकं संवरनिर्जराकरणं जरमरणहरं सारोपदेशं गृहीत्वा ध्यानं कर्तव्यमिति भावार्थः । उक्तं च । "अंतो णत्थि सुदीणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा । तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ" ॥ १४६ ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निर्जराप्रतिपादकमुख्यतया । गाथात्रयेणाष्टमोंतराधिकारः समाप्तः ॥ अथ निर्विकारपरमात्मसम्यकश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय

गर्भित ध्यानका अनुभवी है, इस कारण परमात्मपदको पाता है[3] । इस प्रकार निर्जरा पदार्थका व्याख्यान पूरा हुवा ॥ १४६ ॥ अब बंध पदार्थका व्याख्यान किया जाता है ।

१ अद्यापि त्रिकरणशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभन्ते इन्द्रत्वम् ।
लौकांतिकदेवत्वं, तत्र च्युता निर्वृतिं यान्ति ॥१॥

२ अन्तो नास्ति श्रुतीनां, कालः स्तोको वयं च दुर्मेधाः ।
तत् एव शिक्षितव्यं, यत् जरामरणक्षयं करोति ॥२॥

३ जो कोई कहै कि इस वर्तमान कालमें ध्यान नहीं होता उसको इन ऊपर लिखी दो गाथाओंसे अपना समाधान करना चाहिये ।

बन्धस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा ।

सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥१४७॥

यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा ।

स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥ १४७ ॥

यदि खल्वयमपरोपाश्रयेणानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं
करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति ।
तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः । तन्निमित्तेन शुभा-
शुभकर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ॥ १४७ ॥

बहिरङ्गान्तरङ्गबन्धकारणाख्यानमेतत् ;—

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो ।

भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥१४८॥

समुदायपातनिका । अथ मोक्षमार्गाद्विलक्षणे बंधाधिकारे "जं सुह"मित्यादि गाथात्रयेण बंधस्वरूपं कथयति;— जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा यद्ययमात्मा निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोपि व्यवहारेणानादिबंधनोपाधिवशाद्रक्तः सन् निर्मलज्ञानानंदादिगुणास्पदशुद्धात्मस्वरूपपरिणतेः पृथग्भूतामुदयागतं शुभमशुभं वा स्वसंवित्तेश्च्युतो भूत्वा भावं परिणामं करोति सो तेण हवदि बंधो तदा स आत्मा तेन रागपरिणामेन कर्तृभूतेन बंधो भवति । केन करणभूतेन ? पोग्गलकम्मेण विविहेण कर्मवर्गणारूपपुद्गलकर्मणा विविधेनेति । अत्र शुद्धात्मपरिणतेर्विपरीतः शुभाशुभपरिणामो भावबंधः तन्निमित्तेन तैलम्रक्षितानां मलबंध इव जीवेन सह कर्मपुद्गलानां संश्लेषो द्रव्यबंध इति सूत्राभिप्रायः ॥ १४७ ॥ अथ बहिरंगांतरंगबंधकारणमुपदिशति;—

[आत्मा] यह जीवद्रव्य [यदि] यदि [रक्तः] अज्ञान भावमें रागी होकर [उदीर्णं] प्रकट हुये [भावं] [य] जिस [शुभं अशुभं] शुभाशुभरूप भावको [करोति] करता है [सः] वह जीव [तेन] उस भावसे [विविधेन पुद्गलकर्मणा] अनेक प्रकारके पौद्गलीक कर्मोंसे [बद्धः भवति] बँध जाता है ।

भावार्थ—यदि यह आत्मा परके संबंधसे अनादि अविद्यासे मोहित होकर कर्मके उदयसे जिस शुभाशुभ भावको करता है तब यह आत्मा उसही काल उस अशुद्ध उपयोगरूप भावका निमित्त पाकर पौद्गलिक कर्मोंसे बंधता है । इससे यह बात भी सिद्ध हुई कि इस आत्माके जो रागद्वेष मोहरूप स्निग्ध शुभ अशुभ परिणाम हैं उनका नाम भावबंध है । उस भावबंधका निमित्त पाकर शुभअशुभरूप द्रव्यवर्गणामयी पुद्गलोंका जीवके प्रदेशों के साथ परस्पर बंध होनेका नाम द्रव्यबंध है ॥१४७॥ आगे बंधके

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसंभूतः ।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः ॥१४८॥

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तं । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बनात्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्तिपरिणामेनावस्थानम् । स पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुना रतिरागद्वेषमोहयुतः । मोहनीयविपाकसंपादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद्बहिरङ्गकारणं योगः । विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ॥ १४८ ॥

योगनिमित्तेन ग्रहणं कर्मपुद्गलादानं भवति । योग इति कोऽर्थः । जोगो मणवयणकायसंभूदो योगो मनोवचनकायसंभूतः निःक्रियनिर्विकारचिज्ज्योतिः परिणामाद्भिन्नो मनोवचनकायवर्गणालंबनरूपो व्यापारः आत्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणो वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुभूतो योगः भावणिमित्तो बंधो भावनिमित्तो भवति । स कः ? स्थित्यनुभागबंधः । भावः कथ्यते । भावो रदिरागदोसमोहजुदो रागादिदोषरहितचैतन्यप्रकाशपरिणतेः पृथक्त्वादिकषायादिदर्शनचारित्रमोहनीयत्रीणि द्वादशभेदात् पृथग्भूतो भावो रतिरागद्वेषमोहयुक्तः । अत्र रतिशब्देन हास्याविनाभाविनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या । रागशब्देन तु मायालोभरूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्सरूपो द्वेषपरिणामो षट्प्रकारो भवति । मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति । अत्र यतः कारणात्कर्मादानरूपेण प्रकृतिप्रदेशबंधहेतुस्ततः

बहिरंग अन्तरंग कारणोंका स्वरूप दिखाते हैं;—[योगनिमित्तं ग्रहणं] योगोंका निमित्त पाकर कर्मपुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक-क्षेत्रावगाहसे ग्रहण होता है, [योगः मनोवचनकायसंभूतः] योग मन-वचन-कायकी क्रियासे उत्पन्न होता है । [बंधः भावनिमित्तः] ग्रहण तो योगोंसे होता है और बंध एक अशुद्धोपयोगरूप भावोंके निमित्तसे होता है । और [भावः] वह भाव कैसा है कि [रतिरागमोहयुतः] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रतिरागद्वेष मोहसे संयुक्त होता है । भावार्थ—जीवोंके प्रदेशोंमें कर्मोंका आगमन योगपरिणतिसे होता है । पूर्वकी बंधी हुई कर्म-वर्गणाओंका अवलंबन पाकर आत्मप्रदेशोंका प्रकंपन होनेका नाम योगपरिणति है । और विशेषतया निज शक्तिके परिणामसे जीवके प्रदेशोंमें पुद्गलकर्मपिंडोंके रहनेका नाम बंध है । वह बंध मोहनीयकर्म संजनित अशुद्धोपयोगरूप भावके विना जीवके कदाचित् नहीं होता । यद्यपि योगोंके द्वारा भी बंध होता है तथापि स्थिति अनुभागके विना जीवके उसका नाम मात्र ही ग्रहण होता है । क्योंकि बंध उसहीका नाम है जो स्थिति अनुभागकी विशेषता लिये हो, इसकारण यह बात सिद्ध हुई

---

१ बन्धः. २ योगात् प्रकृतिप्रदेशबन्धो ।

मिथ्यात्वादिद्रव्यपर्यायाणामपि बहिरङ्गकारणद्योतनमेतत् ;—

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥१४९॥

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम् ।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावेन न बध्यन्ते ॥१४९॥

तन्त्रान्तरे[1] किलाष्टविकल्पकर्मकारणत्वेन बन्धहेतुभूताश्चतुर्विकल्पाः प्रोक्ताः मिथ्यात्वा-संयमकषाययोगा इति । तेषां[2]मपि जीवभावभूता रागादयो बन्धहेतुत्वस्य हेतवः । यतो रागादिभावानामभावे द्रव्यमिथ्यात्वासंयमकषाययोगसद्भावेऽपि जीवा न बध्यन्ते, ततो

कारणाद्बहिरंगनिमित्तं योगः चिरकालस्थायित्वेन स्थित्यनुभागबंधहेतुत्वादभ्यंतरकारणं कषाया इति तात्पर्यं ॥ १४८ ॥ अथ न केवलं योगा बंधस्य बहिरंगनिमित्तं भवंति मिथ्यात्वादि द्रव्य-त्वादि द्रव्यप्रत्यया अपि रागादिभावप्रत्ययापेक्षया बहिरंगनिमित्तमिति समर्थयति;—हेदू हि हेतुः कारणं हि स्फुटं । कतिसंख्योपेतः । चदुवियप्पो उदयागतमिथ्यात्वाविरतिकषाययोगद्र-व्यप्रत्ययरूपेण चतुर्विकल्पो भवति । कारणं भणियं स च द्रव्यप्रत्ययरूपश्चतुर्विकल्पो हेतुः कारणं भणितः । कस्य । अट्ठवियप्पस्स रागाद्युपाधिरहितसम्यक्त्वाद्यष्टगुणसहितपरमात्मस्व-भावप्रच्छादकस्य नवतराष्टविधद्रव्यकर्मणः तेसिं पि य रागादी तेषामपि रागादयः तेषां पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययानां रागादिविकल्परहितशुद्धात्मद्रव्यपरिणतेर्भिन्ना जीवगतरागादयः कारणा भवंति । कस्मादिति चेत् । तेसिमभावे ण बज्झंते यतः कारणात्तेषां जीवगतरागादिभाव-प्रत्ययानामभावे द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वाभावपरिणता जीवा न बध्यंत इति । तथाहि—यदि जीवगतरागाद्यभावेपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव

कि वंधमें बहिरंग कारण तो योग है और अंतरंग कारण जीवके रागादिक भाव हैं ॥ १४८ ॥
आगे द्रव्यमिथ्यात्वादिक वंधके बहिरंग कारण हैं ऐसा कथन करते हैं;-[चतुर्विकल्पः] चार प्रकारका द्रव्यप्रत्यय रूप [हेतुः] कारण [अष्टविकल्पस्य] आठप्रकारके कर्मोंका [कारणं] निमित्त [भणितं] कहा गया है [च] और [तेषां अपि] उन चार प्रकारके द्रव्यप्रत्ययोंका भी कारण [रागादयः] रागादिक विभाव भाव हैं [तेषां] उन रागादिक विभावरूपभावोंके [अभावे] विनाश होने पर [न बध्यन्ते] कर्म नहीं बंधते हैं । भावार्थ—आठप्रकार कर्मबंधके कारण मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार प्रकारके द्रव्यप्रत्यय हैं । उन द्रव्यप्रत्ययोंके कारण रागादिक भाव हैं, अतएव बंधके कारणके कारण रागादिक भाव हैं । क्योंकि रागादिक भावोंके अभाव होनेसे द्रव्यमिथ्यात्व असंयम कषाय और योग इन चार प्रत्ययोंके

---

१ अन्यसिद्धान्ते गोम्मटसारादिषु. २ मिथ्यात्वादीनां ।

रागादीनामन्तरङ्गत्वान्निश्चयेन बन्धहेतुत्वमवसेयमिति ॥ १४९ ॥ इति बन्धपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् । अथ मोक्षपदार्थव्याख्यानम् ।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमसंवररूपेण भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥१५०॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य ।
पावदि इंदियरहिदं अव्वावाहं सुहमणंतं ॥१५१॥ जुम्मं ।

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः ॥१५०॥
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तं ॥ १५१ ॥ युग्मं ।

आस्रवहेतुर्हि जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावः । तदभावो भवति ज्ञानिनः । तदभावे

बंध एव । कस्मात् । संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति । तस्माद् ज्ञायते नवतरद्रव्यकर्मबंधस्योदयागतद्रव्यप्रत्यया हेतवस्तेषां च जीवगतरागादयो हेतव इति । ततःस्थितं न केवलं योगा बहिरंगबंधकारणं द्रव्यप्रत्यया अपीति भावार्थः ॥ १४९ ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये बंधव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण "नवमोंतराधिकारः" समाप्तः ॥ अनंतरं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्ययागमभाषया रागादिविकल्परहितशुक्लध्यानसाध्ये वा मोक्षाधिकारे गाथाचतुष्टयं भवति । तत्र भावमोक्षः केवलज्ञानोत्पत्तिः जीवन्मुक्तोर्हत्पदमित्येकार्थः तस्याभिधानचतुष्टययुक्तस्यैकदेशमोक्षस्य व्याख्यानमुख्यत्वेन 'हेदु अभावे" इत्यादि सूत्रद्वयं । तदनंतरमयोगिचरमसमये शेषाघातिद्रव्यकर्ममोक्षप्रतिपादनरूपेण 'दंसणणाणसमग्गं" इत्यादि सूत्रद्वयं । एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन मोक्षाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका । अथ घातिचतुष्टयद्रव्यकर्ममोक्षहेतुभूतं परमसंवररूपं च भावमोक्षमाह;–हेदु अभावे द्रव्यप्रत्ययरूपहेत्वभावे सति णियमा निश्चयात् जायदि जायते । कस्य । णाणिस्स ज्ञानिनः । स कः । आसवणिरोधो जीवाश्रितरागाद्यास्रवनिरोधः आसवभावेण

होते हुये भी जीवके बंध नहीं होता, इस कारण रागादिक भाव ही बंध के अंतरंग मुख्य कारण हैं, गौणकारण चारित्रप्रत्यय है । इस प्रकार बंधपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १४९ ॥ अब मोक्षपदार्थका व्याख्यान किया जाता है, सो प्रथम ही द्रव्यमोक्षका कारण परमसंवररूप मोक्षका स्वरूप कहते हैं;—[हेत्वभावे] रागादि कारणोंके अभावसे [नियमात्] निश्चयसे [ज्ञानिनः] भेद-विज्ञानीके [आस्रवनिरोधः]

---

१ हेतुत्वं ज्ञातव्यम् ।

भवत्यास्रवभावाभावः। आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः। कर्माभावेन भवति सार्व-
ज्ञम्। सर्वदर्शित्वमव्यावाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति। स एष जीवन्मुक्ति-
नामा भावमोक्षः। कथमिति चेत्। भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृतचैतन्यस्य क्रमप्रवर्त-
मानज्ञप्तिक्रियारूपः। स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्य-
कर्मास्रवहेतुः। स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुवृत्तिरूपेण प्रहीयते। ततोऽस्य आस्रवभावो
निरुध्यते। ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्य-

---

विणा भावास्रवस्वरूपेण विना जायदि कम्मस्स दु णिरोधो मोहनीयादिघातिचतुष्टयरूपस्य
कर्मणो जायते निरोधो विनाशः। इति प्रथमगाथा। कम्मस्साभावेण य घातिकर्मचतुष्टय-
स्याभावेन च। सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च सन्। किं करोति।
पावदि प्राप्नोति। किं। सुहं सुखं। किं विशिष्टं। इंदियरहिदं अव्वाबाहमणंतं अती-
न्द्रियमव्यावाधमनंतं चेति। इति संक्षेपेण भावमोक्षो ज्ञातव्यः। तद्यथा। कोसौ भावः कश्च
मोक्षः इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—भावः स त्वत्र विवक्षितः कर्मावृतसंसारिजीवस्य क्षायोपशमिक-
ज्ञानविकल्परूपः। स चानादिमोहोदयवशेन रागद्वेषमोहरूपेणाशुद्धो भवतीति। इदानीं तस्य
भावस्य मोक्षः कथ्यते। यदायं जीवः आगमभाषया कालादिलब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धा-
त्माभिमुखपरिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथमतस्तावन्मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनामुपशमेन
क्षयोपशमेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्टिभक्त्यादिरूपेण पराश्रितधर्म्यध्यानबहिरंगसहका-

---

आस्रवभावका अभाव [जायते] होता है [तु] और [आस्रव भावेन विना] कर्मका आगमन
न होनेसे [कर्मणः] ज्ञानावरणादि कर्मबंधका [निरोधः] अभाव [जायते] होता है।
[च] और [कर्मणां] ज्ञानावरणादि कर्मोंका [अभावेन] विनाश करके [सर्वज्ञः] सबका
जाननेवाला [च] और [सर्वलोकदर्शी] सबका देखनेवाला होता है, तब वह [इन्द्रियरहितं]
इन्द्रियाधीन नहीं और [अव्याबाधं] बाधारहित [अनन्तं] अपार ऐसे [सुखं] आत्मीक
सुखको [प्राप्नोति] प्राप्त होता है। भावार्थ—जीवके आस्रवका कारण मोहरागद्वेषरूप परिणाम
हैं। जब इन तीन अशुद्ध भावोंका विनाश हो तब ज्ञानी जीवके अवश्य ही आस्रवभावोंका अभाव होता
है। जब ज्ञानी के आस्रवभावका अभाव होता है तब कर्मका नाश होता है। कर्मोंके नाश होने पर
निरावरण सर्वज्ञपद तथा सर्वदर्शी पद प्रगट होता है। और अखंडित अतीन्द्रिय अनन्त सुखका अनुभव
होता है। इस पदका नाम जीवन्मुक्त भावमोक्ष कहा जाता है। देहधारी जीते रहते ही भावकर्मरहित
सर्वथा शुद्धभावसंयुक्त मुक्त हैं, इस कारण जीवन्मुक्त कहलाते हैं। यदि कोई पूछे कि किसप्रकार
जीवन्मुक्त होते हैं ? सो कहते हैं कि कर्मसे आच्छादित आत्माके क्रमसे प्रवर्तमान ज्ञानक्रियारूप
भाव संसारी जीवके अनादि मोहनीय कर्मके वशसे अशुद्ध हैं। द्रव्यकर्मके आस्रवका

वीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्तर्मुहूर्तमतिवाह्य युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानतामवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद् भावकर्म विनश्यति । ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापारोऽव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते । इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ॥१५० । १५१॥

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत् ;—

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं ।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स ॥१५२॥

रित्वेनानंतज्ञानादिस्वरूपोऽहमित्यादिभावनास्वरूपमात्माश्रितं धर्म्यध्यानं प्राप्य आगमकथितक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टयमध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शनमोहक्षयेण क्षायिकसम्यक्त्वं कृत्वा तदनंतरमपूर्वादिगुणस्थानेषु प्रकृतिपुरुषनिर्मलविवेकज्योतीरूपप्रथमशुक्लध्यानमनुभूय रागद्वेषरूपचारित्रमोहोदयाभावेन निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिरूपं चारित्रमोहविध्वंसनसमर्थं वीतरागचारित्रं प्राप्य मोहक्षपणं कृत्वा मोहक्षयानंतरं क्षीणकषायगुणस्थानेंतर्मुहूर्तकालं स्थित्वा द्वितीयशुक्लध्यानेन ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मत्रयं युगपदंत्यसमये निर्मूल्य केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयस्वरूपं भावमोक्षं प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १५० । १५१ ॥ एवं भावमोक्षस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं । अथ वेदनीयादिशेषाघातिकर्मचतुष्टयविनाशरूपायाः सकलद्रव्यनिर्जरायाः कारणं ध्यान-

---

कारण है सो भावज्ञानी जीवके मोहरागद्वेषकी प्रवृत्तिसे कमी होता है, अतएव इस भेदविज्ञानीके आस्रवभावका निरोध होता है । जब इसके मोहकर्मका क्षय होता है तब इसके अत्यन्त निर्विकार वीतराग-चारित्र प्रगट होता है । अनादिकालसे आस्रव आवरण द्वारा अनन्त चैतन्यशक्ति इस आत्माकी मुद्रित (ढकीहुई) है, वही इस ज्ञानीके शुद्धक्षायोपशमिक निर्मोहज्ञानक्रियाके होते हुए अन्तर्मुहूर्त्तपर्यन्त रहती है । तत्पश्चात् एक ही समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्मके क्षय होनेसे कथंचित्प्रकार कूटस्थ अचल केवलज्ञान अवस्थाको प्राप्त होता है । उस समय ज्ञानक्रियाकी प्रवृत्ति क्रमसे नहीं होती क्योंकि भावकर्मका अभाव है । सो ऐसी अवस्थाके होनेसे वह भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी इन्द्रियव्यापाररहित अव्याबाध अनन्त सुखसंयुक्त सदाकाल स्थिरस्वभावसे स्वरूपगुप्त रहते हैं । यह भावकर्मसे मुक्तका स्वरूप दिखाया, और ये ही द्रव्यकर्मसे मुक्त होनेका कारण परम संवरका स्वरूप है । जब यह जीव केवलज्ञान दशाको प्राप्त होता है तब इसके चार अघातिया कर्म जली हुई रस्सी की तरह द्रव्यकर्म रहते हैं । उन द्रव्यकर्मोंके नाशको अनन्त चतुष्टय परम संवर कहते हैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ आगे द्रव्यकर्म मोक्षका कारण और परम निर्जराका कारण ध्यानका स्वरूप दिखाते हैं;—[दर्शनज्ञानसमग्रं]

---

१ निश्चलज्ञानत्वम् ।

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं ।
जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः ॥१५२॥

एवमस्य खलु भावमुक्तस्य भगवतः केवलिनः[१] स्वरूपतृप्तत्वाद्विश्रान्तसुखदुःखकर्मविपाककृतविक्रियस्य प्रक्षीणावरणत्वादनन्तज्ञानदर्शनसंपूर्णशुद्धज्ञानचेतनामयत्वादतीन्द्रियत्वाच्चान्यद्रव्यसंयोगवियुक्तं शुद्धस्वरूपे विचलितचैतन्यवृत्तिस्वरूपत्वात्कथञ्चिद्ध्यान-

---

स्वरूपं कथयति;—'दंसण" इत्यादि पदखंडनरूपेण व्याख्यानं क्रियते-दंसण णाण दर्शनज्ञानाभ्यां कृत्वा समग्गं परिपूर्णं । किं । झाणं ध्यानं । पुनरपि किंविशिष्टं ? णो अण्णदव्वसंजुत्तं अन्यद्रव्यसंयुक्तं न भवति । इत्थंभूतं ध्यानं जायदि णिज्जरहेदू निर्जराहेतुर्जायते । कस्य ? सहावसहिदस्स साहुस्स शुद्धस्वभावसहितस्य साधोरिति । तथाहि । तस्य पूर्वोक्तभावमुक्तस्य केवलिनो निर्विकारपरमानंदैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखतृप्तत्वाद्व्यावृत्तहर्षविषादरूपसांसारिकसुखदुःखविक्रियस्य केवलज्ञानदर्शनावरणविनाशादसहायकेवलज्ञानदर्शनसहितं सहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वादिन्द्रियव्यापारादिबहिर्द्रव्यालंबनाभावाच्च परद्रव्यसंयोगरहितं स्वरूपनिश्चलत्वादविचलितचैतन्यवृत्तिरूपं च यदात्मनः स्वरूपं तत्पूर्वसंचितकर्मणां ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च दृष्ट्वा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः । अत्राह शिष्यः । इदं परद्रव्यालंबनरहितं ध्यानं केवलिनां भवतु । कस्मात् ? केवलिनामुपचारेण ध्यानमिति वचनात् । चारित्रसारादौ ग्रन्थे भणितमास्ते । छद्मस्थतपोधनाः द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वा ध्यात्वा केवलज्ञानमुत्पादयंति तत्परद्रव्यालंबनरहितं कथं घटत इति । परिहारमाह । द्रव्यपरमाणुशब्देन द्रव्यसूक्ष्मत्वं ग्राह्यं भावपरमाणुशब्देन च भावसूक्ष्मत्वं न च पुद्गलपरमाणुः । इदं व्याख्यानं सर्वार्थसिद्धिटिप्पणके भणितमास्ते । अस्य संवादवाक्यस्य विवरणं क्रियते । द्रव्यशब्देनात्मद्रव्यं ग्राह्यं तस्य तु परमाणुः । परमाणुरिति कोर्थः ? रागाद्युपाधिरहिता सूक्ष्मावस्था । तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत् ? निर्विकल्पसमाधिविषयादिति द्रव्यपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं । भावशब्देन तु तस्यैवात्मद्रव्यस्य स्वसंवेदनज्ञानपरिणामो ग्राह्यः तस्य भावस्य परमाणुः ।

यथार्थ वस्तुको सामान्य देखने और विशेषतापूर्वक जाननेसे परिपूर्ण [ध्यानं] परद्रव्यचिन्ताका निरोधरूप ध्यान [निर्जराहेतुः] कर्मबन्धस्थितिकी अनुक्रम परिपाटीसे खिरनेका कारण [जायते] होता है । यह ध्यान किसके होता है ? [स्वभावसहितस्य साधोः] आत्मीक स्वभावसंयुक्त साधु महामुनिके होता है । यह ध्यान कैसा है ? [नो अन्यद्रव्यसंयुक्तं] परद्रव्य संबंध से रहित है । भावार्थ—जब यह भगवान् भावकर्ममुक्त केवल अवस्थाको प्राप्त होता है तब निजस्वरूपमें आत्मीक सुखसे तृप्त होता है । इसलिये कर्मजनित सुखदुःख विपाकक्रियाके

---

१ केवलिनः २ रहितः ।

व्यपदेशार्हमात्मनः स्वरूपं पूर्वसंचितकर्मणां शक्तिशातनं वा विलोक्य निर्जराहेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ॥ १५२ ॥

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि ।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥१५३॥

य: संवरेण युक्तो निर्जरन्नथ सर्वकर्माणि ।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः ॥१५३॥

परमाणुरिति कोर्थः रागादिविकल्परहितो सूक्ष्मावस्था । तस्याः सूक्ष्मत्वं कथमिति चेत् । इंद्रियमनोविकल्पाविषयत्वादिति भावपरमाणुशब्दस्य व्याख्यानं ज्ञातव्यं । अयमत्र भावार्थ:—प्राथमिकानां चित्तस्थिरीकरणार्थं विषयाभिलाषरूपध्यानवंचनार्थं च परंपरया मुक्तिकारणं पंचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्यं ध्येयं भवति दृढतरध्यानाभ्यासेन चित्ते स्थिरे जाते सति निजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येयं । तथा चोक्तम् श्रीपूज्यपादस्वामिभिः निश्चयध्येयव्याख्यानं । आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तः । अस्य व्याख्यानं क्रियते । आत्मा कर्ता आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मन्येवाधिकरणभूते आत्मनः करणभूतेन असौ प्रत्यक्षीभूतात्मा क्षणमन्तर्मुहूर्तमुपजनयन् धारयन् सन् स्वयंभूः प्रवृत्तो सर्वज्ञो जात इत्यर्थः । इति परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकभावं ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्यः ॥ १५२ ॥ अथ सकलमोक्षसंज्ञं द्रव्यमोक्षमावेदयति;—जो यः कर्ता संवरेण जुत्तो परमसंवरेण युक्तः । किं कुर्वन् ? णिज्जरमाणो य निर्जरयंश्च । कानि । सव्वकम्माणि सर्वकर्माणि । पुनः किंविशिष्टः । ववगदवेदाउस्सो व्यपगतवेदनीयायुष्यसंज्ञकर्मद्वयः । एवंभूतः स किंकरोति ? मुअदि भवं त्यजति

वेदनसे रहित होता है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मके जाने पर अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शनसे शुद्ध चेतनामयी होता है । इस कारण अतीन्द्रिय रसका आस्वादी होकर बाह्य पदार्थोंके रसको नहीं भोगता । और वही परमेश्वर अपने शुद्ध स्वरूपमें अखंडित चैतन्यस्वरूपमें प्रवर्तित होता है । इस कारण कथंचित्प्रकार अपने स्वरूपका ध्यानी भी है अर्थात् परद्रव्यसंयोगसे रहित आत्मस्वरूपध्यान नामको पाता है । इस कारण केवलीकेभी उपचारमात्र स्वरूप-अनुभवनकी अपेक्षा ध्यान कहा जाता है । पूर्व बंधे कर्म अपनी शक्तिकी कमीसे समय समय खिरते रहते हैं, इस कारण वही ध्यान निर्जराका कारण है । यह भावमोक्षका स्वरूप जानो ॥ १५२ ॥ आगे द्रव्यमोक्षका स्वरूप कहते हैं;—[यः] जो पुरुष [संवरेण युक्तः] आत्मानुभवरूप परमसंवरसे संयुक्त है [अथ] अथवा [सर्वकर्माणि] अपने समस्त पूर्व बन्धे कर्मोंको [निर्जरन्] अनुक्रमसे खपाता हुआ प्रवर्तित है, और जिस पुरुषसे [व्यपगतवेद्यायुष्कः] वेदनीय, नाम, गोत्र, आयु कर्म दूर हो गए हैं ।

अथ खलु भगवतः केवलिनो भावमोक्षे सति प्रसिद्धपरमसंवरस्योत्तरकर्मसन्ततौ नि-
रुद्धायां परमनिर्जराकारणध्यानप्रसिद्धौ सत्यां पूर्वकर्मसंततौ कदाचित्स्वभावेनैव कदाचि-
त्समुद्घातविधानेनायुःकर्मसमभूतः स्थित्यामायुःकर्मानुसारेणैव निर्जीर्यमाणायामपुनर्भवाय

भवं येन कारणेन भवशब्दवाच्यं नामगोत्रसंज्ञं कर्मद्वयं मुंचति तेण सो मोक्खो तेन कार-
णेन स प्रसिद्धो मोक्षो भवति । अथवा स पुरुष एवाभेदेन मोक्षो भवतीत्यर्थः । तद्यथा ।
अथास्य केवलिनो भावमोक्षे सति निर्विकारसंवित्तिसाध्यं सकलसंवरं कुर्वतः पूर्वोक्तशुद्धात्मध्यान-
साध्यां चिरसंचितकर्मणां सकलनिर्जरां चानुभवतोन्तर्मुहूर्तजीवितशेषे सति वेदनीयनामगोत्र-
संज्ञकर्मत्रयस्यायुषः सकाशादधिकस्थितिकाले तत्कर्मत्रयाधिकस्थितिविनाशार्थं संसारस्थितिवि-
नाशार्थं वा दंडकपाटप्रतरलोकपूर्णसंज्ञं केवलिसमुद्घातं कृत्वाथवायुष्यसहकर्मत्रयस्य संसारस्थितेर्वा
समानस्थितिकाले पुनरकृत्वा च तदनन्तरं स्वशुद्धात्मनिश्चलवृत्तिरूपं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञमु-
पचारेण तृतीयशुक्लध्यानं कुर्वतः तदनन्तरं सयोगिगुणस्थानमतिक्रम्य सर्वप्रदेशाह्लादैकाकारप-
रिणतपरमसमरसीभावलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तं समस्तशीलगुणनिधानं समुच्छिन्नक्रियासंज्ञं च-
तुर्थशुक्लध्यानाभिधानं परमयथाख्यातचारित्रं प्राप्तस्यायोगिद्विचरमसमये शरीरादिद्वासप्ततिप्रकृति-
चरमसमये वेदनीयायुष्यनामगोत्रसंज्ञकर्मचतुष्करूपस्य त्रयोदशप्रकृतिपुद्गलपिंडस्य जीवेन सहा-
त्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षो भवति । तदनंतरं किं करोति भगवान् ? पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छे-
दात्तथागतिपरिणामाच्चेति हेतुचतुष्टयात् रूपात् सकाशाद्यथासंख्येनाविशुद्धकुलालचक्रवद्व्यपगत-
लेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्चेति दृष्टांतचतुष्टयेनैकसमयेन लोकाग्रं गच्छति । परतो
गतिकारणभूतधर्मास्तिकायाभावात्तत्रैव लोकाग्रे स्थितः सन् विषयातीतमनश्वरं परमसुखमनंत-

---

[सः] वह भगवान् परमेश्वर [भवं] अघातिकर्म सम्बन्धी संसारको
[मुञ्चति] छोड़ देता है, नष्ट कर देता है [तेन मोक्षः] इसलिये द्रव्य
मोक्ष कहा जाता है । भावार्थ—इस केवली भगवानके भावमोक्ष होनेपर परमसंवर
भाव होते हैं । उनसे आगामी कालसम्बन्धिनी कर्मकी परंपराका निरोध होता है । और
पूर्व बंधे कर्मोंकी निर्जराका कारण ध्यान होता है, उससे पूर्वकर्मसंततिका किसी कालमें
तो स्वभावहीसे अपना रस देकर खिरना होता है और किसी काल समुद्घातविधानसे
कर्मोंकी निर्जरा होती है । और किसी काल यदि वेदनी, नाम, गोत्र इन तीन कर्मोंकी
स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके बराबर हो तब तो सब चार अघातिया कर्मोंकी स्थिति बराबर
ही खिरके मोक्ष अवस्था होती है और जो आयुकर्मकी स्थिति अल्प हो और वेदनीय,
नाम, गोत्रकी बहुत हो तो समुद्घात स्थिति खिरके मोक्ष अवस्था होती है । इस

---

१ मोक्षाय ।

तद्भवत्यागसमये वेदनीयायुर्नामगोत्ररूपाणां जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां द्रव्यमोक्षः ॥ १५३ ॥ इति मोक्षपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

समाप्तं च मोक्षमार्गावयवरूपसम्यग्दर्शनज्ञानविषयभूतनवपदार्थव्याख्यानम् ॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रपञ्चसूचिका चूलिका ॥३॥

मोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं ।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥१५४॥

जीवस्वभावं ज्ञानमप्रतिहतदर्शनमनन्यमयं ।
चारित्रं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिन्दितं भणितं ॥१५४॥

जीवस्वभावं नियतं चरितं मोक्षमार्गः । जीवस्वभावो हि ज्ञानदर्शने अनन्यमयत्वात् ।

कालमनुभवतीति भावार्थः ॥ १५३ ॥ इति द्रव्यमोक्षस्वरूपकथनरूपेण सूत्रद्वयं गतं । एवं भावमोक्षद्रव्यमोक्षप्रतिपादनमुख्यतया गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेन दशमोन्तराधिकारः ॥

इति तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावत् "अभिवंदिऊग सिरसा" इमां गाथामादिं कृत्वा गाथाचतुष्टयं व्यवहारमोक्षमार्गकथनमुख्यत्वेन तदनंतरं षोडशगाथा जीवपदार्थप्रतिपादनेन तदनंतरं गाथाचतुष्टयमजीवपदार्थनिरूपणार्थं ततश्च गाथात्रयं पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण सूचनार्थं तदनन्तरं गाथाचतुष्टयं पुण्यपापपदार्थद्वयविवरणार्थं ततश्च गाथाषट्कं शुभाशुभास्रवव्याख्यानार्थं तदनन्तरं सूत्रत्रयं संवरपदार्थस्वरूपकथनार्थं ततश्च गाथात्रयं निर्जरापदार्थव्याख्यानेन निमित्तं तदनंतरं सूत्रत्रयं बंधपदार्थकथनार्थं तदनंतरं सूत्रचतुष्टयं मोक्षपदार्थव्याख्यानार्थं चेति दशभिरंतराधिकारैः पंचाशद्गाथाभिर्व्यवहारमोक्षमार्गावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतानां जीवादिनवपदार्थानां प्रतिपादकः द्वितीयमहाधिकारः समाप्तः ॥२॥

इत ऊर्ध्वं मोक्षावाप्तिपुरस्सरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाभिधाने विशेषव्याख्यानेन चूलिकारूपे तृतीयमहाधिकारे "जीवसहाओ णाणं" इत्यादिविंशतिगाथा भवंति । तत्र विंशतिगाथासु मध्ये केवलज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धजीवस्वरूपकथनेन जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग इति कथनेन च "जीवसहाओ णाणं" इत्यादि प्रथमस्थले सूत्रमेकं तदनंतरं शुद्धात्माश्रितः, स्वसमयो मिथ्या-

---

प्रकार जीवसे अत्यंत सर्वथाप्रकार कर्मपुद्गलोंका वियोग होनेका नाम द्रव्यमोक्ष है ॥ १५३ ॥ इसप्रकार द्रव्यमोक्षका व्याख्यान पूर्ण हुआ और मोक्षमार्गके अंग सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके निमित्तभूत नवपदार्थोंका व्याख्यान भी पूरा हुआ ॥ २ ॥

आगे मोक्षमार्गका प्रपंच सूचनामात्र कहा जाता है, अतः प्रथम ही मोक्षमार्गका

---

१ तस्य मनुष्यभवस्य त्यागसमये परित्यागसमये. २ विस्तारकथिता ।

अनन्यमयत्वं च तयोर्विशेषसामान्यचैतन्यस्वभावजीवनिर्वृत्तत्वात्। अथ तयोर्जीवस्वरूपभूतयोर्ज्ञानदर्शनयोर्यन्नियतमवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपवृत्तिमयमस्तित्वं रागादिपरिणत्यभाव-

स्वरागादिविभावपरिणामाश्रितः परमसमय इति प्रतिपादनरूपेण "जीवो सहावणियदो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ शुद्धात्मश्रद्धानादिरूपस्वसमयविलक्षणस्य परसमयस्यैव विशेषविवरणमुख्यत्वेन "जो परदव्वंहि" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनस्वरूपस्य स्वसमयस्यैव पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन "जो सव्वसंग" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानपंचमहाव्रताद्यनुष्ठानरूपस्य व्यवहारमोक्षमार्गस्य निरूपणमुख्यत्वेन "धम्मादी सद्दहणं" इत्यादि पंचमस्थले सूत्रमेकं, अथ व्यवहाररत्नत्रयेण साध्यस्याभेदरत्नत्रयस्वरूपनिश्चयमोक्षमार्गप्रतिपादनरूपेण "णियच्छयणयेण" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं यस्यैव शुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमुपादेयं प्रतिभाति स एव भावसम्यग्दृष्टिरिति व्याख्यानमुख्यत्वेन "जेण विजाण" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाभ्यां क्रमेण मोक्षपुण्यबंधौ भवत इति प्रतिपादकमुख्यत्वेन "दंसणणाणचरित्ताणि" इत्याद्यष्टमस्थले सूत्रमेकं। अथ निर्विकल्पपरमसमाधिस्वरूपसामायिकसंयमे स्थातुं समर्थोपि तत्त्यक्त्वा यद्येकान्तेन सरागचारित्रानुचरणं मोक्षकारणं मन्यते तदा स्थूलपरसमयो भण्यते यदि पुनस्तत्र स्थातुमीहमानोपि सामग्रीवैकल्येनाशुभवंचनार्थं शुभोपयोगं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयो भण्यत इति व्याख्यानरूपेण "अण्णाणादो णाणी" इत्यादि गाथापंचकं, तदनंतरं तीर्थंकरादिपुराणजीवादिनवपदार्थप्रतिपादकागमपरिज्ञानसहितस्य तद्भक्तियुक्तस्य च यद्यपि तत्काले पुण्यास्रवपरिणामेन मोक्षो नास्ति तथापि तदाधारेण कालांतरे निरास्रवशुद्धोपयोगपरिणामसामग्रीप्रस्तावे भवतीति कथनमुख्यत्वेन "सपदत्थं" इत्यादि सूत्रद्वयं। अथास्य पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतं वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति व्याख्यानरूपेण "तह्मा णिव्वुदिकामो" इत्यादिसूत्रमेकं, तदनंतरमुपसंहाररूपेण शास्त्रपरिसमाप्त्यर्थं "मग्गप्पभावणट्ठं" इत्यादि गाथासूत्रमेकं। एवं द्वादशान्तरस्थलैर्मोक्षमोक्षमार्गविशिष्टव्याख्यानरूपे तृतीयमहाधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा। अथ गाथापूर्वार्द्धेन जीवस्वभावमपरार्द्धेन तु जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति च प्रतिपादयति। अथवा निश्चयज्ञानदर्शनचारित्राणि जीवस्वभावो भवतीत्युपदिशति;—जीवसहाओ णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं जीवस्वभावो भवति। किं कर्तृ? ज्ञानमप्रतिहतदर्शनं च। कथंभूतं? अनन्यमयमभिन्नं इति पूर्वार्द्धेन जीवस्वभावः कथितः चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं

स्वरूप दिखाया जाता है;—[ज्ञानं] यथार्थ वस्तु-परिच्छेदन [अप्रतिहतदर्शनं] यथार्थ वस्तुका अखंडित सामान्यावलोकन यह दोनों गुण [अनन्यमयं] चैतन्यस्वभावसे एक ही हैं [जीवस्वभावं] जीवका असाधारण लक्षण है। [च तयोः] और उन ज्ञान तथा दर्शनका [नियतं] निश्चित स्थिररूप [अस्तित्वं] अस्तिभाव

वादनिन्दितं तच्चरितं, तदेव मोक्षमार्ग इति । द्विविधं हि किल संसारिषु चरितं । स्वचरित परचरितं च । स्वसमयपरसमयावित्यर्थः । तत्र स्वभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं स्वचरितम् । परभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं परचरितम् । तत्र यत्स्वभावावस्थितास्तित्वरूपं परभावावस्थितास्तित्वव्यावृत्तत्वेनात्यन्तमनिन्दितम् , तदत्र साक्षान्मोक्षमार्गत्वेनावधारणीयमिति ॥ १५४ ॥

भणियं चरितं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिंदितं भणितं कथितं । किं चरितं च । किं तत् ? अस्तित्वं । किंविशिष्टं ? तयोर्ज्ञानदर्शनयोर्नियतं स्थितं । पुनरपि किंविशिष्टं ? रागाद्यभावादनिंदितं, इदमेव चरितं मोक्षमार्ग इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । न केवलं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवस्वभावो भवति किंतु पूर्वोक्तलक्षणं चरितं स्वरूपास्तित्वं चेति । इतो विस्तरः— समस्तवस्तुगतानंतधर्माणां युगपद्विशेषपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानं तथा सामान्ययुगपत्परिच्छित्तिसमर्थं केवलदर्शनमिति जीवस्वभावः । कस्मादिति चेत् । सहजशुद्धसामान्यविशेषचैतन्यात्मकजीवास्तित्वात्सकाशात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदादिति पूर्वोक्तजीवस्वभावादभिन्नमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिंद्रियव्यापाराभावान्निर्विकारमदूषितं चेत्येवं गुणविशिष्टस्वरूपास्तित्वं जीवस्वभावनियतचरितं भवति । तदपि कस्मात् ? स्वरूपे चरणं चारित्रमितिवचनात् । तच्च द्विविधं स्वयमनाचरतोपि परानुभूतेष्टकामभोगेषु स्मरणमपध्यानलक्षणमिति तदादि परभावपरिणमनं परचरितं तद्विपरीतं स्वचरितं । इदमेव चारित्रं परमार्थशब्दवाच्यस्य मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानतां मोक्षाद्भिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरागादिषु निरतानामस्माकमेवानंतकालो गतः, एवं ज्ञात्वा तदेव जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षकारणभूतं निरंतरं भावनीयमिति सूत्रतात्पर्यं । तथाचोक्तं । "एमेव गओ कालो असारसंसारकारणरयाणं ।

[अनिन्दितं] निर्मल [चारित्रं] आचरणरूप चारित्रगुण [भणितं] सर्वज्ञ वीतरागदेवने कहा है । भावार्थ—जीवके स्वभाव भावोंकी जो थिरता है, उसका नाम चारित्र कहा जाता है । वही चारित्र मोक्षमार्ग है । वे जीवके स्वाभाविक भाव ज्ञान-दर्शन हैं और वे आत्मासे अभेद और भेदस्वरूप हैं । एक चैतन्यभावकी अपेक्षा अभेद है । और वह ही एक चैतन्यभाव सामान्यविशेषकी अपेक्षा दो प्रकारका है । दर्शन सामान्य है, ज्ञानका स्वरूप विशेष है । चेतनाकी अपेक्षा ये दोनों एक हैं । ये ज्ञानदर्शन जीवके स्वरूप हैं । इनका जो निश्चल थिर होना अपनी उत्पाद व्यवस्थासे और रागादिक परिणतिके अभावसे निर्मल होने का नाम चारित्र है, वही मोक्षका मार्ग है । इस संसारमें चारित्र दो प्रकारका है । एक स्वचारित्र और दूसरा परचारित्र है । स्वचारित्रको स्वसमय और परचारित्रको परसमय कहते हैं । परमात्मामें स्थिरभाव स्वचारित्र है, और आत्माका परद्रव्यमें लगनरूप थिरभाव परचारित्र है । इनमेंसे जो आत्मा भावोंमें थिरताकरके

स्वसमयपरसमयोपादानव्युदासपुरस्सरकर्मक्षयद्वारेण जीवस्वभावनियतचरितस्य मोक्षमार्गत्वद्योतनमेतत्;—

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥१५५॥

जीवः स्वभावनियतः अनियतगुणपर्यायोऽथ परसमयः ।
यदि कुरुते स्वकं समयं प्रभ्रस्यति कर्मबन्धात् ॥१५५॥

संसारिणो हि जीवस्य ज्ञानदर्शनावस्थितत्वात् स्वभावनियतस्याप्यनादिमोहनीयोदयानुवृत्तिरूपत्वेनोपरक्तोपयोगस्य सतः समुपात्तभावस्वरूप्यत्वादनियतगुणपर्यायत्वं परसमयः । परचरितमिति यावत् । तस्यैवानादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वमपास्य अत्यन्तशुद्धोपयोगस्य सतः समुपात्तभावैक्यरूप्यत्वान्नियतगुणपर्यायत्वं स्वसमयः । स्वचरितमिति

परमट्ठकारणाणं कारण हु जाणियं किंपि" ॥ १५४ ॥ एवं जीवस्वभावकथनेन जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति कथनेन च प्रथमस्थले गाथा गता । अथ स्वसमयोपादानेन कर्मक्षयो भवतीति हेतोर्जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्गो भवत्येवं भण्यते;—जीवो सहावणियदो जीवो निश्चयेन स्वभावनियतोपि अणियदगुणपज्जओ य परसमओ अनियतगुणपर्यायः सन्नथ परसमयो भवति । तथाहि । जीवः शुद्धनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्तावत् पश्चाद्व्यवहारेण निर्मोहशुद्धात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतेनानादिमोहोदयवशेन मतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायपरिणतः सन् परसमयरतः परचरितो भवति यदा तु निर्मलविवेकज्योतिःसमुत्पादकेन परमात्मानुभूतिलक्षणेन परमकलानुभवेन शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं भावयति तदा स्वसमयः स्वचरितरतो भवति जदि कुणदि सगं समयं यदि चेत्करोति स्वकं समयं एवं स्वसमयपरसमयस्वरूपं ज्ञात्वा यदि निर्विकारस्वसंवित्तिरूपस्वसमयं करोति परिणमति पब्भस्सदि कम्मबंधादो प्रभ्रष्टो भवति

लीन है, परभावसे परान्मुख है, स्वसमयरूप है सो साक्षात् मोक्षमार्ग जानना ॥ १५४ ॥ आगे स्वसमयका ग्रहण परसमयका त्याग हो तब कर्मक्षयका द्वार होता है, उससे जीवस्वभावकी निश्चल थिरताका मोक्षमार्गस्वरूप दिखाते हैं;—[जीवः] यद्यपि यह आत्मा [स्वभावनियतः] निश्चयसे अपने शुद्ध आत्मीक भावोंमें निश्चल है तथापि व्यवहारनयसे अनादि अविद्याकी वासनासे [अनियतगुणपर्यायः] परद्रव्यमें उपयोग होनेसे परद्रव्यकी गुणपर्यायोंमें रत है, अपने गुणपर्यायोंमें निश्चल नहीं है, ऐसा यह जीव [परसमयः] परचारित्रका आचरणवाला कहा जाता है । [अथ] फिर वही संसारी जीव काललब्धि पाकर [यदि] यदि [स्वकं समयं] आत्मीक स्वरूपके आचरणको [कुरुते] करता है [तदा] तब [कर्मबन्धात्] द्रव्यकर्मके

---

१. ४ उपरक्तोपयोगरूपेण उत्पन्नस्य ।

यावत् । अथ खलु यदि कथञ्चनोद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिर्जीवः परसमयं व्युदस्य स्वसमयमुपादत्ते तदा कर्मबंधादवश्यं भ्रश्यति । यतो हि जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग इति ॥ १५५ ॥

परचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं राणेण कुणदि जदि भावं ।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥ १५६ ॥

यः परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावं ।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः ॥ १५६ ॥

यो हि मोहनीयोदयानुवृत्तिवशाद्रज्यमानोपयोगः सन्, परद्रव्ये शुभमशुभं वा भाव-

---

कर्मबंधात् तदा केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिरूपान्मोक्षात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ बंधस्तस्माच्च्युतो भवति । ततो ज्ञायते स्वसंवित्तिलक्षणस्वसमयरूपं जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति भावार्थः ॥१५५॥ एवं स्वसमयपरसमयभेदसूचनरूपेण गाथा गता । अथ परसमयपरिणतपुरुषस्वरूपं पुनरपि व्यक्तीकरोति;—**जो परदव्वह्मि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं** यः परद्रव्ये शुभमशुभं वा रागेण करोति यदि भावं **सो सगचरित्तभट्ठो** सः स्वकचरित्रभ्रष्टः सन् **परचरियचरो हवदि जीवो** परचरित्रचरो भवति जीव इति । तथाहि—यः कर्ता शुद्धगुणपर्यायप-

---

वन्ध होनेसे [प्रभ्रस्यति] रहित होता है । भावार्थ—यद्यपि यह संसारी जीव अपने निश्चित स्वभावसे ज्ञानदर्शनमें तिष्ठता है तथापि अनादि मोहनीय कर्मके वशीभूत होनेसे अशुद्धोपयोगी होकर अनेक परभावोंको धारण करता है । इस कारण निजगुणपर्यायरूप नहीं परिणमता, परसमयरूप प्रवर्तता है । इसीलिये परचारित्रके आचरनेवाला कहा जाता है । और वह ही जीव यदि काल पाकर अनादिमोहनीयकर्मकी प्रवृत्तिको दूर करके अत्यन्त शुद्धोपयोगी होता है और अपने एक निजरूपको ही धारण करता है, अपने ही गुणपर्यायोंमें परिणमता है, स्वसमयरूप प्रवर्तित होता है तब आत्मीक चारित्रका धारक कहा जाता है । जब यह आत्मा किसी प्रकार निसर्ग अथवा अधिगमसे प्रगट हो सम्यग्ज्ञान ज्योतिर्मयी होता है, परसमयको त्यागकर स्वसमयको अंगीकार करता है तब यह आत्मा अवश्य ही कर्मबन्धसे रहित होता है, क्योंकि निश्चल भावोंके आचरणसे ही मोक्ष सधता है ॥ १५५ ॥ आगे परचारित्ररूप परसमयका स्वरूप कहा जाता है;— [यः] जो अविद्या-पिशाची-ग्रहीत जीव [परद्रव्ये] आत्मीक वस्तुसे विपरीत परद्रव्यमें [रागेण] मदिरापानवत् मोहरूपभावसे [यदि] जो [शुभं] व्रत भक्ति संयमादि भाव अथवा [अशुभं भावं] विषयकषायादि असत् भावको [करोति] करता है [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरित्रभ्रष्टः] आत्मीक शुद्धाचरणसे रहित [परचरितचरः] परसमयका आचरणवाला [भवति] होता

मादधाति स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरित्रचर इति उपगीयते । यतो हि स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं । परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति ॥ १५६ ॥

परचरितप्रवृत्तेर्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिषेधनमेतत्;—

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण ।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवंति ॥१५७॥

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन ।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिनाः प्ररूपयन्ति ॥१५७॥

इह किल शुभोपरक्तो भावः पुण्यास्रवः । अशुभोपरक्तः पापास्रव इति । तत्र पुण्यं

रिणतनिजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा निर्मलात्मतत्त्वविपरीतेन रागभावेन परिणम्य शुभाशुभपरद्रव्योपेक्षालक्षणाच्छुद्धोपयोगाद्विपरीतः समस्तपरद्रव्येषु शुभमशुभं वा भावं करोति स ज्ञानानंदैकस्वभावात्मा तत्त्वानुचरणलक्षणात्स्वकीयचारित्राद्भ्रष्टः सन् स्वसंवित्त्यनुष्ठानविलक्षणपरचरित्रचरो भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १५६ ॥ अथ परचरित्रपरिणतपुरुषस्य बंधं दृष्ट्वा मोक्षं निषेधयति । अथवा पूर्वोक्तमेव परसमयस्वरूपं वृद्धमतसंवादेन दृढयति;—आसवदि जेण पुण्णं पावं वा आस्रवति येन पुण्यं पापं वा येन निराश्रवपरमात्मतत्त्वविपरीतेन सम्यगास्रवति । किं ? पुण्यं पापं वा । येन केन ? भावेन परिणामेन । कस्य भावेन ? अप्पणो आत्मनः अथ अहो सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति स जीवो यदि निरास्रवपरमात्मस्वभावा-

---

है । भावार्थ—जो कोई पुरुष मोहकर्मके विपाकके वशीभूत होनेसे रागरूप परिणामोंसे अशुद्धोपयोगी होता है, विकल्पी होकर परमें शुभाशुभ भावोंको करता है सो स्वरूपाचरणसे भ्रष्ट होकर परवस्तुका आचरण करता हुआ परसमयी है ऐसा महन्त पुरुषोंने कहा है । आगममें प्रसिद्ध है कि आत्मीकभावोंमें शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो स्वसमय है और परद्रव्यमें अशुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो परसमय है । यह अध्यात्मरसके आस्वादी पुरुषोंका विलास है ॥ १५६ ॥ आगे जो पुरुष परसमयमें प्रवर्तित होता है उसके वन्धका कारण है और मोक्षमार्गका निषेध है ऐसा कथन करते हैं;—[येन] जिस [भावेन] अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [आत्मनः] संसारी जीवके [पुण्यं] शुभ [अथवा] तथा [पापं] अशुभरूप कर्मवर्गणाका [आस्रवति] आस्रव होता है [सः] वह आत्मा [तेन] उस अशुद्धभावसे [परचरित्रः] परसमयका आचरण करनेवाला [भवति] होता है [इति] इस प्रकार [जिनाः] सर्वज्ञदेव [प्ररूपयंति] कहते हैं । भावार्थ—निश्चयसे इस लोकमें शुभोपयोगरूपभाव पुण्यके आस्रवका कारण है और अशुभोपयोगरूपभाव पापास्रवका कारण है सो जिन भावोंसे पुण्यरूप

---

१ व्यवहारदर्शनज्ञानचारित्राचरकः ।

पापं वा येन भावेनास्रवति यस्य जीवस्य यदि[1] स[2] भावो भवति स जीवस्तदा तेन परचरित इति प्ररूप्यते । ततः परचरितप्रवृत्तिर्बन्धमार्ग एव, न मोक्षमार्गः ॥१५७॥

स्वचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥१५८॥

यः सर्वसङ्गमुक्तः अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ।
जानाति पश्यति नियतं सः स्वकचरितं चरति जीवः ॥१५८॥

यः[3] खलु निरुपरागोपयोगत्वात्सर्वसङ्गमुक्तः, परद्रव्यव्यावृत्तोपयोगत्वादनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ज्ञानदर्शनरूपेण जानति, पश्यति, नियतमवस्थिततत्वेन । स खलु

च्च्युतो भूत्वा तं पूर्वोक्तं सास्रवभावं करोति तदा स जीवस्तेन भावेन शुद्धात्मानुभूत्याचरणलक्षण-स्वचरित्राद्भ्रष्टः सन् परचरित्रो भवतीति जिनाः प्ररूपयंति । ततः स्थितं सास्रवभावेन मोक्षो न भवतीति ॥ १५७ ॥ एवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावाच्छुद्धात्मतत्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपनिश्चय-मोक्षमार्गविलक्षणस्य परसमयस्य विशेषविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ स्वचरितप्रवृत्त-पुरुषस्वरूपं विशेषेण कथयति;—"जो" इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते—**सो** सः कर्ता **सगचरियं चरदि** निजशुद्धात्मसंवित्यनुचरणरूपं परमागमभाषया वीतरागपरमसा-मायिकसंज्ञं स्वचरितं चरति अनुभवति । स कः । **जीवो** जीवः । कथंभूतः । **जो सव्वसं-गमुक्को** यः सर्वसंगमुक्तः जगत्त्रयकालत्रयेपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च कृत्वा समस्त-बाह्याभ्यंतरपरिग्रहेण मुक्तो रहितः शून्योपि निस्संगपरमात्मभावनोत्पन्नसुंदरानंदस्यंदिपरमानंदैक-लक्षणसुखसुधारसास्वादेन पूर्णकलशवत्सर्वात्मप्रदेशेषु भरितावस्थः । पुनरपि किंविशिष्टः ? **अणण्णमणो** अनन्यमनाः कपोतलेश्याप्रभृतिदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षादिसमस्तपरभावोत्पन्नवि-

---

वा पापरूप कर्म आस्रव होते हैं उनका नाम भाव आस्रव है, जिस जीवके जिस समय ये अशुद्धोप-योग भाव होते हैं उस काल वह जीव उन अशुद्धोपयोग भावोंसे परद्रव्यका आचरणवाला होता है । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यके आचरणकी प्रवृत्तिरूप परसमय बंधका मार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है । यह अर्हद्देवकथित व्याख्यान जानो ॥ १५७ ॥ आगे स्वसमयमें विचरने वाले पुरुषका स्वरूप विशेषतासे दिखाया है;—[यः] जो सम्यग्दृष्टी जीव [स्वभावेन] अपने शुद्धभावसे [आत्मानं] शुद्ध जीवको [नियतं] निश्चय करके [जानाति] जानता है और [पश्यति] देखता है [सः] वह [जीवः] जीव [सर्वसङ्गमुक्तः] अन्तरंग वहिरंग परिग्रहसे रहित [अनन्यमनाः सन्]—

---

१ यदा काले. २ तदा तस्य जीवस्य पुण्यपापमयः. ३ यः खलु पुरुषः ।

स्वकं चरति जीवः । यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुषे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरित-
मिति ॥ १५८ ॥

शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत् ;—

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥१५९॥

चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा ।
दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः ॥ १५९ ॥

यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावभावरहितात्मा सन्, स्वद्र-
व्यमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनोऽविकल्पत्वेन च-

---

कल्पजालरहितत्वेनैकाग्रमनाः । पुनश्च किं करोति ? जाणदि जानाति स्वपरपरिच्छित्त्याकारेणो-
पलभते पस्सदि पश्यति निर्विकल्परूपेणावलोकयति णियदं निश्चितं । कं ? अप्पणं निजा-
त्मानं । केन कृत्वा ? सहावेण निर्विकारचैतन्यचमत्कारप्रकाशेनेति । ततः स्थितं विशुद्धज्ञान-
दर्शनलक्षणे जीवस्वभावे निश्चलावस्थानं मोक्षमार्ग इति ॥१५८॥ अथ तमेव स्वसमयं प्रकारांतरेण
व्यक्तीकरोति;—चरदि चरति । किं ? चरियं चरितं । कथंभूतं ? सगं स्वकं सो स पुरुषः
निरुपरागसदानंदैकलक्षणं निजात्मानुचरणरूपं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखनिंदाप्रशंसादिसम-
ताभावानुकूलं स पुरुषः स्वकीयं चरितं चरति । यः किंविशिष्टः ? जो परदव्वप्पभावरहि-
दप्पा यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा पंचेन्द्रियविषयाभिलाषममत्वप्रभृतिनिरवशेषविकल्पजालरहित-
त्वात्समस्तबहिरंगपरद्रव्येषु ममत्वकारणभूतेषु योगी स्वात्मभाव उपादेयबुद्धिरालंबनबुद्धिर्ध्येयबुद्धि-

---

एकाग्रतासे चित्तके निरोधपूर्वक स्वरूपमें मगन होता हुआ [स्वकचरितं] स्वसमयके
आचरणको [चरति] आचरण करता है । भावार्थ—आत्मस्वरूपमें निजगुणपर्यायके
निश्चलस्वरूपमें अनुभवन करनेका नाम स्वसमय है और उसका ही नाम स्वचारित्र
है ॥ १५८ ॥ आगे शुद्ध स्वचारित्रमें प्रवृत्तिका मार्ग दिखाते हैं;—[यः] जो
पुरुष [स्वकं चरितं] अपने आचरणको [चरति] आचरता है [सः] वह
पुरुष [आत्मनः] आत्माके [दर्शनज्ञानविकल्पं] दर्शन और ज्ञानके निराकार
साकार अवस्थारूप भेदको [अविकल्पं] भेदरहित [चरति] आचरता है । कैसा
है वह भेदविज्ञानी ? [परद्रव्यात्मभावरहितात्मा] परद्रव्यमें अहंभावरहित है
स्वरूप जिसका ऐसा है । भावार्थ—जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी समस्त मोहचक्रसे
रहित है और परभावोंका त्यागी होकर आत्मभावोंमें सन्मुख हुआ अधिकतासे प्रवर्तित
है । आत्मद्रव्यमें स्वाभाविक जो दर्शन-ज्ञानका गुणभेद उसको आत्मासे अभेदरूप

---

१ सन्मुखीभूत्वा ।

रति, स खलु स्वकं चरितं चरति । एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चय-नयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम् ॥ १५९ ॥

यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्य प्ररूपितम् । न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात्सुवर्णसुवर्णपाषाण-वत् । अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ॥

निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम् ;—

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं ।
चिट्ठा तवंहि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६०॥

श्चेति तया रहित आत्मस्वभावो यस्य स भवति परद्रव्यात्मभावरहितात्मा । पुनरपि किं करोति यः ? दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पमभिन्नं चरत्यात्मनः सकाशादिति । तथाहि—पूर्वं सविकल्पावस्थायां ज्ञाताहं द्रष्टाहमिति यद्विकल्पद्वयं तन्निर्विकल्प-समाधिकालेऽनंतज्ञानानंदादिगुणस्वभावादात्मनः सकाशादभिन्नं चरतीति सूत्रार्थः ॥ १५९ ॥ एवं निर्विकल्पस्वसंवेदनस्वरूपस्य पुनरपि स्वसमयस्यैव विशेषव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं । अथ

जानकर आचरण करता है । ऐसा जो कोई जीव है उसीको स्वसमयका अनुभवी कहा जाता है । वीतराग सर्वज्ञने निश्चय-व्यवहारके दो भेदसे मोक्षमार्ग दिखाया है । उन दोनोंमें निश्चय नयके अवलंबनसे शुद्ध गुणगुणीका आश्रय लेकर अभेदभावरूप साध्यसा-धनकी जो प्रवृत्ति है वही निश्चय मोक्षमार्ग प्ररूपणा कही जाती है । और व्यवहार-नयाश्रित जो मोक्षमार्गप्ररूपणा है सो पहिले ही दो गाथाओंमें दिखाई गई है । वे दो गाथायें "सम्मत्ते"त्यादि हैं । इन गाथाओंमें जो व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप कहा गया है सो स्वद्रव्य परद्रव्यका कारण पाकर जो अशुद्धपर्याय उपजी है उसकी अधीनतासे भिन्न साध्यसाधनरूप है, सो यह व्यवहारमोक्षमार्ग सर्वथा निषेधरूप नहीं है, कथंचित् महा-पुरुषोंने ग्रहण किया है । निश्चय और व्यवहारमें परस्पर साध्य-साधनभाव है । निश्चय साध्य है, व्यवहार साधन है । जैसे सोना साध्य है और जिस पाषाणमेंसे सोना निकलता है वह पाषाण साधन है । यों सुवर्णपाषाणवत् व्यवहार है । जीव पुद्गलाश्रित है, केवल सुवर्णवत् निश्चय है, एक जीवद्रव्य हीका आश्रय है । अनेकांतवादी श्रद्धानी जीव इन दोनों निश्चयव्यवहाररूप मोक्षमार्गका ग्रहण करते हैं । क्योंकि इन दोनों नयोंके ही आधीन सर्वज्ञ वीतरागके धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति जानी गई है ॥ १५९ ॥ आगे निश्चय मोक्षमार्गका साधनरूप व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाते हैं;—[धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं] धर्म अधर्म आकाश कालादिक समस्त द्रव्य

---

१ पुनः तदग्रे प्रतिपाद्यते ।

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतं ।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ॥१६०॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थश्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानम् । आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्या । इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्य्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः । कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्य प्रतिपदमुपरितनशुद्धभूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वर-

---

यद्यपि पूर्वं जीवादिनवपदार्थपीठिकाव्याख्यानप्रस्तावे "सम्मत्तं णाणजुदं" इत्यादि व्यवहारमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि निश्चयमोक्षमार्गस्य साधकोयमिति ज्ञापनार्थं पुनरप्यभिधीयते,—धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं भवति तेषामधिगमो ज्ञानं द्वादशविधे तपसि चेष्टा चारित्रमिति । इतो विस्तरः । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं ग्रहस्थतपोधनयोः समानं चारित्रं तपोधनानामाचारादिचरणग्रंथविहितमार्गेण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपं, गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रंथविहितमार्गेण पंचमगुणस्थानयोग्यं दानशीलपूजोपवासादिरूपं दार्शनिकाव्रतिकाद्येकादशनिलयरूपं वा इति

[धर्मादिश्रद्धानं] धर्मद्रव्यको आदि लेकर षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्त तत्त्व तथा पदार्थोंका श्रद्धान अर्थात् प्रतीति व्यवहार—सम्यक्त्व है [अङ्गपूर्वगतं] ग्यारह अंग, चौदह पूर्वमें प्रवर्त्तनेवाला जो ज्ञान है सो [ज्ञानं] व्यवहाररूप सम्यग्ज्ञान है और [तपसि] बारह प्रकारके तप तथा तेरह प्रकारके चारित्रमें [चेष्टा] आचरण करना सो [चर्या] व्यवहाररूप चारित्र है [इति] इस प्रकार [व्यवहारः] व्यवहारात्मक [मोक्षमार्गः] मोक्षका मार्ग कहा गया है । भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता मोक्षमार्ग है । षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्त तत्त्व और नव पदार्थका श्रद्धान करना सो सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन है । द्वादशांगके अर्थका जानना सो सम्यग्ज्ञान है । आचारादि ग्रन्थकथित यतिका आचरण सो सम्यक्चारित्र है । यह व्यवहारमोक्षमार्ग जीवपुद्गलके सम्बन्धका कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई है उसीके आधीन है । और साध्य भिन्न है साधन भिन्न है । साध्य निश्चय मोक्षमार्ग है, साधन व्यवहार मोक्षमार्ग है । जैसे स्वर्णमय पाषाणमें दीप्यमान अग्नि पाषाण और सोनेको भिन्न भिन्न करती है वैसे ही जीवपुद्गलकी एकताके भेदका कारण व्यवहार मोक्षमार्ग है । जो जीव सम्यग्दर्शनादिकसे अन्तरंगमें सावधान है उस जीवके सब जगह ऊपरके शुद्ध गुणस्थानोंमें शुद्धस्वरूपकी वृद्धिसे अतिशय मनोज्ञता है । उन गुणस्थानोंमें थिरताको धारण करता है ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग है ।

स्यैव शुद्धजीवस्य कथंचिद्भिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयंसिद्धस्वभावेन विपरिणममानस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यत इति ॥१६०॥

व्यवहारमोक्षमार्गसाध्यभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपन्यासोऽयम् ;—

णिच्चयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा ।
ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति ॥१६१॥

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिस्तैः समाहितः खलु यः आत्मा ।
न करोति किंचिदप्यन्यं न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति ॥१६१॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहित आत्मैव जीवस्वभावनियतचरित्रत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्गः। अथ खलु कथञ्चनानाद्यविद्याव्यपगमाद्व्यवहारमोक्षमार्गमनुपपन्नो धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानातपश्चेष्टानां धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानतपश्चेष्टानाञ्च त्यागोपादानाय प्रारब्धविविक्तभावव्यापारः, कुतश्चिदुपादेयत्यागे त्याज्योपादाने च पुनः प्रवर्तितप्र-

---

व्यवहारमोक्षमार्गलक्षणं । अयं व्यवहारमोक्षमार्गः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो भव्यजीवस्य निश्चयनयेनाभिन्नसाध्यसाधनभावाभावात्स्वयमेव निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण परिणममानस्यापि सुवर्णपाषाणस्याग्निरिव निश्चयमोक्षमार्गस्य बहिरंगसाधको भवतीति सूत्रार्थः ॥ १६० ॥ एवं निश्चयमोक्षमार्गसाधकव्यवहारमोक्षमार्गकथनरूपेण पंचमस्थले गाथा गता । अथ पूर्वं यद्यपि स्वसमयव्याख्यानकाले "जो सव्वसंगमुक्को" इत्यादि गाथाद्वयेन निश्चयमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि पूर्वोक्तव्यवहारमोक्षमार्गेण साध्योयमिति प्रतीत्यर्थं पुनरप्युपदिश्यते;—भणिदो भणितः कथितः । केन ? णिच्छयणयेण निश्चयनयेन । स कः ? जो अप्पा यः आत्मा । कथंभूतः ? तिहि तेहि समाहिदो य त्रिभिस्तैर्दर्शनज्ञानचारित्रैः समाहित एकाग्रः । पुनरपि किं करोति यः ? ण कुणदि किंचिवि

शुद्ध जीवको किसी एक अभिन्न साध्यसाधनभावकी सिद्धि है क्योंकि अपने ही उपादान कारणसे स्वयमेव निश्चय मोक्षमार्गकी अपेक्षा शुद्ध भावोंसे परिणमता है वहां यह व्यवहार निमित्तकारणकी अपेक्षा साधन कहा गया है । जैसे सोना यद्यपि अपने शुद्ध पीतादि गुणोंसे प्रत्येक आंचमें शुद्ध चोखी अवस्थाको धारण करता है तथापि बहिरंग निमित्त कारण अग्नि आदि वस्तुका प्रयत्न है वैसे ही व्यवहारमोक्षमार्ग है ॥ १६० ॥ आगे व्यवहारमोक्षमार्गसे साधित निश्चय मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाया जाता है;—[निश्चयनयेन] निश्चयनयसे [तैः त्रिभिः] उन तीन निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे [समाहितः] परमरसीभावसंयुक्त [यः आत्मा] जो यह आत्मा [खलुः] निश्चयसे [भणितः] कहा गया है सो यह आत्मा [अन्यत्] अन्य परद्रव्यको [किञ्चिदपि] कुछ भी [न करोति] नहीं करता

तिविधानाभिप्रायो यस्मिन्यावतिकाले विशिष्टभावनासौष्ठववशात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः स्वभावभूतैः सममङ्गाङ्गिभावपरिणत्या तत्समाहितो भूत्वा त्यागोपादानविकल्पशून्यत्वाद्वि-श्रान्तभावव्यापारः सुनिःप्रकम्पः अयमात्मावतिष्ठते। तस्मिन् तावति काले अयमेवात्मा जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्ग इत्युच्यते। अतो निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्नः॥ १६१॥

अण्णं ण मुणदि न करोति किंचिदपि शब्दादात्मनोन्यत्र क्रोधादिकं न च मुंचत्यात्माश्रित-मनंतज्ञानादिगुणसमूहं सो मोक्खमग्गोत्ति स एवं गुणविशिष्टात्मा। कथंभूतो भणितः? मोक्षमार्ग इति। तथाहि - निजशुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपो निश्चयमोक्षमार्गस्तावत् तत्साधकं कथंचित्स्वसंवित्तिलक्षणाविद्यावासनाविलयाद्भेदरत्नत्रयात्मकं व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो गुणस्थानसोपानक्रमेण निजशुद्धात्मद्रव्यभावनोत्पन्ननित्यानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादतृप्तिरूपपर-मकलानुभवात् स्वशुद्धात्माश्रितनिश्चयदर्शनज्ञानचारित्रैरभेदेन परिणतो यदा भवति तदा निश्चय-नयेन भिन्नसाध्यसाधनस्याभावादयमात्मैव मोक्षमार्ग इति। ततः स्थितं सुवर्णपाषाणवन्निश्च-

---

है [न मुञ्चति] और न आत्मीक स्वभावको छोड़ता है [सः आत्मा] वह आत्मा [मोक्षमार्ग इति] मोक्षका मार्गरूप ही है, इस प्रकार सर्वज्ञ वीतरागने कहा है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसे आत्मीक स्वरूपमें सावधान होकर जब आत्मीक स्वभावमें ही निश्चित विचरण करता है तब इसके निश्चय-मोक्षमार्ग कहा जाता है। जो आपहीसे निश्चय-मोक्षमार्ग हो तो व्यवहार-साधन किसलिये कहा है? ऐसी शंका होनेपर समाधान है कि यह आत्मा असद्भूतव्यवहारकी विवक्षासे अनादि अविद्यासे युक्त है। जब काललब्धि पानेसे उसका नाश होता है तब व्यवहार मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति नहीं है। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इस अज्ञान-त्रयके नाशका उपाय यथार्थ तत्त्वोंका श्रद्धान, द्वादशांगका ज्ञान, यथार्थ चारित्रका आचरण—इस सम्यक रत्नत्रयके ग्रहण करनेका विचार होता है। इस विचारके होने पर जो अनादिका ग्रहण था उसका तो त्याग होता है और जिसका त्याग था उसका ग्रहण होता है। तत्पश्चात् कभी आचरणमें दोष हो तो दंड-शोधनादिसे उसे दूर करते हैं। और जिस कालमें विशेष शुद्धात्मतत्त्वका उदय होता है तब स्वाभाविक निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र—इनसे गुण गुणीके भावकी परिणति द्वारा अडोल (अचल) होता है। तब ग्रहण त्यजनकी बुद्धि मिट जाती है, परमशान्तिसे विकल्परहित होता है उस समय अति निश्चल भावसे यह आत्मा स्वरूपगुप्त होता है। जिस समय यह आत्मा स्वरूपका आचरण करता है उस समय यह जीव निश्चयमोक्षमार्गी कहलाता है। इसी कारण निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्गको साध्य-साधनभावकी सिद्धि होती है॥ १६१॥ अब आत्माके चारित्र, ज्ञान, दर्शनका

आत्मनश्चारित्रज्ञानदर्शनत्वद्योतनमेतत् ;—

जो चरदि णादि पिच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं ।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्चिदो होदि ॥१६२॥

यश्चरति जानाति पश्यति आत्मानमात्मनानन्यमयं ।
स चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति निश्चितो भवति ॥ १६२ ॥

यः खल्वात्मानमात्ममयत्वादनन्यमयमात्मना चरति । स्वभावनियतास्तित्वेनानुवर्त्तते । आत्मना जानाति । स्वप्रकाशकत्वेन चेतयते । आत्मना पश्यति । याथातथ्येनावलोकयते । स खल्वात्मैव चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति । कर्तृकर्मकरणानामभेदान्निश्चितो भवति । अत-

---

यन्व्यवहारमोक्षमार्गयोः साध्यसाधकभावो नितरां संभवतीति ॥ १६१ ॥ अथाभेदेनात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रं भवतीति कथनद्वारेण पूर्वोक्तमेव निश्चयमोक्षमार्गं दृढयति;—हवदि भवति सो सः कर्ता । किं भवति? चारित्तं णाणं दंसणमिदि चारित्रज्ञानदर्शनत्रितयमिति णिच्छिदो निश्चितः । स कः? जो यः कर्ता । किं करोति। चरदि णादि पेच्छदि चरति स्वसंवित्तिरूपेणानुभवति जानाति निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन रागादिभ्यो भिन्नं परिछिनत्ति पश्यति सत्तावलोकदर्शनेन निर्विकल्परूपेणावलोकयति अथवा विपरीताभिनिवेशरहितशुद्धात्मरुचिपरिणामेन श्रद्धधाति । कं? अप्पाणं निजशुद्धात्मानं । केन कृत्वा? अप्पणा वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिलक्षणेनान्तरात्मना । कथंभूतं? अणण्णमयं नान्यमयं अनन्यमयं मिथ्यात्वरागादिमयं न भवति । अथवानन्यमयमभिन्नं । केभ्यः? केवलज्ञानाद्यनंतगुणेभ्य इति । अत्र सूत्रे यतः कारणादभेदविवक्षायामात्मैव दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं भवति ततो ज्ञायते द्राक्षादिपानकवदनेकमप्यभेदविवक्षायामेकं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्गो भवतीति भावार्थः । तथाचोक्तमात्माश्रित-

---

उद्योत कर दिखाते हैं;–[यः] जो पुरुष [आत्मनः] अपने निजस्वरूपसे [आत्मानं] आपको [अनन्यमयं] ज्ञानादि गुणपर्यायोंसे अभेदरूप [चरति] आचरण करता है [जानाति] जानता है [पश्यति] श्रद्धान करता है [सः] वह पुरुष [चारित्रं] आचरण–गुण [ज्ञानं] जानना [दर्शनं] देखना [इति] इसप्रकार द्रव्यसे नामसे अभेदरूप [निश्चितः] निश्चयसे स्वयं दर्शनज्ञानचरित्ररूप [भवति] होता है । भावार्थ—निश्चयसे जो पुरुष आपके द्वारा आपको अभेदरूप आचरण करता है, क्योंकि अभेदनयसे आत्मा गुणगुणीभावसे एक है, अपने शरीरकी निश्चलता अस्तिरूप प्रवर्तमान है और अन्य कारणके विना आप ही आपको जानता है, स्वपरप्रकाश चैतन्य शक्तिके द्वारा अनुभवी होता है और आपही के द्वारा यथार्थ देखता है सो आत्मनिष्ठ भेदविज्ञानी पुरुष आपही चारित्र है, आप ही ज्ञान है, आप ही दर्शन है । इसप्रकार गुणगुणीभेदसे आत्मा कर्ता है, ज्ञानादि कर्म हैं, शक्ति करण है, इनका आपसमें नियमसे

श्चारित्रज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्व—लक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितरामुपपन्न इति ॥ १६२ ॥

सर्वस्यात्मनः संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोऽयम्;—

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥१६३॥

येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति।
इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ॥ १६३ ॥

इह हि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यं। आत्मनो हि दृग्-ज्ञप्ती स्वभावस्तयोर्विषयप्रतिबन्धः प्रातिकूल्यं। मोक्षे खल्वात्मनः सर्वं विजानतः पश्यतश्च तदभावः।

निश्चयरत्नत्रयलक्षणं "दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते। स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः ॥" १६२ ॥ इति मोक्षमार्गविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। अथ यस्य स्वाभाविकसुखे श्रद्धानमस्ति स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति;—जेण अयं जीवः कर्ता येन लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन विजाणदि विशेषेण संशयविपर्ययानध्यवसायरहितत्वेन जानाति परिच्छिनत्ति। किं? सव्वं सर्वं जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तुकदम्बकं। न केवलं जानाति। पेच्छदि येनैव लोकालोकप्रकाशककेवलदर्शनेन सत्तावलोकेन पश्यति सो तेण सोक्खमणुभवदि सजीवस्तेनैव केवलज्ञानदर्शनद्वयेनानवरतं ताभ्यामभिन्नं सुखमनुभवति इदि तं जाणदि भवियो इति पूर्वोक्तप्रकारेण तदनंतसुखं जानात्युपादेयरूपेण श्रद्धाति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेणानुभवति च। स कः? भव्यः अभविय संतो ण सद्दहदि अभव्यजीवो न श्रद्-

---

अभेद है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि चारित्र ज्ञान-दर्शनरूप आत्मा है। यदि यह आत्मा जीवस्वभावमें निश्चल होकर आत्मीकभावको आचरण करे तो निश्चय मोक्षमार्ग सर्वथाप्रकार सिद्ध होता है ॥ १६२ ॥ आगे समस्त ही संसारी जीवोंके मोक्षमार्गकी योग्यताका निषेध दिखाते हैं;—[येन] जिस कारणसे [सर्वं] समस्त ज्ञेय मात्र वस्तुको [विजानाति] जानता है [सर्वं] समस्त वस्तुओं को [पश्यति] देखता है अर्थात् ज्ञानदर्शन-संयुक्त है [सः] वह पुरुष [तेन] उस कारणसे [सौख्यं] अनाकुल अनन्त मोक्षसुखको [अनुभवति] अनुभवता है। [इति] इसप्रकार [भव्यः] निकट भव्यजीव [तत्] उस अनाकुल पारमार्थिक सुखको [जानाति] उपादेयरूप श्रद्धान करता है और अपने अपने गुणस्थानानुसार जानता भी है। भावार्थ—जो स्वाभाविक भावोंके आवरणके विनाश होनेसे आत्मीक शान्तरस उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। आत्माके स्वभाव ज्ञान-दर्शन हैं। इनके आवरणसे आत्माको दुःख है। जैसे पुरुषके नख शिख बढ़नेसे दुःख होता है, उसी प्रकार आवरणके होनेसे

ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति । इत्येतद्भव्य एव भावतो विजानाति । ततस्स एव मोक्षमार्गार्हो नैतदभव्यः श्रद्धत्ते । ततः स मोक्षमार्गानर्ह एव इति ॥ अतः कतिपये एव संसारिणो मोक्षमार्गार्हा न सर्व एवेति ॥ १६३ ॥

दर्शनज्ञानचारित्राणां कथंचिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्षहेतुताद्योतनमेतत् ;—

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोऽत्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥१६४॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि ।
साधुभिरिदं भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥ १६४ ॥

अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानु-

---

धाति । तद्यथा । मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतिनां यथासंभवं चारित्रमोहस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्ध्या विषयसुखमनुभवति भव्यजीवः तथापि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमेवोपादेयं मन्यते न चाभव्यः । कस्मादिति चेत् । तस्य पूर्वोक्तदर्शनचारित्रमोहनीयोपशमादिकं न संभवति ततश्चैवाभव्य इति भावार्थः ॥ १६३ ॥ एवं भव्याभव्यस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथा गता । अथ दर्शनज्ञानचारित्रैः पराश्रितैर्बन्धः स्वाश्रितैर्मोक्षो भवतीति समर्थयतीति;—दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गो भवतीति हेतोः सेवितव्यानि । इदं कैरुपदिष्टं ? साधू-

---

दुःख होता है । मोक्ष अवस्थामें उस आवरणका अभाव होता है, इस कारण मुक्तजीव सबका देखनेवाला व जाननेवाला है । और यह बात भी सिद्ध हुई कि निराकुल परमार्थ आत्मीक सुखका अनुभवन मोक्षमें ही निश्चल है, और जगह नहीं है । ऐसा परम भावका श्रद्धान भी भव्य सम्यग्दृष्टी जीवमें ही होता है । इस कारण भव्य ही मोक्षमार्गी होने योग्य है [अभव्यसत्त्वः] जो त्रैकालिक आत्मीकभावकी प्रतीति करने के योग्य नहीं ऐसा जीव आत्मीक सुखकी [न श्रद्धते] श्रद्धा नहीं करता है, जानता भी नहीं है । भावार्थ—उस आत्मीक सुखका श्रद्धान करनेवाला अभव्य नहीं है, क्योंकि मोक्षमार्गके साधनेकी अभव्य मिथ्यादृष्टि योग्यता नहीं रखता । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि कई संसारी भव्य जीव मोक्षमार्गके योग्य हैं, कई नहीं भी हैं ॥ १६३ ॥ आगे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको किसीप्रकार सराग अवस्थामें आचार्यने बन्धका भी प्रकार दिखाया है । इस कारण जीवस्वभावमें निश्चित जो आचरण है उसको मोक्षका कारण दिखाते हैं;—[दर्शनज्ञानचारित्राणि] दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीन रत्नत्रय [मोक्षमार्गः] मोक्षमार्ग है [इति] इस कारण ये [सेवितव्यानि] सेवन करने योग्य

संवलितानीव घृतानि कथञ्चिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बन्धकारणान्यपि भवन्ति । यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपया स्वसमयप्रवृत्त्या सङ्गच्छते, तदा निवृत्तकृशानुसंवलनानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणाभावाऽभावात्साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवन्ति । ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नमिति ॥ १६४ ॥

सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत् ;—

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो ।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ॥१६५॥

हि य इदि भणिदं साधुभिरिदं भणितं कथितं तेहि दु बंधो व मोक्खो वा तैस्तु पराश्रितैर्बंधः स्वाश्रितैर्मोक्षो वेति । इतो विशेषः । शुद्धात्माश्रितानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षकारणानि भवन्ति, पराश्रितानि बंधकारणानि भवन्ति च । केन दृष्टान्तेनेति चेत् । यथा घृतानि स्वभावेन शीतलान्यपि पश्चादग्निसंयोगेन दाहकारणानि भवंति तथा तान्यपि स्वभावेन मुक्तिकारणान्यपि पंचपरमेष्ठ्यादिप्रशस्तद्रव्याश्रितानि साक्षात्पुण्यबंधकारणानि भवन्ति मिथ्यात्वविषयकषायनिमित्तभूतपरद्रव्याश्रितानि पुनः पापबंधकारणान्यपि भवन्ति । तस्माद् ज्ञायते जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षमार्ग, इति ॥ १६४ ॥ एवं शुद्धाशुद्धरत्नत्रयाभ्यां यथाक्रमेण मोक्षपुण्यबन्धौ भवत इति कथनरूपेण गाथा गता । तदनंतरं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानसंबंधित्वेन गाथापंचकं भवति, तत्रैका

हैं । [साधुभिः] महापुरुषों द्वारा [इति] इस प्रकार [भणितं] कहा गया है [तैः तु] उन ज्ञान-दर्शन-चारित्रके द्वारा तो [बन्धः वा] बंध भी होता है [मोक्षः वा] मोक्ष भी होता है । भावार्थ—दर्शन-ज्ञान-चारित्र दो प्रकारके हैं, एक सराग हैं, दूसरे वीतराग हैं । जो दर्शन ज्ञान-चारित्र राग लिये होते हैं उनको तो सराग रत्नत्रय कहते हैं और जो आत्मनिष्ठ वीतरागता लिये हों वे वीतराग रत्नत्रय कहाते हैं । क्योंकि रागभाव आत्मीक भावरहित परभाव है, परसमयरूप है, इसलिये यदि रत्नत्रय किंचिन्मात्र भी परसमयप्रवृत्तिसे मिले हों तो वे बन्धके कारण होते हैं, क्योंकि उनमें कथंचित्प्रकार विरुद्धकारणकी रूढि होती है । रत्नत्रय तो मोक्षका ही कारण है, परन्तु रागके संयोगसे बन्धका कारण भी होता है, ऐसी रूढ़ि है । जैसे अग्निके संयोगसे घृत दाहका कारण होकर विरुद्ध कार्य करता है, स्वभाव से तो घृत शीतल ही है, इसीप्रकार रागके संयोगसे रत्नत्रय बंधका कारण है । जिस समय समस्त परसमयकी निर्वृत्ति होकर स्वसमयरूप स्वरूपमें प्रवृत्ति हो उस समय अग्निसंयोगरहित घृत, दाहादि विरुद्ध कार्योंका कारण नहीं होता । वैसे ही रत्नत्रय सरागताके अभावसे साक्षात् मोक्षका कारण होता है । इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि जब यह आत्मा स्वसमयमें प्रवृत्त हो निज स्वाभाविक भावको आचरे उस ही समय मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है ॥ १६४ ॥ आगे सूक्ष्म परसमयका स्वरूप कहा जाता है;—[ज्ञानी] सरागसम्यग्दृष्टी जीव

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसंप्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः परसमयरतो भवति जीवः ॥१६५॥

अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिबलानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः । अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावज्ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते । अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलङ्कितान्तरङ्गवृत्तिरितरो जन इति ॥ १६५ ॥

सूत्रगाथा तस्या विवरणं गाथात्रयं ततश्चोपसंहारगाथैका चेति नवमस्थले समुदायपातनिका । अथ सूक्ष्मपरसमयस्वरूपं कथयति;—अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि शुद्धात्मपरिच्छित्तिविलक्षणादज्ञानात्सकाशात् ज्ञानी कर्ता यदि मन्यते । किं ? हवदित्ति दुक्खमोक्खो स्वस्वभावेनोत्पन्नसुखप्रतिकूलदुःखस्य मोक्षो विनाशो भवतीति । कस्मादिति तत् । सुद्धसंपयोगादो शुद्धेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावाराधकेषु वार्हदादिषु संप्रयोगो भक्तिः शुद्धसंप्रयोगस्तस्मात् शुद्धसंप्रयोगात् । तदा कथंभूतो भवति । परसमयरदो हवदि तदा काले परसमयरतो भवति जीवो स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति । तद्यथा । कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षासंयमे स्थातुमीहते तत्राशक्तः सन् कामक्रोधाद्यशुद्धपरिणामवंचनार्थं संसारस्थितिछेदनार्थं वा यदा पंचपरमेष्ठिषु गुणस्तवनादिभक्तिं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयपरिणतः सन् सरागसम्यग्दृष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धात्मभावनासमर्थोपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसमयपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति । तथा चोक्तं । "केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः । केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैश्च नाशिताः" ॥ १६५ ॥

[अज्ञानात्] अज्ञानभावसे [यदि] यदि [इति] ऐसा [मन्यते] माने कि—[शुद्धसंप्रयोगात्] शुद्ध जो अरहंतादिक उनमें लगन अति धर्मरागप्रीतिरूप शुभोपयोगसे [दुःखमोक्षः] सांसारिक दुःखसे मुक्ति [भवति] होती है [तदा] उस समय [जीवः] यह आत्मा [परसमयरतः] परसमयमें अनुरक्त [भवति] होता है । भावार्थ—अरहन्तादिक जो मोक्षके कारण हैं उन भगवंत परमेष्ठीमें भक्तिरूप राग अंशसे जो राग लिये चित्तकी वृत्ति हो, उसका नाम शुद्धसम्प्रयोग कहा जाता है, परन्तु भगवंत वीतरागदेवकी अनादि वाणीमें इसको भी शुभरागांशरूप अज्ञानभाव कहा है । इस अज्ञानभावके होते हुये जितने कालतक यद्यपि यह आत्मा ज्ञानवंत भी है तथापि शुद्ध सम्प्रयोगसे मोक्ष होता है ऐसे परभावोंसे मुक्त माननेके अभिप्रायसे खेदखिन्न हुआ प्रवृत्त होता है तब उतने काल वह ही राग अंशके अस्तित्वके परसमयमें रत है, ऐसा कहा जाता है । और जिस जीवके विषयादिसे राग अंशसे कलंकित अन्तरंगवृत्ति होती है, वह तो परसमयरत है ही, उसकी तो बात ही न्यारी है, क्योंकि जिस मोक्षमार्गमें धर्मराग का निषेध है वहाँ निरर्गल रागका निषेध सहजमें ही

उक्तशुद्धसंप्रयोगस्य कथञ्चिद्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासोऽयम् ;—

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥१६६॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः ।
बध्नाति पुण्यं बहुशो न तु स कर्मक्षयं करोति ॥१६६॥

अर्हदादिभक्तिसंपन्नः कथञ्चिच्छुद्धसंप्रयोगोऽपि सन् जीवो जीवद्रागलवत्वाच्छुभोपयोगतामजहन्, बहुशः पुण्यं बध्नाति; न खलु सकलकर्मक्षयमारभते । ततः सर्वत्र रागकणिकाऽपि परिहरणीया । परसमयप्रवृत्तिनिबन्धनत्वादिति ॥ १६६ ॥

स्वसमयोपलम्भाभावस्य रागैकहेतुत्वद्योतनमेतत् ;—

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो ।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि ॥१६७॥

अथ पूर्वोक्तशुद्धसंप्रयोगस्य पुण्यबंधं दृष्ट्वा मुख्यवृत्त्या मोक्षं निषेधयति;—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानेषु भक्तिसंपन्नो जीवः बहुशः प्रचुरेण हु स्फुटं पुण्यं बध्नाति सो सः ण कम्मक्खयं कुणदि नैव कर्मक्षयं करोति । अत्र निरास्रवशुद्धनिजात्मसंवित्त्या मोक्षो भवतीति हेतोः पराश्रितपरिणामेन मोक्षो निषिद्ध इति सूत्रार्थः ॥ १६६ ॥ अथ शुद्धात्मोपलंभस्य परद्रव्य एव प्रतिबंध इति प्रज्ञापयति;—यस्य हृदये मनसि अणुमेत्तं वा परमाणुमात्रोपि परदव्वं शुभा-

---

होता है ॥ १६५ ॥ आगे उक्त शुभोपयोगताको कथंचित् बन्धका कारण कहा इसकारण मोक्षमार्ग नहीं है ऐसा कथन करते हैं;—[अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः] अरहंत, सिद्ध, चैत्यालय, प्रतिमा, प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त, मुनिसमूह, भेदविज्ञानादि ज्ञानकी भक्ति स्तुति सेवादिकसे परिपूर्ण प्रवीण पुरुष [बहुशः] बहुतप्रकार या बहुत वार [पुण्यं] अनेक प्रकारके शुभकर्मको [बध्नाति] बांधता है [तु सः] किंतु वह पुरुष [कर्मक्षयं] कर्मक्षय [न] नहीं [करोति] करता है । भावार्थ—जिस जीवके चित्तमें अरहंतादिककी भक्ति है उस पुरुषके कथंचित् मोक्षमार्ग भी है, परन्तु भक्तिके रागांशसे शुभोपयोग भावोंको नहीं छोड़ता, उसके बन्धपद्धतिका सर्वथा अभाव नहीं है । इस कारण उस भक्तिके रागांशसे ही बहुत प्रकार पुण्यकर्मोंको बांधता है, किन्तु सकलकर्मक्षयको नहीं करता है । इस कारण मोक्षमार्गियोंको चाहिये कि भक्ति—रागकी कणिकाको भी छोड़े, क्योंकि यह परसमयकी कारण है, परंपरासे मोक्षकी कारण है, साक्षात् मोक्षमार्गकी घातक है, इस कारण इसका निषेध है ॥ १६६ ॥ आगे इस जीवके जो स्वसमयकी प्राप्ति नहीं होती उसका राग ही एक कारण है, ऐसा कथन करते हैं;—[वा] अथवा [यस्य] जिस पुरुषके [हृदये] चित्तमें [अणुमात्रः] परमाणु मात्र भी [परद्रव्ये]

यस्य हृदयेऽणुमात्रो वा परद्रव्ये विद्यते रागः ।
स न विजानाति समयं स्वकस्य सर्वागमधरोऽपि ॥१६७॥

यस्य खलु रागरेणुकणिकाऽपि जीवति हृदये न नाम स समस्तसिद्धान्तसिन्धुपारगोऽपि निरुपरागशुद्धस्वरूपं स्वसमयं चेतयते । ततः स्वसमयसिध्यर्थं पिंञ्जनलग्नतूलन्यासन्याय-मभिदधताऽर्हदादिविषयेऽपि क्रमेण रागरेणुरपसारणीय इति ॥ १६७ ॥

रागलवमूलदोषपरंपराख्यानमेतत् ;—

धरिदु जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं ।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुह कदस्सकम्मस्स ॥१६८॥

धर्तुं यस्य न शक्यश्चित्तोद्भ्रामं विना त्वात्मानं ।
रोधस्तस्य न विद्यते शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥ १६८ ॥

इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति । रागाद्यनुवृत्तौ च सत्यां

शुभपरद्रव्यैः हि स्फुटं विज्जदे रागो रागो विद्यते सो सः ण विजाणदि न जानाति । किं ? समयं । कस्य ? सगस्स स्वकीयात्मनः । कथंभूतः ? सव्वागमधरोवि सर्वशास्त्रपार-गोपि । तथाहि—निरुपरागपरमात्मनि विपरीतो रागो यस्य विद्यते स स्वकीयशुद्धात्मानुचरणरूपं स्वस्वरूपं न जानाति ततः कारणात्पूर्वं विषयानुरागं त्यक्त्वा तदनन्तरं गुणस्थानसोपानक्रमेण रागादिरहितनिजशुद्धात्मनि स्थित्वा चार्हदादिविषयेपि रागस्त्याज्य इत्यभिप्रायः ॥ १६७ ॥ अथ सर्वानर्थपरंपराणां राग एव मूल इत्युपदिश्यति;--धर्तुं जस्स यस्य ण सक्को न शक्यः कर्मतापन्नः चित्तभामो चित्तभ्रमः अथवा विचित्रभ्रमः आत्मनो भ्रान्ति । कथं ? विणा दु अप्पाणं आत्मानं विना निजशुद्धात्मभावनामंतरेण रोधो तस्स ण विज्जदि रोधः संवरः

पुद्गलादि परद्रव्योंमें [रागः] प्रीतिभाव [विद्यते] प्रवर्तित है [सः] वह पुरुष [सर्वागमधरः अपि] यद्यपि समस्त श्रुतका पाठी है तथापि [स्वकस्य] आत्माके [समयं] यथार्थरूपको [न] नहीं [विजानाति] जानता है। भावार्थ—जिस पुरुषके चित्तमें आत्मीक-भावरहित परभावोंमें रागकी कणिका भी विद्यमान है वह पुरुष समस्त सिद्धान्तशास्त्रोंको जानता हुआ भी सर्वांग वीतराग शुद्धस्वरूप स्वसमयको नहीं वेदता है । इस कारण यथार्थ शुद्धस्वरूपकी सिद्धिके निमित्त अरहंतादिकमें भी क्रमसे राग छोडना योग्य है ॥१६७॥ आगे रागअंशका कारण पाकर अनेक दोषोंकी परंपरा होती है ऐसा कथन करते हैं;—[तु] और [यस्य] जिस पुरुषका [चित्तोद्भ्रामं] मनका संकल्परूप भ्रामकत्व [आत्मानं विना] आत्माके विना [धर्तुं] निरोध करनेको [शक्यः न] समर्थ नहीं होता [तस्य]

---

१ तन्दिलग्नकार्पासांदवत् ।

बुद्धिप्रसरमन्तरेणात्मा न तत्कथंचनाऽपि धारयितुं शक्येत । बुद्धिप्रसारे च सति शुभस्याशुभस्य वा कर्मणो न निरोधोऽस्ति । ततो रागकलिविलासमूल एवायमनर्थसन्तान इति ॥१६८॥

रागकलिनिःशेषीकरणस्य करणीयत्वाख्यानमेतत् ;—

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो ।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥१६९॥

तस्मान्निवृत्तिकामो निस्सङ्गो निर्ममत्वश्च भूत्वा पुनः ।
सिद्धेषु करोति भक्तिं निर्वाणं तेन प्राप्नोति ॥ १६९ ॥

यतो रागाद्यनुवृत्तौ चित्तोद्भ्रान्तिः, चित्तोद्भ्रान्तौ कर्मबन्ध इत्युक्तम् । ततः खलु मोक्षार्थिना कर्मबन्धमूलचित्तोद्भ्रान्तिमूलभूता रागाद्यनुवृत्तिरेकान्तेन निःशेषीकरणीया । निःशेषि-

---

तस्य न विद्यते । कस्य संबंधि? सुहासुहकदस्स कम्मस्स शुभाशुभकृतस्य कर्मण इति । तद्यथा । योऽसौ नित्यानन्दैकस्वभावनिजात्मानं न भावयति तस्य मायामिथ्यानिदानशल्यत्रयप्रभृतिसमस्तविभावरूपो बुद्धिप्रसरो धर्तुं न याति निरोधाभावे च शुभाशुभकर्मणां संवरो नास्तीति । ततः स्थितं समस्तानर्थपरंपराणां रागादिविकल्पा एव मूलमिति ॥ १६८ ॥ ततस्तस्मान्मोक्षार्थिना पुरुषेण 'ग्रहणरहितत्वान्निःसंगता' आस्रवकारणभूतं रागादिविकल्पजालं निर्मूलनायेति सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुपसंहरति;—तम्हा तस्माच्चित्तगतरागादिविकल्पजालं 'अण्णाणादो णाणी'त्यादि गाथाचतुष्टयेनास्रवकारणं भणितं, तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो निवृत्यभिलाषी पुरुषः णिस्संगो निःसंगात्मतत्त्वविपरीतबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेण रहितत्वान्निःसंगः

उस पुरुषके [शुभाशुभकृतस्य] शुभाशुभ भावोंसे किये हुये [कर्मणः] कर्मका [रोधः] संवर [न विद्यते] नहीं है। भावार्थ—अरहन्तादिककी भक्ति भी प्रशस्त रागके विना नहीं होती, और यदि रागादिक भावकी प्रवृत्ति होती है और बुद्धिका विस्तार नहीं हो तो यह आत्मा उस भक्तिको किसी प्रकार धारण करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि बुद्धिके विना भक्ति नहीं है तथा रागभावके विना भी भक्ति नहीं है, इसकारण इस जीवके रागादिगर्भित बुद्धि का विस्तार होता है। तब इसके अशुद्धोपयोग होता है। उस अशुद्धोपयोगके कारणसे शुभाशुभका आस्रव होता है। इसी कारण बन्धपद्धति है। और इसीसे यह बात सिद्ध हुई कि शुभ-अशुभ गतिरूप संसारके विलासका कारण एकमात्र रागादि संक्लेशरूप विभाव परिणाम ही हैं ॥ १६८ ॥ आगे संक्लेशका समस्त नाश करने का कार्य (उपाय) बताते हैं;—[तस्मात्] जिससे रागका निषेध है उस कारणसे [निवृत्तिकामः] जो मोक्षका अभिलाषी जीव हैं सो [पुनः] फिर [सिद्धेषु] विभाव भावसे रहित परमात्माके भावोंमें [भक्तिं] परमार्थभूत अनुरागताको [करोति] करता है। क्या करके स्वरूपमें गुप्त होता है? [निःसङ्गः] परिग्रहसे रहित

तायां तस्यां प्रसिद्धनैःसङ्गयनैर्मल्यशुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपां पारमार्थिकीं सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धः स्वसमयप्रवृत्तिर्भवति । तेन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति ॥ १६९ ॥

अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तेः साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्;—

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स ।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स ॥ १७० ॥

सपदार्थं तीर्थंकरमभिगतवुद्धेः सूत्ररोचिनः ।
दूरतरं निर्वाणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य ॥ १७० ॥

णिम्ममो रागाद्युपाधिरहितचैतन्यप्रकाशलक्षणात्मतत्त्वविपरीतमोहोदयोत्पन्नेन ममकाराहंकारादिरूपविकल्पजालेन रहितत्वात् निर्मोहश्च निर्ममः भविय भूत्वा पुणो पुनः सिद्धेसु सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु कुणदु करोतु । कां ? भत्तिं पारमार्थिकस्वसंवित्तिरूपां सिद्धभक्तिं । किं भवति ? तेण तेन सिद्धभक्तिपरिणामेन शुद्धात्मोपलब्धिरूपं णिव्वाणं निर्वाणं पप्पोदि प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १६९ ॥ एवं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथापंचकं गतं । अथार्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तपुरुषस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेपि परंपरया मोक्षहेतुत्वं द्योतयन् सन् पूर्वोक्तमेव सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानं प्रकारान्तरेण कथयति;—दूरयरं णिव्वाणं

[च] और [निर्ममः] परद्रव्यमें ममता भावसे रहित [भूत्वा] होकर, [तेन] उस कारणसे [निर्वाणं] मोक्षको (प्राप्नोति) पाता है । भावार्थ—संसारमें इस जीवके जब रागादिक भावोंकी प्रवृत्ति होती है तब अवश्य ही संकल्प विकल्पोंसे चित्तकी भ्रामकता हो जाती है । जहां चित्तकी भ्रामकता होती है वहां अवश्यमेव ज्ञानावरणादिक कर्मोका बन्ध होता है । अतः मोक्षाभिलाषी पुरुषको चाहिये कि कर्मबन्धका जो मूलकारण संकल्प-विकल्परूप चित्तकी भ्रामकता है उसके मूलकारण रागादिक भावोंकी प्रवृत्तिको सर्वथा दूर करे । जब इस आत्माके सर्वथा रागादिककी प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है तब यह ही आत्मा सांसारिक परिग्रहसे रहित हो निर्ममत्वभावको धारण करता है । तत्पश्चात् आत्मीक शुद्धस्वरूप स्वाभाविक निजस्वरूपमें लीन ऐसी परमात्मसिद्धपदमें भक्ति करता है तब उस जीवके स्वसमयकी सिद्धि कही जाती है । इस ही कारण जो सर्वथा प्रकार कर्मबन्धसे रहित होता है वही मोक्षपदको प्राप्त होता है । जबतक रागभावका अंशमात्र भी होगा तबतक वीतरागभाव प्रगट नहीं होता । इसलिये सर्वथा प्रकारसे रागमात्र त्याज्य है ॥ १६९ ॥ आगे अरहन्तादिक परमेष्टि-पदोंमें जो भक्तिरूप परसमयमें प्रवृत्ति है उससे साक्षात् मोक्षका अभाव है तथापि परंपरासे मोक्षका कारण है, ऐसा कथन करते हैं;—[सपदार्थं] नवपदार्थ-

यः खलु मोक्षार्थमुद्यतमनाः समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसंभावितपरमवैराग्य-भूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभुशक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायभयेन नवपदार्थैः सहार्हदादिरु-

---

दूरतरं निर्वाणं भवति । कस्य ? अभिगदबुद्धिस्स अभिगतबुद्धेः तद्गतबुद्धेः । कं प्रति ? सपदत्थं तित्थयरं जीवादिपदार्थसहिततीर्थकरं प्रति । पुनरपि किंविशिष्टस्य ? सुत्तरोचिस्स श्रुतरोचिन आगमरुचेः । पुनरपि कथंभूतस्य ? संजमतवसंपजुत्तस्स संयमतपःसंप्रयुक्तस्यापीति । इतो विस्तरः । बहिरंगेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन रागाद्युपाधिरहितस्य ख्यातिपूजालाभनिमित्तानेकमनोरथरूपविकल्पजालज्वालावलिरहितत्वेन निर्विकल्पस्य च चित्तस्य निजशुद्धात्मनि संयमार्थं स्थितिकरणात्संयतोपि अनशनाद्यनेकविधबाह्यतपश्चरणबलेन समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेनाभ्यन्तरतपसा च नित्यानन्दैकात्मस्वभाव प्रतपनाद्विजयनात्तपस्थोपि यदा विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावान्निरंतरं तत्र स्थातुं न शक्नोति तदा किंकरोति ? क्वापि काले शुद्धात्मभावनानुकूलजीवादिपदार्थप्रतिपादकमागमं रोचते । कदाचित्पुनर्यथा कोपि रामदेवादिपुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिश्रीवशीकरणार्थं निर्दोषिपरमात्मनां तीर्थकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपांडवादिमहापुरुषाणां चाशुभरागवंचनार्थं शुभधर्मानुरागेण चरितपुराणादिकं शृणोति भेदाभेदरत्नत्रयभावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुनर्दानपूजादिकं करोति च, तेन कारणेन यद्यप्यनन्तसंसारस्थितिछेदं करोति कोप्यचरमदेहस्तद्भवे कर्मक्षयं न करोति तथापि पुण्यास्रव परिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते, भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते । तत्र विमानपरिवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पंचमहाविदेहेषु गत्वा समवशरणे वीतरागसर्वज्ञान् पश्यति निर्दोषपरमात्माराधारकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुणस्थान-

---

सहित [तीर्थकरं] अरहन्तादिक पूज्य परमेष्ठीमें [अभिगतबुद्धेः] रुचि लिये हुए श्रद्धारूप बुद्धिवाले पुरुषको [निर्वाणं] सकल कर्मरहित मोक्षपद [दूरतरं] अतिशय दूर होता है । जो नव पदार्थ, पंचपरमेष्ठीमें भक्ति करता है वह पुरुष कैसा है ? [सूत्ररोचिनः] सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत सिद्धान्तका श्रद्धानी है । और कैसा है ? [संयमतपःसंप्रयुक्तस्य] इन्द्रियदंडन और घोर उपसर्गरूप तपसे संयुक्त है । भावार्थ—जो पुरुष मोक्षके निमित्त उद्यमी हुआ प्रवर्तमान है और मनसे अगोचर जिसने संयमतपका भार लिया है अर्थात् अङ्गीकार किया है तथा परम वैराग्यरूपी भूमिकामें चढ़नेकी जिसमें उत्कृष्ट शक्ति है, और विषयानुराग भावसे रहित है तथापि प्रशस्त रागरूप परसमयसे संयुक्त है । उस प्रशस्त रागके संयोगसे नवपदार्थ तथा पंचपरमेष्ठीमें भक्तिपूर्वक प्रतीति-श्रद्धा उपजती है, ऐसे परसमयरूप प्रशस्त रागको छोड़ नहीं सकता । जैसे रुई धुननेवाला पुरुष (धुनिया) रुई धुनते धुनते पींजनीमें लगी हुई रुईको दूर करनेके भयसे संयुक्त है, वैसे राग दूर नहीं होता ।

च्चिद्रूपा परसमयप्रवृत्तिं परित्यक्तुं, नोत्सहते; स खलु न नाम साक्षान्मोक्षं लभते । किन्तु सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिरूपया परम्परया तमवाप्नोति ॥ १७० ॥

अर्हदादिभक्तिमात्ररागजनितसाक्षान्मोक्षस्यान्तरायद्योतनमेतत्;—

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण ।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥१७१॥

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः परेण नियमेन ।
यः करोति तपःकर्म स सुरलोकं समादत्ते ॥ १७१ ॥

यः खल्वर्हदादिभक्तिविधेयबुद्धिः सन् परमसंयमप्रधानमतितीव्रं तपस्तप्यते; स ताव-

---

योग्यमात्मभावनामपरित्यजन् सन् देवलोके कालं गमयति ततोपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादिविभूतिं लब्ध्वापि पूर्वभवभावितशुद्धात्मभावनाबलेन मोहं न करोति ततश्च विषयसुखं परिहृत्य जिनदीक्षां गृहीत्वा निर्विकल्पसमाधिविधानेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निज-शुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं गच्छतीति भावार्थः ॥ १७० ॥ अथ पूर्वसूत्रे भणितं तद्भवे मोक्षं न लभते पुण्यबन्धमेव प्राप्नोतीति तमेवार्थं दृढयति;—अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः सन् परेणो-त्कृष्टेन यः कश्चित्करोति । किं ? तपःकर्म, स नियमेन सुरलोकं समाददाति प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्र सूत्रे यः कोपि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया मोक्षं वा व्रततपश्चरणादिकं करोति स निदानरहितपरिणामेन सम्यग्दृष्टिर्भवति, तस्य तु संहननादिशक्त्यभावाच्छुद्धात्मस्वरूपे स्थातु-

---

इसकारण ही साक्षात् मोक्षपदको नहीं पाता । जब ऐसा है तो उसकी गति किसप्रकार होती है ? प्रथम ही तो देवादि गतियोंमें संक्लेश प्राप्तिकी परंपरा होती है, तत्पश्चात् मोक्षपदको प्राप्त होता है, क्योंकि परंपरासे इस सूक्ष्म परसमयसे भी मोक्ष सधता है ॥ १७० ॥ आगे, फिर भी अरहन्तादिक पंचपरमेष्ठीमें भक्तिस्वरूप जो प्रशस्त राग है उससे मोक्षका अन्तराय दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचन-भक्तः] अरहन्त, सिद्ध, जिनबिंब और शास्त्रोंमें जो भक्तिभावसंयुक्त [परेण नियमेन] उत्कृष्ट संयमके साथ [तपःकर्म] तपस्यारूप कर्मको [करोति] करता है [सः] वह पुरुष [सुरलोकं] स्वर्गलोकको ही [समादत्ते] अंगीकार करता है । भावार्थ—जो पुरुष निश्चयसे अरहन्तादिककी भक्तिमें सावधानबुद्धि करता है और उत्कृष्ट इन्द्रियदमनसे शोभायमान परमप्रधान अतिशय तीव्र तपस्या करता है वह पुरुष उतना ही अरहन्तादिक तपरूप प्रशस्त रागमात्र क्लेशकलंकित अन्तरंग भावोंसे भावितचित्त होकर साक्षात् मोक्षको नहीं पाता, किन्तु मोक्षका अन्तराय करने वाले स्वर्गलोकको प्राप्त होता है । उस स्वर्गमें जाव सर्वथा अध्यात्म-रसके अभावसे

---

१ मोक्षम् ।

न्मात्ररागकलिकलङ्कितस्वान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोदमोहितान्तरङ्गं स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ॥१७१॥

साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम् ;—

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि ।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ॥१७२॥

तस्मान्निवृत्तिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किञ्चित् ।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति ॥१७२॥

साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरं हि वीतरागत्वम् । ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दननगसङ्गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलद्दुःखसौख्यकल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भारभयङ्करं भवसागरमुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्रमध्यास्य सद्यो निर्वाति ॥ अलं विस्तरेण । स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन

मशक्यत्वाद्वर्तमानभवे पुण्यबंध एव भवान्तरे तु परमात्मभावनास्थिरत्वे सति नियमेन मोक्षो भवति, तद्विपरीतस्य भवान्तरेपि मोक्षनियमो नास्तीति सूत्राभिप्रायः ॥ १७१ ॥ इत्यचरमदेहपुरुषव्याख्यानमुख्यत्वेन दशमस्थले गाथाद्वयं गतं । अथास्य पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति प्रतिपादयति;—तम्हा यस्मादत्र ग्रन्थे मोक्षमार्गविषये वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो निर्वृत्त्यभिलाषी पुरुषः रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि रागं सर्वत्र विषये करोतु मा किंचित् सो तेण वीयरागो स तेन रागाद्यभावेन वीतरागः सन् भवियो भव्यजीवः भवसायरं तरदि भवसमुद्रं तरतीति । तद्यथा । यस्मादत्र शास्त्रे मोक्षमार्गव्याख्यानविषये निरुपाधिचैतन्यप्रकाशरूपं वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मा-

---

इन्द्रियविषयरूप विषवृक्षकी वासनासे मोहित चित्तवृत्तिको धारण करता हुआ बहुत कालपर्यंत सरागभावरूप अङ्गारोंसे दह्यमान हुआ बहुत ही खेदखिन्न होता है ॥ १७१ ॥ आगे साक्षात् मोक्षमार्गका सार दिखानेके लिये इस शास्त्रका तात्पर्य संक्षेपमें दिखाते हैं;—[तस्मात्] जिससे कि राग भावोंसे स्वर्गादि सांसारिक सुख उत्पन्न होते हैं उस कारणसे [निवृत्तिकामः] मुक्त होनेका इच्छुक [सर्वत्र] सब जगह अर्थात् शुभाशुभ अवस्थाओंमें [किञ्चित्] कुछ भी [रागं] रागभाव [मा करोतु] मत करो । [तेन] जिससे [सः] वह जीव [वीतरागः] सरागभावोंसे रहित होता हुआ [भव्यः] मोक्षावस्थाके निकटवर्ती होकर [भवसागरं] संसाररूपी समुद्रको [तरति] तर जाता है अर्थात् संसार-समुद्रसे पार हो जाता है । भावार्थ—

---

१ बाहुल्य. २ अवगाह्य. ३ निर्वाण याति ।

शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति । द्विविधम् किल तात्पर्यं । सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यश्चेति । तत्र सूत्रतात्पर्यं किल प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम् । शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते । अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्षतत्त्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसंबन्धिबन्धमोक्षायतनबन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदितनिश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतपरमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति । तदिदं वीतरागत्वम् व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा । व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेदवासितबुद्धयः

स्केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपकार्यसमयसारशब्दाभिधानमोक्षाभिलाषी भव्योऽर्हदादिविषयेपि स्वसंवित्तिलक्षणरागं मा करोतु तेन निरुपरागचिज्जोतिर्भावेन वीतरागो भूत्वा अजरामरपदस्य विपरीतं जातिजरामरणादिरूपविविधजलचराकीर्णं वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखरसास्वादप्रतिबन्धकनारकादिदुःखरूपक्षारनीरपूर्णं रागादिविकल्परहितपरमसमाधिविनाशकपंचेन्द्रियविषय-

---

जो साक्षात् मोक्षमार्गका कारण हो सो वीतरागभाव है, सो अरहन्तादिकमें जो भक्ति है या राग है वह स्वर्गलोकादिकके कलेशकी प्राप्ति करके अन्तरंगमें अतिशय दाहको उत्पन्न करता है। ये धर्मराग कैसे हैं ? जैसे चन्दनवृक्षमें लगी अग्नि पुरुषको जलाती है। यद्यपि चन्दन शीतल है, अग्निके दाहको दूर करनेवाला है, तथापि चंदनमें प्रविष्ट हुई अग्नि आतापको उपजाती है। इसीप्रकार धर्मराग भी कथंचित् दुःखका उत्पादक है। इस कारण धर्मराग भी हेय (त्यागने योग्य) जानो। जो कोई मोक्षका अभिलाषी महाजन है वह प्रथम ही विषयरागका त्यागी होवे। अत्यन्त वीतराग होकर संसारसमुद्रके पार जावे। जो संसारसमुद्र नानाप्रकारके सुखदुःखरूपी कल्लोलोंके द्वारा आकुल व्याकुल है, कर्मरूपी वाडवाग्निसे बहुतही भयका उत्पादक अति दुस्तर है, ऐसे संसारसे पार जाकर परममुक्त अवस्थारूप अमृतसमुद्रमें मग्न होकर तत्काल ही मोक्षपदको पाते हैं। बहुत विस्तार कहां तक किया जाय ? जो साक्षात् मोक्षमार्गका प्रधान कारण है, समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य है ऐसा वीतरागभाव ही जयवन्त होओ। सिद्धान्तोंमें दो प्रकारका तात्पर्य दिखाया है। एक सूत्रतात्पर्य, एक शास्त्रतात्पर्य। जो परंपरासे सूत्ररूपसे चला आया हो सो तो सूत्रतात्पर्य है, और समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागभाव है। क्योंकि उस जिनेन्द्रप्रणीत शास्त्रकी उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थोंमेंसे मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है। उस मोक्षकी सिद्धिका कारण एकमात्र वीतरागप्रणीत शास्त्र ही हैं, क्योंकि षड्द्रव्य पंचास्तिकायके स्वरूपके कथनसे जब यथार्थ वस्तुका स्वभाव दिखाया जाता है तब सहज ही मोक्षनामक पदार्थ सधता है। यह सब कथन शास्त्रमें ही है। नव पदार्थोंके कथन से प्रगट किये हैं। बंध-मोक्षका सम्बन्ध पाकर बन्ध-मोक्षके ठिकाने और बन्ध-मोक्षके भेद,

सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः । तथाहीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदमश्रद्धानमिदं ज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदमज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमिदमचरितमिदं चरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः । शनैःशनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः । कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतंत्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः । पुनः पुनर्दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चिताः सन्ततोद्युक्ताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहिताऽध्वपरिष्वङ्गमलिनवासस इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहि-

---

कांक्षाप्रभृतिसमस्तशुभाशुभविकल्पजालरूपकल्लोलमालाविराजितमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखप्रतिपक्षभूताकुलत्वोत्पादकनानाप्रकारमानसदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यंतरं च संसारसागरमुत्तीर्यानन्तज्ञानादिगुणलक्षणमोक्षं प्राप्नोतीति ॥ अथैवं पूर्वोक्तप्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं ज्ञातव्यं तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण

स्वरूप सब शास्त्रोंमें ही दिखाये गये हैं और शास्त्रोंमें ही निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग भली प्रकार दिखाया गया है । और जिनशास्त्रोंमें वर्णन किये हुये मोक्षके कारण जो परम वीतराग भाव हैं, उनसे शान्तचित्त होता है । इस कारण उस परमागमका तात्पर्य वीतरागभाव ही जानो । यह वीतरागभाव व्यवहारनिश्चयनयके अविरोधसे जब भले प्रकार जाना जाता है तबही प्रगट होता है और वांछित सिद्धिका कारण होता है, अन्य प्रकारसे नहीं । आगे निश्चय और व्यवहारनयका अविरोध दिखाते हैं । जो जीव अनादि कालसे लेकर भेदभावसे वासितबुद्धि हैं, वे व्यवहार-नयावलंबी होकर भिन्न साध्यसाधनभावको अंगीकार करते हैं, तब सुखसे पारगामी होते हैं । प्रथम ही जो जीव ज्ञान अवस्थामें रहनेवाले हैं वे तीर्थ कहलाते हैं । तीर्थसाधनभाव जहां है तीर्थफल शुद्ध सिद्धअवस्था साध्यभाव है । तीर्थ क्या है, सो दिखाते हैं,—जिन जीवोंके ऐसे विकल्प हों कि यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य है, यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है, यह श्रद्धान है, इसका नाम अश्रद्धान है, यह वस्तु जानने योग्य है, यह नहीं जानने योग्य है, यह स्वरूप ज्ञाताका है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचरने योग्य है, यह वस्तु आचरने योग्य नहीं है, यह आचारमयी भाव हैं, यह आचरण करनेवाला है, यह चारित्र है, ऐसे अनेक प्रकारके करने न करनेके कर्त्ताकर्मके भेद उपजते हैं, उन विकल्पोंके होते हुये उन पुरुष तीर्थोंको सुदृष्टिके बढ़ावसे वारंवार उन पूर्वोक्त गुणोंके देखनेसे प्रगट उल्लास लिये उत्साह बढ़ता है । जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है वैसेही ज्ञानदर्शनचारित्ररूप अमृतचंद्रमाकी कलाओंका कर्त्तव्याकर्त्तव्य भेदोंसे उन जीवोंके बढ़वारी होती है । फिर उन ही जीवोंके शनैः शनैः (धीरे धीरे) मोहरूप

तत्स्वरूपे विश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिरतरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूचयन्तः क्रमेण समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति। अथ ये तु केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाधनभावावलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः, प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्रविकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूपकर्मकाण्डोड्डमराचलिताः, कदाचित्किञ्चिद्रोचमानाः, कदाचित्किञ्चिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्किञ्चिदाचरन्तः, दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजमानाः[1], कदाचिदनुकम्प्यमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टितानां

परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति मुक्तिसिद्धये नच पुनर्निरपेक्षाभ्यामिति वार्तिकं । तद्यथा । ये केचन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गनिरपेक्षं केवलशुभानुष्ठानरूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्गं मन्यन्ते तेन तु सुरलोकादिक्लेशपरंपरया संसारं

महामल्लका मूल सत्तासे विनाश होता है । किस ही एक कालमें अज्ञानताके आवेशसे प्रमादकी आधीनतासे उनही जीवोंके आत्मधर्मकी शिथिलता है । फिर आत्माको न्यायमार्गमें चलानेके लिये आपको प्रचण्ड दण्ड देते हैं । शास्त्रन्यायसे फिर ये ही जिनमार्गी वारंवार जैसा कुछ रत्नत्रयमें दोष लगा हो उसीप्रकार प्रायश्चित्त करते हैं । फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्माको जो आत्मस्वरूपसे भिन्नस्वरूप श्रद्धानज्ञानचारित्ररूप व्यवहाररत्नत्रयसे शुद्धता करते हैं । जैसे मलीन वस्त्रको धोबी भिन्न साध्यसाधनभावसे शिलाके ऊपर साबुन आदि सामग्रियोंसे उज्वल करता है, वैसेही व्यवहारनयका अवलम्ब पाकर भिन्न साध्यसाधनभावके द्वारा गुणस्थान चढ़नेकी परिपाटीके क्रमसे विशुद्धताको प्राप्त होता है । फिर उनही मोक्षमार्ग साधक जीवोंके निश्चयनयकी मुख्यतासे भेदस्वरूप परअवलंबी व्यवहारमयी भिन्न साध्यसाधनभावका अभाव है। इसकारण अपने दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपमें सावधान होकर अन्तरंग गुप्त अवस्थाको धारण करता है । और जो समस्त बहिरंग योगोंसे उत्पन्न क्रियाकाण्डका आडम्बर है उनसे रहित निरंतर संकल्प विकल्पोंसे रहित परम चैतन्य भावोंके द्वारा सुन्दर परिपूर्ण आनंदवंत भगवान् परब्रह्म आत्मामें स्थिरताको करते हैं ऐसेही निश्चयावलम्बी जीव हैं। वे व्यवहारनयसे अविरोधी क्रमसे परम समरसीभावके भोक्ता होते हैं । तत्पश्चात् परम वीतरागपदको प्राप्त होकर साक्षात् मोक्षावस्थाके अनुभवी होते हैं। यह तो मोक्षमार्ग दिखाया । अब जो एकान्तवादी हैं, मोक्षमार्गसे पराङ्मुख हैं उनका स्वरूप दिखाया जाता है । जो जीव मात्र व्यवहारनयका ही अवलंबन करते हैं उन जीवोंके परद्रव्यरूप भिन्न साध्यसाधनभावकी दृष्टि है, स्वद्रव्यरूप निश्चयनयात्मक अभेद साध्यसाधनभाव नहीं

१ वैराग्यमानाः ।

व्युत्थापननिरोधाय नित्यबद्धपरिकराः, उपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनां भावयमाना, वारंवारमभिवर्धितोत्साहा, ज्ञानचरणाय स्वाध्यायकालमवलोकयन्तो, बहुधा विनयं प्रपञ्चयन्तः, प्रविहितदुर्द्धरोपधानाः, सुष्ठु बहुमानमातन्वन्तो, निह्नवापत्तिं नितरां निवारयन्तोऽर्थव्यञ्जनतदुभयशुद्धौ नितान्तसावधानाः, चारित्राचरणाय हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहसमस्तविरतिरूपेषु पञ्चमहाव्रतेषु तन्निष्ठवृत्तयः, सम्यग्योगनिग्रहलक्षणासु गुप्तिषु नितान्तं गृहीतोद्योगा, ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपासु समितिष्वत्यन्तनिवेशितप्रयत्नास्तप आचरणायानशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशेष्वभीक्ष्णमुत्सहमानाः, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यव्युत्सर्गस्वाध्यायध्यानपरिकरांकुशितस्वान्ता, वीर्याचर-

---

परिश्रमंतीति, यदि पुनः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गं मन्यंते निश्चयमोक्षमार्गानुष्ठानशक्त्यभावान्निश्चयसाधकं शुभानुष्ठानं च कुर्वन्ति तर्हि सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं लभन्ते इति व्यवहारैकान्तनिराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं । येपि केवलनिश्चयनयावलं-

---

है। अकेले व्यवहारसे खेदखिन्न हैं। वारंवार परद्रव्यस्वरूप धर्मादिक पदार्थोंमें श्रद्धानादिक अनेक प्रकारकी बुद्धि करते हैं। बहुत द्रव्यश्रुतके पठनपाठनादि संस्कारसे नानाप्रकारके विकल्पजालोंसे कलंकित अन्तरंगवृत्तिको धारण करते हैं। अनेकप्रकार यतिका द्रव्यलिंग, जिन बहिरंगव्रत तपस्यादिक कर्मकांडोंके द्वारा होता है, उनका ही अवलंबन कर स्वरूपसे भ्रष्ट हुआ है। दर्शनमोहके उदयसे व्यवहार धर्मरागके अंशसे किसी कालमें पुण्यक्रियामें रुचि करता है, किसी कालमें दयावन्त होता है, किसी कालमें अनेक विकल्पोंको उपजाता है, किसी कालमें कुछ आचरण करता है, किसी कालमें दर्शनके आचरण निमित्त समताभावको धरता है, किसी कालमें प्रगटदशाको धरता है। किसी कालमें धर्ममें अस्तित्वभावको धारण करता है, शुभोपयोग प्रवृत्तिसे शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि आदिक भावोंके उत्थापनके निमित्त सावधान होकर प्रवृत्ति करता है। केवल व्यवहारनय रूपही उपवृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावनांगादि अंगोंकी भावना भाता है। वारंवार उत्साहको वढाता है। ज्ञानभावनाके निमित्त पठन पाठनका काल विचारता रहता है। वहुत प्रकार विनयमें प्रवृत्ति करता है। शास्त्रकी भक्तिके निमित्त वहुत आरम्भ भी करता है। भले प्रकार शास्त्रका मान करता है। गुरु आदिकमें उपकारप्रवृत्तिसे मुकरता नहीं है। एक कालमें अर्थ, व्यंजन और तदुभयकी शुद्धतामें सावधान रहता है। चारित्रके धारण करनेके लिये हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीसेवन, परिग्रह इन पाँच अधर्मोंके सर्वथा त्यागरूप जो पंचमहाव्रत हैं उनमें थिरवृत्तिको करता है। जिनमें मनवचनकायका निरोध है ऐसी तीन गुप्तियोंसे निरन्तर योगावलंबन करता है। ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग ये पांच समिति हैं, उनमें सर्वथा प्रयत्न करता है। तप आचरणके निमित्त अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश इन छह प्रकारके बाह्य-

णाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणाः, कर्मचेतनाप्रधानत्वाद्दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तयः, सकलक्रियाकाण्डाडम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपां ज्ञानचेतनां मनागप्यसंभावयन्तः, प्रभूतपुण्यभारमन्थरितचित्तवृत्तयः, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिरं संसारसागरे भ्रमन्तीति । उक्तञ्च—"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा । चरणकरणस्स सारं, णिच्छयसुद्धं ण जाणंति" । येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिनः सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलितविलोचनपुटाः किमपि स्वबुद्ध्यावलोक्य यथासुखमासते; ते खल्ववधीरितभिन्नसाध्यसाधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभ-

बिनः संतोपि रागादिविकल्परहितं परसमाधिरूपं शुद्धात्मानमलभमाना अपि तपोधनाचरणयोग्यं षडावश्यकाद्यनुष्ठानं श्रावकाचरणयोग्यं दानपूजाद्यनुष्ठानं च दूषयंते तेप्युभयभ्रष्टाः संतो निश्चयव्यवहारानुष्ठानयोग्यावस्थान्तरमजानन्तः पापमेव बध्नन्ति । यदि पुनः शुद्धात्मानुष्ठानरूपं

तपमें निरन्तर उत्साह करता है । प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय, ध्यान इन छह प्रकारके अन्तरंग तपके लिये चित्तको वशमें करता है । वीर्याचारके निमित्त कर्मकांडमें अपनी सर्वशक्तिसे प्रवृत्त होता है । जिन्होंने कर्मचेतनाकी प्रधानतासे अशुभ कर्मकी प्रवृत्ति निवारी है वे ही शुभकर्मकी प्रवृत्तिको अङ्गीकार करते हैं । समस्त क्रियाकांडके आडम्बरसे गर्भित जो जीव हैं वे ज्ञानदर्शनचारित्ररूपगर्भित ज्ञानचेतनाको किसी कालमें भी नहीं पाते । वहुत पुण्याचरणके भारसे गर्भित चित्तवृत्तिको धारण करते हैं, ऐसे केवल व्यवहारावलंबी मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गलोकादिकके क्लेशोंकी प्राप्तिकी परंपराको अनुभव करते हुये परमकलाके अभावसे वहुतकाल पर्यन्त संसारमें परिभ्रमण करेंगे । सो कहा भी है—

उक्तं च (गाथा)

"चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा ।
चरणकरणस्स सारं, णिच्छयसुद्धं ण जाणंति" ॥ १ ॥

अर्थात्—जो जीव केवल निश्चयनयके ही अवलंबी हैं वे व्यवहाररूप स्वसमयमयी क्रियाकर्मकांडको आडंबर जानकर व्रतादिकमें विरागी हो रहे हैं । अर्द्ध उन्मीलित लोचनसे ऊर्ध्वमुखी होकर स्वच्छंदवृत्तिको धारण करते हैं । कोई कोई अपनी वुद्धिसे ऐसा मानते हैं कि हम स्वरूपका अनुभव करते हैं । ऐसी समझसे सुखरूप प्रवृत्ति करते हैं । वे भिन्न साध्यसाधनभावरूप व्यवहारको तो मानते नहीं, निश्चयरूप अभिन्न साध्यसाधनको अपनेमें मानते हुये यों ही वहक रहे हैं । वे वस्तुको नहीं पाते; न निश्चयपदको पाते हैं, न

१ चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्तव्यापाराः ।
चरणकरणस्य सारं, निश्चयशुद्धं न जानन्ति ॥

रालसचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रभूतघृतसितोपलपायसासादितसौहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनो-भ्रंशविहितमोहा इव, मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबंधभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूपज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमादतन्त्रा अरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति । उक्तञ्च—"णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता । णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई" ॥ ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानवलम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः । शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानुवृत्तिनिर्वर्तिकां क्रिया-

---

मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहारमोक्षमार्गं मन्यन्ते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्यभावेन शुभाशुभानुष्ठानरहिता अपि यद्यपि शुद्धात्मभावनासापेक्षशुभानुष्ठानरतपुरुषसदृशा न भवन्ति तथापि सरागसम्यक्त्वादिदानव्यवहारसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परंपरया मोक्षं च लभंते इति निश्चयैकान्त-

---

व्यवहार पदको पाते हैं । 'इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः' होकर बीचमें ही प्रमादरूपी मदिराके प्रभावसे चित्तमें मतवाले हुये मूर्छितसे हो रहे हैं। जैसे कोई बहुत घी, मिश्री, दुग्ध इत्यादि गरिष्ठ वस्तुके भोजनपानसे सुथिर आलसी हो रहे हैं। अर्थात् अपनी उत्कृष्ट देहके बलसे जड़ हो रहे हैं। महा भयानक भावसे मानों कि वे मनकी भ्रष्टतासे मोहित-विक्षिप्त हो गये हैं । चैतन्य-भावसे रहित मानो कि वे वनस्पति ही हैं। मुनि-पदवी करनेवाली कर्मचेतना का पुण्यबंधके भयसे अवलंबन नहीं करते और परमनिःकर्मदशारूप ज्ञानचेतनाको अङ्गीकार की हो नहीं, इस कारण अतिशय चंचलभावोंके धारी हैं । प्रगट अप्रगटरूप जो प्रमाद हैं उनके आधीन हो रहे हैं । महा अशुद्धोपयोगसे आगामी कालमें कर्मफल चेतनासे प्रधान होते हुये वनस्पतिके समान जड़ हैं । केवल मात्र पापही के बांधनेवाले हैं । सो कहा भी है कि:—

उक्तं च (गाथा)

"णिच्छयमालंबंता, णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता ।
णासंति चरणकरणं, बाहरिचरणालसा केई" ॥ २ ॥

अर्थात्—जो कोई पुरुष मोक्षके निमित्त सदाकाल उद्यमी हो रहे हैं वे महा भाग्यवान हैं । निश्चय व्यवहार इन दोनों नयोंमें किसी एकका पक्ष नहीं करते, सर्वथा मध्यस्थ भाव रखते हैं । शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वमें स्थिरता करनेके लिये सावधान रहते हैं । जब प्रमादभावकी प्रवृत्ति होती है तब उसको दूर करनेके लिये शास्त्राज्ञानुसार

---

१ निश्चयमालम्बन्तो, निश्चयतो निश्चयं अजानन्तः ।
नाशयन्ति चरणकरणं, बाह्यचरणालसाः केऽपि ॥

काण्डपरिणतिमाहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि संचेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि सन्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरुपमीयमाना अपि दूरनिरस्तकर्मफलानुभूतयः कर्मानुभूतिनिरुत्सुकाः केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विका-नन्दनिर्भरतरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भव-न्तीति ॥ १७२ ॥

कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम् ;—

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥१७३॥

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया ।
भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ॥ १७३ ॥

निराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं । ततः स्थितमेतन्निश्चयव्यवहारपरस्परसाध्यसाधकभावेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभंते ॥ १७२ ॥ इति शास्त्रतात्पर्योपसंहार-वाक्यं । एवं वाक्यपंचकेन कथितार्थस्य विवरणमुख्यत्वेन एकादशस्थले गाथा गता । अथ श्रीकुन्द-कुन्दाचार्यदेवः स्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन् सन् ग्रन्थं समापयति;—पंचास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ।

क्रियाकांड परिणतिरूप प्रायश्चित्त करके अत्यन्त उदासीन भाव धारण करते हैं । फिर यथाशक्ति आपको आपके द्वारा आपमें ही वेदन करते हैं । सदा निजस्वरूपके उपयोगी होते हैं । जो ऐसे अनेकान्तवादी साधक अवस्थाके धारण करनेवाले जीव हैं वे अपने तत्त्वकी थिरताके अनुसार क्रमक्रमसे कर्मोंका नाश करते हैं । अत्यन्त ही प्रमादसे रहित होते अडोल अवस्थाको धारण करते हैं । ऐसा जानो कि वनमें वनस्पति हैं । दूर किया है कर्मफल चेतनाका अनुभव जिन्होंने ऐसे, तथा कर्मचेतनाकी अनुभूतिमें उत्साह रहित हैं । केवल मात्र ज्ञानचेतनाकी अनुभूतिसे आत्मीक सुखसे भरपूर हैं । वे शीघ्रही संसार-समुद्रसे पार होकर समस्त सिद्धान्तोंके मूल शाश्वत पदके भोक्ता होते हैं ॥ १७२ ॥

ग्रन्थकर्त्ताने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ कहूंगा, सो उसको संक्षेपमें ही करके समाप्त करते हैं;—[मया] मुझ कुन्दकुन्दाचार्यने [पञ्चास्तिकायसंग्रहं] कालके विना पंचास्तिकायरूप जो पांच द्रव्य हैं उनके कथनका जिसमें संग्रह है ऐसा यह [सूत्रं] शब्द-अर्थ-गर्भित संक्षेप अक्षर-पद-वाक्य-रचनारूप सूत्र [भणितं] पूर्वाचार्योंकी परंपरा-शब्दब्रह्मानुसार कहा है । यह पञ्चास्तिकाय कैसा है ? [प्रवचनसारं] द्वादशांगरूप जिनवाणीका रहस्य है । मैं कैसा हूं ? [प्रवचन-भक्तिप्रचोदितेन] सिद्धान्त कहनेके अनुरागसे प्रेरित किया हुआ हूं । किसलिये यह

मार्गो हि परमवैराग्यकरणप्रवणा पारमेश्वरी परमाज्ञा । तस्याः प्रभावनं प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा समुद्योतनं तदर्थमेव परमागमानुरागवेगप्रचलितमनसा संक्षेपतः

किंविशिष्टं ? प्रवचनसारं । किमर्थं ? मार्गप्रभावनार्थमिति । तथाहि—मोक्षमार्गो हि संसार-शरीरभोगवैराग्यलक्षणो निर्मलात्मानुभूतिस्तस्याः प्रभावनं स्वयमनुभवनमन्येषां प्रकाशनं वा तदर्थमेव परमागमभक्तिप्रेरितेन मया कर्तृभूतेन पंचास्तिकायशास्त्रमिदं व्याख्यातं । किं लक्षणं ? पंचास्तिकायषड्द्रव्यादिसंक्षेपेण व्याख्यानेन समस्तवस्तुप्रकाशकत्वात् द्वादशांगस्यापि प्रवचनस्य सारभूतमिति भावार्थः ॥ १७३ ॥ इति ग्रंथसमाप्तिरूपेण द्वादशस्थले गाथा गता ।

एवं तृतीयमहाधिकारः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ यतः पूर्वं संक्षेपरुचिशिष्यसंबोधनार्थं पंचास्तिकायप्राभृतं कथितं ततो यदा काले शिक्षां गृह्णाति तदा शिष्यो भण्यते इति हेतोः शिष्यलक्षणकथनार्थं परमात्माराधकपुरुषाणां दीक्षाशिक्षाव्यवस्थाभेदाः प्रतिपाद्यंते । दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थभेदेन षट्काला भवंति । तद्यथा । यदा कोप्यासन्नभव्यो भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमाचार्यं प्राप्यात्माराधनार्थं बाह्याभ्यंतरपरिग्रहपरित्यागं कृत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति स दीक्षाकालः, दीक्षानंतरं निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयस्य परमात्मतत्त्वस्य च परिज्ञानार्थं तत्प्रतिपादकाध्यात्मशास्त्रेषु यदा शिक्षां गृह्णाति स शिक्षाकालः । शिक्षानंतरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गे स्थित्वा तदर्थिनां भव्यप्राणिगणानां परमात्मोपदेशेन यदा पोषणं करोति स च गणपोषणकालः । गणपोषणानन्तरं गणं त्यक्त्वा यदा निज-परमात्मनि शुद्धसंस्कारं करोति स आत्मसंस्कारकालः । आत्मसंस्कारानंतरं तदर्थमेवक्रोधादि-कषायरहितानंतज्ञानादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यग्लेखनं तनुकरणं भावसल्लेखना तदर्थं कायक्लेशानुष्ठानं द्रव्यसल्लेखना तदुभयाचरणं स सल्लेखनाकालः सल्लेखना-नंतरं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानबहिर्द्रव्येच्छानिरोधलक्षणतपश्चरणरूप-निश्चयचतुर्विधाराधना या तु सा चरमदेहस्य तद्भवमोक्षयोग्या तद्विपरीतस्य भवांतरमोक्षयोग्या चेत्युभयमुत्तमार्थकालः । अत्र कालषट्कमध्ये केचन प्रथमकाले केचन द्वितीयकाले केचन तृतीयकालादौ केवलज्ञानमुत्पादयंतीति कालषट्कनियमो नास्ति । अथवा "ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यत्र यस्य यदा यथा । इत्यष्टागांनि योगानां साधनानि भवंति च" । अस्य संक्षेपव्याख्यानं "गुप्तेद्रियमना ध्याता ध्येयं वस्तु यदा स्थितं । एकाग्रचिंतनं ध्यानं फलं संवरनिर्जरे" ॥ इत्यादि तत्त्वानुशासनध्यानग्रन्थादौ कथितमार्गेण जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिधा ध्यातारो ध्यानानि च भवंति। तदपि कस्मात् ? तत्रैवोक्तमास्ते द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपा ध्यानसामग्री जघन्यादि-

---

ग्रन्थ रचना की है ? [मार्गप्रभावनार्थं] जिनेन्द्र भगवन्तप्रणीत जिनशासनकी वृद्धिके लिये । भावार्थ—संसार - विषयभोगसे परम वैराग्यकी करनेवाली भगवन्तकी आज्ञाका नाम मोक्षमार्ग है । उसकी प्रभावनाके लिये यह ग्रन्थ मैंने किया है । अथवा उसही

समस्तवस्तुतत्त्वसूचकत्वादतिविस्तृतस्यापि प्रवचनसारस्य सारभूतं पञ्चास्तिकायसंग्रहाभिधानं भगवत्सर्वज्ञोपज्ञत्वात् सूत्रमिदमभिहितं मयेति । अथैवं शास्त्रकारः प्रारब्धस्यान्त-

---

भेदेन त्रिधेति वचनात् । अथवातिसंक्षेपेण द्विधा ध्यातारो भवन्ति। शुद्धात्मभावनाप्रारंभकाः पुरुषाः सूक्ष्मसविकल्पावस्थायां प्रारब्धयोगिनो भण्यन्ते। निर्विकल्पशुद्धात्मावस्थायां पुनर्निष्पन्नयोगिन इति संक्षेपेणाध्यात्मभाषया ध्यातृध्यानध्येयानि संवरनिर्जरासाधकरागादिविकल्परहितपरमानंदैकलक्षणसुखवृद्धिनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानवृद्धिबुद्ध्यादिसप्तर्द्धिरूपध्यानफलभेदा ज्ञातव्याः । किं च । शिक्षकप्रारंभककृताभ्यासनिष्पन्नरूपेण कैश्चिदन्यत्रापि यदुक्तं ध्यातृपुरुषलक्षणं तदत्रैवांतर्भूतं यथासंभवं द्रष्टव्यमिति । इदानीं पुनरागमभाषया षट्कालाः कथ्यंते । यदा कोपि चतुर्विधाराधनाभिमुखः सन् पंचाचारोपेतमाचार्यं प्राप्योभयपरिग्रहरहितो भूत्वा जिनदीक्षां गृह्णाति तदा दीक्षाकालः, दीक्षानंतरं चतुर्विधाराधनापरिज्ञानार्थमाचाराराधनादिचरणकरणग्रन्थशिक्षां गृह्णाति तदा शिक्षाकालः, शिक्षानंतरं चरणकरणकथितार्थानुष्ठानेन व्याख्यानेन च पंचभावनासहितः सन् शिष्यगणपोषणं करोति तदा गणपोषणकालः, । भावनाः कथ्यंते—तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसंतोषभेदेन भावनाः पंचविधा भवंति । तद्यथा – अनशनादिद्वादशविधनिर्मलतपश्चरणं तपोभावना, तस्याः फलं विषयकषायजयो भवति। प्रथमानियोगचरणानियोगकरणानियोगद्रव्यानियोगभेदेन चतुर्विध आगमाभ्यासः श्रुतभावना । तथाहि—त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणव्याख्यानं प्रथमानियोगो भण्यते, उपासकाध्ययनाचाराधनादिग्रन्थैर्देशचारित्रसकलचारित्रव्याख्यानं चरणानियोगो भण्यते, जिनांतरत्रिलोकसारलोकविभागलोकानियोगादिव्याख्यानं करणानियोगो भण्यते, प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तग्रन्थैर्जीवादिषड्द्रव्यादीनां व्याख्यानं द्रव्यानियोग इति, तस्याः श्रुतभावनायाः फलं जीवादितत्त्वविषये संक्षेपेण हेयोपादेयतत्त्वविषये वा संशयविमोहविभ्रमरहितो निश्चलपरिणामो भवति । उक्तं च । "आत्महितास्था भावस्य संवरो नवनवश्च संवेगः निःकंपता तपोभावना परस्योपदेशनं ज्ञातुः" ॥ मूलोत्तरगुणाद्यनुष्ठानविषये निर्गहनवृत्तिः सत्त्वभावना, तस्याः फलं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेपि निर्गहनेन मोक्षं साधयति पांडवादिवत् । "एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो । सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥" इत्येकत्वभावना तस्याः फलं स्वजनपरजनादौ निर्मोहत्वं भवति । तथा चोक्तं । "भगिनीं विडंब्यमानां यथा विलोक्यैकभावनाचतुरः । जिनकल्पितो न मूढः क्षपकोपि तथा न मुह्येत" ॥ मानापमानसमतावलेनाशनपानादौ यथालाभेन संतोषभावना तस्याः फलं रागाद्युपाधिरहितपरमानंदैकलक्षणात्मोत्थसुखतृप्त्या निदानबंधादिविषयसुखनिवृत्तिरिति, गणपोषणानंतरं स्वकीयगणं त्यक्त्वात्मभावनासंस्कारार्थी भूत्वा परगणं गच्छति तदात्मसंस्कारकालः, आत्म-

---

मोक्षमार्गका उद्योत किया है । सिद्धान्तानुसार संक्षेपसे भक्तिपूर्वक पञ्चास्तिकाय नामा मूल सूत्र-ग्रन्थ कहा है । इसप्रकार ग्रन्थकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्य महाराजने यह ग्रन्थ

मुपगम्यात्यन्तं कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते ॥१७२॥

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥ ८ ॥

इति श्रीपंचास्तिकायव्याख्यायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनात्मको द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

समाप्तेयं तत्त्वदीपिका टीका पंचास्तिकायस्य ।

संस्कारानंतरमाचाराराधनाकथितक्रमेण द्रव्यभावसल्लेखनां करोति तदा सल्लेखनाकाल', सल्लेखनानंतरं चतुर्विधाराधनाभावनया समाधिविधिना कालं करोति तदा स उत्तमार्थकालश्चेति । अत्रापि केचन प्रथमकालादावपि चतुर्विधाराधनां लभंते षट्कालनियमो नास्ति । अयमत्र भावार्थः "आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य । आदा पञ्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ।" एवं प्रभृत्यागमसारादर्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्मशास्त्रं भण्यते, तदाश्रिताः षट्कालाः पूर्वं संक्षेपेण व्याख्याताः। वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषड्द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते। तच्चाभेदरत्नत्रयात्मकस्याध्यात्मानुष्ठानस्य वहिरंगसाधनं भवति। तदाश्रिता अपि षट्काला संक्षेपेण व्याख्याता, विशेषेण पुनरुभयत्रापि षट्कालव्याख्यानं पूर्वाचार्यकथितक्रमेणान्यग्रंथेषु ज्ञातव्यं ॥

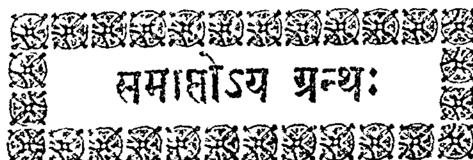
इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावदेकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टभिरंतराधिकारैः पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः। तदनंतरं पंचाशद्गाथाभिर्दशभिरंतराधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो द्वितीयो महाधिकारः। तदनंतरं विंशतिगाथाभिर्द्वादशस्थलैर्मोक्षस्वरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधानस्तृतीयमहाधिकारश्चेत्यधिकारत्रयसमुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिः पंचास्तिकायप्राभृतः समाप्तः ॥ विक्रमसंवत् १३६९ वर्षेराश्विनशुद्धिः १ भौमदिने ।

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः पञ्चास्तिकायस्य ।

प्रारम्भ किया था सो उसके पारको प्राप्त हुये । अपनी कृतकृत्य अवस्था मानी, कर्मरहित शुद्धस्वरूपमें स्थिरभाव किया । ऐसी हमारेमें भी श्रद्धा उपजी है ॥ १७२ ॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत समयव्याख्यायां भाषाटीकायां नवपदार्थपुरःसर मोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥२॥

समाप्ता इयं बालावबोधिनी भाषाटीका ।



अध्यात्मयोगी आचार्य कुन्दकुन्द

जइ पउमणंदिणाहो, सीमंधरसामि दिव्वणाणेण ।
ण विवोहइ तो समणा, कहं सुमग्गं पयाणंति ॥

—देवसेनाचार्य.

अर्थ—विदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी से प्राप्त किये हुये दिव्य ज्ञान के द्वारा श्री पद्मनंदिनाथ (श्री कुन्दकुन्दाचार्य) ने वोध नहीं दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?



..........कौण्डकुन्दो यतीन्द्रः ।
रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्येऽपि संव्यंजयितुं यतीशः ।
रजःपदं भूमितलं विहाय, चचार मन्ये चतुरंगुलं सः ॥

—विंध्यगिरि-शिलालेख.

अर्थ—यतीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य रज से भरी हुई भूमि को छोड़कर चार अंगुल ऊपर आकाश में चलते हैं, उससे मैं यह समझता हूँ कि वे अंतरंग तथा बहिरंग रज से अत्यन्त अस्पृष्ट थे ।